॥ हरि:ॐ ॥

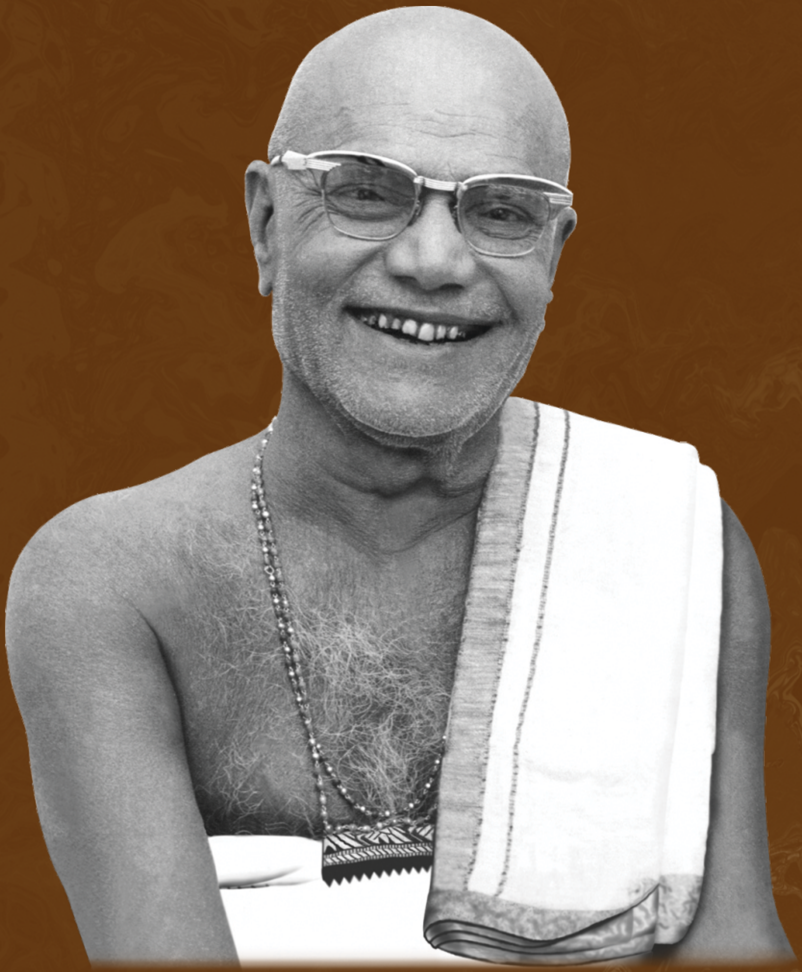

पूज्य श्रीमोटा

जीवन और कार्य

भाग–२

हरि:ॐ आश्रम प्रकाशन, सुरत

॥ हरि:ॐ ॥

पूज्य श्रीमोटा
जीवन और कार्य
भाग - २

: संपादकों :

ईश्वर पेटलीकर

रमेश भट्ट

रतिलाल मेहता

: अनुवादक :

डॉ. कविता शर्मा 'जदली'

: संशोधन-संवर्धन :

रजनीभाई बर्मावाला

हरि:ॐ आश्रम प्रकाशन, सूरत

❑ **प्रकाशक :**
हरि:ॐ आश्रम, जहाँगीरपुरा, कुरुक्षेत्र, रांदेर,
सूरत–३९५००५, भ्रमणभाष : ९७२७७ ३३४००
Email : hariommota1@gmail.com
Website : www.hariommota.org

© हरि:ॐ आश्रम, सूरत – नडियाद

❑ प्रथम संस्करण

❑ पृष्ठ संख्या : ६ + ४०२ = ४०८

❑ मूल्य : रु. १५०/– (भाग–१ और भाग–२ का संयुक्त)

वांचन की सरलता के लिए ग्रंथ की रचना दो भाग में की गई है।

❑ प्राप्तिस्थान : हरि:ॐ आश्रम, सूरत – ३९५००५.
हरि:ॐ आश्रम, नडियाद – कपडवंज रोड, जूना बिलोदरा,
पो.बो. नं. ७४, नडियाद–३८७००१
भ्रमणभाष : +९१ ७८७८० ४६२८८

❑ अक्षरांकन : अर्थ कॉम्प्यूटर
२०३, मौर्य कोम्प्लेक्ष, सी. यु. शाह कॉलेज के सामने,
इन्कमटैक्स, अहमदाबाद–३८००१४.
भ्रमणभाष : ९३२७० ३६४१४

❑ मुद्रक :
साहित्य मुद्रणालय प्रा. लि.
सिटी मिल कम्पाउन्ड, कांकरिया रोड, अहमदाबाद–३८००२२
दूरभाष : (०७९) २५४६९१०१

अनुक्रमणिका

श्रीगंगाचरण में ४३३
जननी को अंजली ४३९
सच्ची ईश्वरभक्ति ४४०
साधना का थरमामीटर ४४१
दु:ख—प्रभु के आशीर्वाद............. ४३३
जीवनदाता दु:ख ४४४
दु:खमर्म.................................... ४४५
दु:ख ४४७
दु:ख का मर्म ४४८
पुरुषार्थ ४४९
सच्ची जीवनदृष्टि ४५१
लगन.. ४५२
प्रेरणा ४५३
गूढ़ तत्त्व ४५४
आत्मनिवेदन ४५७
एक.. ४५७
शून्य ४५८
हीन-अच्छा-बुरा ४५८
कसौटी...................................... ४५९
नामस्मरण ४५९
गुणों का खेल.............................. ४५९
गुरुमाहात्म्य ४६०
शिल्पी-छेनी जैसा प्रेम ४६१
चैतन्यकर्मों के मूल में ४६१
जन्ममृत्यु के रास ४६२
यौवन में जीवनसिद्धि..................... ४६३
'ज्ञानी और अज्ञानी के बीच
का अंतर' ४६४
आतुरता की अग्नि........................ ४६५
स्मरणसाथी ४६६
पूजा-अर्चन-आहार....................... ४६६
प्रार्थनाभाव से प्रवृत्तियाँ.................. ४६७
'आज' और 'कल' ४६८
गूढ़ता ४६९
आत्मनिष्ठ.................................. ४६९
फनागीरी.................................... ४७०
स्वजन भाव ४७१
बुद्धि ४७१
मोह ४७२
युद्ध... ४७३
विघ्न ४७३
मनुष्यदेह ४७४
समर्पण ४७५
साधना अनिवार्य ४७५
स्वप्न में साधना ४७६
सनम का तत्त्व ४७७
पीहर ४७८
क्या सुनेगा नहीं कोई ? ४७९
हमें जीना है.............................. ४८०
हमारा प्रेम ४८०
जीवनधंधा ४८१
जीवन सँभालते रहना.................... ४८२
प्यारे स्वजन ४८३
अनुकूलता के लिए प्रार्थना ४८५
भिखारी भीख माँगता है ४८६
भिखारी की दया जानकर योग्य
लगे तो टुकड़ा देना ४८६
गूढ़ रीति ४८७
आप कब ले लोगे ?.................... ४८७
भाव से व्यापार ४८८
पश्चात्ताप होगा तब ४८९
स्वजन का श्रेय चिंतन ४९०
ऐसे कई विचार.......................... ४९०
मुहब्बत को मीठी लज्जत ४९१
कहो, वहाँ क्या फिर करूँ ४९१
प्रेमभाव से कृतार्थता..................... ४९२
इस साधु की आदत...................... ४९४

खंड - ३

श्रीमोटा के विचारस्फुलिंग ४९५-५८८

खंड - ४

श्रीमोटा के विविध स्वरूप ५८९-७३८

१. संकीर्णता के बीच ५९१
२. जीवनविकास की (पारशीशी) कसौटी ५९२
३. भगवान के मार्ग पर जाने का कर्म ५९२
४. दीक्षा ५९३
५. गुरु ने मुझे पकड़ा ५९४
६. मगरमच्छ बता ५९६
७. ब्रह्मचर्य के लिए साधना ५९८
८. आहार ६०१
९. पूर्वाग्रह तोड़ना ६०२
१०. बीमारियाँ ६०२
११. तादात्म्यभाव के कारण ६०६
१२. स्थितप्रज्ञ ६०९
१३. जीवनकार्य ६१३
१४. ऊँधिया—भोजन का तृप्तिविस्तार ६१५
१५. लाक्षणिकताएँ ६१६
१६. अघोरीबाबा— मौत का सामना ६२१
१७. वारांगनाओं का योगदान ६२५
१८. आश्रमों की प्रणालिका ६२७
१९. विलक्षण कार्यरीति ६२९
२०. अनेकविध लक्षण ६३०
२१. संकोच से मुक्त ६३५
२२. लेखन-प्रकाशन ६३७
२३. माता और शिक्षक ६३८
२४. शौर्यसिंचन करते शिक्षक ६४०
२५. जहाँ तहाँ अभय ६४३
२६. पुरोहित ६४५
२७. वृक्षप्रेमी ६४७
२८. छोटों की कदर ६४९
२९. भावोद्रेक ६५०
३०. सेवाचाकरी ६५१
३१. उपयोग या उपभोग ६५५
३२. साधक का हृदय ६५६
३३. प्रार्थना ६५८

'मोटा' होने से पहले —

१. किशोरावस्था : श्रीमोटा के शब्दो में ६६०
२. श्रीमोटा का जन्म और उसके पश्चात् ६६२
३. सेवा और साधना ६६३
४. सदा का ऋणी हरिजन सेवक संघ ६६५
५. श्रीमोटा की साधना में सांईबाबा ६६७

श्रीमोटा : मुक्तात्मा

१. कैसे महात्मा ६७०
२. डॉक्टर का अद्‌भुत बचाव ६७१
३. १५ अगस्त का त्यौहार ६७३
४. सूक्ष्म विवेक के ज्ञाता ६७४
५. अनोखा आहुतियज्ञ ६७७
६. जीवनमुक्ति ६७९
७. राम झरोखे में बैठकर ६८१
८. सिर पर पेटी रखकर ६८२
९. परमहंस का लक्षण ६८३

बीने हुए मोती

१. स्पर्श ६८४
२. मरजिया निर्धार ६८६

३. विनम्रता ६८७
४. सतपुरुष............................. ६८७
५. खुमारी ६८८
६. नंगजडित सोने का मुकुट........ ६८९
७. हृदय-परिवर्तन ६९०
८. योगीजन............................. ६९२
९. प्रेम ६९२
१०. सेवक................................ ६९३
११. श्रद्धा ६९३

श्रीमोटा की वर्तनलीला

१. जादू ६९५
२. हनुमान-छलांग ६९७
३. पतितपावनी गंगामाँ जैसे ६९८
४. जय जलाराम ६९९
५. पैसों की सगाई ?................. ७००
६. श्रेष्ठ कला ७००
७. खूबी ७०१
८. बालप्रेम ७०२
९. मानसचिकित्सक.................... ७०३
१०. रास्ते में पंक्चर पडे ? ७०४
११. लिया हुआ वापस नहीं देते...... ७०४
१२. फूलहार.............................. ७०५
१३. मिर्च ७०६
१४. प्रेमशस्त्र.............................. ७०६
१५. रामनवमी ७०६
१६. हृदयप्रवेश........................... ७०७
१७. संवाद................................ ७०८
१८. प्रोत्साहन ७१०
१९. आत्मीयता ७११
२०. विनोद ७११
२१. सही दक्षिणा ७११
२२. भगवान के मार्ग जाने में नियमितता ७११
२३. किसी का भी संकोच नहीं ७१३
२४. कोई काम निम्न नहीं ७१५
२५. श्रीमोटा की रूढिभंजकता ७१६
२६. सद्‌गुरु का क्रोध तो कृपाप्रसादी ७१७
२७. शब्दार्थ की अनुभूति ७२०
२८. भगवान के लिए रुदन क्यों नहीं ?......................... ७२१
२९. अध्यापक के पास रसोई करवाई ७२२
३०. सूक्ष्मभरी स्निग्धता................. ७२५
३१. वर्तमानपत्र बिना चले............ ७२६
३२. चमत्कार या कृपादृष्टि............ ७२६
३३. श्रद्धा का बल....................... ७२८
३४. परस्पर विरोधी विधान ७३०
३५. जीवनमुक्ति से विदेहमुक्ति तक की अवधि ७३२
३६. प्रेम से भिगोया और बदला ७३४
३७. हाथ पकड़ा उसे न छोडते ७३६
३८. संकल्प करवा के देहमुक्ति दिलवाई ७३७

खंड - ५

श्रीमोटा के कार्य ७३९
हरि:ॐ आश्रम ७४०
१. कुंभकोणम् आश्रम................. ७४२
२. कुंभकोणम् आश्रम विषयक 'हिन्दू' ७४३
३. नडियाद आश्रम के विषय में भविष्यवाणी ७४४
४. सूरत आश्रम को गुप्त मदद ७४५
५. फिरोजपुर का मौनमंदिर.......... ७४६
६. प्रतिदिन के कार्यक्रम ७४७

७. श्रीमोटा और आश्रम ७४८
८. घूमता फिरता कार्यालय........... ७५०
९. व्यवस्थापक.......................... ७५१
१०. 'मोटा' ७५२
११. श्रीमोटा की निष्किंचनता ७५३
१२. ईश्वरदत्त धन-संपत्ति ७५४
१३. दक्षिणा लेने की शर्त पर ७५४
१४. वाणी में कंजूसाई ७५५

'मौनएकांत' मंदिर ७५६
१. 'मौनएकांत' का श्रीगणेश ७५६
२. मौनएकांत मंदिर ७५७
३. लाक्षणिक अनुभव ७६०
४. पाथेय उपलब्ध करवाते मंदिर... ७६४
५. नामस्मरण का प्रयोगात्मक प्रमाण ७६५
६. अहम् की प्रतीति ७७१
७. लगन ७७१
८. प्रचंड सूर्य ७७२
९. क्लेश हरनेवाले ७७२
१०. मेरे जीवन के श्रेष्ठ दिन........... ७७२
११. पत्थर का चबूतरा हिलता है ७७३
१२. अंधकार का आनंद ७७४
१३. अदृश्य आवाज ७७५
१४. चारों कोने में **मोटा**................. ७७५
१५. काव्य की स्फुरणा.................. ७७६
१६. नंदनवन समान..................... ७७६
१७. जीर्ण ज्वर गया ७७७
१८. मन में शांति........................ ७७७
१९. इतना मीरां भी नाची न हो !... ७७७
२०. स्वीस सन्नारी का अनुभव ७७८
२१. अमेरिकन प्रोफेसर का अनुभव ७७८
२२. डेनिअल का निवेदन ७७९
२३. अन्य अनुभवों का सारांश ७७९

प्रार्थना ७८३
१. मौनएकांत मंदिर का साधक ७८३
२. नित्य कर्म करते-करते ७८३
३. उत्सव-प्रार्थना ७८४
४. संस्कारविधान ७८५
५. विवाहविधि ७८६
६. खातमुहूर्त-वास्तुपूजन गृहप्रवेश.............................. ७८७
७. मरणोत्तर क्रिया ७८७
प्रवचन और प्रश्नोत्तरी ७८८
पत्रो ७९०

गुणभाव विकासक योजनाएँ ७९१
१. धन का सदुपयोग.................. ७९१
२. गुण की कदर ७९२
३. सद्प्रवृत्ति के प्रथम प्रेरक और प्रोत्साहक......................... ७९४
४. अन्य कार्य........................... ७९५
५. अद्वितीय कार्यपद्धति ७९५
६. रोगग्रस्त शरीर की अपूर्व चर्या ७९५
आँख बंद हो तब.................. ७९६
पूज्य श्रीमोटा का अपूर्व देहत्याग ७९७

जनकल्याण की प्रवृत्तियाँ ८०८
प्यारे स्वजनों को ८२५
आरती ८२९
पूज्य श्रीमोटा के जीवन का परिचय ८३०

• • •

श्रीगंगाचरण में

(शिखरिणी - मंदाक्रांता)

मिली गंगा माता फिर परवाह क्या रहे इस दीन को ?
मिली बाद में माता परवाह क्या रहे भूख की वहाँ ?
जिसके सिर माता के करकमल की ऊष्मा स्निग्ध जहाँ हो,
होगा त्रिलोक में मुझ सम अन्य भाग्यशाली क्या कहीं भी ?

सदा कैसी माता सतत बहती शुद्ध व बुद्ध मुक्त !
सके बांध रख फिर मुझ को विश्व में दूसरा कौन ?
त्रिलोक में कोई अन्य मुझ जननी जैसा न शक्तिशाली
पड़ा माँ की गोद फिर कैसे होगी माँ से मेरी जुदाई ?

दिल जहाँ वहाँ मुझ जननी को मैं निरखता,
मुझे जहाँ वहाँ मुझ जननी का आश्रय बड़ा,
मुझे जहाँ वहाँ शरण जननी का ही बस है,
सदा मेरी माता अमर तपना मुझ पर वह ।

बिना माँ कैसे जग हमारे होते ही हाल-बेहाल बुरा !
हम मारे-मारे जीवन जीते कैसा तेरे बिना माँ !
बिना माँ के कहीं सुख न मिलेगा पूरी निश्चिंतता का
हृदय के उस अंकुरण से मुझे मन हुआ माँ को खोजने का ।

जाना जिसने जिसने निज मन किया माँ के निकट प्रेम से,
बिना माँ के उसने मन-चित्त-हृदय स्वाद न कुछ रखा,
समर्पित किया जिसने जीवन सकल माँ के काज भाव से,
नवाजिश किये बिना जननी न रहे उसे किसी काल में ।

मैं तो आया हूँ व्यर्थ चक्कर काट लोथ जैसा होकर,
मुझे मेरा न था थोड़ा भी रहा भान संपूर्ण कुछ भी,
रोकर लोटना मैंने अति किया आर्त-आर्द्र भाव से,
कृपा तब माँ ने मुझ पर की थी, धन्य हो मेरी माँ को ।

हजारों और लाखों रूप नित्य नूतन माँ ! तेरे सर्वत्र हैं,
सभी में माँ ! जो सजीवन भरा प्राण चैतन्य तू वह !
सभी की शक्ति सकल, चरण में मात्र बिन्दु समान वह
महाशक्ति ऐसी हमारी जननी रिझना प्रेमभाव से ।

समाहित होने रस तेरा निरा प्राप्त करने अनोखा,
अनेकों ने दिये हैं, निज सिर पद में हर्ष पागल हो
मरकर जीये वे कमाकर जीवन का प्रेम आनंद लूटा,
गुण गाते ऐसी मुझ जननी के, प्रार्थनाभाव घटा ।

तुम्हें चुप चुपके हृदय निरखना प्यारा प्यारा पसंद है,
छिपने तुझ में हृदय उछले, नाचता तरंग से,
छिपा तेरा जीवन स्थूल में खोज वह निकालने को,
अनेक महात्मा भी डूब गये इसे पाते-पाते वह ।

किस तरह गा सकूँ तेरी महाशक्ति-सौंदर्य-गाथा ?
बिना प्रभावित कोई न रहा तेरे प्रभाव से माता,
कृपा से तेरा भी हृदय का थोड़ा यदि रसास्वाद चखा,
बिना मरे उसका कभी भी छुटकारा न होनेवाला ।

बहते दिखे जगजन सभी किसी न किसी लोभ में,
मुझे उसमें माँ के प्रणयरस की क्या कला गूढ़ लगे !
समायी मेरी जननी सभी में किसी न किसी रूप में,
मैं तो इससे जहाँ-जहाँ घूम सकूँ माँ के साथ सर्वत्र प्रेम से ।

अरे ! दुःखी लोग, दुःख में सड़ क्यों रहे हो बेकार में ?
खड़ी है प्रत्यक्ष में जननी समीप में आवाज उसे न दो क्यों ?
पड़े दुःखों में स्तवन जननी का करे, रहे टिका वही खड़ा,
तब भी माँ का कोई स्मरण न करे, माँ बिचारी करे क्या ?

स्मरण करे माँ को निज जीवन के धर्म-कर्तव्य में जो,
स्वीकारे जो माँ को मिली परिस्थिति में सभी योग्य भाव से,
प्राप्त वह क्षेत्र निज जननी की भक्ति का गिने जो,
करे ऐसे को हृदय लगाकर प्रेम माँ वह ।

प्राप्त कर्तव्य में मनहृदय के प्रेम का भाव पूरा,
फलित करने भक्ति को समझ-समझ जो उतारा करे सभी,
प्रकट उसमें मुझ जननी वह हो प्रत्यक्ष भाव से,
जग में मेरी माँ तो हँसती खेलती सभी में गूढ़ खेले ।

मिला जो माँ के काज समझ-समझ प्रेम से खर्चे जो,
मिला ऐसे का कुछ भी नहीं कुछ बेकार जाता वह,
करे जो-जो वह निज जननी के प्रेमभाव के लिए,
समर्पित कर वह मा को निज मन सदा रहे निपट खाली ।

लपककर सोना जननी निकट मीठा कैसा लगे !
न माँ जिसे समझ सके ना सुख वह किसी तरह,
अमर्यादित मुझ जननी का प्रेमविस्तार पंख,
जहाँ मैं होऊँ वहाँ व्याप्त रहे आँख उसकी अमाप ।

अपापी-पाप का तुझ शरण में कहीं भी माँ ! भेद न है,
फिर मूर्ख लोग तुझ शरण माँ ! क्यों लेतें नहीं वह ?
ग्रहण कर जिस का हाथ दयाकर जहाँ तू माँ ! एक बार,
कर देती उसका भवचक्र में से माँ ! बेड़ा तू पार ।

माँ हाथ फैला कर चाहे बालक को गले लगाने,
देखो ! माँ कैसी प्यासी तड़पे बालक काज हृदय में,
ऊठो, जागो, लोगों निज जननी को प्रेमभाव से पुकारो,
भूलकर सारे जंजाल, प्रपंच, हृदय में माँ का लक्ष रखो ।

जाते माँ के पथ निज जीवन की भावना का विकास
-होता रहता कैसा शरणजन जो जानेगा एकमात्र,
होगी माँ पास, पर मन ठहरा जिसका न हो माँ में,
-न उसे दिखाई दे, तू में मन शरण तो रखना लीन ।

गुमान में अपने बल पर रहकर चलने का करे जो,
कृपा का ऐसे को अनुभव न होगा हृदय में किसी रीति,
अहं छोड़कर पूर्ण शरण तुझमें जो रहे प्रेमभाव से,
बताती है लीला तुझ खेल की उसको मुक्तरंग से ।

स्वभाव में रहे जिसका मन पकड़ में, रूप माँ का स्वतंत्र,
—पा नहीं सकता वह, हो न सके मानवी मुक्त ऐसा,
मथता रंगाने को मन, मति, अहं, चित्त व प्राण तू से,
—कृपा की झाँकी का अनुभव होगा, वही रंगाता माँ से ।

कराती है माँ तो अनुभव अनेक, बुद्धि यदि हो कोरी,
—ठहरे न उसके मन अनुभव, वह न रंगाता कभी,
'कृपा तेरी माँ सतत विलसित ऐसा सद्‌भाग्य रहे'
—पकड़ में आने गिड़गिड़ा के माँगूँ वह दीन मैं तो ।

बिन तेरे कोई मनन मन में न हो कोई समय
रहो रंगे हुए मन, मति, अहं, चित्त व प्राण तू में,
कभी मूर्खता से तुझ पकड़ से यदि में भाग जाऊँ,
—मुझे समीप लेना मेरे कान पकड़कर तू ही माँ !

जाते तेरे पथ मन निरखे निर्बल और अशक्त,
'चढ़ाये पंगु को गिरि तेरी कृपा', उक्ति वह देखी सत्य,
लोग कोई उसे कवि के मन की कोरी कल्पना माने,
परन्तु जिसे अनुभव हुआ हो वह सच्चा जाने ।

तपश्चर्या के बिना नहीं जा सके कोई तेरे पास माँ !
पढ़ाती हैं ऐसे जगतजन को पाठ प्रत्यक्ष यहाँ,
रहे प्रज्वलित मनहृदय की भावना जिसकी माँ में,
अहं उसका निगल जाये सब, व बने भक्त तेरा !

स्वभाव से अपने मन का करे चलना अनजाने में,
वहाँ जो जाग्रत वह मन रह सके जीवित ज्ञानभाव से,
'खड़ी है माँ पास निज मदद में ऐसा विश्वास रख',
पथ पर झुकाये जो हृदय देख सकेगा माँ का तात्पर्य ।

'हो भिन्न-भिन्न परिस्थिति जग जीवन में हेतु उसका
-होगा क्या' ऐसा जो मनन करके बर्तेगा, जीएगा तो,
प्राप्त कर्तव्य में मन, हृदय से, ज्ञान से, भक्तिभाव
-रखता जो गहरा, हृदय हो सके माँ का वही भक्त ।

प्राप्त कर्तव्य को निज जीवन का धर्म जो सत्य माने,
प्राप्त कर्तव्य में निज का होता श्रेय सभी मानते जो,
'प्राप्त कर्तव्य जो निज जीवन के क्षेत्र विकास का है'
ले लेना कर्म को, मन जननी को जो धरे लाभ पाये ।

जगत में माँ के पदकमल के आश्रय में जो रहेगा,
दे सके दंड जगतभर में कोई न किसी तरह,
प्राप्त जो निर्द्वन्द्व सुख, अनुभवी हो वह एक जानता
अन्य को स्वप्न में भी जननी सुख का ख्याल किसी तरह न आये ।

अन्य लोग उसे न समझते, कल्पना मात्र मानते,
लोग उसे 'नींद में मिला सुख' ऐसा जगत में जानते,
परन्तु सुख मिल सके उस तरह बर्ताव कर,
फिर हृदय में ऐसा सुख न मिले बोलने की सारी छूट ।

भले माने या ना, जगजन मुझे ना फिकर कुछ उसकी
करे किन्तु माँ की क्या अवगणना ! न सहन हो मुझसे,
पड़ पाये इससे जगतजन को प्रार्थना दीन की,
'गहरी तीव्राकांक्षा जगाकर हृदय में' बरतकर निर्द्वन्द्व देखें !'

कुछ माँग-माँग के आधिक तुझ से माँगता मैं नहीं माँ !
न यदि माँ ! मैं माँगूँ झुककर तुझ से, माँगने जाऊँ कहाँ ?
मुझे जिस तिस में मेरी जननी ! तू कामधेनु रूप है,
सारी आशा इच्छा तेरे बिन माँ ! कौन पूरी कर सके ?

मैं तो अज्ञानी हूँ, मति बिना का मेरा कल्याण किसमें
—न जानूँ वह पूरा, पर तब भी मैं करूँ नित्य माँगा,
हृदय से माँगने का माँ ! तुझ पास झुककर और आनंद आये,
शिशु माँ को कैसा सता सताकर मौज-प्यार लूटे !

सह लेती है माँ सभी निज शिशु का कुछ होते उलटा-सीधा
और शिक्षा देनी चाहिए जहाँ हो, प्रेम से देती सभी,
जग में माँ के समान अन्य नहीं कोई निष्ठुर पूरा
फिर साथ में माँ जैसा नहीं अन्य कोई प्रेमालु ऐसा ।

न रंगे बुद्धि जहाँ तक सही भक्ति के रंग से वह,
न माँ को वह मदद काम आये पूरा जानने में,
करे कोरी बुद्धि से जननी की खाली बातें, न पाये,
है तलवारधार पथ, मरजिया शूर जो भक्त पाये ।

उलझन जो जो समजकर हर्ष से सुलझाया करता है,
गवाना ऐसा मन समझता श्रेय अपना सारा,
चाहा जो उसके लिए जन दे मूल्य सके माँगा सभी भी,
बिना चाहे किसी को जननी न मिले, मूल्य दिये बिना ।

तुम्हारी रीत से, तुम्हारी समझ से अगर पड़े खाली रहोगे,
हृदय से माँ को पा कभी न सकोगे, निश्चय जान लेना,
होगे जहाँ निर्द्वन्द्व मनहृदय से शुद्ध आहुत यज्ञ में,
मिल के माँ को कुछ सूझ सके, खेलोगे सर्वभाव से ।

कृपालीला तेरी अज्ञात बोलते हैं भले सभी लोग,
प्रवेश न किया जननी हृदय में, वे बोले ऐसा फोकट
दिलासा खाली वह निज मन से शांति पा लेता है,
मरे बिना स्वर्ग न जा सके कोई किसी के बताये ।

किस मुख द्वारा मुझ जननी का मैं बखान करूँ क्या ?
सभी को लगे निज जननी क्या प्यारी प्यारी हृदय में !
मुझे मेरी माँ के करकमल का स्पर्श जादूभरा क्या
-होता रहे जहाँ तहाँ नतमस्तक गिड़गिड़ाकर प्रार्थता दीन मैं तो !

'तुम्हें माँ जीवित हृदयपट में चेतनायुक्त होने'
था ऐसा मेरा कोई जीवन का स्वप्नआदर्श गहरा,
मथन सारा मुझ से करवाया, सोने भी नहीं दिया,
कृपा माँ तेरी मुझ पर थी, उज्ज्वल दिन हुए तो ।

था कैसा मेरा गत जीवन जो, वह बना आज कैसा !
सके जान उसे कैसे अन्य, जानती एक माँ ! तू,
मुझ दुर्भागी को जननी मिलते सर्व सद्भाग्य पाया,
अब मुझे किसी का जग में नहीं काम, माँ से सब पाऊँ ।

त्रिलोक में माँ ! तेरी जय जयकार हो, तेरी सत्ता व्याप्त हो,
कृपा सत्ताधीश मुझ पर हो तेरी सभी बात में तो,
'सारा तेरा चला मुझ पर होगा, शून्य रहकर पूरा,
–चले तेरे द्वारा कदम मुझ से सारे चलेंगे' मैं याचूँ ।

जननी को अंजलि

(मंदाक्रांता)

जिस माता ने निज उदर में भार रखकर,
कष्ट उठाकर नये जीवन का दिया जन्म विश्व में,
उस माता को जीवन में मैंने कोई संतोष न दिया,
और आघात फिर ऊपर से कई देता रहा,

(शिखरिणी – मंदाक्रांता)

तथापि जिसने मुझ पर हृदय में न लाया असंतोष,
गिन प्रिय हृदय में सुविधा मुझे दी क्या मार्ग प्रति,
अति सहा स्वयं जगतजन की क्या निंदा तूने सहा माँ !
हम को तूने तो माँ ! कभी नहीं आने दिया ऐसा कुछ माँ !

तुझे पैसों से पूरा सुखी न किया, तेरी माँ, पूरी आशा
फलित एक भी नहीं कर सके—क्या हम पुत्र हुए !
रहा था स्वयं में मुझ जीवन की धुन में मस्त मैं और
जरा दिया न तुझ पर कभी ध्यान मैंने किसी बात पे ।

तुझे बुरा लगे वैसे जगत में व्यवहार हुआ था,
तब भी तुमने माँ ! हमारे सिर हाथ रखा कृपालू,
सह लिया स्वयं किन्तु दु:खी न किया तूने हमें,
किस तरह तेरा ऋण चुकाऊँ न सूझे मूर्ख को वह ।

थे आशीर्वाद तुम्हारे हम पर पाया इससे लाभ,
हैं आज जो कुछ अमी नजर का वह परिणाम स्पष्ट,
हमें देकर तुझ जीवन से मानव जन्म भला उत्तम,
गिनाऊँ क्या तेरे हम पर सभी उपकार जीवन में ।

किस तरह भूलूँ जननी तुझे ! प्रेम-कल्याणवाला,
मुझे तो लगता है तुझ बिरद माँ ! श्रेय को देनेवाला,
जाते तू ने न रोका रखकर मेरे पास तेरी कठिनाइयों को,
फिर मूक मुँह सहा करते जाना माँ ! मात्र क्या वह,

गरीबी में कैसा तुझ जीवन माँ ! पूरा बिता तब भी,
न आवाज की या अन्य के समक्ष रोना नहीं रोया तू ने,
होती जब दुःखी अति मन में और असंतोष होता,
संताप निकाले हमारे विषय में तथापि प्रेम दिल में ।

कर सकूँ अगर संतोष मुझ जीवन से मैं तुझे माँ संपूर्ण,
कर सकूँ आलोकित मुझ जीवन से नाम तेरा मधुर,
कर सकूँ जो फैलाके जीवनसुरभी एक तेरी कृपा से,
जीना मेरा तो मैं सफल गिनूँ और क्या कृतार्थ होऊँ !

कृपादृष्टि तेरी हम पर सदा माँ बनाये रखना,
हमें प्रेरित जीवन करे श्रेय के मार्ग निष्ठा से,
जाता उल्टा कहीं भाव तो हमें मोड़ना मार्ग सीधे,
हम में तेरा जीवन पर्याप्त विकसित हो भाव वह ।

('जीवनसंदेश', आ. ७, पृ. २७५)

सच्ची ईश्वरभक्ति

(अनुष्टुप)

देव मंदिर बैठा हुआ, सच्चा वह देव ना गिनो,
जगाने को सच्चा देव, वह है साधन मात्र तो ।

कामादि राग व द्वेष, होते कम अनुभव हो,
प्रभु में रहता चित्त अधिक, तो योग्य गिनना ।

प्रभु की भक्ति अगर सच्चे भाव से करते होंगे,
प्रत्यक्ष परिणाम सभी जीवन में देखते जायें ।

खाली नाम लेने से कुछ हमारा लाभ ना,
भाववृद्धि होते जानो फलित होता नाम उर में ।

आशा, इच्छा, कोई तृष्णा ऐसों को रखनी नहीं,
ऊठती वे देखो तब, प्रभु को स्मरण करें ।

प्रभु बिना कोई ख्याल ऊठने दो न चित्त में,
काम सारे हमारे ये तो हुआ करेंगे सदा ।

(१)

अनंतकाल से विश्व चला ही करता दीखे,
उसकी सँभाल लेने को बैठा कोई तो होगा ।

प्रभु में सर्व आधार श्रद्धा, विश्वास, जीवित
जिसे बैठे हो गहरा वैसा निर्भय रे' सदा ।

हम अपने भाव से खेलना चाहा करा,
यही महत्त्व का कार्य हमारा सभी गिना करो ।

लगातार रहता जो एक के एक काम में,
बुद्धि वह काम हल करे, कैसी सूक्ष्म हुआ करे !

ऐसी प्रत्यक्ष वह बात उसे लगा करे दिल में,
अपना गुरु ऐसा वह तब सचमुच बने ।

किसी पर आधार तब ना रखना पड़े,
सुझाव सभी बातों में स्वयं उसे मिला करे ।

होती पूरी प्रभुभक्ति ऐसा हमारा भी होगा,
सच्ची भक्ति हो तब चाहिए पहचाने दिल ।

('जीवनपगले', आ. २, पृ. ११, १४)

साधना का थरमामीटर (साधना की कसौटी)

(अनुष्टुप)

प्रभु रहनुभाई में रह के प्रेम से जाये,
कोई भाग न बाकी रे' ऐसा सब कर डाले ।

निखालिस हो प्रभु प्रति, हमारे सारे कर्म को,
प्रभु रहनुभाई में छोड़ दो हृदय प्रार्थना करके ।

उन्मुखता प्रभु प्रति प्रेमभाव से रखना,
ऐसी प्रयत्न-धारा बहती अखंड रखना ।

तटस्थता हृदे शांति, स्थिरता, समता-दशा,
होने के लिए प्रभु कृपासहाय चाहा करो ।

वैसा वैसा होने के लिए अपने से सभी,
कर छूटे निष्ठा से, कृपा उस साथ माँगना ।

स्वयं किये बिना उसकी कृपा यदि माँगोगे आप
पास खड़ा न रहेगा, प्रभु अपने आप ।

जो किया करे उसमें प्रत्यक्ष कितना रहे,
ये सभी साधना के माप हम जाने दिल से ।

ईश्वरेच्छा पर रहती है कितनी शरणागति,
विचार क्या करे पैदा वह भी एक माप है ।

ज्ञान, विवेक की शक्ति खिली हुई पुष्प जैसी रहे',
व्यवहार कोरा ऐसों का न हो किसी तरह से ।

प्रत्येक ऐसे व्यवहार में प्रार्थना करना हृदय से
प्रार्थना बिना का उसे कुछ भी नहीं खपेगा वह ।

आहार में भावना रख योग्य प्रार्थना करे,
मलमूत्र जाते समय योग्य भावना रखे,

अन्य के साथ किस तरह व्यवहार करते श्रेय सभी का
होता रहे दिल से ऐसा भाव रखे गहरा ।

'व्यवहार किसी के साथ हो उससे उसे होगा क्या क्या'
आ जाना चाहिए ख्याल स्वयं ऐसा हृदय को पूरा ।

पिरोकर भावना काम में करो हल काम का,
हुआ काम उसके बिना हमारे काम का ना तो ।

कितनी जागृति रखी, कितनी सँभाल रखी,
चेतना कितनी रखी आधार उस पे सभी !

हृदय में प्रभुभाव प्रत्येक कर्म में रहे,
हमारा कितना, कैसा, तौल सर्व इससे वे ।

कर्म प्रभुभाव बढ़ाने के लिए मिला करे,
उसे ख्याल रखकर गहरा कर्म सभी करने चाहिए ।

शुष्कता न होने दे कर्म में घुसते दिल में,
हमें अपना देखते रहना सभी ओर से ।

धोखा खाते जाना कहीं भी वह रखना नहीं,
शुद्ध चित्त रखकर भावकक्षा को बढ़ाये ।

अशांति किसी भी बात की हम रखे नहीं,
होता हो जैसे वैसा सब होने दो सभी सहकर ।

किन्तु विवेक का ज्ञान रखना चैतन्ययुक्त
होता रे' इससे किसी का कोई न गलत हो ।

सभी डोर छोड़कर एक तार से दिल में गहरा
प्रभुभाव से रहना रखा करो मथकर बहुत ।

(जीवनपगले, आ.२, पृ. ३४ से ३८)

दुःख — प्रभु के आशीर्वाद

(झूलना छंद)

भयानक दर्द जो देह का कुशल कोई,
वैद्य नश्तर रख दूर करेगा,
वैसे सभी दुःख तो स्थूल के पटल
चीर के सूक्ष्म को बाहर लाये ।
जैसे इस जगत में कोई अनुभव बिना,
प्राप्त हुआ सुना है कभी ना,
भाव जन्माने गूढ़ वैसे प्रयोग,
भूमिका स्थूल में दुःख का वहाँ ।

(जीवनपगले, आ. २, पृ. ४२)

जीवनदाता दुःख

(अनुष्टुप)

बहुमूल्य महामंत्र जीवनसिद्धि का कुछ,
विश्व अस्तित्व में होगा, दुःख तो एक जानना ।

दुःख को जो सहे प्रेम से, दुःख में हेतु जो देखे,
दुःख को यज्ञभाव से जो सहे, कल्याण पायेगा ।

आया दुःख अपने आप न वह जाता रहे,
सहना पड़े उसे छुटकारा न किसी का है ।

सहे बिना न यदि अंत तो ऊबना क्या फिर ?
भोगो इस रीत दुःख जिससे पूँजी पा सको ।

दुःख को जो सके फेर जीवन में रचनात्मकरूप में
दुःख को फेर ऐसा सके लाभ में सुखात्मकरूप ।

दुःख यह तो निशानी है, प्रभुकृपा की कृपा की,
दुःख की अवगणना जो करे नकारे प्रभुप्रीति ।

सोचने लग जाएँगे दुःख जीवन जन्मते,
सहते सहते दुःखों से क्या प्राणशक्ति मिला करती ।

स्थिति में एक की एक पड़े रहने न दुःख दे,
दुःख घूँसे मारकर कैसा स्वयं मार्ग वह करे !

पूरी जीवन की क्रांति दुःख द्वारा हुआ करे,
दुःख यह तो तपस्या मानव की जग में सही ।

दुःख से भले पलभर दब जाते मनुष्य
प्रेरित करेगा तथापि दुःख धकेला करके कर्म में ।

दुःख उठाये बिना जन्म किसी का होता नहीं,
दुःख आघात देकर प्रेरित करे बोध स्वयं से ।

दुःख जो देगा तो उसे स्वयं को दुःख मारेगा,
दुःख जो दूर करेगा उसे दुःख वह मुक्ति देगा ।

दुःख की साधना दिव्य मनुष्य जीवन में मिली,
जीवनमानुषी इससे दिव्यता में जा मिले ।

पैदा करने पुरुषार्थ, चेतना प्रकटाने को,
मिला दुःख सद्भाग्य से ऊष्मा जीवन लाने को ।

हताश दुःख से जो बने निर्माल्य जीवन में,
दुःख वहाँ चढ़ बैठे दुःख में वह डूबा करे ।

बीती कहानी रोने से कोई दुःख तो कम न होता,
उल्टा दुःख का भार बढ़े चुभे दिल में अति ।

'जीवनसिद्धि के लिए मिला दुःख' जानकर,
मुकुट सिर का जो उसे गिन के सिर पहनेगा ।

('जीवनपगले', आ. २, पृ. ४३-४६)

● ● ●

दुःखमर्म

(अनुष्टुप)

भोग दिये बिना का सारा सुख को न सुख जानो,
पूरी यज्ञाहुति से जो जन्मे उसे सुख जानो ।
गहरा आघात जहाँ लगे भाव उससे जन्मेगा,
भावना बल को तब दिल में जो अपनाये ।
ऐसा हेतु दृढ़ करके जो न जाने दे कुछ बहने,
भावना ऐसी जन्मी भाव से केन्द्रित तो होगी ।

● ● ●

प्राप्त हो यातनाएँ तो महेच्छा जागी जिसे,
दुःखों को यज्ञभाव से जो स्वीकारे, नेग पायेगा ।

● ● ●

प्रभु तो सहाय देने खड़ा प्रत्यक्ष सभी समय में,
किन्तु वह सहाय लेने की तैयारी हमारी न है ।

हम अपनी रीति से चाहा सभी करते हैं,
उस प्रकार खिंचने को प्रेरे प्रभु को भी जन सही ।

अनेक संतभक्तों ने अपने को पीसकर,
नम्र में नम्र हो पूरा पहचाना प्रभु दिल में ।

सभी सहा करने में प्रभु का ज्ञानभाव से,
जीवन की पराकाष्ठा पायेंगे हमारे द्वारा ।

उर-दौर्बल्य से जन्मा संतोष उपयोगी क्या !
वह तो मृत्यु पाता है, अग्नि को बुझाता पूरा ।

(शिखरिणी-मंदाक्रांता)

सभी छोटेबड़े निज जीवन में मिलते जो प्रसंग,
बेकार वे न आये जरूर प्रभु का गूढ़ हेतु रहा ।
सको न पहचान उसे बाद में प्रभु क्या करे बेचारा !
मिले जहाँ समझ ना निज में पूरी दोष क्या निकाले वहाँ ?
आये विघ्न जहाँ जहाँ प्रकृति निज की मानना वहाँ रही,
जीत लेने उसे हृदय दृढ़ता रखना तनदिहीयुक्त से ।

● ● ●

प्रभु सयाना ज्ञानी आप से विशेष श्रेय जो है आपका,
आपको प्रेरित करे वहाँ, पर तब भी ध्यान बैठे न पूरा ।
स्वभाव से खींचकर जीवन गढ़ने के प्रसंग गँवाये,
होते देते क्यों बाद में अकारण दोष उसके सिर ?

● ● ●

देखो जो जो विश्व में परिणत होता लगता रे' सदा ही,
न ऐसी की ऐसी स्थिति में ही पड़ा कोई रहता कभी भी ।

(गजल)

जीवन व्यापार करने की प्रभु ने पीढ़ी खोली है,
कुछ दिये बिना सौदा कुछ भी न होनेवाला है ।

जीवन को सँभाल रखे जो सदा निज स्वार्थ लिए,
जीवन वह पा सकेगा नहीं उपाय कोटि से ।

(झूलणा छंद)

मथना यह जीवन आनंद जगाने,
ऐसा गिन के ही जो युद्ध खेले,
मृत्यु उसे क्या कर सके वहाँ भला ?
मृत्यु गल वहाँ जाये स्वयं ही ।
दु:ख अनिवार्य है जीवन के पथ में,
सहना वह सभी के हिस्से आये ।
पर झूमा करे जीतेगा वह सही,
अंत में विजय-वरमाला प्हने ।

(शार्दूलविक्रीडित)

जो जो सर्व परिस्थिति जग मिले वह वह विकासार्थ है,
इस रीत से उपयोग शक्ति करके वहाँ खोजो तत्त्व को ।

(शिखरिणी-मंदाक्रांता)

कसौटी लेता प्रभु, कर कृपा हमारा सत्त्व देखने,
'स्वीकारो किस रीत मनहृदय से' परखने उसे,
कैसा भी आये सहन करते न कुछ हिल जाते वहाँ
प्रभु को स्मरण कर सकल सारा सौंपा उसे करो ।

('जीवनपगले', आ. २, पृ. ४८ से ५४)

● ● ●

दु:ख

(अनुष्टुप)

दु:ख वह कल्पना मात्र मनुष्य के मन में बसे,
दु:ख उसे गिने जो न दु:ख उसे नहीं कहीं ।

प्रेम की वह पराकाष्टा पहुँचने क्या वियोग है !
वैसा ही दु:ख का जानो विकासार्थ ही मिला वह ।

दुःखद्वार जरूरी है प्रभुमहल प्रवेश करने,
दुःख से ही हुए संत, महात्मा पृथ्वी पर ।

दुःख से तो लगता है सच्चा विश्वस्वरूप क्या !
दुःख से तो प्राप्त होता तत्त्व जीवन का सही ।

दुःख तो प्रकृति छाया हमारी ही वह रही,
संयोग जहाँ प्रतिकूल होते वह दृष्टि में आती ।

(मंदाक्रांता)

वह तो कसा जरूर करेगा कितने पानी में हो ?
उसने ताना शरण जन को मृत्यु से भी अधिक ।

जैसे सोना अग्नि में तपते शुद्ध होता विशेष,
गलने में वैसा शरण जन की प्रेमभक्ति बढ़ती है ।

दिया सभी प्रिय प्रभु का कष्ट ना वह बेकार,
उसकी शिक्षा अटपटी दिखे बुद्धि वहाँ जड़ ।

किस लिए वह दुःख देता वह स्वीकार करे यदि,
तो सहने में सहन करता हो, न वैसा लगे ।

(अनुष्टुप)

जड़ की तरह सब सहना मात्र वह देहकष्ट है,
ऐसा कष्ट सुधारे क्या ? इसमें क्या फायदा है ?
मानव जागृति के लिए दैवी संदेश दुःख हा !
दया लाके प्रभु दुःख डाले सभी को जगाने ।

('जीवनपगले', आ. २, पृ. ५५ से ५८)

● ● ●

दुःख का मर्म

(अनुष्टुप)

धीरज, हिम्मत, आशा दुःख से जीवन में आती,
काटते-काटते दुःख जीवन में श्रेय मिलता ।

दारिद्रय, त्रास, ऊब भले दु:ख से उपजे,
साथ-साथ सुझाता है उपाय दु:ख जीवन में ।

किसी को सुखी देखके सुखी उसे न मानना,
उस जीव को भी दु:ख होगा किसी प्रकार का ।

सभी को दु:ख की छाया जीवन में तो पड़ा करे,
व्याप्त न हो जाये जो दु:ख से वह जीया करे ।

दु:ख से जन्म लेता है सुख सभी प्रकार का,
दु:ख उठाना प्रेम से, दु:ख को अपनाना ।

दु:ख से जीवन में द्वेष जन्मे अन्य के ऊपर,
द्वेष से काम लेते दु:ख का हेतु न फले ।

दु:ख पामरता लाये मनुष्य जीवन में सही,
अज्ञान अंधकार से क्या जीवन छिपा ही देता !

क्रांति प्रेरित करनेवाला है दु:ख वह तो सनातन
दु:ख जीवन का पर्व, दु:ख जीवन उत्सव ।

दु:ख देनेवाले का हेतु, दबते, दु:ख से फले,
दु:ख से जो दबता ना उसे कोई क्या कर सके ?

दु:ख को जो हल करे वह हल कर सके जीवन,
जीवन मनुष्य के लिए दु:ख क्या दिव्य औषध !

('जीवनपगले', आ. २, पृ. ५९ से ६२)

● ● ●

पुरुषार्थ

(अनुष्टुप)

होता है कल से आज, आनेवाला कल आज से,
निश्चय से बनेगा यह जानना लक्ष रखके ।

महत्त्व आज का इससे जिसके जीवन में गहरा,
करे भविष्य को वैसे स्वयं में निश्चित खड़ा ।

आज में तो समाये हुए भूत-भावी दोनों ही,
रख भविष्य का ख्याल चेते भूत से, वे विजयी होते,

संभावना पूरी आज में जन्म देने भविष्य को,
आज जो जीना जानता, वे जीवन को कमाते ।

कल और परसों ही दोनों का सुमेल आज में,
करे विवेकशक्ति से, जीवन में वे फला करे ।

प्रवृत्ति-हीन जाग के प्रवृत्ति में रहा करे,
समेट लेनी प्रवृत्ति आज का वह स्वभाव क्या !

दिव्य जीवन की गूढ़ संभावना मानव दिल में,
आज हल करने दे प्रसंग कर्म जीवन में ।

अंधेरा न बेकार है अंधेरा तेज पाने को,
अंधेरे में वह दृष्टि साधक को रखना सदा ।

अंधेरा मनुष्य माने अभावात्मक तत्त्व वह,
किन्तु उसमें भी है गूढ़ चेतना ईश की सही ।

आज-कल के पहलू दोनों में गुरु ने मुझे
चेतना का गहरा खेल बताया गूढ़ क्या दिल में !

हजारों वंदन उसे, हजारों प्रार्थना पद पर,
मुझ पामर को जिसने हाथ देके लिया कंधा पर ।

ऐसे गुरु के पद को तो धोने योग्य भी न मैं,
किन्तु इस अयोग्यता न देखकर कृपाप्रपात बहाया ।

मेरे उस जीवन में क्या उसने भाग निभाया किया !
उसे समक्ष रखके दिल बर्ताव किया गहरा ।

प्रत्यक्ष जीवन में लाभ होते देखकर अन्य कहीं,
गुरु के बर्ताव में मैंने ख्याल रखा न कुछ ।

गुरु ऐसे मुझे जिसने कृपा से जीवन में दिए,
प्रभु बिना अन्य किसकी शक्ति की बाहर बात वहाँ !

बलिहारी प्रभु की वह जिसने गुरुचरण में
चित्त मुग्ध कराकर गुरु की पहचान करवायी ।

आपके पद को मेरे गुरुपद गिन दिल में
नम्रभाव से प्रणाम कर विराम करूँ पद में ।

('जीवनपगले', आ. २, पृ. ७७ से ८०)

• • •

सच्ची जीवनदृष्टि

(अनुष्टुप)

संपत्ति जो कितनी भी व्यापार में पायी हो भले,
यद्वातद्वापन अगर रहे वहाँ तो सब खोयेंगे ।

वर्तमान में करे जैसा भविष्य वैसा जन्मेगा,
यह तो खुली है बात उतरे सभी के गले ।

सफल होते ही दीखते प्रपंची जग में भले,
चित्त की शांति कुछ पूरी भोग सकेगा न वह ।

प्रसन्नचित्त का सुख उसे जो न गिने सुख,
साधना-प्रवेश उसके लिए निरर्थक ।

हलके दिल की कैसी मझा जिसे लूंटनी
उसके लिए तो मार्ग साधना का नहीं फिर ।

स्थूल दृष्टि पड़े जिस में लेना नहीं है कुछ,
खोना उल्टा सभी जहाँ स्वयं का मन जिसे गिना ।

तैयारी इतनी न हो लेना न नाम कोई भी,
तैयारी कर संपूर्ण प्रवेश करो साधनापथ में ।

कठिन मार्ग इससे तो साधना का बहुत जग में
जिसे हो किन्तु जागृत भूख वह खाना खोजेगा ।

कैसा स्वरूप अपना साधनामार्ग से मिले,
मिले जैसे, सूझे उसके उपाय अपनेआप वह ।

खोजेगा मूल अपने कहाँ कहाँ वे बाधा दीखे,
प्रेमभाव से उसका रूपांतर होने करे प्रयत्न ।

('जीवनपगले', आ. २, पृ. ८१-८२)

● ● ●

लगन

(अनुष्टुप)

'करेंगे ऐसे तो ऐसा ऐसे होगा' विचार सभी,
कार्य करते समय में चाहना न हमें कोई ।

कार्य जोश तो इससे मारा क्या जाता है सब,
कार्य में हेतु का प्राण पिरोकर सभी किये जाना ।

दिल के भाव को देकर महत्त्व, कार्य सभी करे,
भले ही बिगड़े कार्य चिंता उसकी न कोई करे ।

विवेक ज्ञानवाला होना चाहिए हमारा वहाँ,
फिर पुनः विचारों से विचलित न हो कहीं ।

ताटस्थ्य, स्थिरता, शांति दिल में, गहरी प्रसन्नता,
सर्व कर्म करे वहाँ रहने चाहिए संपूर्ण ।

अभ्यास एक बार ये ज्ञानपूर्वक ये सभी,
विकसित हो जाते दिल में स्थिति निर्बंध पाओगे ।

भक्ति, ध्यान और योग, ज्ञान—सभी का समन्वय,
हमारे में होगा तब सुमेल होगा दिल में ।

निश्चल, निश्चयी तनदिही रखो गहरी दिल में,
जीते बिना कुछ भी वे छोड़ देना नहीं हमें ।

सभी से आत्मा की शक्ति सर्व सामर्थ्यवाली क्या !
श्रद्धा विश्वास दिल में रख प्राप्त करे जय ।

कुछ अधूरा ना रखो आरपार करो वह,
सार पाने पर छोड़ो आया हुआ हाथ में हो जो ।

साबिती हमें सभी की चाहिए दिल जानने,
फँस पड़ना कहीं भी जिससे संभव न हो ।

खुली आँखों से भले ही कुएँ में पड़े भले ही,
जानकर वह किया वहाँ विश्वास इतना ।

लोगों की रीत से कुछ भी हमें करना नहीं,
लोकोत्तर संपूर्ण हमें तो होना है वहाँ ।

(जीवनपगले, आ. २, पृ. ९४ से ९७)

प्रेरणा

(अनुष्टुप)

साधना विकसित हो जब प्रेरणा को अनुसरो,
स्थूल व सूक्ष्म अंगों का हो तब रूपांतर ।

हो जब साधक को प्रेरणा के अनुभव,
साधनावर्तन में उपयोग करना चाहिए ।

बिना संबंध, विचार बिना कुछ भी प्रयोजन,
उद्भव हो ख्याल जो उसे आचरण करे दिल ।

इससे लाभ हो यदि कुछ आये अनुभव में पूरा,
जागृति रख के पूरी आचरण न चूकना ।

उद्भवस्थान बुद्धि का मस्तक पर जानते सभी,
दिल वह प्रेरणा का है मूल उद्भवस्थान वहाँ ।

हो जहाँ चित्त निष्काम अहं निर्मूल सारा हो,
संस्कारों का होते नाश, प्रेरणा जन्मेगी दिल में ।

प्रेरणा से ही प्रवृत्ति आठों पहर पल पल,
करे जो योग्य संपूर्ण जाने उसे आत्मनिष्ठ ।

('जीवनपगले', आ. २, पृ. १०२-१०३)

गूढ़तत्त्व

(अनुष्टुप)

सर्व प्रतिकृतिओं में मनुष्य की प्रतिकृति,
सर्व रीत से पूरी श्रेष्ठ जाननी प्रभु की कृति ।

पिछले कर्मसंस्कार प्रारब्ध वे भले गिनो,
दोष देना कुछ उसे योग्य मनुष्य को न तो ।

'अंधकार भरे कोई भूत या तूत से जग में,
हाँकना न होता कहीं' हमें जानना है सही ।

हमारे अधिकार में होता पूरा वह न हमारा,
हमारे में अन्य कोई भाग वहाँ खेले सही ।

घुमाव हमारे सभी कर्म का परिणाम है,
फिर भी वह बाँध न ले कहीं भी हमें किधर,

अगर मान लेंगे ऐसा, 'कर्म से ही सारा होता',
स्वतंत्र न होना हो तो निश्चय कोई कभी भी ।

कर्म का कानून एक सत्तावान स्वतंत्र यदि,
कर्म लांघने ऐसे कोई काल में बने न तो ।

मूढ़ यांत्रिक जीवन मनुष्य का जैसा,
नहीं वह, जुड़ा हुआ उससे दूजा बहुत ।

मनुष्य जीवन के स्तर अनेक प्रकार के,
एक दूजे विषयक वे प्रवेश करते सदा ।

यांत्रिक, प्राण से युक्त, चेतनायुक्त हो वह,
बुद्ध्यात्मक, शरीर में यह आध्यात्मिक स्तर बसे ।

प्रवाह जीवन में ऐसे उठते आते-जाते,
प्रवाह बनाते रहे वे एक दूजे बारे में सदा ।

मनुष्य जीवन में कोई अनंत तत्त्व गूढ़ है,
कर्म के नियम से वह लिप्त हुआ कभी नहीं रहा ।

(शिखरिणी - मंदाक्रांता)

कैसी भी भले हो, पर अटलता कर्म की भले हो,
तथापि मर्यादा जरूर सकल कर्म की वहाँ रही ।

अमर्यादावाले जीवन में कोई तत्त्व जो है बसा,
होने नित्य यह तो प्रकट जीवन में गूढ़ प्रेरित क्या !

(अनुष्टुप)

स्वभाव ऊर्मि के जोश से आघातजन्य स्फूर्ति से,
पिरोया हुआ ऐसों का कर्म में चित्त न रहे ।

उद्योगशीलता जिसकी चेतना मूलशक्ति से,
प्रेरित होती रहे उसकी कर्म के हेतुलक्ष से ।

यांत्रिकता में प्राण चेतना के स्फुरित न हो जहाँ,
और अंतःस्फूर्ति न जिस में, गिनो सात्त्विकता न वहाँ ।

प्रकृति कानूनों द्वारा बना अगर मनुष्य होता,
कर्म के कानूनों से ही बंधा ही रहता वह ।

(२)

अंतिम सत्य न कर्म, सत्य है पर कर्म से,
जानने सत्य को कर्म, कर्म सर्वोपरि नहीं ।

अपने ध्येय से काम रखता वह होगा दिल से,
जो जो मिले प्रभु का वह, अन्य देखने न वह जायगा ।

जिस-तिस में प्रभुहाथ जानकर तारने को मथे,
माया में हो भले ऐसा उसे वहाँ चेतन मिले ।

ना माया, सत्, असत्, स्वयं, माया के स्वरूप में,
मथता जो खोजने उसे, पाता है ईश-चेतना ।

माया को जानने से तो माया को पाते जन,
माया के परदे चीरकर जो देखे, पाता है सच ।

अकेली पाने उसे जो भी सर्व में गहरी,
केन्द्रित रहे वृत्ति जिसकी, वह श्रेय पा सके ।

यांत्रिक व्यवहारों में भाव कुंठित तो रहे,
संसारचक्र में पूरा बंधते मुक्ति न मिले ।

विश्व में प्रकृतिजन्य काम में लगे रहे बल,
जागी हुई चेतना को वह वश हुए बिना न रहे ।

सुमेल भाव में उसका जब संपूर्ण हो,
स्वतंत्रता संपूर्ण मिले मनुष्य को दिल में ।

प्रभुभाव के साथ तादात्म्य जीवन में होते,
नैसर्गिकरूप से तब खिले निराली स्वतंत्रता ।

प्रभुभाव में गहरा जितना जीयें दिल से,
प्रभुभाव का दिल में महत्त्व उतना रहे ।

महत्त्व अकेला ऐसा चले देना न दिल से,
उसे तो सर्व कर्मों में पूरा उतारना पड़े ।

भविष्य में जीवन में पूरी संभावना भरी पड़ी,
मोड़ते रहना भाव जीवन में रचनात्मक रूप में ।

विवेकशक्ति को दिल में जागृत रखता होगा,
उठते भाव उसे मोड़ने सूझ तो होगी ।

जीवंत जागती ऐसी जिसमें जागृति नहीं,
जीवन खोज न वे सके किसी उपाय से ।

सही या गलत कर्मों का देखने वह बैठेगा नहीं,
'स्वयं की चेतना कर्म में क्या दे काम' वह देखे ।

प्रभुभाव की दिल में जीवित धारणा रख,
कर्म में प्रवेश यदि हो, श्रेय वरण निश्चित ।

('जीवनपगले', आ. १, पृ. १०३ से ११०)

● ● ●

आत्मनिवेदन

(शिखरिणी – मंदाक्रांता)

बिना संकोच जो मनहृदय को भाव से खाली करता है,
हृदय को भले ही लगे कि तुम्हें न प्रभु सुनता है,
किन्तु दिल में जब झलकती हुई भावना जाग उठकर
पिरोये कर्म में जहाँ प्रभुपद ढले, सुने शीघ्र श्रीजी ।

कहने में उसे मनहृदय से पूरा खुले होना,
कहने में उसे दिल से झुकझुककर भाव का व्यक्त होना
कहना रखो चरणकमल में जो कुछ किया करो,
बढ़ाओ उस तरह प्रिय प्रभु का प्रेम-संबंध हृदय में ।

('जीवनपगले', आ. २, पृ. ९४)

आप का जो कुछ होता प्रभु को निवेदो आत्मभाव से,
सब खिला कर बाद में ग्रहण करो प्रसाद रूप में;
जूठा उसे तो कुछ न चढ़ाना, नापसंद ऐसा उसे,
चखाये बिना तो हृदय प्रभु को ना कोई स्वाद लेना ।

• • •

एक

(अनुष्टुप)

आखिर एक तो सर्व, एक में सारा समाया,
एक से सारे परिव्याप्त, तब क्यों अन्य लगता ?

एक तो पूरे हुए न हम सभी विषयों में,
इससे तो सर्व में न एक दिखे हमें वह ।

एक में एक संपूर्ण, एक से एक एक में,
एकाकार हुए बिना लगे कैसे एक वहीँ ?

एक के आगे में शून्य, शून्य पहले होना पड़े,
होता जाता है जैसे शून्य, एक जगमगा करे ।

शून्यता में रहा हुआ है एक का गर्भ गूढ़ क्या !
नकारात्मक जो मात्र भाव, ‘शून्य’ न जानना ।

(‘जीवनपाथेय’, आ. ३, पृ. १४३)

• • •

शून्य

(अनुष्टुप)

‘कुछ भी जो न कुछ’ उसे लोग तो शून्य कहे जगत में,
भाव में ‘शून्यता’ का तो ऐसा अर्थ न संभव ।

अभावात्मक न जानो शून्यता को भुलावे से,
शून्यता जन्म देती है भाव कोई अजीब गूढ़ वह ।

प्रेरक भाव तो शून्य, शून्य की शक्ति निराली क्या !
‘खाली’ में शक्ति क्या भव्य ! विज्ञान ने सिद्ध वह किया ।

खाली न कुछ हो सकते हैं ऐसे ही ऐसे किसी से,
संपूर्ण पुरुषार्थ उसके लिए करना पड़ता ।

(‘जीवनपाथेय’, आ. ३, पृ. १४३-१४४)

• • •

हीन-अच्छा-बुरा

(अनुष्टुप)

अच्छे या बुरे का हम जरा भी चिंतन न करें,
परन्तु सब में से भाव को नित्य पहचानें ।

अच्छे-बुरे का रहता द्वन्द्व सदा जग में,
जीवन में पार उससे प्रभुभाव से होना है ।

‘हीन’ वह हीन ना यदि प्रभुभाव होगा वहाँ,
द्वन्द्व के पार इस रीत से जिंदगी में होना है ।

द्वन्द्व में वह प्रभुभाव यदि रख न सकें तो,
द्वन्द्व से किस तरह पार होंगे फिर जीवन में ?

द्वन्द्व की वृत्ति वह द्वन्द्व में रखनी नहीं जीवन में,
सतत गहरा ऐसा भान रखे हृदय में ।

(‘कर्मगाथा’, आ. २, पृ. १५५, १५८, १६५)

• • •

कसौटी

(अनुष्टुप)

कसौटी प्रभु की वह तो अमूल्य भेंटदान है !
उसे जो नकारे वह प्रभुता पा न सकेगा ।

कसौटी पार होनेवाला उसे यदि समझा करे,
ऐसे जीवन का पाये रहस्य किसी दिन सही ।

मनुष्य जागृति लिए दैवी कसौटी क्या अहा !
दया लाकर प्रभु दे वह तो सभी को जगाने ।

● ● ●

नामस्मरण

(झूलना)

यदि कुछ उतरकर गहरा वहाँ देखो, नामरूप सभी लगेगा,
'नाम' बिन क्या कुछ विश्व में देखा ? नाम सर्वस्व जहाँ तहाँ सर्वत्र ।
मनुष्य मूर्खता क्षुद्र कैसी दिखे, त्याग मिथ्यात्व का कैसे आये ?
सूर्य समक्ष जुगनू क्षुद्र है इससे भी वह अधिक नाम के आगे ।

बारात में पहचाने न कोई तब भी, बुआ वर की बनकर खूब आनंदित,
भार की गठरी मनुष्य सिर धरे, वर की माँ नहीं तब भी मौर धरे ।
नाम की नथ में हृदय पिरोने से मार्ग दिखायेगा नाम वहाँ स्वयं ही,
कहीं कुछ भार नहीं, न कुछ चिंता वहाँ, दिव्य निश्चिंतता नाम गोद में ।

('जीवनपाथेय', आ. ४, पृ. ९९-१००)

● ● ●

गुणों का खेल

(अनुष्टुप)

गुणों से गुण की रीति से काम लिया करें सभी,
गुण की चेतनाशक्ति फल दे न वहाँ कुछ ।

गुणों से उठना ऊँचा ऐसे ही नहीं हो जाता,
जानने चाहिए 'गुण' 'स्वामित्व गुण का क्या ?' वह ।

गुण का काम गुण यों वह ऐसे ही न करें,
सामान्य जन को यों बरताते गुण स्वभाव से ।

गुणों के ऊपर काबू पूरा पाने हृदय से,
कर्म में ज्ञान का भाव से वर्तन करे साधक ।

गुणों के सेवन से तो मिले ना काबू उनका,
ज्ञानभाव वर्तन से काबू वहाँ पा सकोगे ।

पुरुष-प्रकृति-ज्ञान से विवेकशक्ति सत्त्व दे,
अनासक्ति परावृत्ति संपूर्ण राजस में रहे ।

जीवन अस्तित्व में पूरी समता तामस में रहे,
उस दैवी चेतना का दे काम गुण तीनों सही,
भाव से तटस्थ यदि स्वयं बैठा देखता रहे सब ।

● ● ●

गुरु माहात्म्य

(अनुष्टुप)

स्थूल देह न गुरु है, सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव क्या !
गुरु के जीवन में जब भी मिलोगे तो पहचानोगे ।

गुरु की चेतनाशक्ति जीवन में प्रवेश पाने,
और कर सके कार्य हमारे, वह प्रमानने ।

गुरु में लक्ष रखना वह महत्त्वपूर्ण कितना,
जीवन-साधना जो करे वह जानेगा सही ।

गुरु के स्थान का कैसा महत्त्व जीवन में गहरा !
जो कोई जानेगा उसे नये रूप से दिखे गुरु ।

महत्ता गुरु की ऐसी ज्ञानभाव से ग्रहण करके,
उतारकर जीवन में गहरी इससे फलित हुई ।

('जीवनपाथेय', आ. ३, पृ. ५)

शिल्पी-छेनी जैसा प्रेम

(अनुष्टुप)

शिल्पी की छेनी जैसा ही प्रेम होना चाहिए हृदय में !
भाव को योग्य आकार वैसा, प्रेम दे सके ।

काल की तरह क्रूर मूर्ति निर्माण के समय में,
सूक्ष्म जहाँ आकार देना हो, हाथ उसका मृदु बनता ।

जैसा काम हृदय में वैसा भाव वह धरेगा,
भाव केन्द्रित रखके प्राणत्व लाएगा काम में ।

दुलार काम न आये वृत्ति इस रीत कभी,
छेनी-प्रेम से वृत्ति नित्य योग्य निर्माण करना

पीछे क्या पड़े प्रेम पीछा न छोड़ता कभी,
प्रेम वह परवा किसकी कहीं न जरा भी रखे ।

मर्यादा बाँधने योग्य वहाँ तो बांधे खुशी से,
स्वयं आचरित करे स्वयंभू प्रेरणा से ।

('पुनित प्रेमगाथा', आ. ३, पृ. ९४)

● ● ●

चैतन्यकर्मों के मूल में

(अनुष्टुप)

जो प्रभुत्व रहा हुआ है गूढ़ में गूढ़, जीवन में,
प्रागट्य होने के लिए निमित्त कर्मसाधन ।

चेतनाशक्ति के भाव से मूल्यांकन सनातन,
जानने चाहिए, सभी के योग्य वे माप-नियम ।

चैतन्य में जो अवस्था सभी प्रयत्नशील वह प्राकट्य होने,
उस पर सारा आधार रहा कर्म में सदा ।

स्वरूप मूर्त चैतन्य देने कर्म सारे मिलते,
कर्म में हेतु व ज्ञान रखे इससे जीवन में ।

हूबहू प्रतिकृति चेतना की जो नहीं है,
ऐसे कर्म का मूल्य बिलकुल नहीं जीवन में ।

चैतन्य अंतर से सभी कर्म प्रकट होने चाहिए,
हमारे कर्म का मूल चैतन्य में रहना चाहिए ।

द्वन्द्वादि असरों द्वारा जो जो कर्म हुआ करे,
चेतनाशक्ति प्राबल्य कम कम किया करे ।

रागमोहादि से मुक्त भाव-के लिए काम सभी,
जैसे जैसे होते जायें चैतन्य वैसे जागेगा ।

आलंबन लिया है जिसका भाव को जगाने,
हृदय में श्वास उसका रखें कृपा से वहाँ ।

प्राणवान स्मृति उसकी हृदयस्थ अगर चैतन्यमय हो,
उपजाये बिना भाव वैसी स्मृति न वह रहे ।

मनुष्य के सारे कर्म वह चैतन्य दबा वह देता,
कितनी बार क्या भाव सभी मार डालता वह !

('कर्मगाथा', आ. २, पृ. ८७-८८)

• • •

जन्ममृत्यु के रास

(शार्दूलविक्रीडित)

कैसी रास रचती है पलपल मृत्यु और जन्म की !
उसकी उस चक्रमाला में सरकता विश्व का खेल क्या !
उसमें जीव रमा करे पर उसे भान न हो पाता,
कैसे स्वयं बहा करे प्रकृति से कोई न वहाँ जागे ।

जिसमें प्रभु भावना स्फूर्ति उन्मुख रहे अंतर में,
जिसमें निज कर्म में स्फुरित रहे भाव वही खरा,
जिसे छूटते जाते दीखे मन के संकल्प विकल्प सभी
ऐसे जीव रह सके पलपल वहाँ जागते स्वयं तो ।

• • •

क्या क्या रास रचते हैं नयीनयी वृत्ति परिघि रच !
क्या ह्रास हो जाते अभिनव सहज ही थोड़ी देर में !
जन्म ले पलक में ही, पलक में कैसी मृत्यु रचते !
तुम्हारे उस चक्रमाल में अमर होने कृपा दो प्रभु !

कैसा प्रेमस्वरूप दिव्य रसीला क्या मुग्ध रूप से रसा !
वे आकर्षण जादू कि अभिनव दुर्गा और काली जैसा !
लीला प्रेमकला जीवन में सर्जित करे सृष्टि क्या सही !
मृत्यु जन्म हुआ करे हरपल में तब भी रहे एक क्या !

('पुनित प्रेमगाथा', आ. ३, पृ. २६१, २६२, १७)

● ● ●

यौवन में जीवनसिद्धि

यौवन, खाँड़ा की धार से खेलो,
यौवन, आज आया और कल जाएगा,
यौवन, प्रेममस्ती में बिताओ,
यौवन, आज आया और कल जाएगा,
यौवन, आत्मा की निशानी से देखो,
यौवन, आज आया और कल जाएगा,
यौवन, रस-रंग झूले झूला,
यौवन, आज आया और कल जाएगा,
यौवन में करने का सभी कर डालो,
यौवन, आज आया और कल जाएगा,
यौवन में जीवनसिद्धि पाओ,
यौवन, आज आया और कल जाएगा,
यौवन, मदमस्त उर में रखो,
यौवन, आज आया और कल जाएगा,
यौवन, खाँड़ा की धार से खेलो,
यौवन, आज आया और कल जाएगा।

('जीवनमंथन', आ. २, पृ. २९)

● ● ●

(अनुष्टुप)

गुण दोष मिले दोनों मानवजीव में सदा,
होने निर्मल युवानी ऋतु उसके लिए योग्य वहाँ,

जवानी के अंत में तो मूर्ख या विवेकी बने,
मानवी जो जवानी में मुड़े उस तरफ वह ढले ।

जोश यौवन खड़ा है, वहाँ तक मात्र जीवन,
जिंदगी के विकासार्थ योग्य क्या काल यौवन !

('कर्मगाथा', आ. २, पृ. ६२)

• • •

'ज्ञानी और अज्ञानी के बीच का अंतर'

(अनुष्टुप)

कर्म सभी ज्ञानी, अज्ञानी किया करे गुणाश्रय द्वारा,
दोनों के हेतु में ज्ञान भिन्न भिन्न रहा करे ।

नदी के पाट के जैसे कर्म का पाट तो गुणों,
गुणों में जैसा हो ज्ञान वैसा रहे पाट कर्म का ।

सोने की भस्म तो होते गुण उसके भिन्न हो,
तत्त्व तो एक का एक, तब भी भेद वहाँ हो ।

यद्वातद्वा रूप से अज्ञानी वर्तन करता रहे,
ज्ञानी के कर्म के आगे धारणापगडंडी होगी ।

ज्ञानी-अज्ञानी में फर्क तो फिर कैसे जाने ?
ताटस्थ्य से बरतता पहला, दूसरा अस्थिर मानो !

('कर्मगाथा', आ. २, पृ. १३६, १६)

• • •

आतुरता की अग्नि

(अनुष्टुप)

‘होना है, होना है’ मात्र पुकारा करने से ही,
होगा न होने जैसा ही, भले ही इच्छा रही गहरी ।

आतुरता वह होने की अकेली काम क्या करे ?
बैचारी बाँझ यह तो जहाँ की तहाँ ही रहे ।

आतुरता यदि पुरुषार्थ से धकेला मारती रहे,
एक के एक स्थान में बैठने न दे क्षण भी ।

तब भी पीछा न छोड़े हमारा फिर फिर के,
टोका वह करे गहन ध्येय प्राप्ति होने चाहकर ।

ज्वलंत आतुरता ऐसी जिसके दिल में जलती रहे,
कुछ न दुर्लभ ऐसेको प्राप्त करे सभी ।

मन, बुद्धि और चित्त, प्राण, वृत्ति, अहं सभी,
तेजस्वी आतुरता होते बदलाते रहे सदा ।

अग्नि से भस्म सारा हो, खोटा सौ गुना भले हो,
खोटा का चले न वहाँ जले यदि आतुरता-अग्नि ।

खोटा जो सभी, खोटा रूप से फिर रहे न वह कभी,
दिव्य रूपान्तर में ऐसा बदलायेगा निश्चित ।

आतुरता हृदय में ऐसी उग्र से उग्र भाव से
बढ़ते, यज्ञ की ज्वाला रूप से अर्थ सिद्ध होता ।

(‘कर्मगाथा’, आ. २, पृ. ३१)

● ● ●

(वसंततिलका)

जो आतुरता हृदय शक्ति न प्रेरती रहे’
जो आतुरता हृदय चेतनता न प्रेरे,
जो आतुरता बल न साहस दिव्य प्रेरे,
सच्ची न हृदय की मूल आतुरता है ।

(‘पुनित प्रेमगाथा’, आ. ३, पृ. २४२)

● ● ●

स्मरणसाथी

(हरिगीत)

मन के विचारों में और मन की सभी वृत्तियों में,
मन वासना में, पाप में, चित्त के सभी संस्कारों में,
मन के खेल और कूद में मन के रमण और भावना में,
तेरे नाम का प्रिय स्मरण सदा साथी रहे मनहृदय में ।

हमारे शरीर से होती क्रिया में, इन्द्रियों के विषय में,
हमारे शरीर के रोम-रोम में हृदय के रक्त में,
नस-नस और नखशिख में तथा शरीर के नवद्वार में,
तेरे नाम का प्रिय स्मरण सदा साथी रहे मनहृदय में ।

षटरसों के सभी स्वाद में, मीठी मीठी सभी सुवास में,
उर चेतना में, बुद्धि में, चित्त प्रेरणा में, प्राण में,
हमारी संवेदना में, भावना में, प्रेम में, सभी रस में,
तेरे नाम का प्रिय स्मरण सदा साथी रहे मनहृदय में ।

जीवन के सभी भंग में जीवन के सभी रंग में,
जीवन के अटपटे तिरछे-खड़े सभी तार में,
मेरी भले ही कुछ भी हो सर्व जीवन-रीति में,
रसीला बुना वहाँ करो प्रिय नाम तेरा भाव में ।

सारे जीवन पट के ताने और बाने हों,
भीगी हुई हो प्रत्येक नस तेरे प्रेम के रंग में,
तेरे नाम के प्रिय स्मरण की ठोंक से सदा ठोंकित,
ऐसा प्रभुपद हो समर्पित यह जीवन, हो तेरी कृपा ।

('श्रीगंगा-चरणे', आ. २, पृ. ३० से ३२)

● ● ●

पूजा-अर्चन-आहार

(अनुष्टुप)

पूजा, अर्चन सेवा सभी, प्रभु पाने हृदय में,
यदि ऐसा होता न हो, भूले कहीं पड़े हों तो ।

पूजा आदर कुछ दो, महत्त्व न उसका कुछ,
किन्तु उससे क्या पाते हैं लाभ, यही महत्त्व वहाँ ।

विधि या मान्यताओं में रहे न जकड़कर,
भाव प्रागट्य लिए सभी वे हैं उपयोग के भला !

मुझे महत्त्व न दो, उस सत्य को दिया करो,
सर्वश्रेष्ठ गिन भाव, उसे योग्य महत्त्व दो ।

व्यक्ति परम्परा से सब सत्य महत्त्व का अति,
सत्य को सँभाले रख वैसे भाव से जीना है ।

आचरण में हेतु का ज्ञान हमारा जैसा रहे दिल में,
विकास उतना होता जीवन में सर्व निश्चय से ।

धर्म आत्मा बंद हुआ आचार पिंजरे में,
आचार पिटारे से बाहर होकर तत्त्व जगाएँ ।

सारे आचार किये वे शक्ति को जगाने,
किन्तु आचार में से सारे धर्मप्राण चले गये ।

आचार मुरदा जैसे आज तो प्रचलित हैं,
उसे जो पकड़ रखे, प्राण प्राप्त न कर सके ।

किन्तु आचार को जो भाव-ज्ञान-हृद से होने,
स्वीकारते प्रभु वास्ते जन्मे उससे चेतना ।

('कर्मगाथा', आ. २, पृ. ८३, ८५, ८६, ९५)

• • •

प्रार्थनाभाव से प्रवृत्तियाँ

(अनुष्टुप)

अन्न या स्थूल ऐसा जो आये वे सभी उपयोग,
चेतनाशक्ति प्रेरित करने मिले मानके ग्राह्य करो ।

अन्न से तो टिके प्राण अन्न में चेतना सही,
शक्ति उत्पन्न करने जीवन में यह सभी ।

हमारी वक्रता पिघलाने हेतु पानी है,
पानी को लेते वेला में रखें ऐसी धारणा को ।

दुर्वृत्तिरूप त्याग ही मल द्वारा जाता दिखे,
होने दूर वैसा सभी उस वक्त प्रार्थना हो हृदय से ।

सोते समय सो जाता रहा स्थूल हमारा,
'जागते सोते रहे' प्रार्थना करें ऐसी उस पल में ।

प्रार्थना भाव दिल में दृढ़ कर सभी कर्म करें,
बिना भाव से होते काम बेकार सभी को गिनें ।

प्रार्थना दिव्यशक्ति की शुद्ध आधार सभी होने,
देखकर करनी नित्य, भाव से यत्न करके ।

खाओ, पीओ, सोओ, बैठो, ऊठो, जो सभी किया करें,
मानो वहाँ धारणा **उस**की वह वह सभी किया करें ।

('कर्मगाथा', आ. २, पृ. ११८)

● ● ●

'आज' और 'कल'

(अनुष्टुप)

'आज' में तो समाविष्ट हैं भूत व भावी दोनों ही,
रख भविष्य का ख्याल चेते भूत से वे जीते ।

'आज' में संभव पूरा जन्म देने भविष्य को,
'आज' जो जीना जानता हैं, वैसे जीवन को पाते ।

स्वतंत्र कल से कोई मानवी नहीं जी सके,
कल को लौटाने की संभावना आज में दीखे ।

आनेवाले कल का स्वप्न आज में जो खड़ा करे,
उसे भविष्य अपना भविष्य न फिर रहे ।

पिघला डालते भूत जो वे आज से जीवन में,
भविष्य आज में उसका सर्व मिल जाता लगे ।

आज में कल का रूप प्रत्यक्ष पहचानता,
आज में आनेवाला कल पैदा कर सके सही ।

वर्तमान में रहा भूत, भविष्य, वर्तमान में,
तीनों ऐसे मिले हैं कि कैसे कौन वह जान सके ?

आज का मूल्य जो आंके स्वयं जीवन से सही,
मूल्यांकन सभी उसके आज से बदले क्या !

आज अकेली आज स्वतंत्र न किसी तरह,
तब भी स्वतंत्रता हेतु प्रेरणा देती सदा ।

भूत और भविष्य दोनों का सुमेल आज में,
करे विवेकशक्ति से जीवन में वे कमा सके ।

('जीवनपगले', आ. ३, पृ. ६९ से ७१)

● ● ●

गूढ़ता

(अनुष्टुप)

मानवीरूप है गूढ़, गूढ़ है मन मानवी,
इससे भी मानवीशक्ति गूढ़ में गूढ़ क्या सही !

गूढ़ता की महत्ता क्या ! गूढ़ता मन खिंचता,
जिसमें गूढ़ता जानी वहाँ स्वयं मन प्रेरे ।

गूढ़ता को जान सके किस तरह से जग-जन !
गूढ़ को जानने जाते होता गूढ़ अति गूढ़ ।

जानने ऐसे गूढ़ को उपाय क्या लेना पड़े !
अनादि काल से उसे हल कोई नहीं कर सका !

मानवीदिल का गूढ़ उसके सर्व स्वरूप में,
विचार में, भावना, कर्म में इससे तो क्या बदलें !

('कर्मगाथा', आ. २, पृ. १९)

● ● ●

आत्मनिष्ठ

(अनुष्टुप)

देखे बिना देखे स्वयं, सुने बिना सुना करे,
चले बिना पैरों चले, सूंघे बिना सूंघा करे ।

चाखे वह बिना चाखे, सोचे बुद्धि के बिना ही,
प्रवृत्ति से प्रेरित हो संस्कारों के बिना वह करे ।

प्रेरणा से ही प्रवृत्ति आठों पहर पल पल में,
करे जो योग्य, संपूर्ण जाने आत्मनिष्ठ उसे ।

('जीवनपगले', आ. ३, पृ. ९५)

• • •

फनागीरी

(गजल)

जगत का सभी चौकस अनामत रखकर जो जो,
प्रभुमय जो होना चाहे, सभी वे व्यर्थ प्रयत्न हैं ।

'हमारा सारी दुनिया का हमारा रहे' हमारा हो,
प्रभु यदि ऐसे मिलते हों हमें तो मीठा लगे ।

आपके पाद व हाथ पूरे बाँधे रखकर,
फिर तैरना सीखने की सारी इच्छा बेकार है ।
आपकी आँख पट्टी से आप बाँधकर फिर चाहो,
जाने पथ में आगे वहाँ जाओगे किस तरह बापू ?

आपकी आतुरता जिसमें आपका प्रेम जिसमें है,
वह सब सलामत रखकर प्रभु चाहना निरर्थक है,
सभी जो कुछ भी लेते हो पूरी कीमत देकर उसकी,
प्रभु को अकेले लेना चाहे बिना कीमत सभी ।

फना करने की यदि हिंमत फना होने का पूरा साहस,
आप में पूरे हो तो प्रभुपथ में आओ ।

जगत में प्रेम के लिए फना होना, फना होना,
जीवन ऐसे फना होने से निश्चय प्रकट होगा ।

फना होने जिसके हृदय आनंद प्रकटता है,
और ऐसे आनंद में से जीवन में प्राण आते हैं,
समर्पण, त्याग, बलिदान, जीवन पीछे होने जिसे,
उत्साह के साथ तैयारी जीवन को प्राप्त करे वह ।

('जीवनपाथेय', आ. ४, पृ. ७२)

• • •

स्वजन-भाव

(गजल)

स्वजन का प्रेम हृदय का रहे हृदय विषयक न्यारा,
स्वजन वह चोला ना है, परन्तु भावमूर्ति क्या !

स्वजन को दिल मिलने में शरीर तो स्थूलरूप में है,
परन्तु तार हृदय के मिलाने को भावरूप वह ।

'स्वजन' तो दिल का भाव बढ़ाने दृढ़ करने,
जीवन में जीवन के लिए प्रसादीरूप मिला है ।

('जीवनसंदेश', आ. ७, पृ. १०२)

(अनुष्टुप)

चोले दो अलग हो किन्तु जहाँ भाव एक रहे',
ऐसा जो जीता है वे सच्चे प्रेमी बन सके ।

('जीवनसंदेश', आ. ७, पृ. १५)

बुद्धि

(अनुष्टुप)

हमारे चित्तसंस्कार बुद्धि कर्मानुसारिणी,
खेलती खेल हेतु को भटकाने घड़ी घड़ी ।

पूर्वाग्रह रहे हैं संस्कार बुद्धि में अनेक,
उससे जो जाना गया हो न सत्य संभव ।

ऐसा जो सत्यमिश्रित लगता, इससे फिर भी वह,
भुलावे में डालनेवाला है जानना कभी हो जाय ।

संस्कार बुद्धि का जोश हेतु की शुद्धता विषयक,
इससे करें उपयोग वहाँ घड़ी-घड़ी चेतकर ।

सत्य का अंग एकाद बुद्धि से जान कोई सके,
समग्र सत्य बुद्धि से न जान कोई भी सके ।

बुद्धि से समझा हुआ केवल बाह्य दिखावा,
कोई प्राण नहीं उसमें जिससे आगे कुछ बढ़ो ।

तर्कवितर्क या चर्चा शास्त्र की सारी परम्परा,
केवल बुद्धि के शुष्क साधन से मापा न जाय ।

किन्तु निरुपयोगी ना ऐसा भी बुद्धि का कुछ,
बुद्धि भी नहीं बेकार, यदि उसे सीधी रखें ।

('कर्मगाथा', आ. २, पृ. २७, ८२, १२२)

मोह

(अनुष्टुप)

योग्य जीवन का भान न जागने मोह दे,
कैसा वह जकड़ता ! छूटने न दे, अरे !

मोह जीवन का धर्म सूझने न दे सही,
वह के वही विचार भँवर में घुमाता है ।

शुभ संस्कार पाये हैं ऐसे मनुष्य हो भले,
किन्तु क्या मोहपाश में जकड़ा रहा करता !

स्वयं बंधे रहे और दूसरों को बांधे रखें,
प्रेम तो नाम ना उसका वह मोह गिनो सही ।

प्रेम व मोह के बीच भेद कैसा अनंत है !
मोह व प्रेम ना एक भिन्न भिन्न स्वरूप वे !

मोह के स्पर्शजादु से मनुष्य त्याग सारा करे,
ये त्याग से सार जीवन में कुछ न मिले ।

मोह से त्याग जो होगा उल्टा जीवन को अधिक,
बंधाया वह करे क्या ! त्याग वह 'त्याग' न गिने ।

प्रेम की मिट्टी का देह मोह को जानना सही !
बनाये पूरा अंधा यह तो जीवन को अरे !

मोह तो मात्र बाँधता है पट्टी आँख पर पूरी,
बहते जाते क्या लोग मोह के बहाव में सही !

ऐसों को कोई यदि आये सत्य दिल में सुझाने,
ऐसा मोहप्रभाव वहाँ उसे वह सत्य ना लगे ।

शक्ति होने पर भी मोह शक्ति क्या हर ले सभी !
हर ले बुद्धि की सान, अद्‌भुत मोह की गति !

('पुनित प्रेमगाथा', आ. ३, पृ. ४० से ४२, १६०, १६२)

युद्ध

(अनुष्टुप)

युद्ध तो है अनिवार्य, युद्ध जीवन में सर्वत्र
युद्ध को जो नकारता, नकारे तत्त्व जीवन में ।

विश्व में भी जीये हैं जो युद्ध देकर मथते,
बिना युद्ध कभी जीव किसी में भी न पनपे ।

वस्तु पाने हेतु मस्ती उद्‌भव होनी चाहिए,
युद्ध मस्ती बिना कोई नहीं वस्तु पा सकता ।

ध्येय को पाने के लिए रखे जो आशा जीने में,
जिंदगी को गढ़े ऐसे, ढेले तो मनुष्य दूजे ।

जीवनध्येय के मार्ग में युद्ध में जो खप जाये,
स्वयं को धन्य माने वह ऐसा भाव झेल सके ।

('पुनित प्रेमगाथा', आ. ३, पृ. ७७)

विघ्न

(अनुष्टुप)

विघ्न किसे नहीं मिला ? बताओ एक तो जग में,
पाएगा विघ्न से लाभ विघ्न का जो सत्कार करे ।

विघ्न से जीवन में कभी दब जाना नहीं कहीं,
प्रेम से सामना वहाँ जो करे, पाएगा नया ।

जीवनध्येय अपना दृष्टि में नित्य जो रखकर,
ध्येय पाने जो लड़े विघ्न से वे जीये ।

मनुष्यदेह

(अनुष्टुप)

शरीर मनुष्य का जो मिला वह प्रभु की कृपा,
मनुष्यदेह को तो कोई गँवाये न कभी वृथा ।

जीवन मनुष्य का श्रेष्ठ सभी योनि में,
जीवन मनुष्य बिना मुक्ति किसी जीवन में ना ।

मनुष्यदेह सद्भाग्य से मिला सावचेत होने दिल में ।
कृपा रखकर गहरा ख्याल माँगूँ वह जीना दिल से ।

मनुष्य जिंदगी कैसी प्रभु की भेंट ! जान के,
उसे सर्जित कर संपूर्ण सार्थक वह करें पद में ।

जीवन साधने हेतु कर्म जैसे महत्त्व का,
आत्मा की साधना हेतु जरूरी वैसा शरीर ।

प्रेम की साधना दिव्य मनुष्य ही कर सके,
अन्य कोई भी योनि में होनी संभावना न दिखे,

दुर्लभ मनुष्यजन्म इससे तो जग में गिना,
कृपा से ऐसा प्राप्त हुआ, उसे क्या रौंद डालना ?

सर्व प्रतिकृतिओं में मनुष्य की प्रतिकृति,
सर्व रीति से सर्व श्रेष्ठ जानना प्रभु की कृति ।

लांघ के सारी मर्यादा अमर्यादा विषयक,
अमूल्य मनुष्यदेह धन्य प्रवेश ही होगा ।

प्रभु का प्रेम लेने को जन्म लिया है हम ने,
उस बिना कोई हेतु नहीं जीवन का सही ।

निष्ठा जिसे संपूर्णतः ऐसी बैठी हृदय में,
मनुष्यजन्म की क्या वे यथार्थता पहचानेगे ।

मनुष्यदेह से मात्र सारा विकास होने की
संभावनाएँ भरी हैं धन्यता इससे उसकी क्या !

समर्पण

(अनुष्टुप)

उसे अर्पण ऐसा हो चहु दिशा से उर में,
भाव, आनंद उसका वह समर्पण योग्य है ।

विवशता से हुआ समर्पण, समर्पण गिन सके नहीं,
ऐसे समर्पण से न हो फलित जीवन कभी ।

कर्म भी करने हैं प्रभुभाव के लिए सभी,
दूजा ख्याल कभी वहाँ नहीं पैठ कोई जाये ।

ऐसे कर्म कोई अन्य जो जो कुछ करते हों,
उसके लिए करके सर्व समर्पित वह सब किया करो ।

बुद्धि से मात्र कहना वह, या वैसा मन बोलना,
काम नहीं आयेगा योग्य, ऐसा अर्पण किया हमारा ।

जिसके समर्पण में संपूर्ण भावना उर की गहरी,
तदाकाररूप है वहाँ अर्पित किया योग्य वे चाहकर ।

समर्पण किये की कसौटी कि देने के बाद कुछ दिल में,
अगले पीछले उसके विचार जन्मेगा न कोई ।

साधना अनिवार्य

(अनुष्टुप)

प्रभु की दिव्य शक्ति वह विश्व में सचराचर में,
हजारों रूप में व्यक्त स्वयं कैसी हुआ करे !

वृक्ष में वृक्षरूप वह, पानी में पानी रूप वह,
चेतना मर्म रूप से, आविर्भावरूप में ठहरे ।

सर्व के मूल में देखते चैतन्यशक्ति वास है,
वैज्ञानिक कहें ऐसा, प्रयोग से सिद्ध वे करे ।

'यदि यह हो सत्य तो क्यों उसे न देख सकें ?'
प्रश्न उठता सभी को, वहाँ बीच में विक्षेप कहीं ।

इन्द्रियाँ, मन व चित्त, अहंकार के रूप में,
मिश्रित वह इकट्ठी भिन्न कैसे कर देखों ?

इन्द्रियाँ, मन व चित्त, बुद्धि प्राण फिर अन्य,
अहंकारादि से भिन्न होना रहा वहाँ सदा ।

उन सभी से संपूर्ण भिन्न हुए बिना दिल से,
आत्मा की दिव्य शक्ति ना पाये अन्य किसी रीत से ।

प्रचंड साधना उग्र उस के लिए करनी पड़े,
उस बिन न संभव उपाय किसी तरह ।

कुछ लाखों बार बोध सुना करोगे भले ही,
जाओ करोड़ बार ही संत के समागम में ।

शास्त्र चिंत्वन गहरे व अभ्यास किया करे,
तब भी नहीं पा सकेंगे उसे बिना कोई साधना किए ।

साधना मात्र उपाय केवल एक वहाँ सही,
शक्ति पाने की अन्य कोशिश बेकार गिनो ।

('कर्मगाथा', आ. ३, पृ. ४३ से ४५)

स्वप्न में साधना

(अनुष्टुप)

नींद में स्वयं का भान रहे नहीं हमें वहाँ,
तब भी करते रहते हैं कर्म वहाँ अनजाने ।

भोगते भोग स्वप्न में वहाँ जो रस लिया करो,
जाग्रत स्थिति का भोग उससे हलका सही ।

स्थान व कालमर्यादा स्वप्न की सृष्टि में घटे,
दशा जाग्रत में दोनों रहे इससे विक्षेप वहाँ बाधा दे ।

इससे नींद में दिल में पूरा जो चेतता रहेगा,
साक्षीभाव हृदय में रखकर अलिप्तता ही लाएगा ।

('कर्मगाथा', आ. ३, पृ. १४९-१५०)

सनम का तत्त्व

(अनुष्टुप)

सुभागी कोई पल में ऐसी जीवन का ख्याल वह जागा,
सनम दीदार का दिल में उलझा मुझे ही दिया ।

कभी खड़ी रही पास नयन के प्रेम इशारे से,
मुझे नजदिक बुला पछाड़ा अनेक बार !

सनम तू क्रूर ऐसा क्यों ? सनम का प्रेम ऐसा क्यों ?
मुझे सताने में वह भला सुख पाता कैसे ?

सदा कुरबानी माँगे, हृदय का सर्व समर्पण,
तथापि भेंट में देता हृदय का दर्द गहरा क्यों ?

सभी दिया करने में संतोष न दीखे पूरा,
'फना हो जीना उसमें' कहा करे हमेशा क्या !

जीवनसंध्या बेला में सर्वत्र अंधेरा छा जाये जहाँ,
सनम अस्तित्व स्वयं का बताकर लुप्त होता क्यों ?

तुझे दिया ही करता मैं कभी न थका लगूँ,
तब भी बेवफाई क्या ! सनम दीदार क्यों दूर ?

सनम की कल्पना जो जो हृदय आदर्श लगी है,
तब भी तेरे भूत में क्यों मुझे जकड़ा करे ।

सनम के भूत में क्यों सनम को देखता ? मूर्ख !
सनम तो देखों वहाँ खड़ा तुझे बुलाये, जा वहाँ ।

और मैं स्वप्न से जाग फिर ज्यों दौड़ता जाऊँ,
सनम वहाँ से भी भागकर होते अदृश्य लगता ।

सनम के रूप क्या भिन्न ! सनम के भेद भिन्न हैं,
सनम के कई प्रकारों में सनम का तत्त्व भिन्न है ।

('जीवनपाथेय', आ. ४, पृ. ८७-८८)

पीहर

(गजल)

पीहर के लाड़ व सुख, पीहर के मौज व चाव,
बहते स्रोत के जैसा पीहर का निर्मल जीवन ।

पीहर में माँ की गोद, पीहर के प्रेम की लहरें,
जगत में कहीं नहीं दिखे, भले ही सर्वत्र खोजो ।

पीहर स्वच्छंद निर्दोष खेल कूद मझा बहुत करते,
बिना बोझ, बिना चिंता, चाहा माँगा मिले मेवा ।

रूठने की, मनाने की, चिढ़ाने की, खिजने की,
कोई भी पागल-सनकी हठ करने का आनंद क्या !

नहीं वहाँ सेठ या मालिक हमारे तो हम राजा,
इशारे से सभी बने राजा हमारे ठाठ न्यारे वहाँ ।

सभी प्यार से हमें आर्द्र, खुश, फिर रखे,
कुछ ना पड़ी हमें पीहर की मौज न्यारी है ।

पीहर में सभी दुलारते हैं, पीहर में सभी फुसलाते हैं,
पीहर में सभी हसाते हैं, पीहर का रंग ऐसा है ।

पीहर में खूब मस्त हो घूमने और फिरने-
की मस्ती अजीब जो मिले वह कहीं भी अन्य ना ।

पीहर संपूर्ण अवलंबन की शय्या वह अनोखी है,
सोये लंबी तान जहाँ मीठा मीठा क्या लगता है !

जगत सब क्षुल्लक लगे, पीहर के आगे जो तो,
पीहर मेरा सदा जीये सदा खपता पीहर मुझ वह ।

हम को सभी सँभाले, हमें सभी याद करे,
हम को सभी बहलाये, पीहर की तुलना में कोई न आये ।

हमारा भाव सभी पूछे, हमें सभी खेलाते हैं,
हमें देख खुश पीहर में क्या स्वयं होते !

('जीवनप्रवेश', आ. २, पृ. १७७)

क्या सुनेगा नहीं कोई ?

(गजल)

स्वजन को याद कर करके झेलना किस तरह जीवन !
अहा ! क्या धक्का लगे, स्वजन को न कोई समझ ।

स्वजन को याद करते वह समूचा स्मृतिपट में,
न जागे, वह सही सुझाये स्वजन का भाव ना हम में ।

कभी यदि जागता दिल में, अरे ! कहीं भाग में खटके,
और बिखरे वेश में, न वह है ठिकाने की जगह पर ।

कणिका जैसे पैर में चुभे, स्वजन जीवन हृदय चुभे,
अरे ! वह सुने कौन ? किसे वह हृदय चुभे ?

स्वजन का जीवन देख दिन क्या भयानक सहे !
तथापि शिकायत करनी हमें कहीं वह है नहीं ।

स्वजन कल्याण चाहना जीवन के प्रेम की भूख,
चीख क्या कराये वह ! क्या सुनेगा नहीं कोई ?

हमें धोखा देने में स्वजन-दिल क्या मजा प्रकटे !
स्वजन किसके ! स्वजन किसके ! हृदय में क्यों रंग न प्रकटे ?

('जीवनपोकार', आ. ५, पृ. ५३, ५८-५९)

हमें जीना है

(गजल)

हमें जीना है, हृदय की भावना का जोर से,
हृदय की भावना, जहाँ है, जीवन में वहाँ जीवन प्रेरित करे ।

जगत में भाव जिसका है, सभी पूछे कीमत उसकी,
आवश्यक होते खरीदकर वस्तु बनाये उसे निज की ।

न जिसका 'भाव' है कुछ, न उसे कोई पूछता है,
आवश्यक हो भारी भले, फिर भी कुचलाती वह चरण में ।

स्थिर होता है भाव जिसका जहाँ, सब अंकित होता तब वह,
जगत व्यवहार क्या चलता, सर्वत्र गिनती कर 'भाव' से ।

निभता सब भाव के तौल पर जीवन सब-भाव सर्वस्व
गरीब की 'भाव' पूँजी है, गरीब का सच्चा स्वर्ग वह ।

हृदय के 'भाव' पर मुझे भूमिका चलने के लिए,
जगत में कहीं हो ठहरना मुझे तो स्थान भाव ही है ।

कृपा से 'भाव' वह देना, खुले हाथ दिया करना,
देकर मुआवजा प्रभु पूरा, अतुलनीय देगा वापस ।

('जीवनसंदेश', आ. ७, पृ. १६)

हमारा प्रेम

(गजल)

हमारे प्रेम की झोली सदा खाली रहा करती है,
भिखारी भीख मागता है, फिर भी कहीं से न मिलती ।

भीख में वह प्रेम न मिलेगा अरे ! क्यों तू चाहा करे !
चाहा करने विषयक हृदय में रखा रस है प्रभु ने क्या !

हमें चाह चाहकर रहना सभी में है,
सभी को चाहने की हमारी रीत न्यारी है ।

हमारा प्रेम न्यारा है, सभी के साथ भिन्न भिन्न,
तथापि एकसमान है, अलग लगे फिर भी साथ में ।

हमें तो सभी को समझ समझकर लिपटना है,
रहा करें हृदय लिपटकर न हमें कोई लिपटता है ।

लिपटने जाने पर किसको करे दुतकार के दूर वह,
करने जाते हृदय प्रेम स्वजन गणना करे न वह ।

हम खुश रहे सभी में, सभी खुश अपने अपने में,
हमें तो पड़ी सभी की, पड़ी हमारी ना स्वजन दिल में ।

स्वजन का भला करने जाते हमें नकारते हैं,
स्वजन ऐसे दिये प्रभु ने कृपा करके ही कसने ।

कस के देखो, कस के देखो, जरा न रखना बाकी,
नहीं तो भूमिका सभी लगेगी किस तरह पक्की ?

जीवन विकसित करने दृढ़ क्या स्वजन दिये प्रभु ने तो
सभी तरह हृदय में मुझ को आप में रखना पूरा ।

('जीवनसंदेश', आ. ७, पृ. ४७)

जीवनधंधा

(गजल)

अरेरे ! ऐसे तो क्यों हमें आजिजी करवाते हो ?
भूलकर क्यों हमारे गले फाँसी लगवाते हो ?

हृदय प्यारे स्वजन को तो भूले क्या क्यों किस तरह ?
भूलने पर तो हृदय समझो, 'स्वजन' सच हुआ न वह ।

हृदय के भाव की मुझ को भयंकर भूख लगी है,
न मिलने पर क्या चीखकर सभी को सुनाये वह !

आपके साथ जीवन को पूर्णरूप से रंगने,
हृदय में चाहना मुझ को — स्वजन किन्तु मदद में नहीं !

'आप में मिलकर भाव से, आप से जीवन का
कृपा से काम लेना है !' — जीवन हमारा उसी दावा का ।

'स्वजन याद करके जीना', जीवनयारी हमारी वह,
'सोचे कौन वह हमें !' आपत्ति ऐसी हमारी है ।

जीवनलगन स्वजन हृदय में न सुलगे जहाँ तक पूरी,
उदासी तब तक हमें छायी रहेगी ।

'स्वजन हृदय में हृदय की पुकार, कृपा से कोई दिन भी,
प्रभु सुनायेंगे जरूर !' भरोसा दिल में बसा वह ।

स्वजन में रहने हमारा दिल तलसता है,
हृदय का भाव हृदय से पकड़ने हृदय आतुर ।

हृदय की आतुरता जिसे कदर से लगते हृदय में,
स्वजन की धारणा-मूर्ति होते सभी कर्म में उदित होती ।

'जगत को चाहने का कृपा से तो दिया हमें
जीवनधंधा' फलित करना क्या हमें रहा है वह !

कृपा करना ! कृपा करना ! स्वजन प्यारे ! कृपा करना,
पड़ा हुआ दामन पर उसे कृपा से हृदय पालना ।

('जीवनसंदेश', आ. २, पृ. ६२-६३)

जीवन सँभालते रहना

(गजल)

स्वजन मीठे वचन बोलकर मुझे क्या फुसलाते हैं !
कहा पालन न कर दिखाये हृदय में चोट पहुँचाये !

जीवन का सुख लेने, जीवन का दुःख देने
उमंग से तैयार न दिखते दिल टूटता है ।

अरे ! कोई न बुझाओ हृदय के प्रेमदीपक को,
हमारी एक आशा वह जगत में जीने काज ।

जीवन के साथ मिलने में जीवन उपयोग करने,
स्वजन से राग करने हमारा दिल छटपटाता है ।

जीवन से एक बनने को, जीवन के काज सही कमाने
हृदय का प्राणपंखेरू तड़पता और छटपटाता हा !

हमें हिस्सा लेना है, स्वजन के जीवन में,
परन्तु कोई नहीं हमें हृदय से स्वागत करता ।

'आपके तो हम हैं' स्वजन ऐसा मुख से बोलते,
न आये वे हृदय के पास, निरर्थक खाली क्या बकना !

हृदय विश्वास प्रेरने जीवनवर्तन न वैसा यदि,
क्या होता होगा हमें ! सोचे कौन ऐसा सभी ?

हमारी दुर्दशा करने स्वजन जीया करे, ऐसा
हमें देख देखकर हृदय में टूटते रहना ।

जीवन के प्रेम और रंग अन्य **जीव** को चढ़ाने को
हमारा वेष न्यारा जो, चढ़ाया जो प्रभु ने है ।

प्रभु देखनेवाला बैठा है, प्रभु सँभालनेवाला है,
'जीवन सँभालते रहना' स्वजन को प्रार्थना मेरी वह ।

('जीवनसंदेश', आ. ७, पृ. ७०)

प्यारे स्वजन

हृदय चाहा और चाहा सदा करने गहराई में,
मिले ना सुख यदि पूरा अहा ! यह सुख तो कैसा !

सदा चाहा करो तब भी अधिक वहाँ चाहने दिल
हुआ करता सतत लगे, हृदय क्या प्रेम का मर्म !

हृदय को चाहने में क्या हृदय में दुःख लगता है !
तब भी उस दुःख से उसे हृदय में भाव जागता है !

और उस भाव से दिल टिका, दिल विषयक रहता है,
सदा जुड़ा रहने हृदय प्रेरित करता है वह ।

खड़ी है भेद की दीवार न टूटे या तुड़वाये,
अभेदानंद की मस्ती का क्या भान चुकाये ?

हृदय आनंद तैयार हृदय काज खड़ा क्या वह !
झुकाओ क्यों न, दिलबर को तपाया वहाँ करो क्यों ?

आप में समाना है, आप में बंद होना है,
आप में होकर मेरा आप में ही मरना है ।

जीता है विश्व आनंद से, हृदय आनंद तो क्यों
हृदय ना आतुर पूरा ? खड़े खाली रहे क्यों ?

अरे ! सँभालते रहते हो आप हद को सभी तरह,
रहते हो वहीं भटकते खेलते हद विषयक जो तो ।

मिले आनंद बेहद का कभी हद विषयक ना वह,
न आये कल्पना ख्याल में पूरा आनंद ऐसा वह ।

तथापि हद में रहकर बेहद का आनंद आदर्श पर,
झुकाया जो हृदय रखे जायेगा वह कभी पार भी ।

हृदय हद के रिवाजों को जाने बेहद के भाव से,
पार करे प्रेम के ज्ञान से, प्रवेश करे बे-हद में वह वह ।

रहकर हद में हृदय बेहद का जो ध्यान रखता है,
मिले हद की और बेहद की सरहद विषयक वह ।

कृपा करना, दया करना, होते सभी कर्म के अंदर,
प्रभुभाव से भीगा हुआ निरन्तर रखना अंतर ।

पाले मैं पड़ा हूँ, डूबाना या तारना और
आपको जो लगे अच्छा, भले उसका करो वह वह ।

('जीवनसंदेश', आ. ७, पृ. १०८-१०९)

अनुकूलता के लिए प्रार्थना

(गजल)

आपमें होने के लिए अनुकूलता मुझे देना,
आपके दिल का सच्चा स्वजन मुझ को आप करना ।

आपको दुःख देने पर आप ना रोष दिल रखना,
कहने का गहरा मर्म समझने यत्न वहाँ करना ।

आपका सुख वह मेरा आप सुख वह होने देना,
मुझे सुख वहाँ लगते ना, कहने वहाँ मुझे देना ।

हृदयपथ खुला करने मुझे दाखिल होने देना,
और ऐसे उतरने पर वहाँ होते सभी कुछ सह लेना ।

आप सभी को तो सहने का मुझ से आये,
फिर सताने का कुछ होते माफी मुझे देना ।

आपके रोष को सहने नहीं वहाँ स्थान मुझ में,
भव ऊँचा होता जहाँ तो हृदय पाऊँ हृदय वहाँ ना ।

आपका प्रेम माँगता हूँ, हृदय की भावना माँगूँ,
आपकी आतुरता माँगूँ तमन्ना ईश की माँगूँ ।

आपके द्वार आकर भिखारी होकर मैं तो खड़ा,
खाली हाथ से भटकता वहाँ गरीब को क्या छोड़ दोगे ?

सभी को कुछ न कुछ देते आपको देखूँ,
मुझे वहाँ अकेले को कुछ न दो, बने वह क्या ?

भिखारी इतना कहकर पड़े मुझे नहीं रहना,
चाहूँ वहाँ माँगने धर्म प्रवेश करने आप में मैं ।

('जीवनपाथेय', आ. ४, पृ. १२०-१२१)

भिखारी भीख माँगता है

(गजल)

आपके द्वार आकर भिखारी भीख माँगता है,
भिखारी को जाने देना न खाली, प्रार्थना आप को ।

आपके आंगन आकर कुछ भी माँगने पर उसे,
मुट्ठी चुटकी तुम देते हो, निहारा आँख से मैंने वह ।

मुझे तो अकेले को क्या भला ! बाकी अरे ! रख
भिखारी को बेकार घूमता और भटकता रखोगे ठेल ?

आपके सहारे मैं तो पड़ा उसे निभाकर
गरीब का दिल संतुष्टकर दुवा को पाना हृदय में ।

('जीवनप्रेरणा', आ. ३, पृ. ८७)

भिखारी की दया जान योग्य लगे तो टुकड़ा देना

(गजल)

'होने वह प्रेम के लिए फना जीवन के भाव से,
हुआ करेगा हृदय में' लगन ऐसी लगाओ ना ।

भिखारी जो भटकता था जीवन के द्वार उसे
आप बुलाकर क्यों रहने दो भूखा उसे ?

आपकी पुकार से वह तो सच बुलाने पर आया,
अब बिलखाते क्यों ? खड़ा कैसा खाली रखा क्यों ?

अभी खप्पर रहा है पड़ा एकदम खाली कैसा,
नजर उसमें रही क्या ! स्वजन को आवाज दे क्या ?

भिखारी क्यों फिर वह अब **आंगन से** जाये ?
अब तो आर या पार होना है जो भले हो ।

आपके आंगन में अड्डा जमाकर पड़े रहना,
भले डालो, न डालो कि, हमारा इतना कहना ।

('प्रणाम-प्रलाप', आ. ४, पृ. ४४)

गूढ़ रीति

(शिखरिणी)

पड़े रहने देना आपके दिल के किसी कोने में,
आपका जान के कुछ मुझ को चाह आप देकर,
कैसा भी होगा स्वजन आपके जो सहारे पड़ा,
निभा लो उसे आप उर कर पालन पूरा ।

आप तो कुछ कुछ दो, कुछ भी मैं दे नहीं सकूँ,
भिखारी मैं तो हूँ प्रभुपद प्रभाव से जी सकूँ,
आपके पास का सकल ले लेने को पद चाहूँ,
नहीं सत्ता पास प्रभुपद पुकारा नित्य करूँ ।

हजारों कोस का अतिशय भले अंतर रहा,
भले न हो ऐसे अभी कुछ रहे भेद मन क्या !
फिर भले ही जाल नयन पटल पर पड़े,
आप चाहे हुओं को मेरा कर शांत फिर मैं ।

होगा किस तरह वह मुझ मन कह न सके,
होगा कब वैसी समयगणना ना रखुं दिल में,
कृपा से उसकी प्रिय प्रभु के नाम रस का
पथ से पाथेय मिला, मेरे ह्रदय वह साधन बड़ा ।

('पुनित प्रेमगाथा', आ. ३, पृ. ९)

आप कब ले लोगे ?

(गजल)

गिनूँ मैं मेरा धन जिसे आपको देना सभी,
ह्रदय में बेचैनी अति आप कब ले लोगे ?

ले लो मेरे पास से सभी लक्ष्मी जीवन की जो,
मुझे क्यों लूट न लेते ? करता हूँ याचना आपको ।

जाते हुए सकल उसमें से नहीं खाली होगा वह,
भरा भंडार ऐसा वह प्रभु का क्या दिया है !

अधूरा मैं मुनीम उसका अभी तब भी शेखी क्या !
तुम्हारे आगे करूँ ! प्रभु सच्ची ठहरायेगा सभी ।

समायेगे ही अपने में पूरी तरह हृदय जब,
सकेंगे सच समझ क्या स्वरूप तब सभी का वह ।

('पुनित प्रेमगाथा', आ. ३, पृ. ७०)

भाव से व्यापार

(अनुष्टुप)

आपके भाव से मुझे व्यापार करना रहा,
पूँजी बिना भिखारी से हो सके व्यापार कैसे ?

पूँजी माँगा करूँ इससे दिल के प्रेमभाव की,
दिया करो स्मृति जोड़ ज्ञानपूर्वक वे फिर ।

ऐसी स्मृति के तार संधते वहाँ अखंड रहे,
कर्म में ज्ञान हेतु का तो तो अर्थ सरा करे ।

भावस्मृति न वह यदि हो प्राणवान पूरी हृदय में,
तादात्म्यभाव किस रीत उस बिन जमे हृदय में ?

चेतना-स्फूर्ति दिल में प्रकटाया स्मृति करे,
तब स्मृति का जोश आया जानना चाहिए ।

('पुनित प्रेमगाथा', आ. ३, पृ. १४९)

● ● ●

निर्बल कैसा मैं भिन्न चल सकूँ किस रीत ?
मुझे देकर चेतनाशक्ति जीवित रखे दिल में ।

प्यारे को स्मरण करना तो चेतनाशक्ति काज हो,
बेकार चीज के जैसे गोदाम में डाल क्यों रखो ?

विषपान कराया है ऐसी प्रसादी भी पी ली,
अब तिलांजलि देके कृपा रखो थमो चाहकर ।

शिकायतरूप ऐसा कहता न कुछ भी मैं,
किसी उपाय से भी वह जागे यदि ख्याल, तो अच्छा ।

प्रेम अभेदमार्गी है लीला प्रेम की अद्‌भुत,
प्रेम का वह चमत्कार, भाव वह प्रेम का रूप ।

तादात्म्य प्रेम में इससे दिल में गहरा रहाकर,
सफल जीना ऐसा धन्य सभी करे मिलके ।

पाले जो पड़ा हुआ आपके तो कृपाकर के,
धन्य स्वयं होके, धन्य उसका करना फिर ।

('पुनित प्रेमगाथा', आ. ३, पृ. १४९, १५१, १५२)

पश्चात्ताप होगा तब

(अनुष्टुप)

आपके प्रेम से मुझे जीना हृदय से रहा,
हृदय का भाव वह शक्ति जोश मेरे गरीब का ।

प्रेम के काज बेचैन हूँ प्रेम सब देना सभी,
देना प्रेम भी ज्ञान के हेतु से वहाँ सदा ।

अधिक क्या कहें वह मुझे लाजिम न कुछ,
मूर्ख तब भी अरे ! कैसे दिल के फफोले निकालूँ ?

भले ही आज प्यारे को उसकी न गणना होगी,
किसी काल दिल में सत्य उसका भी उर लगेगा ।

पश्चात्ताप पूरा तब ऐसे को लगेगा दिल से,
'था कोई मिला हुआ जो जीया वह प्रेम कारण से' ।

('पुनित प्रेमगाथा', आ. ३, पृ. १६३)

स्वजन का श्रेय चिंतन

(अनुष्टुप)

आपका लूट लिया क्या कृपा कर बतलाओ,
वापस लौटाने जैसा होगा, तो वह दूँगा मैं ।

बार बार मुझे घूँसे मारा क्यों करना योग्य ?
आपके चित्त के साथ क्यों न ले समझ दिल में ?

आपका क्या बिगाड़ा है ? जरा तो ख्याल वो रखो,
प्रभु ने तो सुधारा है आपका स्वार्थ बहुत ।

उपकार मानना छोड़के अन्यथा क्या विचारना ?
मनुष्य को योग्य क्या वह ? दिल से गहरा सोचे ।

शांति देने दिल में प्रभु ने जो दिखाया,
उस अनुसार दिखाकर शांति देने चाहा करा ।

आपकी प्रकृति गहरी गुण से कैसी भरी है,
करे जो श्रेय अपना उसकी क्यों निंदा ? भला !

आपके श्रेय का उसे चिंत्वन करना अकेला रहा,
आपकी प्रकृति उसे कैसा माना करे क्या क्या !

('पुनित प्रेमगाथा', आ. ३, पृ. १७७, १७८)

ऐसे कई विचार

(शार्दूलविक्रीडित)

हृदय की भड़ास निकाल के तुम्हें मैं सुनाया करूँ,
पहुँच न सकती दीखे हृदय में, बीच में विघ्न है कुछ,

'तोड़ के मार ड़ालना अवश्य वह कैसे पूरा होगा ?'
ऐसे कई विचार इस दिल में स्फुरित होते हैं अब ।

('पुनित प्रेमगाथा', आ. ३, पृ. १९५)

मुहब्बत की मीठी लज्जत

(गजल)

जिगर बिना जिगर आर्द्र जिगर का प्रेम न्यारा है,
जिगर का प्रेम यदि भिन्न जिगर का भी भिन्न वहाँ है ।

जिगर का प्रेम जादू से सदा भुलावे में रहना है,
हृदय के प्रेम को ऐक्य जिगर में ही समाना है ।

हृदय हमारे प्रेम के रस से सदा जुड़े हुए रहेंगे,
जीवन* तो एक है भले ही जीवन** के देह भिन्न हैं ।

भले मृत्यु, भले स्वर्ग, भले जहाँ हो जाना वहाँ,
हम तो साथ रहेंगे, हम साथ ही उडेंगे ।

हमारे पथ में काँटे फूलों की तरह लगते हैं,
हमारी स्वर्ग की दुनिया, हमारा राह न्यारा है ।

सदा ही प्रेम मस्ती में हमें बस रहना है,
प्रेम-शराब में मुहब्बत के विषयक बस डूल रहना है ।

बरबादी के हम पथ में मुड़े हुए की खुमारी वह,
मुहब्बत की मीठी लज्जत जिगर समझे जिगर जाने ।

('पुनित प्रेमगाथा', आ. ३, पृ. २१२)

कहो, वहाँ क्या फिर करूँ ?

(अनुष्टुप)

कोई प्यारा कहता कि 'हमें प्रभु से मिला दो,
साक्षात्कार कराये तो जाने उर सच्चा तो ।

यदि होती बात मेरे हाथ, तो कब का वह,
प्रत्यक्ष वह कर दिया होता गहरा दिल में ।

---

* जिगर ** जिगर का

किसी की वहाँ न चले स्वयं वैसे हुए बिना,
प्रभु सरल नहीं है, सीधा तो कहीं न भला !

वह तो क्या आने के लिए माँगे भूमिका दिल में,
उस बिना स्थिर वहाँ न कानून सूक्ष्म वह है ।

ऐसा कराने को कैसा आतुर नित्य गहरा
मुझे साथ मिले ना तो कहो वहाँ क्या फिर करूँ ?

आपका साथ यदि पूरा दिल में मिलता रहे
प्रत्यक्ष यदि सभी बात में रह सकते हो ऐसा वह,

अपनेआप आपको तो पता लगता सभी ही,
माथापच्ची बाद में तो रहेगी नहीं कुछ स्वयं क्या !

कृपा से सब करने इतना भी मथा करो,
सही या गलत है उसकी परीक्षा भी करके देखो ।

आप भी राह कहाँ तक ऐसी देखा करोगे ?
विह्वल जीना ऐसा भी निभाके क्यों रखोगे ?

('पुनित प्रेमगाथा', आ. ३, पृ. १६१, १६२)

प्रेमभाव से कृतार्थता

(गजल)

आपके प्रेम का भाव प्रभु ने जो चखाया है,
प्रभु की भावना जीवित का दर्शन कराये हैं ।

अनजान मैं था सभी से तथापि प्रभु जो आप में,
बसा सूक्ष्म, उसने क्या नवाजा लेकर मुझे बाहों में ।

प्रभु प्यारा सुझाव दे प्रभु में दिल जो रखे,
सभी काम उसके बलिहारी कृपा की वह ।

आप ने सद्भाव व प्रेम बतलाये कितने, कैसे !
न लायक कोई उस काज, करामात क्या प्रभु की वहाँ !

प्रभु सचराचर में कैसा सब जगह व्याप्त जीए वह !
आप में मुझे उसने महत्ता क्या बतलायी है !

अनजान मैं भले तथापि आप में प्रकट होकर
कृपा से क्या मदद दी ! भुलाया न जाये उसे कभी ।

प्रभु ऐसा कृपालु है प्रभु पर लक्ष रखता जो
सभी सँभाल ले उसकी सभी में भी सभी तरह ।

आपमें में बसे हुए वे प्रभु को उर उमंग से
करूँ कोटि प्रणाम मैं हृदय से खुश खुश होकर ।

गरीब पूरा सब बात से न पास में कुछ ऐसा है,
चरणकमल में आपके जो रख कृतार्थ होऊँ मैं ।

कृपा करके सदा मुझ पर आपका कोई जानकर,
हृदय के किसी कोने में कुछ स्थान देना मुझ को ।

पुनः पुनः उपकार मानता हूँ झुक झुककर आपके पद में,
प्रभु उपकार से हृदय द्रवित हुआ क्या आपकी स्मृति में !

प्रभु को प्रार्थना मेरी 'प्रभु जीवन विषयक आपको,
हृदय चेताना लगनी प्रणय उसकी लगाकर !'

('पुनित प्रेमगाथा', आ. ३, पृ. २५०, २५१)

इस साधु की आदत

(वैदरभी वन में बड़बड़ाना - यह ढाल)

ऐसी हम साधु को आदत है ।

जिसका लें उसका दें हम, रखते संतुलन,
कम या अधिक न तौलते, दें समान ही मोल । — ऐसी०

हमारा व्यापार श्रीनाम का, उसके साथ ही काम,
उसके साथ जिसका व्यवहार है, हमारा पीहर हमारा धाम । — ऐसी०

हमें कमी, बड़प्पन नहीं, नहीं शरम और लाज,
घरबार और खेत नहीं, हम घूमते बेताज । — ऐसी०

हम तो राजा हमारे पिंड के, हम अपने शिरताज,
किसी के कहे में हम नहीं, हमारा प्रेमराज । — ऐसी०

संपूर्ण विश्व में व्याप्त, हमारे प्यारे की आन,
हमें तो कमी क्या फिर ? जहाँ जाये वहाँ पहचान । — ऐसी०

हमें भटकने की आदत है, रहें ना एक गाँव,
हमारा ठिकाना कहीं नहीं, हम तो बेठिकाना । — ऐसी०

स्वेच्छाचार से घूमते देखे, हमें जग बेलगाम,
हम तो स्वामी के घोड़े, हमें उसकी लगाम । — ऐसी०

जग के आप लोग रखना, यदि रख सको तो प्यार,
हम तो आयेंगे भीख माँगते, पुकारकर अलख । — ऐसी०

('जीवनपगथी', आ. २, पृ. १२९)

॥ हरिःॐ ॥

॥ हरिःॐ ॥

खंड - ३
श्रीमोटा के विचारस्फुलिंग

विज्ञान के आविष्कार से ही गरीबी हटेगी ।
इसलिए ऐसे आविष्कार को प्रोत्साहन मिले
ऐसी योजना करो ।

– मोटा

✤ साधनाकाल की प्रारंभावस्था में जो अलग अलग पढ़ने लग जाता है, वह उलझन में पड़ेगा, इसतरह उसका मार्ग खुला रहने में अड़चनें आएँगी । उसका मन उसे हजारों परस्पर विरोधी दिशाओं में खिंच ले जाएगा । अनेक तर्कवितर्क आएँगे । सर्वोत्तम तो यह है कि साधनामार्ग का पढ़ना उस वक्त आवश्यक नहीं । जिसका निर्देश हुआ हो वही प्रेमभाव से, समर्पणभाव से, शरणागत होकर उत्कटभाव से किया करेंगे; उसमें जब स्थित होने लगेंगे और भगवान का भाव हम में स्थिर होने लगेगा, उसके बाद जो कुछ पढ़ना हो, उसे पढ़ें ।

('जीवनपगरण', आ. ३, पृ. १२३)

✤ भाव हमारा अनमोल धन हैं । धूल धोनेवाला जैसे सोना मिश्रित धूल में से धूल निकालकर सोना छान लेता है, वैसे ही भावनाओं में से हम वैसा छान ले सकते हैं, उसका उपयोग कर सकते हैं, परन्तु उन भावनाओं के साथ खेल करने जाकर उसे न्यौता दे या हम सामने जाकर उसे खींच लाये या उतारने की नहीं होती, क्योंकि उसमें खो जाने का पूरा संभव है । ('जीवनपगरण', आ. ३, पृ. १३२)

✤ भाव, मनोभाव को दबाना यह ठीक नहीं, परन्तु उसके साथ, उस भाववाले मनोभाव के साथ बहते जाना यह भी इष्ट नहीं । हमें दोनों के बीच का लाभदायक रास्ता खोज निकालना चाहिए ।

('जीवनपगरण', आ. ३, पृ. १७८)

✤ मन को पूरा खाली रखना है । जो कोई भी विचार, उलझें पैदा हों उन्हें तुरन्त सुलझायें । ('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. १६)

✤ सत्त्वगुण का भी गुलाम नहीं होना है ।

('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. १)

✤ पहले का पढ़ा भूलना होगा । ('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. २)

✤ जो कुछ किया करें उसमें दिल हो, प्रेम हो, रुचि हो अथवा यह सब न भी हो तब भी वे सभी पैदा होंगे ही ऐसी श्रद्धा, विश्वास और लगन से सब कुछ किया करें, उसका तन्तु पकड़े रखें, इतनी जागृति रखनी चाहिए । ('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. १९)

✤ हमारे आग्रह, विचार, मंतव्य, ख्याल आदि को हम दूसरों पर न लादें और कुछ कहना हो तो एक बार प्रेमपूर्वक कहें और वह भी बिलकुल भार दिये बिना; तद्पश्चात् उसका समूल विचार भी निकाल दें । हर किसी को अपने ढंग से अपने ही वातावरण में स्वतंत्ररूप से विकसित होने दें । ('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. ९५)

✤ हमें दूसरी सभी वृत्तियों का वेग और उसकी स्वच्छंदता मिटानी हो तो हमारे काम की भावना में खूब एकाग्रता, उत्कट भाव से लगे रहना चाहिए, अन्यथा इसका होना संभव नहीं और ऐसा करेंगे तो ही दूसरी वस्तुओं को हम गौण रूप से हाथ में या मन में ले सकेंगे । ('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. १०१)

✤ कोई भी हमारा कुछ प्रेम से करे तो हमें उसकी खूब कदर करनी चाहिए । ऐसी कदरभावना हमें सरलता और सहृदयता से रखनी है । इससे सामनेवाले के दिल पर असर होता है और उसे अपनी ओर भाव रखने में उत्तेजन मिलता है । फिर हमारा अक्कड़पन भी कम होता है । ('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. ११३)

✤ हमारे द्वारा होते सभी कामों में हमें कुछ लाभ पाने की या हानि होने की कुछ भी इच्छा या भय हमें नहीं रखना है । उसका स्वाभाविक परिणाम लाभ या हानि में भले आता हो, परन्तु हमारी मानसिक भूमिका में वैसी इच्छा को कहीं भी स्थान न हो । इतना हम सतत ध्यान रखें । ('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. ११४)

✤ काम कभी भी हमें विघ्नकर्ता नहीं होगा । वह तो हमें एक ढंग से अपनी धारणा में हमें अधिक मजबूत बनाने, दृढ़ रहने और कसौटी करने के लिए मिला मौका है ।
('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. ११४)

✤ साधक को अपनेआप का, विचारों का, वृत्तिओं का, भावनाओं का, मनोभावों का और चेतना का गहरा पृथक्करण करते रहना होगा । उन प्रत्येक को उसके यथार्थ स्वरूप में समझकर हमारे विकास में

उनका किस तरह श्रेष्ठ उपयोग हो सकता है, इसे समझना होगा ।

('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. १६६)

- किसी भी भाव या तरंग का उबार आये, तब उसका उपयोग नामस्मरण के वेग में करना नहीं चूकना चाहिए ।

('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. १६७)

- समझ से आगे बढ़ते रहें, अंधश्रद्धा से नहीं ।

('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. १६७)

- **यौन संबंधी विषयवासना का उपभोग तो साधक के लिए गहरी खाई में गिरने जैसा है ।** ('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. १८१)
- हमारी चेतना की श्रृंखला को हमारे प्रत्येक प्रियजन से जोड़कर रखेंगे तो उसकी शक्ति बँटकर व्यर्थ हो जायेगी । जब तक हम में इतनी शक्ति प्रकट न हुई हो कि उन सभी के साथ एकसमान जुड़ सकें, तब तक तो एक में ही चेतना की श्रृंखला जोड़कर रखें यह आवश्यक है । ('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. १८१)
- साधक का महत्त्वपूर्ण एक लक्षण है—प्रसन्नचित्तता ।
- मन को तो अभी बुद्धि की मदद से उसके उल्टेसीधेपन को समझकर कुछ अंश में काबू में भी ला सकते हैं, परन्तु बुद्धि का ऐसा नहीं हो पाता । बुद्धि वह प्रकाशरूप सूक्ष्म से सूक्ष्म है । बुद्धि की शुद्धि भी उतनी ही आवश्यक है । ('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. १४२)
- साधक जब एकाग्रता, केन्द्रीकरण, समग्रता से श्रीप्रभु को अंतःकरण से पूर्णतः और सर्वतः एक-एक करण से संपूर्ण शरणागति को प्राप्त करता है, उसके बाद श्रीभगवान उसकी साधना का भार अपने दायित्व में लेते हैं । ('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. १७२)
- प्रभुप्राप्ति का हेतु कोई स्थूल या सूक्ष्म लाभ पाने का नहीं होना चाहिए । प्रभु के लिए ही प्रभु को प्राप्त करना है ।

('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. १७८)

- साधक का हृदय और श्रीसद्गुरु का हृदय, इन दोनों का बिलकुल एकराग और सहमत हो यह इस साधनामार्ग में जीत की एक सूक्ष्म चाबी है । ('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. १९४)

- मन की दृष्टि, वृत्ति और भाव बहिर्मुख होते उन्हें टोकना, रोकना और समेटना । ये तीनों प्रक्रियाएँ साधक के लिए बहुत आवश्यक हैं, पर वह सचेतन जागृति आये बिना संभव नहीं हो सकती । सद्‌वस्तु केवल बातें, चर्चा या ऐसे कोई कार्य से नहीं साधी जा सकती, उसके लिए तो प्रखर और प्रचंड साधनाभरा पुरुषार्थ चाहिए ।

  ('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. २१६)

- कितने ही **जीव** तो ऐसा मानते हैं कि साधक में आवश्यक हृदय की सही मनोवृत्ति अथवा जीवनविकास के प्रति उत्कट जिज्ञासा भी श्रीभगवान ही कर देंगे, क्योंकि सब कुछ भगवान करते हैं, इससे हमारी साधना भी वही कराएँगे । यह निरी अज्ञानता से भरी मान्यता है और साधनापथ में अवरोधकर्ता है ।
- साधक को अकेले साधन को पकड़े रहने से कुछ नहीं मिलेगा । उसमें हृदय का भाव पैदा होना चाहिए और वह भाव फिर कर्म के हार्द में जाग्रत होना चाहिए । ऐसा हो तो साधक के हृदय का विकास अपनेआप हुआ करे ।
- साधक को साधना के भाव में ही आग्रह रखते हुए, अन्य सभी विषयों में पर्याप्त योग्य विवेक रखकर ज्ञानपूर्वक निराग्रही रहना चाहिए ।
- साधक जब जीवन को भगवान की भावना में परिवर्तित करने की शुरूआत करता होता है, उस समय एकदम से उसका संपूर्ण रूप से ज्ञानभक्तियुक्त समर्पण होना संभव नहीं होता है । वह तो जैसे जैसे भगवान में प्रेमभाव से जीवन रंगता जाता है वैसे वैसे क्रमशः वह होता जाता है ।
- साधनापथ में आती कठिनाइयों के समय उसमें तप की जागृत भावना यदि उस समय ज्ञानात्मक भाव से हृदय में जगाने का हो सके तो वैसा श्रम, वैसी कठिनाइयाँ भी एक प्रकार के तप रूप में जीवनविकास यज्ञ में उपयोगी हो सकते हैं । ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ५०)
- प्रकृति के स्वभाव से निराग्रहीपन विद्यमान हो, तो वैसे निराग्रहीपन से तो जीवनविकास की भावना जीवन्त, प्रज्वलित रखने का कोई भी

लाभ नहीं होता। प्रकृति या परिस्थिति द्वारा प्रेरित नहीं, परन्तु ज्ञानभाव से प्रकृति को बदलने हेतु से निराग्रहीपन लाना है।

('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. १५७)

✤ नम्रता और सद्‌भावना दोनों को रखना है, परन्तु उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि स्वयं के जीवनध्येय की भावना को कुचल कुचलकर वैसे होता जाय। इसमें तो जीवन की मृत्यु है।

('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. १५७)

✤ साधना में बहुत खींचकर पकड़े रखें तथा बहुत ढीला छोड़ें ये दोनों दशाएँ अयोग्य हैं। बहुत खींचकर पकड़े रखने पर अर्थात् पुरुषार्थ करते हुए परेशान रहा करेंगे तथा बहुत ढीला रखे तो इससे प्रमाद, आलस्य और तमस में ही पड़े रहने की स्थिति आएगी। हमें तो वह भी नहीं होना और यह भी नहीं होना।

('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. २१८)

✤ कुछ भी यंत्रवत् नकारने से सही इनकार नहीं हो सकेगा, परन्तु वह सभी टालने के पीछे प्रत्यक्ष उस समय जीवनध्येय के प्रति हेतु का जीवन्त ज्ञान, उसकी समझ और उस कर्म के हार्द में उस प्रकार की वे सभी आचरण करते समय समझ की भावना रखनी है, उस प्रकार की भावना में से जीवन का आचरण करने की कला पैदा होनी चाहिए और इसतरह यह सब यदि बाहर निकलता जाय तो सार्थक रहेगा।

('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ३३२)

✤ साधना की उत्तरोत्तर कक्षाओं में 'गुण' का भी विलय होता जाता है। हमारी जीव कोटि में सत्त्वगुण जैसा होता है, वैसा का वैसा कुछ वह चेतनात्मक कक्षा में नहीं रहता। उसकी भूमिका होने पर भी उसका प्रकार और कक्षा तो बिलकुल अलग ही ढंग का होता है। रजस ऐसी कक्षा में जीवन में शक्ति के स्वरूप में आता जाता है और तमस वह गुण किसी परम शांति में, किसी अवर्णनीय शांति में, किसी परम विमल ऐसी स्थिरता में परिणाम प्राप्त होता जाता अनुभव होता है। ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ४१४)

✤ **नामस्मरण का उद्देश्य ज्ञानपूर्वक हृदय में हृदय से जीवन्त रहा करे तो ही उसकी सार्थकता रहती है । बाकी खाली नाम लिया करें और भजन, कीर्तन किया करने से खास कुछ नहीं होगा ।** मन में मन से तो हम संसार में खेला करते हैं और संसार के विचारों में रुचि लिया करते हैं, तो ऐसा नहीं चलेगा ।

('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ४२२)

✤ साधक के जीवन में दृढ़ मनोबल की भावना सूर्य की तपन की तरह होनी चाहिए । अटलता अर्थात् अड़िगता तथा धारणा अर्थात् उसके पीछे ज्ञान की समझ और वह भी सतत, एकसी कार्यसाधकतायुक्त समझ । ऐसा जीवनसाधना का स्वरूप हो जाना चाहिए । वह तो ज्ञानभक्तियुक्त व्यवहार किया करने से उसमें जीवनचेतन प्रकट होता है ।

('जीवनमंथन', आ. २, पृ. ८६)

✤ साधनामय जीवन में प्रवेश होते सात्त्विक गुण आते जाएँगे, विकसित होते जाएँगे, तब जानना कि साधना सही दिशा में है ।

✤ जो जो वृत्ति, विचार, भाव, परस्पर के व्यवहार से उत्पन्न होती वृत्ति, कर्म-प्रसंग और व्यवहार से पैदा होनेवाले भाव और इसमें अपनी पैदा होती स्थिति, उन सभी का हृदय से मुक्त स्वीकार संपूर्ण हुए बिना साधक खुला नहीं हो सकेगा ।

✤ 'साधक को कुछ कोई बंधन नहीं होता' यह सौ प्रतिशत अज्ञानपूर्ण समझ है । जैसे-तैसे व्यवहार से कभी भी जीवन में व्यवस्थिति पैदा नहीं हो सकती । जीवन भी एक कला है और वह उत्तम में उत्तम कला है । तूलिका जैसे तैसे चलाने से कोई चित्रकला नहीं आ जाती ।

('जीवनमंथन', आ. २, पृ. २५१)

✤ साधना से पैदा होती समझ को मात्र जुगाली करने से कुछ नहीं होगा, अंधा अनुकरण करने से भी नहीं चलेगा । इसमें प्रत्यक्ष दिखती या अनुभव होती प्रतिभा से चकाचौंध होने से भी कुछ नहीं होगा, परन्तु उसमें से जो चेतन जागे उसे नए प्रकार के सर्जन की इच्छावाले तत्त्व को स्वीकार कर काम में जुटना पड़ेगा, तभी जीवन

में नया–नया प्राप्त होगा । साधना से रसज्ञ दृष्टि, शक्ति खिलती जानी चाहिए, जिससे प्रत्येक कर्म में उसके आगेपीछे का हेतु और ज्ञान प्राप्त होता रहेगा । ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. २८४)

- ऐसा होने पर स्वयं दृढ़ स्थितिवाला साधक हुआ है, ऐसा मानना है । **फिर तो आकाशवृत्ति उत्पन्न हुए ऐसे साधक के हृदय में रागद्वेषवाले विचार बुरे फल उत्पन्न करते हैं । ऊपर के दोषवाले आंदोलन चिदाकाश में मिलकर, अपने स्वजातीय दोषवाले आंदोलनों को आकर्षित कर उन विचार के आंदोलनों का फल समष्टि में उत्पन्न कराता है । इसतरह स्वयं संसार में शांति के बदले अशांति पैदा कराने का कारण बन जाता है ।**
('जीवनमंथन', आ. २, पृ. ३४३)

- **जीवन में प्रकट हो और जीवन के प्रवाह को उसके भाव के प्रवाह में वहन कराये वह श्रद्धा ।** श्रीसद्‌गुरु के प्रति एक तरह का अहोभाव पैदा होना यह तो बहुत प्राथमिक प्रकार की श्रद्धा है । इससे अधिक कुछ नहीं पैदा होता, एवं वह एकदम बेकार भी नहीं होता ।

- साधना में आगे जाते एक ऐसा दौर आता है कि जब साधना एक निर्बंध रूप से सर्वान्तर्यामी और सर्वज्ञ हमें चलाये उस तरह चलने की ज्ञानभक्तिपूर्वक की जीवन्त, चेतनात्मक मुलायमतावाली आंतरिक और स्वाभाविक प्रक्रिया मात्र बनकर रहती है ।

- **ब्रह्मचर्यपालन करने की आवश्यकता *इस* मार्ग के लिए कितनी अधिक आवश्यक है, उसका महत्त्व और ज्ञान होना चाहिए, इतना ही नहीं, परन्तु साथ ही साधक का प्राण, सूक्ष्मरूप से या सूक्ष्म ढंग से भी जातीय विषयवासना में रुचि जरा भी न रखें, न लें और जो जो कुछ कामवासना के पोषक हों, वैसी भावनाओं और वृत्तिओं को उकसाये ऐसा हो, साधक उन सभी में से अपनेआप को पूर्णरूप से पीछे खींच लेगा और उस विषय में हमेशा विशेष जागृति और चौकसाई रखेगा ।**

- ‘नम्रता’ अर्थात् कायरता नहीं। नम्रता अर्थात् आचारविचार के नियमों का शुष्क पालन नहीं। रूढ़ प्रकार के मानआदर देने की नीतिरीति भी नहीं। यह सब नम्रता का स्वरूप नहीं। नम्रता तो आत्मा का एक गुण है। साधक ज्ञानपूर्वक नम्रता के गुण को जीवन में प्रकट कर सकता है और उसे प्रकट करना भी चाहिए।

  (‘जीवनसंशोधन’, आ. २, पृ. १२६)
- केवल समाज के रूढ़िबंधन तोड़ने के लिए यानी समाजसुधार के हेतु से ही कोई प्रवृत्ति साधक को नहीं करनी है। अपनेआप ऐसा प्रसंग सिर पर आ पड़े तो रूढ़ि के बंधन को तोड़ने से हिचकना भी नहीं है, या घबराना भी नहीं है।

  (‘जीवनसंशोधन’, आ. २, पृ. १६२-१६३)
- साधन तो साधन ही है न कि साध्य। ध्येय की सिद्धि के लिए साधन है। साधन यदि परम्परागत बन गया हो तो वह व्यर्थ है। साधना को भावना द्वारा परिपूर्णरूप से वैसे उचित व्यवहार में लाये बिना ध्येय को प्राप्त नहीं किया जा सकता। (‘जीवनसंशोधन’, आ. २, पृ. १९९)
- **ध्यान में तीन या चार घण्टे बैठे या अमुक साधन ऐसा हुआ या वैसा हुआ अथवा अमुक तरह दृढ़ रहे या दृढ़ता से वर्तन किया, व्यवस्था बनी रही, नियमबद्ध रहा गया–यह सब विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं है। परन्तु इस सभी का परिणाम से दैनिक कर्मव्यवहार में भावना कितनी जीवन्त रहती है, एक में ही तन्मयता कितनी रही है, भावना में उत्कटता की मात्रा कितनी बढ़ रही है, सद्‌गुरु में कितनी प्रीति बढ़ रही है, यह सब सही प्रमाण हैं और इसी का नाम सही ध्यान है।** भले ही हम ध्यान में न बैठ सकते हों, तब भी भाव के लक्ष्यबिंदु के प्रति हमारी वृत्ति अव्यभिचारिणी रह रही हो, तो वह ध्यान करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। परन्तु साथ ही साथ इतना ध्यान रखने की आवश्यकता है कि उपरोक्त स्थिति हमारी हो, इसके लिए एक-सी आंतरिक एवं-बहिर् साधनयुक्त, भावप्रेरक, चेतनात्मक साधना करना हमारे जैसे के लिए अति आवश्यक है। (‘जीवनसंशोधन’, आ. १, पृ. २०९-२१०)

- हमारे स्वभाव के विकृत मोड़ हमें बहुत अधिक डंकने चाहिए । यह हमारी कमजोरी है, दोष है और आध्यात्मिक जीवनविकास की साधना के लिए वे भारी अवरोधरूप हैं । यह सब जहाँ तक डंकेगा नहीं, तब तक उसमें से मुक्ति नहीं मिल पाएगी । **मात्र नामस्मरण किया करेंगे तो अपनेआप सब व्यवस्थित हो जाएगा ऐसी जो मान्यता है, वह ठीक नहीं है ।** यद्यपि नामस्मरण भी पूरीतरह सतत एक-सा हो सके इतना सरल नहीं है और स्वभाव के वे विकृत मोड़ तो वैसे के वैसे हमेशा रहा करते हैं ।

(‘जीवनसंशोधन’, आ. १, पृ. २४८)

- साधक में यदि भावना पैदा न हो रही हो तो सद्‌गुरु के **भाव** का स्वीकार और प्राकट्य साधक में होते देर लगेगी, क्योंकि तो तो सद्‌गुरु के **भाव** को पत्थर के आवरणों को बेधकर, भेदकर गहरे उतरना होगा । कितनी बार यह **भाव** वहाँ का वहाँ स्थिर भी पड़ा रहता है । ऐसा भी हो कि वह **भाव** अपना असर का चाहिए उतना और वैसा उपयोग न होने पर वापिस भी जा सकता है ।

(‘जीवनसंशोधन’, आ. २, पृ. २८१)

- साधक भूलें तो करेगा, परन्तु यदि उसमें भी साधना की भावना सतत वह रखा करेगा तो उसे उसकी भूल समझ में आ जाएगी और उसमें से फिर लौट आएगा । (‘जीवनपाथेय’, आ. ३, पृ. ८४)

- जीवन में सात्त्विक संघर्षण पैदा होता है, तब हृदयमंथन होता है । उस मंथन से नवनीत निकाल लेने की कला जानना अनिवार्य है और यह सही ढंग से मथनेवाले को अपनेआप सूझता है ।

(‘जीवनप्रेरणा’, आ. १, पृ. १६)

- कर्म के संस्कार चित्त में सतत पड़ा करते हैं और पड़े रहा करते हैं । वे कब अंकुरित होंगे यह निश्चितरूप से नहीं कह सकते हैं ।

(‘जीवनप्रेरणा’, आ. १, पृ. १७)

- जीवन के प्रत्येक विद्यमान क्षेत्र के सर्व प्रकार से और सर्व भाव से पूरीतरह आंतरबाह्य शुद्धि हुए बिना सचमुच और पूरी साधना होनी कभी संभव नहीं है । (‘जीवनप्रेरणा’, आ. १, पृ. १९)

- सारा आधार मन को रुचि पैदा कराने विषयक रहा हुआ है। जिसमें मन को रुचि है, जो मन को भाता है, वैसा काम करने के लिए मनुष्य सब कुछ कर डालता है। ('जीवनप्रेरणा', आ. १, पृ. १९)
- अपने से बिलकुल विरुद्ध विचार या आचरणवाले के प्रति भी सहिष्णु रहें या रहने का सतत प्रयत्न किया करते हो तो हमारी तटस्थता बढ़ती है। ('जीवनप्रेरणा', आ. १, पृ. ८)
- जैसे शुद्ध पानी में मैला पानी मिलने होता है, वैसा सद्भावना के साथ जो जो सारा अपने में निम्न मिलता है, इसीसे ऐसा होता है और उस सद्भावना का असर या महत्त्व कम होता जाता है।
('जीवनप्रेरणा', आ. १, पृ. २२)
- साधना के मार्ग में **जीव** का जो भी कुछ दूसरी तरफ (निम्न प्रकार) का खोने पर यदि बेचैनी, भार या ऐसा लगे तो साधना के लिए उस जीव की उचित तैयारी नहीं हुई है ऐसा जानें।
('जीवनप्रेरणा', आ. १, पृ. २४)
- संसार को त्यागने से कोई संसार से अलग नहीं हो सकता है। संसार का हेतु तो जीवन के फलितार्थ है। संसार से अलग होते संसारी मन उसके विषय में विचार करने से रुक सकता नहीं।
संसार तो भगवान का ही व्यक्त भाव है, इससे संसार में मन के दृष्टिकोण को बदलने का हमें संभव करना है।
('जीवनप्रेरणा', आ. १, पृ. ३९)
- संतों को मात्र जानने या उनके साथ मात्र रहने से हमारा कोई उद्धार नहीं हो सकता। जहाँ तक हमारे जीवन और मन के भाव का संपूर्ण 'उन्नयन' होता न अनुभव कर पाये, तब तक जरा भी संतोष न माने।
गुरु या संत की कृपामदद तभी प्राप्त होगी कि जब हम में वैसी दृष्टि, वृत्ति और भाव प्राणवान हुए हों। सचमुच तो हमारे अपने बिना दूसरा कोई **गुरु** नहीं है। **गुरु** तो सर्वत्र और सभी में व्याप्त है।
('जीवनप्रेरणा', आ. १, पृ. ५३)

- कसौटी और मंथन ये जीवनविकास के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण अंग हैं, इनके बिना जीवन का सही तेज जानकर, परख या जाँचा नहीं जा सकता । ('जीवनप्रेरणा', आ. १, पृ. ६०)
- विसंवाद दिखता है सही, परन्तु सुमेल या संवाद यही पूरे संसार और जगत की नींव है । ('जीवनप्रेरणा', आ. १, पृ. ६१)
- हमारा क्षेत्र संसार है, परन्तु संसार में संसार की भावना रखनी नहीं है । ('जीवनप्रेरणा', आ. १, पृ. ६२)
- संसार को छोड़ने पर भी छोड़ नहीं सकते । संसार हमसे लिपटा नहीं है, किन्तु हम संसार से लिपटे हैं और इससे मन की स्थिति को ही मात्र वहाँ पलटना रहता है । मन अपनेआप नहीं पलटता है । इसके लिए ही साधना की आवश्यकता है ।
('जीवनप्रेरणा', आ. १, पृ. ७०)
- जगत में समझदार को ही अधिक सहन करना होता है और अधिक सहन पड़ता है । यही मेरे मन से तो तपश्चर्या है । संसार में जो सहना होता है, वह जीवन की शिक्षा के लिए है, जीवन के विकास के लिए है । ('जीवनप्रेरणा', आ. १, पृ. ७८)
- साधक हमेशा अपना ही देखने और अपने को ही योग्य ढंग से सँवारने का लक्ष्य रखता होता है । उसे दूसरों की कुछ पड़ी नहीं होती है । वह जितना अकेला अपने में केन्द्रितता से, एकाग्रता से आचरण करेगा, उतने प्रमाण में वह समष्टि के मध्यबिन्दु को भी स्पर्श करता है । अपने जीवन की सब प्रकार से जो **जीव** पूरीतरह से शुद्धि ही किया करता है, वह **जीव** जगत की सच्ची सेवा करता है ।
('जीवनप्रेरणा', आ. १, पृ. ९३)
- यह बावलापन और धुन तो है पर उसमें अंधापन कहीं भी नहीं है । झोंकने या होमने के लिए उल्टा यह तो आवश्यक अंग भी है ।
('जीवनप्रेरणा', आ. १, पृ. ९४)
- किसी को भी **जीव** स्वभाव से अन्य परिरूप से मन में लज्जित होते, 'अरेरे ! यह तो हमारे प्यारे भगवान का द्रोह हो रहा है ।' ऐसा होता

है और इससे अत्यधिक पछतावा और दु:ख हो, तो जानना कि हम श्रीभगवान के चरणकमल में शरणभाव बनाये रखने के लिए समर्थ हो पाएँगे । ('जीवनप्रेरणा', आ. १, पृ. १०३)

- गुरु यह कोई स्थूल नहीं है । पर **'गुरुडम्'** यह एक हवा-प्रकाश रहित भंडार है । ('जीवनप्रेरणा', आ. १, पृ. १०५-१०६)
- ज्ञानी और अज्ञानी दोनों भोगते तो हैं ही, (उपभोग भी करते हैं,) ज्ञानी उपयोग की दृष्टि से भोगता है और वैसे ज्ञान, भान के साथ भोगता है और अज्ञानी मात्र भोगने का ही किया करता है । ज्ञानी को भोगना उपाधिरूप नहीं, जबकि अज्ञानी को भोगना उपाधि रूप ही होता है । ('जीवनप्रेरणा', आ. १, पृ. ११७)
- जिस **जीव** का श्रीभगवान के नाम का रटन रूढ़ि की तरह हो और ऐसे रटन की अखंड धारा सतत एक सी गंगधारवत् यदि प्रभुकृपा से हो सके तो ऐसी प्रवृत्ति में भी चेतन प्रगटे बिना नहीं रह सकता । ('जीवनप्रेरणा', आ. १, पृ. १२०)
- जो कोई भी मिले उसमें से यदि **जीव** उसके सद्गुण की भावना देखने का बनाये रखे तो उस **जीव** में सद्भावना जीवंत होने की संभावना पैदा हो सकती है । सभी में **जीव** के सद्गुण देखने और उसे अपने में उतारने का मन बनाये रखना भी साधना का एक अंग ही है । ('जीवनप्रेरणा', आ. १, पृ. १२८)
- बुद्धि में शंका रूपी वृत्ति प्रकृति ने रखी है, वह इसलिए कि सत्य की खोज में प्रवेश कराने के लिए वह हमें सतत प्रयत्न कराती रहे । ('जीवनप्रेरणा', आ. १, पृ. १४५)
- मनुष्य साधारणरूप से प्राप्त या कमाया धन यद्वातद्वारूप से बरबाद नहीं कर डालता, परन्तु जीव को नैसर्गिकरूप से प्राप्त कामवृत्ति आदि की पूँजी या शक्ति वह बेखबर होकर नशे के मदहोश हो स्वच्छंदतापूर्वक जैसे तैसे और जहाँ तहाँ व्यर्थ खर्च कर डालता है और वैसा करने से उस वृत्ति आदि का स्वरूप विकृत होता जाएगा, ऐसा भान उसे नहीं रहता । ('जीवनप्रेरणा', आ. १, पृ. १५५)

✤ ज्ञानपूर्वक की जागृत हुई महत्ता का स्थान चिरंजीवी है, जब महत्ता से चकाचौंध हो जाना वह तो जड़ दशा भी हो वैसी दशा में विकास की गति होना संभव नहीं है ।

('जीवनप्रेरणा', आ. ४, पृ. १४८)

✤ प्रत्येक मनुष्य में प्रभु के पास जाने की शक्ति है । इतना ही नहीं, पर श्रीभगवान तो ढिंढोरा पीटते ही रहते हैं । हम मनुष्य ही उनके पास नहीं जाते । ('जीवनपगरण', आ. ३, पृ. १५)

✤ साधनापथ पर सभी तरह से और सभी भावों से भिखारी बनना होगा । वहाँ कोरा सुख नहीं है । रातदिन परिश्रम करना पड़ता है ।

('जीवनपगरण', आ. ३, पृ. २९)

✤ मन से जितना अन्यथा हमने भटकना रखा, उतना पारावार नुकसान होगा । ('जीवनपगरण', आ. ३, पृ. २९)

✤ मितव्ययता भी अच्छी बात है, परन्तु पाँच, पचास, पाँच सौ या पाँच हजार खर्च कर देना पड़े तो मन में खटक या तनाव नहीं होना चाहिए । ('जीवनपगरण', आ. ३, पृ. ९६)

✤ व्यवस्था इच्छनीय है, परन्तु अव्यवस्था हो जाय तो भी हमारी वृत्ति असंतुलित नहीं होनी चाहिए । ('जीवनपगरण', आ. ३, पृ. ७७)

✤ स्वच्छता स्वीकारलायक है, परन्तु साथ ही इतनी गंदगीवाली जगह में रहना पड़े तो भी चित्त स्थिर रह सके ऐसी तैयारी होनी चाहिए ।

('जीवनपगरण', आ. २, पृ. ७७)

✤ हमारे द्वारा मान लिए रीतिरिवाज-परम्परा, आदत आदि छोड़ देने के लिए हमें मन, प्राण, शरीर को आघात देने पड़ेंगे और आदत आदि द्वारा कितनी ही बार उल्टा भी चलना पड़ेगा । इन सभी का अर्थ फिर ऐसा नहीं कि हमें सत्य के मार्ग पर नहीं चलना है ।

('जीवनपगरण', आ. ३, पृ. १०३)

✤ बुद्धि से प्रेरित सत्य की श्रद्धा ने जब तक अनुभव से ठोस हकीकत का स्वरूप नहीं लिया, तब तक यह सत्य पचा है ऐसा नहीं माना जाएगा । अंततः तो श्रद्धा जब वास्तविक रूप धारण करेगी, तब काम होने लगेगा । ('जीवनपगरण', आ. ३, पृ. ११४-११५)

✣ संतों और भक्तों ने श्रीभगवान के आगे अपने आपको अत्यन्त पापी, नीच, पामर आदि अनेक विशेषणों से अभिवादन किया हो । उस समय उनका माप दुनियादारी के लोगों के जीवन के साथ की तुलना से नहीं होता । उनका वह माप तो उनके और प्रभु के बीच का जो अंतर हुआ है, उसका है । और जो दर्द आर्द्र हृदय से पुकारा करता है वह उन्हें ऐसा बुलवाता है ।

('जीवनपगरण', आ. ३, पृ. १२९)

✣ **प्रत्येक पल के कार्य की गति हमारे अंदर की आध्यात्मिक या दैवी चेतना को हमारे द्वारा मदद होती रहती है या नहीं, इस विषय में सावधानी रख सके इसका नाम जागृति ।**

('जीवनपगरण', आ. ३, पृ. २०९)

✣ **अपरिग्रह का एक उत्तम अर्थ मन में किसी भी बात को, जकड़कर संग्रह करके न रखना यह भी है ।**

('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. ४)

✣ मितव्ययता यह अच्छी चीज है, परन्तु उसे करने की वृत्ति किसमें से उद्भवित होती है, यह देखना चाहिए । वैसी वृत्ति कितनी ही बार धनसंपत्ति पर स्वामित्व और संग्रह करने की वृत्ति से भी जन्म लेती है । लाखों रुपयों का धर्मादा ट्रस्ट किया हो ऐसे मनुष्य भी पैसों को जकड़कर पकड़ते हुए देखा गया है । फिर, मितव्ययता की हमारी कक्षा मिलावटवाली होती है । इससे, पहले तो उससे पर हो जाना एक बार करना है । ('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. ५)

✣ **हमारी मुक्ति मात्र जन्म-मरण के फेरों को टालने के लिए नहीं है । यह मुक्ति अर्थात् पुरुष की अपनी सहज, स्वतंत्र, चेतनात्मक शक्ति, अपनी प्रकृति में सिद्ध करना वह ।**

('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. १०)

✣ समय आने पर ही साधना करते होंगे, उसे भी छोड़ देना होगा । इससे साधना इतनी प्यारी नहीं, जितना ध्येय, साध्य ।

('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. १४)

- जन्मसिद्ध भी पुरुषार्थ करते हैं । मुक्तावस्था प्राप्त करने से पहले या अवतार के स्वरूप में प्रकट होने से पहले उन्हें भी प्रबल वेग करना पड़ा होता है । ('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. २२-२३)
- हम अपने आपको ही पूरी तरह अपना नहीं मना सकते हैं, तो दूसरा कोई हमारा माने ऐसा भ्रम रखना यह बेहूदा है ! ('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. २९)
- यदि हम वर्षाऋतु आने से पहले साफसूफ कर, जोतकर, जमीन नर्म करके, खाद आदि डालकर तैयार रखेंगे तो ईश्वरकृपा से वर्षा होते ही उसमें से बीज (हम में बीज तो पड़ा हुआ है ही) अंकुरित हो निकलेगा । इसलिए हमारा काम तो खेत को जोतकर, मेंड आदि मजबूत करके, खाद डालकर तैयार करना है और फिर वर्षा की राह देखा करनी है । ('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. ३१)
- संकल्पशुद्धि यह भी साधना का एक महत्त्वपूर्ण अंग है । वह मात्र विचार रोकने से संभव नहीं है । जहाँ तक हम में संस्कार पड़े हैं, वहाँ तक संकल्पशुद्धि होनी संभव नहीं है । ('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. ३५)
- संस्कार का भी तभी लय होगा जबकि हम प्रभु में एकराग-तल्लीन हो गए होंगे । ('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. ३५)
- सूर्य करोड़ों मील दूर है, तब भी उसकी ऊष्मा हमें लगती ही है, तो जो तत्त्व इससे तो कहीं शक्तिशाली है, वह इससे समीप भी है । इसकी ऊष्मा हमें क्यों न लगे ? ('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. ३८)
- जैसे लोहचुंबक तो उसकी सीमा में आ जानेवाले सभी लोहे को अपने स्वभाव से खींचता ही रहता होता है, वैसे श्रीभगवान हमें खींचने को तैयार हैं, परन्तु वह हमें खींचे उस सीमा में आ जाँय हम पर निर्भर है । ('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. ४५)
- अंतर में बीज को अंकुरित करने के लिए हृदय में सतत प्रेमरूपी पानी का सिंचन करते ही रहना होगा । ('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. ४७)

✣ किसी के भी काम में मदद करना इसमें कोई गलत नहीं है, पर हमें किसी का भी मूढ हथियार बनकर ऐसा नहीं करना है ।

('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. ५९)

✣ अपने आपको हम सतत टोका करेंगे तो हम दीपक की बाती की तरह जला करेंगे और हम पर कालिख इकट्ठी नहीं होगी । कालिख इकट्ठी होगी तो हमारा तेज घटेगा और एक समय ऐसा आएगा कि जब हम पूरे बुझ भी जाँय । ('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. ६४)

✣ **निःसंग अर्थात् मनुष्य से अलग ऐसा नहीं, पर वृत्ति, विचार, भाव, सुख, दुःख आदि किसी भी प्रकार की भावना और आंतरिक मनादिकरणों की प्रवृत्ति से अलिप्त ।**

('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. ६७)

✣ हम जिस तरह विचार करते हैं, उसी तरह वे फिरकर दुबारा हमारे में घुस जाते हैं, इससे नकारात्मक विचार जितने कम हों, उतना अधिक अच्छा और अंत में तो वे संपूर्ण बंद होने चाहिए, नहीं तो वापिस वे विचार दुगुने वेग से हम में पैठ जाएँगे और जीवन को नुकसान करेंगे । विचारमात्र अटक जाय तो वह सर्वोत्तम ।

('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. ८३)

✣ **बहिर् में एक दृष्टि रह सके इसके लिए भक्ति की आवश्यकता है और अंतर में एक होने के लिए ध्यान की आवश्यकता है ।**

('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. ८४)

✣ वटवृक्ष बड़ा होने पर उसमें से शाखाएँ फूटकर दुबारा जमीन में मूल रूप से चिपक जाती है, पक्की जड़ बनाती हैं और उसमें से दूसरा वटवृक्ष फिर उत्पन्न होता है । ऐसे एक वटवृक्ष में से अनेक वटवृक्ष हो जाते हैं । उस तरह हमारी आंतरिक भावना खिलकर यथार्थ रूप में खूब सघन बन जाती है । तब सभी दिशाओं में उसके अंकुर फैलकर काम करने लग जाते हैं, उस तरह वह भी महान कबीरवट जैसी फलती-फूलती है । उसके बाद वह कैसी शीतल छाया देती है ! ('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. १०७-१०८)

✤ कर्म के संस्कारों के कारण जो भी विचार उठें, उन विचारों के अंकुड़े हमें जोड़ने नहीं हैं। योग की यह एक बड़ी क्रिया है। जितने अंश में हम जागृत रहकर इस विचार परम्परा को लयात्मक करने की क्रिया करते रहेंगे, उतने अंश में चित्त के द्वन्द्व और गुण के संस्कारों का असर अपनेआप विलय होगा ही।

('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. १११)

✤ हमारी दृष्टि आत्मलक्षी होने के साथ साथ सर्वलक्षी भी होनी चाहिए। कट्टर में कट्टर विरोधी के प्रति भी प्रेम, सहानुभूति और कदर की भावना होनी चाहिए। उसका दृष्टिबिन्दु समझने के लिए भी प्रयत्न करना चाहिए। ('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. ११८)

✤ हमें यदि श्रीभगवान का होना होगा, तो उसके पास जाना होगा तो उसकी शरतों से ही ऐसा हो सकेगा।

('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. १२३)

✤ 'बाड़ के बिना बेल नहीं चढ़ती' ऐसी कहावत है, परन्तु बेल को यदि चढ़ना हो तो उसे अंकुरित होना होगा। उसे चढ़ने का आधार बाड़ के रूप में निर्माण हो चुका है ही।

('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. १५५-१५६)

✤ स्वप्न में वासना का कोई एक प्रकार नहीं है। उसका जोर जब प्रबल होता है और बाह्यरूप से सभी इन्द्रियाँ जब निश्चेष्ट और निष्क्रिय बन गयी होती हैं, तब इन्द्रियों के मूल में वासना गहरी उतरती है और बाह्य इन्द्रियाँ निश्चेष्ट और निष्क्रिय होने पर उनकी प्रकृति के स्वभाव अनुसार उनका अनुभव वहाँ वहाँ वे लेती हैं।

('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. ११७)

✤ **पति-पत्नी का संबंध वासनाओं का ऊर्ध्वीकरण करने के लिए है यानी कि उसे शुद्ध और उत्कृष्ट बनाने के लिए है।**

('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. १८०)

✤ प्रत्येक संबंध हमारी आंतरिक चेतना को जीती-जागती रखने के लिए है, फिर वह व्यावहारिक, सात्त्विक या आध्यात्मिक हो, ऐसा ज्ञानपूर्वक का संपूर्ण ख्याल प्रत्येक साधक को अंतर में रखना चाहिए। संबंध

और संपर्क **जीव** को **जीव**दशा में प्रेरित करता है या आत्मदशा में प्रेरित करता है, यह उसे प्रत्येक प्रसंग में सोचना चाहिए। जहाँ तक संसार के व्यवहार में हैं, वहाँ तक संबंध रहेंगे और होंगे।

('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. ...)

- हमारे विचार हमारा निर्माण करते हैं अर्थात् अंतर्मुखी और एक ही भावना के एकलीनतायुक्त विचार रहें यह आवश्यक है। विचारों की श्रृंखला कभी नहीं जोड़नी है। ('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. १८७)
- **जैसे शब्द की, आवाज की लहरें वातावरण में फैल जाती हैं, यह सिद्ध वास्तविकता है, वैसे ही विचारों की भी लहरें हुआ करती हैं और वे वातावरण में फैलती हैं।**

  ('जीवनपगथी', आ. ३, पृ. १८८)
- श्रीभगवान के चरणकमल में ज्ञानभक्तिपूर्वक की संपूर्ण शरणागति हमारे एक एक करण की हो जाने के बाद प्रकृति का दिव्य रूपान्तर हुआ करता है, उसके बिना नहीं।

  ('जीवनमंडाण', आ. ५, पृ. १९)
- जीवन का रस संसार में नहीं, पर अंतर में है। व्यक्ति का ही विस्तार स्वरूप संसार है। ('जीवनमंडाण', आ. ५, पृ. २५)
- अज्ञानमूलक दशा में होता त्याग, वह त्याग नहीं है। वह तो खाली घिसटने जैसा है। खिंचने जैसा है। उसमें विवशता का भाव होता है और लाचारी की स्थिति होती है। उसमें से क्लेश, संताप, उद्वेग आदि बढ़ते हैं और जीवन तबाह अधिक होता है।

  ('जीवनमंडाण', आ. ५, पृ. ३६)
- हमें अपने से दूसरों को अधिक महत्त्व समझपूर्वक देना है। हमें कोई सही रूप में समझे या नहीं इसकी लेश मात्र भी चिंता किये बिना दूसरों को हमें सही रूप में समझने का सजग प्रयत्न करना है।

  ('जीवनमंडाण', आ. ५, पृ. ४२)
- जो **जीव** जीवनविकास की भावना को दृढ़ करके, मन के सभी भावों को समझकर भावना का विकास करता जाता है और जहाँ नकारात्मक भाव पैदा हो, वहाँ रुककर उसके बहाव में न बहकर तटस्थता से

ऐसे भाव को प्रभुकृपा से नकारता है, इनकार करता है, वैसा **जीव** आज नहीं तो कल जागनेवाला ही है ।

('जीवनमंडाण', आ. ५, पृ. ५३)

- तपश्चर्या में कोरी शुष्कता है या मात्र कठोरता है, यह ख्याल गलत है । आनंदपूर्वक और ज्ञान के हेतु से, हृदय के उत्साह से जो तप होता है, उससे तो फूल की तरह जीवन में महक पैदा होती है और जीवन भरा भरा लगता है । तप से तो गुण, शक्ति और ज्ञान पैदा होते हैं । ('जीवनमंडाण', आ. ५, पृ. ६८)
- सब कुछ निश्चित लक्षणों से मापें । लक्षणों द्वारा समझने की आदत डालने से कभी भी भ्रम में पड़ने जैसा नहीं है ।
- जीवन में जब जब किसी की ओर से कोई सूचन मिले, तब उसके दो हिस्से कर देना, उपयोगी और अनुपयोगी । जो कुछ कहने सुनने में आये या सूचित करने में आये और जिसे करने में कोई कहीं हानि न हो, यानी भावना में क्षति न पैदा हो, जिसे करने में कोई विरोध न हो, वैसा तो एकदम स्वीकार करके तुरन्त कर ही देना चाहिए ।

  ('जीवनमंडाण', आ. ५, पृ. ८८)
- साधारण रूप से छोटी-छोटी बातों में या न करनेपन में मन के आग्रह, ममता, आसक्ति आदि के दर्शन या व्यक्तपन हुआ करता है ।

  ('जीवनमंडाण', आ. ५, पृ. ८८)
- वृत्ति यह शक्तिस्वरूप है, यदि ज्ञानभक्तिपूर्वक उसका उपयोग होता हो तो । ('जीवनमंडाण', आ. ५, पृ. १५६)
- वृत्ति से ही वृत्ति का निर्माण होता है । वृत्ति के पैदा हुए बिना कुछ नहीं बनता या नहीं होता । ('जीवनमंडाण', आ. ५, पृ. १५६)
- दूसरे का दोष हृदय में बसे तो वहाँ हमें सावधान रहना चाहिए । मन यदि प्रेमभक्ति, भावना के वेग से प्रभुस्मरण में मस्ती के साथ रमा करे तो दूसरे **जीवों** का कुछ अन्यथा रूप से टोका हुआ या दुःखदायक कहना-बोलना हमें उस रूप से नहीं लगेगा ।

  ('जीवनमंडाण', आ. ५, पृ. ९९)

- भावना यदि जीवन-निर्माण में योग्य आकार न दे सके तो ऐसी भावना की ऊर्मि वह तो बिन मौसम की बारिश जैसा समझें ।
- एक की एक बात में जिस-जिस के विचार बार-बार आया करें तो उसमें जीव लिपटा हुआ है ऐसा मानें । ('जीवनमंडाण', आ. ५, पृ. १४१)
- जीवनविकास के लिए किसी संतात्मा में ज्ञानभाव के साथ खूब मनोभावना जन्म ले रही हो तो उसे आसक्ति न मानें ।

('जीवनमंडाण', आ. ५, पृ. १४२)

- जिस प्रकार के विषय में मन लगता है, उस प्रकार का मन है ।

('जीवनमंडाण', आ. ५, पृ. १४२)

- किसी के भी साथ टक्कर हो इसका अर्थ यह हुआ कि हमारा मन अभी टक्कर का स्पर्श कर सकता है ।

('जीवनमंडाण', आ. ५, पृ. १५५)

- **साधना का परिणाम प्रकृति और स्वभाव का रूपान्तर ।**
- जिसे सर्व में से, तिरछे खड़े सर्व प्रसंगों में से सुंदर ही देख अनुभव करने की कला जीवन में प्राप्त होती है ऐसे **जीव** धन्य हैं ।
- **समर्पण किया हो उसके विषय में कुछ भी आगेपीछे के विचार समर्पण करने के पश्चात् हमें नहीं आने चाहिए, तो वह योग्य प्रकार का उत्तम समर्पण गिना जाएगा ।**
- सर्व का मूल बीज अपनी प्रकृति है । दूसरे किसी को दोष देना या देखना वह हमारी पामरता और निर्बलता है । हम स्वयं ही विशेष जागृत रहने का प्रयत्न करें और हमें अपने को ही दोष देना है ।
- हमारी ही धारणा के अनुसार और हमारी समझ के अनुसार सब होना चाहिए और वही सब अच्छा है, इसप्रकार का मानस हो तो वह एक प्रकार की स्वच्छंदता और संकुचितता भी है ।
- जो राग हमें स्थूल में चिपकाये न रखे, परन्तु उस राग में से विवेकयुक्त समझ पैदा कराकर ताटस्थ्य और समता लाकर ऊर्ध्व में ले जाय, वह राग उत्तम है ।

- **संतपुरुष में राग होना यानी हमारे निम्न प्रकृति के मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहंकार को उसकी चेतना के हृदयभाव के साथ मेल बनाये रखना चाहिए ।**
- सच्ची श्रद्धा सामान्यतः एकदम पैदा नहीं होती । श्रद्धा भी आते आते आती है, तब भी श्रद्धा का मूल गुणधर्म तो सहज है ।
- श्रीभगवान पर श्रद्धा यह तो नगद धन है । जैसे नगद धन द्वारा आवश्यक चीज क्रय कर सकते हैं, वैसे श्रीभगवान पर की श्रद्धा प्रसंग आते हम यदि दृढ़ न बन पाए तो यह श्रद्धा नहीं, पर एक प्रकार का खाली आश्वासन है । ('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. २)
- प्राप्त जीवन की परिस्थिति में से नवचेतन और नवजीवन की आशा अंकुर उगाने और उस प्रकार का पुरुषार्थ जगाना उसमें सच्ची मनुष्यता निहित है । ('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. ३)
- भागना तो सभी को आता है, परन्तु परिस्थिति के सामने खड़े रहकर, परिस्थिति में मिल-जुलकर, उसमें से ऊपर आना, यह विरल वीर आत्मा का काम है । ('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. ३)
- किसी की भावना को सहलाना, इससे तो उसके जीवन को अधिक दुःखी करने जैसा है । ('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. ३)
- किसी के मन को अधिक गुदगुदा बनाने में कदापि मददगार न होवें । परिस्थिति आ पड़ने पर उसमें से जीवन में मर्दानगी आये, ऐसा कुछ हो सके तो वह उत्तम सेवा है । ('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. ४)
- बेकार की पंगु भावनाएँ प्रकट करने में जीवन को नष्ट नहीं करना चाहिए । जीवननिर्माण तो ठोस नींव पर तैयार करना है । किसी को भी इसतरह आश्वासन देने का कोई अर्थ नहीं है । ('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. ५)
- हमारी इस जन्म की प्रकृति, गति और दिशा जिस प्रकार की हो, उस प्रकार का हमारा पुनर्जन्म है । ('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. ६)
- जितने प्रमाण में उत्कट प्रकार की भावना अधिक सात्त्विक, उतने प्रमाण में उसका जन्म शीघ्र होगा ऐसा कुछ अंश में सही है और

आध्यात्मिक मार्ग की जिसे लगनी लगी है, ऐसे **जीव** का जन्म दूसरे प्रकार के जीवों से अधिक जल्दी होता है, ऐसा अनुभव है ।
('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. ७)

- हम दूसरी कोई भी प्रवृत्ति कर रहे हों, तब भी हमारा मन तो हमारे असली काम में ही लगा रहता हो, उस तरह जीने की कला साधक को सीखनी पड़ती है । ('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. ७)
- जहाँ तक हमारे होते जाते पुरुषार्थ में हमारा हृदय लगा नहीं है, वहाँ तक हमारा वैसा पुरुषार्थ पूरीतरह फलित नहीं हो सकता है ।
('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. ९)
- **जितना समय उत्तम प्रकार की भावना के आचरण में बीत गया उतना समय हम सही रूप में जीये कहलाएगा ।**
('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. १०)
- यों भी दुःख सहन करना ही पड़ता है । उसके बदले यदि ज्ञानपूर्वक दुःख को स्वीकार करते हुए, दुःख सचमुच जीवन के निर्माण के लिए स्वर्णिम अवसर है, ऐसा समझकर, जो कोई **जीव** उसे अपनाये तो – उसके लिए दुःख तपस्या है और जिस तपस्या में हृदय है, उस प्रकार की तपस्या में तो आनंद, उत्सव निहित है ।
('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. १२)
- दोष का मनन–चिन्तन दोष का बल बढ़ाता है ।
('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. १५)
- 'अच्छे' के प्रति सद्‌भाव जागे इसमें उसकी कोई कीमत नहीं । पर 'बुरे' के प्रति भी सद्‌भाव जगाकर जीवंत करना है । जितनी 'अच्छाई' प्रेरणा दे सकती है, उतनी 'बुराई' भी अवश्य प्रेरणा दे सकती है । ('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. २३)
- प्रयत्न के साथ–साथ हमें भगवान की कृपामदद जब और तब याचना करते रहना है । ('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. २१)
- बुद्धि यह ज्ञान का करण है और भावना सहानुभूति आदि भाव के करण हैं । जीवनविकास के मार्ग में बुद्धि और भाव दोनों की आवश्यकता है । ('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. २२)

✤ यदि हमारी बुद्धि सतेज और सूक्ष्म न होती जा रही हो तो उसमें हमारा हृदय नहीं है ऐसा निश्चित मानें । ('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. २२)

✤ जीवन में संस्कार से विशेष महत्त्व प्रेम का है । प्रेम से भाव का मूल्यांकन जीवन में श्रेष्ठ है । प्रेम के जागे बिना भाव नहीं जाग सकता । ऐसे भाव के जागने पर हमारे करण उसके राग में रहते हैं, परन्तु ऐसा भाव सहजरूप से जाग जाता नहीं है ।
('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. २३)

✤ सब कुछ अभ्यास से आता है । अभ्यास बिना साधना में प्राण नहीं प्रकट होता । अभ्यास दृढ़ होते उसमें हृदय भी लगता है और सम्मिलित होता है । अभ्यास से एक प्रकार की पद्धति बनती है । इस पद्धति में एक प्रकार की रूढि हो जाना भी संभव है, इससे अभ्यास में बारम्बार बुद्धि द्वारा, हृदय की मनोभावनाओं के द्वारा भावनाओं का उद्दीपन बारबार करते रहें ।
('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. २६)

✤ हमारा विचारबल एक ही प्रकार की दिशा और गति में सतत मनन चिंतनमय रहा करे और उस भाव का उद्दीपन रहा करे तथा उसके जैसे ही आचरण हुआ करे तो निम्नप्रकार की बुद्धि अवश्य हटने लगेगी और हमारे पुरुषार्थ में हमें आनंद आने लगेगा ।
('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. ३०)

✤ प्रकृति में रहा हुआ चेतन अनेक प्रकार के रूप — नये नये रूपों को भी धारण करता है । एक होते हुए भी अनेकरूप होता है । हम भी एक होने पर भी अनेक प्रकार के बारम्बार हुआ करते हैं और बदला करते हैं । आकार एक भले दिखे पर आकार में प्रकार अलग अलग हुआ करते हैं । ('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. ३०)

✤ हमारी प्रार्थना का स्वर दिल में मधुर लगे, तब भाव सविशेषरूप से है ऐसा समझें । अत्यन्त कठोर लगे तब मन का ठिकाना नहीं अथवा तो कुछ घुटन है ऐसा जानें । ('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. ३१)

- **उच्चात्मा का – गुरु का आश्रय जीवन के ऊर्ध्वीकरण के लिए अच्छा है और वह भी साधनरूप है । सर्वश्रेष्ठ और सर्वोत्तम तो केवल भगवान ही हैं ।** ('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. ५३)
- हम जहाँ तक **जीव**दशा में हैं, वहाँ एक हमारे में जो कुछ उत्तमोत्तम है, वह भी चेतन की अपेक्षा से पर्याप्त नहीं है ।
('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. ५४)
- **जीव**दशा में जो भी वृत्ति, मनोभाव हो और वह उत्तम प्रकार के होने पर भी वह बंधनकर्ता है । उदा० पुण्य हो तो भी वह बंधनकर्ता है ।
('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. ५४-५५)
- प्राप्त अनुभव में से समझकर, उसका निरीक्षण करके उससे आगे भी बुद्धि जा सकती है, परन्तु बुद्धि को भी अनुभव के आधार की आवश्यकता रहती है । ('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. ५७)
- मनन-चिंतन यदि हुआ करे तो बुद्धि, अनुभव की ठोस भूमिका को ठोकर मारकर आगे जाने को हमें प्रेरित करती है ।
('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. ५७)
- समझ समझ के भी प्रकार होते हैं । जो समझ हमें ऊँची दिशा की ओर ले जाती है, वह समझ मात्र केवल बुद्धि की नहीं होती ।
('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. ५७-५८)
- बुद्धि ऊँची दिशा का सोच सकती है, पर वहाँ ठहर नहीं सकती । उसकी उड़ान खाली खाली होती है । बुद्धि मदद करती है सही, पर वह अनुभव के बल पर । ('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. ५८)
- **साधना का अर्थ गले में फाँसा देकर जीवन को घोटना नहीं है, परन्तु सहज स्वाभाविक रूप से उसका विकास हो और उसी तरह वृत्तिओं का सुमेल हो और उसमें शांति, समता, तटस्थता, धीरज, सहिष्णुता, प्रसन्नचित्तता आदि गुणों का विकास होता अनुभव होने लगे, उन गुणों की शक्ति का जीवन में प्राप्त होते प्रसंगों में ज्ञानपूर्वक उपयोग होने लगे और उसके द्वारा जीवन भरा भरा लगने लगे और धन्यता का अनुभव हो, उसका नाम है साधना ।** ('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. ६६)

- **मौनएकांत लेने का उद्देश्य लगनी लगाने का है और साधना में विशेष एकाग्रता, केन्द्रितता प्राप्त हो उसके लिए है ।**
('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. ७१)
- हमारे अहम् को हो सके उतना समझ समझकर ज्ञानपूर्वक आघात दिया करना है । हमारा माना या कहा न हो, तब मन में विशेष खुश होना है, क्योंकि इस तरह अहम् को धक्का लगता है ।
('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. ७१-७२)
- बिना काम के किसी को कोई सूचन न करें । सूचन यह अहम् की उपज है । ('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. ७२)
- **शरीर की देखरेख रखना आवश्यक है । उसकी चिंता करनी पागलपन है, सहलाना बावलापन है, पर उसकी योग्य देखभाल करना यह हमारा धर्म है ।** ('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. ८५)
- ऊर्मि की गति से कर्म में चेतना आये तो वह ऊर्मि उपयोगी है ।
('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. ९१)
- चेतन का अनुभव करने के लिए विसंवाद में संवाद की दृष्टि को हृदय में जागृत रखकर हमें आचरण करना है ।
('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. ९६)
- हमें जो भी विचार, वृत्तियाँ, मनोभाव आदि उठा करें, उस पर से हमें अपनी कक्षा की समझ आ जानी चाहिए ।
('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. १२१)
- मनुष्य के हृदय में एकदूसरे के प्रति अविश्वास लगे, तब भी मूल में तो, अंतर्गतरूप से विश्वास-श्रद्धा रहते हैं, जैसे नदी के पाट में भले ही पानी सूखा हुआ लगे, परन्तु अंदर, अंतर्गतरूप से तो पानी होता ही है वैसे । ('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. १२७)
- घृणा, दया, लज्जा, भय, शोक, निंदा, कुल–अभिमान तथा शील, स्वभाव और जाति का अभिमान ये सब भी एक प्रकार के संकोच हैं । इनमें से मुक्त होना ही चाहिए ।
('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. १२९)

- **जीव** से हो उतना सकल पुरुषार्थ कर करके अंतिम दौर तक उसमें संधर्षशील रहे और वैसे सकल उपाय किये होने पर भी कुछ न कर पाये, तब वह प्रभु को मदद के लिए पुकारे । अंत में तो पुरुषार्थ करके उसमें ही गल और मिल जाना है । ऐसा होकर उसके सही अर्थ में **'निर्बल'** होना है । उसके बाद प्रार्थना करने की कला **'निर्बल के बल राम'** इसमें से प्राप्त होती है ।

('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. १८२)

- प्रारंभ में और ठीक लंबे काल तक भी साधक का स्वप्रयत्न अनिवार्य है । मूर्ख और अज्ञानी लोग 'सब गुरु ही कर देंगे' ऐसा मानकर कुछ भी करे बिना तमस से प्रेरित हो ऐसे ही पड़े रहते हैं । स्वप्रयत्न में अहंकार न रहे, उसका पूरा ध्यान रखें ।

('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. १९१)

- जिस-तिस में सिर खपाने की इच्छा हो तो जानना कि वह अहंता है । ('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. २०१)

- (शरीर की आरोग्यता और सुख पूरी तरह बने रहे उतने प्रमाण में) अल्प आहार, अल्प विहार, अल्प निद्रा, अल्प बोलना, अल्प संबंध, अल्प संपर्क, अल्प व्यवहार, अल्प आना-जाना और मिलना, यह सारे मन को संयमित बनाने के लिए बहुत ही सहायक होते हैं । ये सारे 'अल्पता' के प्रकार के पीछे का उद्देश्य तो यह है कि जीव को अधिक से अधिक अंतर्मुखता बनाये रखनी है ।

('जीवनसोपान', आ. ३, पृ. १९९-२००)

- **अहंता से मुक्त मनुष्य कैसा होता है, वह आँखों के सामने आये उसका व्यक्त लक्षण एक तो यह है कि वह साधारणतः निपट पूरीतरह अज्ञान, निराग्रही रहा करता होता है ।**
- **नम्रता अर्थात् स्वयं कुछ भी नहीं, एकमात्र श्रीभगवान ही सब कुछ हैं, ऐसी निष्ठापूर्वक की ज्ञानयुक्त भावना ।**

('जीवनसोपान', आ. ३, पृ. २००)

- **जीव** उलझ जाय, सूझता न हो, शरीर से निर्बल पड़ जाय, व्याकुल हो जाय, अशांत हो जाय, दुःखी दुःखी हो जाय, तो अभी उसमें

अहंता भरी हुई है ऐसा जानें, क्योंकि उसकी अहंता को उसप्रकार के आघात लगते हैं, उसी कारण उसे वैसी भावनाएँ होती हैं ।

('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. २०१)

- मैले कपड़ो पर रंग ठीक से नहीं चढ़ पाता है । कपड़े को ठीक रंगने के लिए पहले तो उसमें से मैल निकालना होगा । इसीतरह अंत:करण को, आधार में सभी करणों को और शुद्धि के विषय में है ।

('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. २०३)

- जीवन की समस्याओं का हल बुद्धि के निर्णय के बदले हृदय से मिला करे, इसके लिए साधक को अंतर्मुखता अधिक से अधिक बनाये रखनी है । ('जीवनसोपान', आ. ३, पृ. २०९)
- अंतर्मुखता पूरीतरह आये बिना बुद्धि में समता नहीं आ सकती ।

('जीवनसोपान', आ. ३, पृ. २१०)

- श्रीसद्गुरु की भावना के लायक होना और उनकी पसंदगी में आना अर्थात् जीवनविकास की समग्रता में भी पात्रता बनाते रहें ।

('जीवनसोपान', आ. ३, पृ. २२३)

- जीवन यदि जीना ही हो तो जीवनविकास के यज्ञ के लिए, जी तोड़ कोशिश से पूरी तरह फना हो जाये । जीवन यह तो हमारा सद्भाग्य है । ऐसी जीवन की फनागीरी से ही जीवन में सुगंध पैदा होती है । ('जीवनसोपान', आ. ३, पृ. २३१)
- जो कुछ **जीव**दशा के भाव पैदा हो और वह सब हमारे असली स्वरूप का नहीं है, ऐसा प्राणवान प्रत्यक्ष ज्ञानभान रचनात्मकरूप से उस बेला में हम में जग जाय तो समझें कि समता की प्राप्ति होने लगी है । ('जीवनसोपान', आ. ३, पृ. २३५)
- **जीव**स्वभाव का कोई भी प्रकार का नकारात्मक भाव यह भी अशुद्धि कह सकते हैं । शुद्धि यानी मात्र नीतिनियम अनुसार हो इतना ही नहीं ।

  नीतिनियम की पद्धति एकमात्र ऐसे विचार से और आचरण से करणों की शुद्धि होती है, ऐसा मानने में कहीं अतिशयोक्ति या तर्कदोष लगता है । ('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. २३६)

- पुरुषार्थ भी अकेला नहीं और न कृपा ही अकेली ।
(‘जीवनसोपान’, आ. ५, पृ. २३९)

- श्रीसद्‌गुरु तो जो **जीव** स्वयं मर मरकर फिर पुनर्जीवन प्राप्त करते रहते हैं, ऐसे जीवों पर न्योछावर हो जाता है ।
जो **जीव** शहादतभरी जीवन की कुरबानी से अपने श्रीसद्‌गुरु की भक्ति करता है, जीवन को न्योछावर करके श्रीगुरु के चरणकमल में आहुतियाँ प्रेम से दिया करता है । ऐसा जीव श्रीसद्‌गुरु की कृपा प्राप्त करने के योग्य होता है । (‘जीवनसोपान’, आ. ३, पृ. २७८)

- श्रीसद्‌गुरु को हमें हृदय में जागृत करना है । **श्रीसद्‌गुरु अर्थात् उसकी प्रत्यक्ष शरीर की आकृति नहीं, परन्तु उसके हृदय में प्रकट हुई चेतन भावना कि जिसकी मदद लेकर ऊपर आ सकते हैं ।**
(‘जीवनसोपान’, आ. ५, पृ. ३०६)

- साधक को हो सके उतनी शांति, समता, तटस्थता, प्रसन्नता आदि गुणों को, इन सभी गुणों को बहुत ही सँभालना है । जीवनविकास की भूमिका बनाने के लिए वे बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं, परन्तु यदि उसे ही महत्त्व देकर मात्र गुणों को प्राप्त करने संघर्षरत रहें तो उसका अन्त नहीं आएगा । इससे अच्छा तो हृदय में एकनिष्ठा से चेतनस्मरण की भावना यदि हम विकसित कर सकें तो वैसे गुण हमारे अंदर आते जा रहे हम अनुभव कर सकेंगे । (‘जीवनसोपान’, आ. ५, पृ. ३१२-३१३)

- सच्ची हृदय की नम्रता भेड़ के जैसी नहीं होती, उसमें तो अग्नि का प्रचंड तेज और शक्ति भी होती है । (‘जीवनसोपान’, आ. ५, पृ. ३३४)

- आदर्श के परछाई के अनुभव में कितने ही जीव अपने मूल आदर्श का ही वह अनुभव है, ऐसा मानकर उसमें संतोष प्राप्त कर लेते हैं । (‘जीवनसोपान’, आ. ५, पृ. ३४१)

- आदर्श की संपूर्णता की चोटी पर पहुँचते पहुँचते तो आदर्श का स्वरूप भी विस्तार और विशालता प्राप्त करता जाता है और आदर्श की रूपरेखा भी बदलती जाती है ।
(‘जीवनसोपान’, आ. ५, पृ. ३४०-३४१)

- आदर्श को प्राप्त करते करते आदर्श स्वयं ही एक के बाद एक उसकी उत्कृष्टता में परिवर्तित होता जाता है ।

('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. ३४१)

- जिसके जीवन में किसी उच्च आदर्श की आग जलती ही न हो वैसा **जीव** दूसरे को कहने और सुधारने जैसा नहीं होता ।

('जीवनसोपान', आ. ५, पृ. ३४२)

- जगत में तो सब है और ऐसे का ऐसा ही चलता रहेगा । कई सुधारक हो गये, कई महात्मा हो गये, कई संत और सद्‌गुरु हो गये और साक्षात् श्रीभगवान के अवतार भी हो गये, तब भी हम सभी जैसे थे वैसे के वैसे हैं । इसलिए सभी का और जगत का विचार करना छोड़कर हम ही यदि व्यवस्थित सही ढंग से हृदय की सच्चाई से करने लगेंगे तो कुछ होनेवाला है, बाकी जगत में तो सब दिखेगा ही ।

('जीवनप्रवेश', आ. ३, पृ. ४)

- साधक को अपनी आदत, मंतव्य, समझ, आग्रह, मतमतांतर, दोष, खराब आदत, आशा, इच्छा, कामना, तृष्णा, काम, क्रोध, मद, मोह, मत्सर इत्यादि का स्वीकार करना है, पर वह स्वीकार उनमें से पर होने के लिए है । ('जीवनप्रवेश', आ. ३, पृ. ६)

- मन में जो मनोमंथन हो उसमें से जीवन में योग्य परिवर्तन आये, ऐसी ठोस भावना प्रकट होती रहे तो वैसा मनोमंथन योग्य प्रकार का समझें, बाकी तो मन व्यर्थ तरंग में चढ़कर जीवन को गिरा भी सकता हैं । ('जीवनप्रवेश', आ. ३, पृ. ९)

- चोर, डाकू हम पर चाकू चलाते हैं चौरी करने या लूटने के लिए, सर्जन (शस्त्रवैद्य) हम पर चाकू चलाते हैं, तंदुरस्त करने या जीने के लिए । दोनों कार्यों में क्रिया एक ही प्रकार की है, पर हेतु और भाव में मूल रूप से अंतर है । इससे, क्रिया और कर्म का महत्त्व नहीं, परन्तु उसके पीछे के अंतर के भाव का ही महत्त्व है । **डाकू का चाकू जीव की जीव प्रकार की इन्द्रियों का साधन है, सर्जन का चाकू जागृत आत्मा का साधन है ।**

('जीवनप्रवेश', आ. ५, पृ. २१-२२)

- जीवन में उच्च गति में बने रहना है, ऐसी भावना आना यह दुर्लभ घटना है और उसमें भी सत्पुरुष का आश्रय अंतर की प्रेमभक्ति–ज्ञानभाव के साथ जागृत रहकर अपने आंतरिक विकास की समझ की कक्षा से हृदय में पैदा होती रहे वह तो फिर इससे भी दुर्लभ है और इससे भी अधिक दुर्घट तो सत्पुरुष के हृदय को समझना और अनुभव करना वह है । ('जीवनप्रवेश', आ. ३, पृ. ३०)
- जीवन में प्रसंग आते हैं तो टुकड़ों में किन्तु उन सभी प्रसंगों को पिरोकर एक प्रकार की अटूटता और समग्रता उन प्रसंगो के अंतर में रही है और वह भावि की ओर ले जाती है । जीवन छिन्नभिन्न नहीं, अविच्छिन्नरूप से एक है ।

('जीवनप्रवेश', आ. ३, पृ. ३३-३४)
- वर्तमान के हमारे दिखाई देते जीवन के पीछे और आगे भी एक परम्परा है । यह परम्परा अनादि है वैसा होने पर भी उसमें चेतन होने से चेतन का ज्ञानभान प्रकट हो जाय तो वह अंतिम भी हो सकती है । ('जीवनप्रवेश', आ. ३, पृ. ३४)
- कितनों का कथन या लेखन उनकी बहुश्रुतता से प्रकट होता है, पठन में से प्रकट होता है, सुनी हुई बातों में से भी प्रकट होता है, परन्तु किसी ही विरल आत्मा के अनुभव से प्रकट होता है । अनुभव के कथन के पीछे आत्मविश्वास का उत्साहभरा चेतन निहित है ।

('जीवनप्रवेश', आ. ३, पृ. ३४)
- चेतन के अनुभव की माँग है कड़ी ज्ञानभक्तिपूर्वक तपस्या और कठिन साधना । ('जीवनप्रवेश', आ. ३, पृ. ४८)
- **जिस जीवात्मा का अहम् मिट गया है, उसे कहीं भी विरोध नहीं होता, बल्कि विरोध होता ही नहीं ।**

('जीवनप्रवेश', आ. ३, पृ. ५४-५५)
- भाव का उसकी उत्कटता में सघन होना यह कर्म से होता है । कर्म का महत्त्व भाव के कारण है । ('जीवनप्रवेश', आ. ३, पृ. ५९)
- ज्ञान क्रिया में प्रत्यक्ष हुए बिना मोक्ष नहीं है ।

('जीवनप्रवेश', आ. ३, पृ. ६२)

✤ **आत्मनिवेदन अर्थात् हमें चेतन के भाव से जोड़नेवाली कोई दिव्य साँकल ।** ('जीवनप्रवेश', आ. ३, पृ. ६२)

✤ साधक अर्थात् जीवनविकास के पथ पर चलनेवाला निरन्तर ज्ञानभक्तियुक्त जागृति रखनेवाला प्रयत्नशील **जीवात्मा** ।

('जीवनप्रवेश', आ. ३, पृ. ६३)

✤ यदि **जीव** अपनी निम्न प्रकृति को महत्त्व देगा तो उसका जोर चढ़ेगा । विजय तो सामना करने और युद्ध करने में रही है...परिणाम जो भी हो । ('जीवनप्रवेश', आ. ३, पृ. ६५)

✤ जिस-तिस में से जीवन के लक्ष्य को अधिक प्रोत्साहन मिले ऐसी किसी अगम्य प्रकार की अंतर्दृष्टि हमारे में जाग जानी चाहिए ।

('जीवनप्रवेश', आ. ३, पृ. ६६)

✤ **जीव** हारता हुआ भले ही लगे, पर यदि वह अपनी आंतर्दृष्टि खुली रखा करे, उसमें से जीत प्राप्त करने को सीखने का हृदय में पक्का लक्ष्य रखा करे तो वैसा जीव हारते हुए भी जीवित रह सकता है, सीधा खड़ा रह सकता है । ('जीवनप्रवेश', आ. ३, पृ. ६७)

✤ साधक सही रूप से साधना में **जीव** लगाने लग गया होगा तो अपनी ही प्रकृति के सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम आक्रमण उस पर हुआ करेंगे । सामने **जीव** की प्रकृति द्वारा उसकी अपनी ही प्रकृति मानो कि आक्रमण करने को तैयार न हो रही हो ऐसे भी सूक्ष्म अनुभव यदि साधक जागृत रहा होगा तो होंगे ही ।

('जीवनप्रवेश', आ. ३, पृ. ६७)

✤ विकास का मूलभूत सिद्धान्त घर्षण में रहा हुआ है । घर्षण बिना तो मनुष्य जैसा का तैसा पड़ा रहा है । अंतर्मुखी के लिए घर्षण यह तो तेजस्विता को जीवंत रखने के लिए सही साधन है ।

('जीवनप्रवेश', आ. ३, पृ. ७०)

✤ किसी ने अन्याय किया हो तो उसका स्मरण भी न रहे । इतना ही नहीं, परन्तु उस पर उपकार करने की भावना प्रत्यक्ष जागृत रह सके ऐसा साधक को अपने विषय में करना चाहिए ।

('जीवनप्रवेश', आ. ३, पृ. ७३)

✣ वर्तमान में रहते हुए भूतकाल में बार–बार न झाँके तो वह साधक के लिए बहुत आवश्यक है । वर्तमान को ही सँभालकर, सुरक्षित करके उसके उज्ज्वल भविष्य खड़ा कर देना चाहिए ।

('जीवनप्रवेश', आ. ३, पृ. ७६)

✣ साधक को प्रकृति जीतनी है, इतना ही नहीं, परन्तु प्रकृति से भी पर होना रहता है । ('जीवनप्रवेश', आ. ३, पृ. ७९)

✣ भूलचूक से भी किसी को भी हम शर्मिंदा न करें । ऐसी शर्मिंदगी स्वयं ज्ञानपूर्वक उठा लें । ('जीवनप्रवेश', आ. ३, पृ. ८१)

✣ कोई जानबूझकर हम पर दोषारोपण करे या दूसरे ढंग से अन्यथा करे तो शीघ्र ही उसका खुलासा देने को मन तैयार हो जाय तो वह योग्य नहीं है । साधक **जीव** को ऐसे तो अपने बचाव की वृत्ति भी छोड़ देनी होगी । ('जीवनप्रवेश', आ. ३, पृ. ८१)

✣ सीखने के लिए तो अति ज्ञानपूर्वक नम्र होने की आवश्यकता रहती है । ऐसी नम्रता जीवन में आते दूसरे गुणों की जागृति और शक्ति भी प्रकट होती जाती है, इससे साधना में तो शून्य से भी शून्य हुए बिना हमारे में सच्चा तत्त्वज्ञान आनेवाला नहीं है ।

('जीवनप्रवेश', आ. ३, पृ. ८३)

✣ संसार के व्यवहार में सभी **जीव** एकदूसरे को एकदम सलाह देने और शिक्षा देने को तैयार हो जाते हैं । ऐसे प्रसंग में हम आ जाँय तब हमें शांति धारण करके उन उनके कहे मर्म को समझकर सही अर्थ निकालना है, परन्तु हमें स्वयं तो किसी को भी सलाह, सूचना या शिक्षा देने नहीं कूदना चाहिए । संभव हो, वहाँ पर माँगने पर भी ना कहें । ('जीवनप्रवेश', आ. ३, पृ. ९९)

✣ जो **जीव** दु:ख में सुख देखता है और सुख में दु:ख जुड़ा हुआ देखता है, ऐसा **जीव** उन दोनों में से अलग पड़ ही जाएगा ।

('जीवनप्रवेश', आ. ३, पृ. १०२)

✣ **भला और बुरा यह भी जीवप्रकार के दो पहलू हैं, इन दोनों पहलुओं में से अलग पड़ना रहा । ऐसा जो ज्ञानपूर्वक का अभ्यास यही साधना ।** ('जीवनप्रवेश', आ. ३, पृ. १०३)

✤ भले ही हम गलत ढंग से अन्याय का भोग बने हों, तब भी अन्याय को जरा भी स्पर्श न होने दें तो मन त्रास, ऊब, संताप कदापि नहीं पाता । ('जीवनप्रवेश', आ. ३, पृ. १०५-१०६)

✤ जो सत्य हो उसे वैसा का वैसा जहाँ तहाँ हमेशा कह देना बुद्धिमानी नहीं है । उसे वैसा न कहने का या ना कहने पर असत्य होता है, ऐसा हमें लगता है, पर अचूक प्रत्येक प्रसंग में वैसा मानना योग्य भी नहीं हैं । ('जीवनप्रवेश', आ. ३, पृ. १०६)

✤ **सामनेवाले का दोष जानने पर भी हम ज्ञानयुक्त अनजान हैं, इसतरह आचरण करना यह जैसे तैसे *जीव* की पहुँच नहीं है ।**

('जीवनप्रवेश', आ. ३, पृ. १०६)

✤ अन्याय को सहन कर लेने के भाव की जगह जीवनविकास के गुणों को प्रेमपूर्वक विकसित करने के लिए उसका स्वीकार करने की कला हमें सीखनी है । अन्याय का स्वीकार इस तरह करें कि जिससे हम भी उठे और अन्याय करनेवाले के जीवन में उस विषय का सच्चा ज्ञान पैदा हो और वह भी सच्ची समझ की कक्षा में प्रवेश करे । अन्याय स्वीकार करने की कला में से त्याग, बलिदान और समर्पण की कला अपनेआप जीवन में व्यक्त होती है ।

('जीवनप्रवेश', आ. ३, पृ. १०७)

✤ **कोई हमारा दोष बतलाये उसे सच्चा गुरु मानें । कोई कमी बतलाये तो उस पर अधिक खुश हों । उस समय हृदय में उल्लास हो तो हम सच्चे साधक हैं ऐसा माने । दोष अंकित करनेवाले का बहुत गुणगान गायें ।**

('जीवनप्रवेश', आ. २, पृ. १३७)

✤ मन की दुविधावाली स्थिति में मौन सेवन आवश्यक भले ही हो, परन्तु वह भी पर्याप्त नहीं है । ऐसी स्थिति टालने के उपाय लेने में सतत जागृति रखें तथा उस स्थिति की अवधि जितनी संक्षिप्त हो सके वैसा करें तो बहुत कमाएँगे । ('जीवनप्रवेश', आ. २, पृ. १३८-१३९)

✤ अभ्यास के मूल में यदि सचमुच का वैराग्य आ गया हो तो वैसा अभ्यास जलदी फलेगा, नहीं तो अभ्यास अकेले अकेले हुआ करेगा

और दीर्घकाल तक और निरन्तर, तो उसमें से भी वैराग्य प्रकट हो सकता है। इसलिए हमें धीरज और हिंमत रखकर जो किया करना है, वह किया करें। ('जीवनप्रवेश', आ. २, पृ. १४१)

- जीवंती की बेल सख्त गर्मियों में खिलती है, उसतरह सचमुच का साधक तो जीवनसंग्राम का रसिक बनता है। कठिनाई, उपाधि, दुःख, निराशा आदि जीवन में आने से उसमें से कोई और प्रकार का सलीका एवं जुनून आता है। ('जीवनप्रवेश', आ. २, पृ. १४२)
- समाज की लीक से भिन्न चलनेवाले जीव समाज और कितनी ही बार तो परिवार का प्रेम एवं सहानुभूति भी खो बैठते हैं। वे अकेले पड़ जाते हैं। उनके प्रति हमारा धर्म तो हृदय की प्रेमपूर्वक की भावना से पूरीतरह मानसिक उदारता अपनाकर उनके साथ समभाव रखना है और संभव हो वहाँ सक्रियरूप से भी।

  ('जीवनप्रवेश', आ. २, पृ. १४६)
- समाज की दृढ़ निष्पाण हो गई परम्परा को तोड़ने के लिए ऐसे प्रसंग तो हमारी आँख खोल देते हैं। समाज ऐसे **जीवों** को तिरस्कार या अवगणना करके वे अपने सत्त्व को ही खोता है।

  ('जीवनप्रवेश', आ. २, पृ. १४८)
- स्वच्छंद और भूल से टकरा गये जीव की उल्टी अधिक दरकार और देखभाल करनी है। ('जीवनप्रवेश', आ. ३, पृ. १४९)
- धर्म की सच्ची भावना के प्राकट्य से तो हृदय की उदारता और विशालता अधिक से अधिक विकसित होती है।

  ('जीवनप्रवेश', आ. २, पृ. १४७)
- सहन कर लेना और गम खा लेना वह अच्छा है, परन्तु मन में उस विषय में कचौट रहे और मन में बड़बड़ाना रहे तो वह बहुत खराब।
- **जीवन का आनंद तो सभी स्थिति में जीवित रहे और जीवित रहे उसी का ही नाम आनंद।** ('जीवनप्रवेश', आ. २, पृ. १७४)
- आशानिराशा यह तो मात्र प्रभुभाव की अतुल और अपार समुद्र पर की लहरियाँ हैं। समुद्र की गंभीरता या महत्ता इससे घायल नहीं होती। ('जीवनप्रवेश', आ. २, पृ. १८१)

✤ **श्रीभगवान की भावना का अनुशीलन और परिशीलन रखा करते हैं, वे ही जीवित रह सकते हैं । प्रारंभ में नाममात्र का ही हुआ करता है पर उसमें से भी काम का हो सकता है । उस भावना को जो सर्व कर्म में जागृतिपूर्वक जोड़ने का सहजरूप से अभ्यास विकसित करता रहे, इसीका नाम सच्ची साधना है ।** ('जीवनप्रवेश', आ. २, पृ. १८६)

✤ मन का सहज स्वभाव तो संकल्प विकल्प है । यह उसका सहज लक्षण है । उसे तप से स्थिर करना है ।

('जीवनप्रवेश', आ. २, पृ. १८७)

✤ मनुष्य**जीव** भटकते कूटते प्रकृति में प्रकृति का विकास करता है सही, परन्तु वह विकास अज्ञानमूलक रहता है ।

('जीवनप्रवेश', आ. २, पृ. १८८)

✤ जीवन की आंतरिक चेतनाशक्ति को मार्ग देने जीवन में सारे संयोग मिलते हैं । ये संयोग भले कर्म के निमित्त हों, पर उनका आंतरिक उद्देश्य तो जीवन को फलदायी बनाने का होता है ।

('जीवनप्रवेश', आ. २, पृ. १९२)

✤ जो भी वृत्ति सामान्य रूप से उठती है, वह बंधी हुई नहीं रहती, वह गति तो करती ही है, परन्तु ऊर्ध्वगामी जीवन की सद्वृत्ति में मनुष्य-**जीव** प्राणचेतना डाले बिना वह गति में नहीं आ सकती । इसी से ही प्रभुकृपा से प्रेरित होकर **जीव** को प्रार्थनाभाव से पुरुषार्थ करने की आवश्यकता होती है । ('जीवनप्रवेश', आ. २, पृ. २०५)

✤ ध्येय पसंद हो, रुचे यह एक बात है और उसमें दृढ़ात्मक रूप से आगे बढ़ते जाय वह बात फिर अलग है ।

('जीवनप्रवेश', आ. २, पृ. २०४)

✤ कोई भी संत या गुरु चमत्कार या जादू से कोई भी जीव में भगवान का भाव एकदम तत्क्षण नहीं ला सकता, ऐसी संभावना भी नहीं है ।

('जीवनप्रवेश', आ. २, पृ. २०९)

✤ अमुक ही संपूर्ण सनातन सत्य है, उसके सिवा दूसरा कुछ सत्य नहीं, ऐसी दृढ़ भावना कभी न बाँधें । जिस समय समाज को जैसी और

जितनी आवश्यकता होती है, उसी तरह वैसी महान आत्माएँ कालपुरुष रूप में ज्ञानभाव से प्रवर्तवान हुआ करते हैं, इसलिए वह काम उस काल तक ही और उस काल में पूरा सत्य होता है। काल के अनुसार सत्य का स्वरूप भी बदलता रहता है।

('जीवनप्रवेश', आ. २, पृ. २२५-२२६)

- जीवनविकास के भाव सहित प्रभुप्रीत्यर्थ सतत कर्म में रत रहना और मन को उस तरह रत रखना, इसके जैसी जीवन की दूसरी कोई उत्तम शिक्षा नहीं है। ('जीवनप्रवेश', आ. १, पृ. १८२)
- जिस तरह तैरने की भूमिका बनाने के लिए और उस कला को हस्तगत करने के लिए पानी की आवश्यकता है, वैसे ही हमें इस जगत और सब की आवश्यकता है और वह ज्ञान उनके संपर्क से प्राप्त कर सकते हैं, इतने तक ही सीमित यह सब 'सत्य' है, पश्चात् नहीं—हमारे तक ही। पर उसके पश्चात् भी उसका अस्तित्व नष्ट नहीं होता, मात्र उसका उपयोग दूसरी तरह का है।

  ('जीवनप्रवेश', आ. २, पृ. २५७)
- एकान्तिक जीवन में मौन का प्रधान स्थान है। उसमें भी समग्र आधार को प्रभु को समर्पण करने की भावना को उद्दीप्त करने के लिए मौन की विशेष और अत्यधिक आवश्यकता है।

  ('जीवनप्रवेश', आ. २, पृ. २५७)
- **सभी इन्द्रियों को अपने अपने विषय में रुचि लेते रोक सकें, तभी सच्चा मौन गिना जाएगा अथवा दूसरी तरह कहें तो मौन अर्थात् इन्द्रियों को अपनी अपनी प्राकृतिक क्रियाओं में से उपराम पाने की क्रिया।** ('जीवनप्रवेश', आ. २, पृ. २५८)
- **संयम अर्थात् जीवन में आचरित हो रहे भावों की सीमा। संयम अर्थात् अपने जीवन की रक्षा करने की आयोजित जीवन्त भावात्मक आचार की दीवार।**

  जो संयमी जीवन जगत को कठोर कर दे, ऐसा संयम यथार्थ नहीं है। जो संयम को बार-बार व्यक्त होना पड़े वह संयम ही नहीं है।

मनोभावों को यथेच्छरूप से व्यक्त होने देने से शान्ति क्षीण होती है और जीवनविकास के क्रम में वह निरर्थक सिद्ध होता है ।

जीवन की किसी भी शक्ति को उद्देश्यपूर्वक सीमाबद्ध किये बिना, उसे अमुक विशेष वस्तु का अभ्यास करा ही नहीं सकते ।

असंयमी भावना और वृत्ति के प्राकट्य होने में निर्बलता पोषित होती है । ('जीवनप्रवेश', आ. २, पृ. २६३ से २६७)

✣ सिर पर हथौड़े की मार पड़े यानी कि कैसी भी विकट या प्रतिकूल स्थिति में आ पड़े, तब भी जो भावना आयी हो, वह उसके यथार्थरूप में उल्टी अधिक सतेज और शक्तिशाली होगी और ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव हो, तभी उस भावना को सही मानें ।

('जीवनप्रवेश', आ. २, पृ. २८२)

✣ **केवल गुरुमंत्र लेने से कुछ नहीं होता । यह भी एक प्रकार का अज्ञानमूलक भ्रम है । जहाँ तक जीवन का मूल बहाव बदल न जाय, तब तक ऐसे लिए गए हजारों गुरुमंत्र व्यर्थ हैं ।**

('जीवनप्रवेश', आ. २, पृ. २९०-२९१)

✣ **आशा, तृष्णा, काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, मत्सर, कामना, रागद्वेष, अहंकार आदि सभी को निकालने का या फीके करने का जब तक उत्कट भाव उत्पन्न नहीं हो सकता, ऐसी तैयारी जो जीव चाहकर भी नहीं कर पाता, ऐसे जीव को साक्षात् श्रीभगवान भी ऊपर उठाने में समर्थ नहीं हो सकते ।**

('जीवनप्रवेश', आ. २, पृ. २२५)

✣ वृत्ति यह तो शक्ति का स्वरूप है । संसारी **जीव** की वृत्ति का मूल तो अज्ञान में है, जबकि दिव्य, उच्च आत्मा की वृत्ति का मूल तो ज्ञान में निहित होता है । इससे दोनों की वृत्ति के मूल में—भूमिका में अंतर होने से, उन दोनों को एक ही तरह देखने, मापने, अनुभव करने की मनीषा कदाचित् ही हम रखें ! ('जीवनपोकार', आ. २, पृ. २९७)

✣ अज्ञानी, संसारी **जीव** की वृत्ति अधिक बंधनकर्ता और रागद्वेष को बढ़ानेवाली है, जबकि ज्ञानी **जीवात्मा** की भावना मुक्तिप्रदेश में व्याप्त होनेवाली होती है । ('जीवनपोकार', आ. २, पृ. २९७)

- उपयोग ही ज्ञान है । जिस किसी में उपयोग के उद्देश्य के ज्ञान को हृदयस्थ कर दृढ़तापूर्वक आचरण करे । उपयोग अर्थात् मात्र कोई स्वार्थ ही नहीं । ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. १)
- गुरु जो भी हमें सूचन करते हों तो वह कोई व्यर्थ नहीं होता है । उसमें कुछ रहस्य और हेतु रहता है । उस सूचन का आचरण प्रेमभक्ति ज्ञानभाव से किये जाने पर उसे स्मरणभावना भी दिल में रहा करती है । ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ४)
- **जीवभाव से दया अर्थात् अहंकार ।** ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ७)
- भावना को टिकाये रखने के लिए, उसे अधिक तेजस्वी और शक्तिशाली बनाने के लिए, अधिक एकाग्र, केन्द्रित करने के लिए नामस्मरण यह जबरदस्त साधन है ।

  ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ९)
- दूसरे किसी की बाधा नहीं है, जो भी बाधा है, वह एकदम सच्चा दृढ़ अटल निश्चय प्रकट हुआ नहीं होता वह है ।

  ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. १०)
- हमें किसी का कहीं सामना नहीं करना है, सामना जो करना है, वह तो अंतर में आंतरिक वृत्तिओं का । ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. १०)
- जिस तरह से देखा, जैसा हम ने सुना, सोचा, आचरण किया, बोले और जैसी जैसी वृत्ति उस उस पल में हमारी रही, उस उस तरह का वैसा वैसा वैसी वृत्ति का जीवन हम निर्माण कर चूके हैं ऐसा निश्चय जानें, समझें और मानें । ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. २०-२१)
- **जीव**कक्षा का नकारात्मक जो हो, वैसा जीवन में निर्माण नहीं होने देना ऐसा अटल निश्चय यदि **जीव** ने किया हुआ है, वैसा तो कोई भी किसी नकारात्मकता को अंतर में या बाहर से अनुभव होने पर अंतर से पूरी तरह सावधान हो जाग्रत होता है । ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. २१)
- जो कुछ भी हो तब भी जीवन में नकारात्मक पहलू को तो कान, मुँह, आँख में न लायें तो न ही लायें ।

  ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. २१)

✤ मौन का आंतरिक व्यापक सूक्ष्म स्वरूप प्रकट हुए बिना मन निःस्तब्ध– नीरव दशा को कभी नहीं प्राप्त कर सकता । मन निस्तरंग दशा को जहाँ तक न प्राप्त करे, तब तक मन की मूल शक्ति व्यक्त होती अनुभव नहीं हो सकती । ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. २४)

✤ मनादिकरण भावना से जब सराबोर रहा करते हैं, तब दूसरे किसी प्रकार के विचार प्रवेश नहीं कर सकते हैं । ऐसी दशा में नामस्मरण आदि साधन, भाव की एकतानता से, एकाग्रता से अच्छी तरह हुआ करते हैं । भाव की एकाग्रता जमते जमते उसमें से केन्द्रितता आ जाती है । भाव की केन्द्रितता होते और उसकी संपूर्णता के शिखर पर पहुँचते और उस दशा में लंबे समय तक स्थिर रूप से रहने और जीवित रहा करने से बाद में उसका विस्तार भी होने लगता है । श्रीसद्‌गुरु का चेतनात्मक पवित्र स्मरण हृदय में हृदय से पैदा कर उसके हृदय के साथ हमारे हृदय का भावभक्ति से एकतानतायुक्त अनुसंधान करके वैसा ज्ञानयुक्त तादात्म्य ला लाकर हृदय की एकता जब उत्पन्न होती है, ऐसे समय में जो जीवन्त चेतनयुक्त केन्द्रितता आती है, वह स्थिति ज्ञानदशा के अनुभव की भूमिका रूप होती है ।
('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. २७)

✤ श्रीसद्‌गुरु के हृदय के भाव को जब साधक प्रेमभक्ति द्वारा हृदय में हृदय से पकड़ने लगता है, उस समय से साधक के जीवन का विकास बहुत शीघ्र होने लगता है । ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. २८)

✤ स्थूल प्राण अपनी असर मनादि पर पहुँचाकर बुद्धि को भ्रमित कर देता है, चित्त में दोष उत्पन्न करता है, मन को हिचकोलों में चढ़ाता है, इसलिए विचार की पूरीतरह शुद्धता हम में नहीं रह पाती ।
('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ३१)

✤ हिचकिचाहट के साथ कुछ किसी को देना हुआ तो ऐसा देने से कुछ उसकी योग्यता में फलित नहीं होता । यदि देने में कोई गिनती, मान्यता, अपेक्षा या उल्टीसीधी समझ रही हो तो वैसा दिया मिथ्या हो सकता है । जो कुछ देना हो, वह एक यज्ञभावना रूप में अपने

विकास के लिए और शुद्ध, निर्मल भावना लाने के लिए ऐसा करना है । ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ४९)

- **जगत अर्थात् ही परिवर्तन । अतः ऐसे परिवर्तन को हम जीवन में ज्ञानपूर्वक अपनाएँ और स्वेच्छा से हमारे जीवन का समूल परिवर्तन प्रभुकृपा से अपनाते रहें ।** ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ४९)
- इन्द्रियों की लालसाओं को जीतने का उपाय उस उस समय गद्‌गद भाव से और उसकी वेदना से डंकते और सालते हृदय से आर्त और आर्द्र भाव से श्रीहरि की प्रार्थना में निहित है । सतत भावनाभरा नामस्मरण का एक-सा दिल में दिल से रटन उस समय होना चाहिए । इसके जैसा दूसरा कोई सरल उपाय नहीं है । ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ५२)
- ज्ञानभक्तिपूर्वक का आत्यंतिक पूर्णरूप से आत्मसमर्पण न हुआ हो, वहाँ तक हमारे अपने निजी पुरुषार्थ की अति आवश्यकता रहती है । ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ६२-६३)
- दूसरों को आगे लाने का प्रेमभाव से यदि हम करेंगे तो उसमें हमारा कुछ नहीं बिगड़ेगा, उलटा लाभ ही है । अहम् टालने की यह तालीम हो सकती है । ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ७४)
- किसी के भी प्रति नकारात्मक भाव उत्पन्न हो यानी कि यदि उसका बुरा हमारा मन सोचा करे कि, तुरन्त ही उस **जीव** के उत्तम पहलू को याद करें । ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ७५)
- जगत में और संसारव्यवहार में न्याय-अन्याय के पहलू विद्यमान होने से हमें न्याय भी मिल सकता है और अन्याय भी, ऐसा तो होता ही रहा करेगा । फिर, हमें जो अन्याय होते दिखता है, वैसा सचमुच अन्याय करने का उद्देश्य सामनेवाले का न भी हो, हमें तो हर किसी स्थिति में सद्‌भाव ही रखना है । ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ७६)
- दूसरे व्यक्ति की ओर से किसी की भी नकारात्मक बात निकलने पर वैसे समय में हमें कला का उपयोग कर चलती बात को पलटकर किसी दूसरी ऊँची भावना के प्रसंग के भाव में उसे फेर डालना

चाहिए । सामनेवाले जीव की भावना को भी तेजस्वी बनाने का हो, इसतरह बात के प्रकार को उपजाने की कला हम में होनी चाहिए ।

दुनिया की, सांसारिक क्षुल्लक बातें न चाहते हुए भी सुननी ही पड़ें ऐसी नाजुक परिस्थिति के समय उन बातों को सुनने पर भी सुनना न बने इसतरह मन को नामस्मरणधारणा में डुबो देना प्रभुकृपा से सावधानी से, जागकर हुआ करता हो वैसी आदत हमें डालनी चाहिए । ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ८२-८३)

✣ जैसे काँटे से काँटा निकाला जा सकता है, जैसे जहर को जहर की मात्रा से टाला जा सकता है, वैसे **जीव** का संसारीपन जीवनविकास की भावना को संसार में उसकी यथार्थता द्वारा जीने से टाला जा सकता है । ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ८५)

✣ **अनेक लोग 'वह (प्रभु या गुरु) सब कुछ जानता है, वह अंतर्यामी है, उसे क्या कहने की आवश्यकता ?' ऐसे जो ख्याल रखते हैं, वे अज्ञानमूलक और भ्रमणात्मक हैं । अंतर्यामित्व की हकीकत यथार्थ होने पर भी साधक को तो आत्मनिवेदन के रूप में जो कुछ है वह सब कहना और लिखना चाहिए । प्रार्थना का आश्रय लेकर चेतना की कृपाशक्ति को पुकारते रहना है ।** ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. १०९-११०)

✣ हृदय में हृदय से जो प्रार्थना होने पर भी वह फलित न होती तो **यह जीव** स्वयं को—मन, प्राण, चित्त, बुद्धि, अहम् को उसके अनेक पहलुओं में फिर फिरकर जाँच लेता । कहीं गड़बड़ होनी ही चाहिए । ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. १११)

✣ संसारव्यवहार वर्तन में जहाँ जहाँ हमें अन्याय होता लगे, वहाँ अन्याय को अन्याय के रूप में तो कभी स्वीकार न करें । प्रभु का हेतु उसके पीछे हमारे निर्माण का जानें । अन्याय हुआ है ऐसा लगता है वह हमारे मन, बुद्धि, प्राण और अहम् को वे अभी तक पूरी समता, तटस्थता, शांतियुक्त दशा में कहाँ होते हैं कि उनका वैसा तौला हुआ

तद्‌विषयक न्याय योग्यतावाला हो ? मनादि ने जो सोचा है, वह बिलकुल सत्य ही है ऐसा कैसे गिन सकते हैं ? प्रत्येक प्रसंग के अनेक पहलू होते हैं । इससे उसे उसकी समग्रता से अवलोकन करना हमारे से कैसे संभव हो सकता है ? इससे माने हुए अन्याय को अन्याय रूप में मानने से तो हम ही शायद दूसरे किसी पर अन्याय कर बैठेंगे ।

हम भले ही कदाचित् अन्याय के भोग बन रहे हों, पर हम से किसी को अन्याय न हो जाय तथा किसी को अन्यायी न मान लें उसकी पूरी दरकार रखनी है ।

हमारे अहम् बेकार-बेकार थोड़ा-सा घायल होते उसकी क्रिया शुरू हो जाती है । अहम्‌पन से प्रकृति का कार्य होता रहता है और उसके पीछे प्रकृति की प्रेरणा है । हमारी ऐसी अहंता कम हो, यह साधनामार्ग के लिए बहुत बड़ा और जीव के लिए बड़ा कठिन कार्य है, परन्तु उसे किये बिना छुटकारा नहीं है ।

आशाएँ, इच्छाएँ, कामनाएँ, तृष्णाएँ आदि का स्फुरण होता भले ही दिखे, पर गतिमान होता न अनुभव हो, तब जानना कि हमारा अहम् नरम पड़ा हुआ है ।

('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. १२१ से १२३)

- **प्रार्थना करने से जिस विषय में प्रार्थना करते हों, वह फलित हो या न हो वह महत्त्वपूर्ण नहीं है, परन्तु जैसे जैसे प्रार्थना का भाव हमारे हृदय में प्रत्यक्ष रूप से जीवित हुआ करता है, वैसे वैसे श्रीभगवान के भाव के साथ हमारे अंतर का संबंध जुड़ता जाता है, यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है ।**

('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. १३४)

- कर्म की योग्यता देखने की अपेक्षा इन्द्रियों एवं मनादिकरणों की पात्रता एवं श्रेष्ठता योग्य प्रकार की हो, उसके प्रति हमारा चेतनामय झुकाव सहेतुक बढ़े वह अति आवश्यक है ।

('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. १४०)

✣ **श्रीसद्‌गुरु की भक्ति मात्र उनके शरीर की सेवा में पर्याप्त नहीं हो जाती, परन्तु गुरु की चेतनात्मक भावना की धारणा हमारे हृदय में हरपल जीवित रहा करे, ऐसी धारणा से हमें जिस किसी में ऊँचे उठने का प्रत्यक्ष उस समय ज्ञान प्रकट हो और वे कर्म यज्ञभाव से होते रहे। वे वे कर्म फिर प्रभुचरणकमल में समर्पित हुआ करे और वे सब प्रभुप्रीति हेतु हुआ करे—ऐसा ऐसा ज्ञान उस उस कर्म करते समय हमारे में जीवंत रहा करे, वही श्रीसद्‌गुरु की सच्ची प्रेमभक्ति है। जिसके द्वारा हमारे जीवन का योग्य सही गढ़न हुआ करे, वह श्रीसद्‌गुरु की प्रेमभक्ति है।** ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. १८४)

✣ श्रीसद्‌गुरु की सच्ची पहचान तो कभी बाह्य रूप से होती ही नहीं। वह तो आगे जाते जाते अंतर में अंतर से होती रहती है। ऐसा प्रकट हुआ अनुभव वही सच्चा अनुभव है।

('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. १९०)

✣ सकल प्राप्त होने पर कर्म यह हमारे प्यारे प्रभु की प्रसादी है, ऐसा ज्ञानपूर्वक स्वीकार कर सब कुछ नापसंद, अनुचित करना आ पड़े, ऐसे समय में भी उसे प्रभुकर्म समझकर, उस कर्म में उस कर्म के पहलुओं को न देखते हुए उससे प्रभु का प्रेमभाव पैदा करने का हुआ करे तो ऐसे हुए अनुभव से प्रेरणात्मक समझ हम में आयेगी सही।

('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. १९४)

✣ कुटुंब के बुजुर्ग भी हमारे जैसे ही मनुष्य हैं। जिस प्रकार हम में अनेक प्रकार की कमियाँ, खराब आदतें, अवगुण आदि भरे पड़े हैं वैसे उनमें भी हो सकते हैं, परन्तु इससे उनके प्रति हमारा सद्‌भाव, आदर, प्रेमभाव आदि घटना नहीं चाहिए। सद्‌भाव से सद्‌भाव प्राप्त होता है और वैसी भावना में बढ़ोत्तरी होती है। उनके प्रति जो भाव आदर विकसित करना है, वह हमारे अपने विकास के लिए है। हम कोई गुण की पूजा करने नहीं निकले हैं, परन्तु वे हमारे बुजुर्ग हैं, यह तथ्य ही मान-भाव-आदर देने के लिए पर्याप्त होना चाहिए।

('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. १९६)

✤ **'मन लागो मेरो यार फकीरी में'** फकीरी अर्थात् मात्र गरीबी नहीं, मात्र त्याग नहीं । जिसमें मन-दिल लगा देना है, उसके बिना किसी दूसरे में चिपक ही न सके ऐसी मस्त दशा प्रगट हो वह भी 'फकीरी' के अर्थ के लिए पर्याप्त नहीं । इससे भी आगे फकीरी का भाव तो जीवनविकास की उत्तमोत्तम ज्ञानमूलक कक्षाओं में प्रकट हुआ करता है । ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. २००)

✤ कर्म का कर्तापन, उसकी उत्तमता, उसका कौशल्य, उसकी शक्ति, उसकी कला—यह सब **जीव** का है ही नहीं । वह सब तो वातावरण के चेतन का विस्तारपन में से उत्पन्न हुआ है ।

('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. २०४)

✤ गरीब की कोई 'दया' न खाएँ । दया खानेवाले हम कौन हैं ? वह किसी से दया नहीं माँगता, माँगता हैं न्याय । वह दे सकते हों तो दें । दया खाने की नहीं होती । सहानुभूति रखी जा सकती है । दया के भाव में सूक्ष्म अहंकार निहित है ।

('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. २०८)

✤ गुरु के अंधानुकरण से कुछ हाँसिल नहीं किया जा सकता है । वह तो जीवन की अज्ञानता में मृत्यु है । गुरु करने के लिए गुरु करना यह तो बिलकुल बिनउपयोगी है, परंतु जीवनविकास की भावना को जीवन में उपयोग करने के लिए श्रीसद्‌गुरु का ज्ञानभक्तिपूर्वक का सेवन करने के भाव से जीवनविकास की भावना के आधार के साधनरूप में श्रीसद्‌गुरु किये हों तो वे गुरु उपयोगी हैं । ऐसा यदि सचमुच उसके योग्य भावार्थ में हमारे जीवन में हृदय से पैदा हुआ हो, तो उसके माप-लक्षण यह है कि उनकी गरज हमारे में जाग गई हुई जीवन में अनुभव होगी । यदि ऐसी सचमुच की गरज जाग गयी होगी, तो मन दुबारा, फिर फिर के, उसकी ओर जाया करेगा । ऐसा हो तो वे बार-बार हृदय में याद आया करे ।

('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. २१०-२११)

✤ गुरु को परख परखकर, कसकर स्वीकार करो इसमें मना नहीं है । स्वीकार करने से पहले जो कुछ भी अंतर से जानना हो वह बुद्धि,

भावना आदि की मदद से जाना जा सकता है, पर एक बार उसे हृदय से स्वीकार करने के बाद उसके साथ खाली-खाली चुटकुला करना, शंका-कुशंकाओं में उलझ जाना, तर्क-वितर्क करना आदि हमारे लिए जरा भी योग्य नहीं है । उसे अपने जैसा ही (प्रकृति से प्रेरित मनुष्य जैसा) समझने, मानने, जानने में हमारा प्रकृतिदोष रहा हुआ है, वह निश्चित मानें । ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. २१४)

- गुरु के हृदयभाव को सहज रूप से यदि हम जीवन में स्वीकार कर सकते हों तो, वह सर्वोत्तम है । ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. २१६)
- हम जो कुछ करते हैं, वह आघात-प्रत्याघात से प्रेरित होकर करते हैं और आघात-प्रत्याघात की भूमिका अर्थात् किसी न किसी प्रकार की क्षुब्धता की दशा । ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. २४३)
- **जो कुछ जिसे उत्कटता से अखरे उसमें से वह पराङ्गमुख भी हो सकता है । दुःख हमें जगाये और गति में प्रेरित करे तो वह दुःख सच्चा ।** ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. २६४)
- दुःख स्वयं को जानने-समझने के लिए योग्य दर्पण है ।
- **जीव** ने श्रीभगवान के मार्ग पर चलने का शुरू किया कि लोग उसके पास से अधिक से अधिक श्रेष्ठत्तम की आशा की इच्छा रखने लगते हैं । उन्हें ऐसा पता नहीं होता कि कोई कैसे एकदम प्रकृति या स्वभाव सुधार सकता है ? साधक होने के साथ ही थोड़ा सिद्ध हो सकता है ? परन्तु हमें तो इससे यह पाठ लेना है कि अब हम यद्वातद्वा व्यवहार करे नहीं चलेगा । तथापि हमें कुछ लोगों के लिए नहीं जीना है । ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. २९५)
- लोग तो बेपेंदी के बरतन जैसे हैं । आज एक पक्ष में तो कल दूसरे पक्ष में भी बोलेंगे । जिसकी प्रशंसा उसकी निंदा भी सही । तथापि उनकी अहवेलना तो कभी भूल से भी हम नहीं कर सकते । **लोगों में भी हमारे प्यारे प्रभु रम रहे हैं** । उनके द्वारा हमें वे चेतावनी भी देते हो । इसतरह हमें तो लोगों के बोलने से सीखना भी है ।

तथापि लोग और वे (श्रीभगवान) दोनों एक नहीं हैं । **लोगों में भगवान हैं, पर लोग भगवान नहीं हैं ।**

('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. २९५-२९६)

- अपनेआप आनंद से, समझ के उद्देश्य से जो किया करें और करना ही पड़ता हो और किये बिना छुटकारा ही नहीं है । इसतरह वैसे का वैसा कर्म किया करते हों, तो उन दोनों के परिणाम में भी भेद होता है । हमें तो जिस किसी आनंद से, जीवन की शिक्षा का हेतु का जीवंत ख्याल रख रखकर किया करना है । ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. २९९)
- भक्तिमय जीवन अर्थात् कल्पनामय जीवन ऐसा नहीं है । भक्ति यानी खोखलापन भी नहीं । भक्ति की नींव तो ज्ञान की वास्तविकता से भरी हकीकत की ठोस नींव पर रचा हुआ होता है । **भक्ति अर्थात् तो मनादिकरणों को निरन्तर लगातार उसके प्रिय चिंत्वन में गोंद या सरेश की तरह चिपकाये रखे, तब उसे भक्ति कह सकते हैं ।**

  ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ३२३)
- श्रीभगवान की कृपा ऐसे ही नहीं मिलती । वह तो उसके हुए हो उस समय भी उसकी अग्निपरीक्षा में कितने ही उसके भक्तजन सख्त ताप में तपकर शुद्ध हुए हैं । इसलिए उसकी कृपा उसके होने के पश्चात् भी, उसकी कसौटी में से पार उतरते उतरते प्राप्त होती है । कृपा का स्वतंत्र अस्तित्व है और सब कुछ है, पर पहले तो हमारा ही अस्तित्व कहाँ है उसका भान किसे है ?

  ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ३२८-३२९)
- अनेक बार हमें बलिदान दिया ही करना है ।

  ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ३३२)
- कसौटी में से सहीसलामत निकले बिना का सद्भाव भी किस काम का ? जगतव्यवहार में लोग भी रुपए परखकर लेते हैं, तब श्रीभगवान कोई सामान्य व्यक्ति से उतरते तो नहीं हो सकते न ?

  ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ३३३)
- जो **जीव** सचमुच में संघर्षरत होते है, वह कभी भी सिर पर हाथ रखकर नहीं बैठता अथवा तो कभी परिस्थिति को दोष नहीं देता ।

अपनी अशक्ति, निर्बलता हो या चाहे जैसा भी हो, तब भी उसे उस रूप में ही स्वीकार कर लेता है । उसमें वह किसी प्रकार की बहानेबाजी नहीं करता । ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ३३८)

- 'अमुक हुआ इससे ऐसा हुआ और ऐसा था इससे ऐसा बना' वैसा वह कभी नहीं कहता । वह तो हिचक बिना का स्पष्ट, खुल्ला, हृदय का स्वीकार कर देता है । जो **जीव** परिस्थिति से लाचार हुआ ऐसा मानता है, वैसा **जीव** अपनी लाचारी को परिस्थिति के निमित्त से छुपाता है । इसलिए जो **जीव** पूरी तरह खुला नहीं है, वह किसी निमित्त को पीछे खड़ा करता है । वैसा **जीव** कहीं न कहीं अवश्य उलझ जाएगा । ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ३३८)
- जो जो आत्मनिष्ठ हुए हैं, उनमें कुछ कुछ अमुक प्रकार की विचित्रताएँ – खासियत देखने में आयी हैं । तो वह कैसे ? ऐसा लोग पूछते हैं । उसका उत्तर यह है कि सामान्य मनुष्य प्रकृतिवश होकर विचित्रताओं का दास होता है, जबकि आत्मनिष्ठ में तो उसकी सविशेषता है, वह उसकी लाक्षणिकता भी है ।
('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ३४८)
- प्रकृति अपने असली स्वरूप में तो अशुद्धिवाली नहीं है, वह तो द्वन्द्व के खेल में पड़ी है । द्वन्द्व वह उसका लक्षण है । उसकी चुनाई में ही द्वन्द्व रहा है । ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ३४८)
- व्यक्तिगत जीवन में क्या या समग्र जीवन में क्या या सारे समाज या सृष्टि के जीवन में क्या—मन, बुद्धि, आदि से जीवन के सभी प्रश्न सुलझ जाएँगे ऐसा अनुभव तो बतलाता नहीं है । मन-बुद्धि किसी का भी समग्रपन तौलने, मापने, समझने, अनुभव करने के लिए कभी भी शक्तिमान नहीं है । ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ३५२)
- हमारी संस्कृति में जो अनेक प्रकार के सांप्रदायिक मत फैले, वे त्याग और भोग इन दोनों के बीच की सभी शाखाएँ हैं । त्याग या भोग दोनों प्रेमभक्तिज्ञानयोग की भूमिकावाले ही होने चाहिए, तभी उसकी शोभा है । ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ३६८)

✤ **संयम और दमन इन दोनों में बहुत अंतर है । दमन से बुद्धि, प्राण आदि कुंठित हो जाते हैं । जैसे नपुंसक मनुष्य में वासना नहीं होती ऐसा नहीं है । इसतरह करणों को कुंठित बनाकर आगे बढ़ने के मार्ग को हमारी संस्कृति के अनुभविओं ने सामान्यतः नकारा है ।** ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ३६९)

✤ भावनाओं को सहलानेवाले शब्दों से या इस प्रकार की कागज की लिखावट से आश्वासन देने की रीति यह जीवनविकास की भावना को सही रीत से प्रेरित करनेवाली नहीं है, इससे तो उलटा जीवन या भावना अधिक निर्बल हो जाती है । भाषा यह तो जीवन को आकार देने के लिए बहुत निर्बल और अधूरा साधन है । सच्चा साधन तो प्रेमभक्ति-ज्ञानयोगपूर्वक की जीवन की तपश्चर्या है । शब्द में, शब्द लालित्य में, विचार में और मनोभाव में राचनेवाला जीव जीवनविकास को सही रूप से नहीं साध सकता है ।

('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ३७२)

✤ कहीं भी किसी का तिरस्कार करने से उसमें से नहीं निकला जा सकता, पर उल्टा कीचड़ में अधिक धँस जाएँगे ।

('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ३८३)

✤ जीवनविकास के मार्ग में तिरस्कार, घृणा, बैर, निंदा, अवमानना, अवगणना आदि वृत्ति को स्थान ही नहीं है । बहुतों को ऐसा कहते सुना है कि, 'पाप को धिक्कारना सीखो, पापी को नहीं ।' परन्तु पाप और पापी इन दोनों को एकदूसरे से अलग करके अलग-अलग समझकर, वैसा गिन सकने की काम में आ सके ऐसी सूक्ष्म विवेकशक्ति सामान्य **जीव** में नहीं होती । इससे पाप को धिक्कारने के साथ ही हमारा मन पापी को भी उसमें समा लेता है । इससे हमें तो सभी के प्रति अच्छे या बुरे के प्रति एकमात्र जागृत सद्भाव ही रखना है । यदि हमारे जीवन में जीवनविकास की भावना का महत्त्व जागृत रहा होगा, तो बुराई के प्रति हम चिपके नहीं रहेंगे । अथवा बाद में जाग जागकर बच सकेंगे, वह निश्चित मानें ।

('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ३८४)

✤ सजाग और प्रयत्नशील मनुष्य को तो कदम-कदम पर सोचना होता है। उसे तो प्रत्येक पल युद्ध की स्थिति में जाती होती है। आंतर-बाह्य सभी जगह संग्राम जागृत रहा करता है।

('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ३९५)

✤ सांसारिक जीवन की श्रृंखला से मुक्त हो ही न पा रहे हो और दूसरी तरफ मनुष्य की महेच्छा आध्यात्मिक जीवन के प्रति थोड़ी बहुत भी हो, तो वैसे जीव को प्रार्थना करके श्रीभगवान की मदद माँगनी चाहिए। ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ३९७)

✤ ***जीवप्रकृति को चैतन्यपन में ज्ञानपूर्वक लय कर देना इसका नाम मरकर जन्म लेना है।*** ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ४०५)

✤ कितने ही **जीव** अपनी अशक्ति का, प्रकृति का, तामस का अथवा खाली-खाली पड़े रहकर बेकार समय गँवाने की निष्क्रियता का ऊपर ऊपर से तो दोष निकालते है और स्वीकार करते जाने हुए हैं, परन्तु अंतर में, अंतर से वैसी अपनी दशा निर्मूल करने की बात पर वे बिलकुल सही रूप में उत्कट तमन्ना से हृदय में तड़पते नहीं हैं। साधक को अंतर्यामी के साथ का आंतरिक संबंध किसी न किसी साधन से, निरन्तर हरपल एक-सा जीवंत हो सके, वह वैसे भाव में उसके साथ हृदय से हृदय में एकरस हो सके ऐसे ज्ञानभक्तिपूर्वक के प्रयत्न में रहना चाहिए। ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ४०८)

✤ जीवनविकास के प्रति जो आशावाद है, वह तो जहाँ-तहाँ और जिस-तिस में बेकार कोशिश नहीं करता। उसका मार्ग तो निश्चल होता है और उसकी मति-गति भी निश्चल होती है। उसका निर्णय भी निश्चल होता है। ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ४११)

✤ गुरु के चरणस्पर्श करना, साष्टांग दंडवत् प्रणाम करना, चरणामृत पीना, फूल चढ़ाना, धूपदीप करना, पूजा-अर्चना करना, अगरबत्ती करना, मालाएँ पहनाना, भेंट-सौगात देना—यह सब और इतना ही मात्र करना—इससे जीवनविकास की दिशा में कुछ भी नहीं होनेवाला है। जो काम करना है, उसकी जागृति, सावधानी, निष्ठा, होशियारी,

देखरेख आदि अभी कहाँ प्रकट हुए हैं ? स्वयं के काम का जागृत रटन प्रतिदिन के व्यवहारआचरण में कहाँ रहता है ? केवल 'गुरु, गुरु' करने से क्या हो सकता है ? केवल गुरु के नाम के जयनाद और पुकार करने से क्या हो सकता है ? ये सारी तो बाह्य पूजा हैं। इसका भी स्थान है, यदि इससे आंतरिक भाव उसके यथार्थ रूप में आ सकता हो तो, अन्यथा नहीं। इसकी अपेक्षा बहुत होगा तो इस मार्ग की अभिरुचि पैदा हो, इससे विशेष कुछ नहीं है। इसलिए जो सही में करना है, उसमें दिल लग जाना चाहिए। गुरु के साथ हमारे हृदय के तार का ज्ञानभक्तिपूर्वक का हृदय में हृदय से अनुसंधान हरपल संपूर्ण चेतनयुक्त जागृति में हो जाना चाहिए। ऐसा अनुसंधान जब जागृत दशा में हृदय में पैदा होता है, तभी साधना सहजता से हुआ करे ऐसी कक्षा में प्रवेश करना हो सकता है।

('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ४१६-४१७)

✤ रागद्वेष में से उबरने के लिए हमें कोई खास कड़ा परिश्रम नहीं करना है, पर सही परिश्रम तो करना है प्रभुमय जीवन जीने के लिए। वैसा जीवन जीने की कला यदि प्रभुकृपा से प्राप्त हो सकी, तो रागद्वेष का तूफान जीवन में से अपने आप अदृश्य हो जाएगा। रागद्वेष और द्वन्द्वादि से मुक्ति पाने के लिए जो **जीव** प्रयत्न करता है, ऐसे प्रयत्न में जीवन का कल्याण नहीं है ऐसा कहने का आशय तो नहीं ही है, परन्तु यह सारा प्रभुमय जीवन हो जाने से अपनेआप फलित होनेवाला ही है, इसलिए जो झुकाव देना है, वह गुणों की प्राप्ति की साधना पर नहीं, परन्तु आंतरिक जागृति और प्रभुभाव पर सही झुकाव देना है। ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ४२०-४२१)

✤ भावना को कर्म में प्रवेश कराना चाहिए। कर्म का परिणाम और उसकी कक्षा—भावना यदि उस कर्म में हो और वह भी उस हेतु के ज्ञानपूर्वक की हो तो बदलते रहते हैं। जब कर्म अति उत्तम कक्षा का होने पर भी, यदि भावना ज्ञानपूर्वक उत्तम कक्षा की उसमें प्राणवान न रहा करती हो, तो वैसे उत्तम कर्म का परिणाम भी उत्तम प्रकार का नहीं हो सकता। ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ४२९)

✤ हमने जो काम हाथ में लिया हो, वहाँ जो काम आ मिला हो उसमें सफलता मानो कि न मिले, तब भी उस काम के प्रति उत्साह हृदय में जीवंत रखना है । हमें तो काम के साथ और उसमें रहे अंतर्गत भाव के साथ **निसबत** है, काम के परिणाम से कोई निसबत नहीं है । काम करने और काम करते रहने से परिणाम तो निश्चित है । संकल्प की शक्ति बहुत बड़ी है । आत्मविश्वास आये बिना संकल्प में शक्ति जागृत नहीं हो सकती । इसलिए जो काम हाथ में लें, उसमें संपूर्ण आत्मविश्वास दृढ़ करें और पूरा करके ही चैन लें ।

('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ४३०)

✤ काम करते करते उस काम में कहीं भी रागद्वेष प्रकट न हो, उसकी संपूर्ण जागृति रखें । साधक का प्रत्येक कर्म रागद्वेष कम करनेवाला होना चाहिए, ऐसी जागृति रखते हुए हमें संसार में व्यवहार करना चाहिए ।

अवगुण या दोष का स्वीकार जैसे उससे पर होने के लिए है, उसी तरह कर्म का स्वीकार उससे रागद्वेषादि की मुक्ति के लिए है । ('जीवनपोकार', आ. ४, पृ. ४३०)

✤ जीवन में जीवन के ध्येय की भावना जब ज्वालामुखी की तरह दहकती जब ज्वलन्तरूप में जागृत हो उठती है, तभी ध्येय के प्रति भावना के अनुसार आचरण प्रत्येक होते जाते हुए कर्म में पैदा हो सकता है और ऐसा मनुष्य सजग हो सकता है ।

✤ स्फुटरूप से कुछ समझने की इच्छा न रखें । जितना अधिक सूक्ष्मरूप से कहा गया हो, हम उसे जितना अधिक समझ सके उतना अच्छा । इससे हमारी बुद्धि कसती है और अधिक सूक्ष्म होती है । वस्तु का यथार्थरूप क्या है ओर हमारी परिस्थिति के अनुकूल क्या है, वह भी इस कारण से हमें समझ में आने लगता है ।

('जीवनमंथन', आ. २, पृ. २-३)

✤ पैसों की गिनती नहीं करनी है । यह जितना **इस** मार्ग में अच्छा है, उतना ही अच्छा उसका अयोग्यरूप से व्यवहार न हो, उसे देखने का काम भी हमारा है । ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. ४)

✤ इच्छाशक्ति का बल, वृत्ति, विचार या वासना से कहीं अनेक गुना अधिक है । ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. ५)

✤ हमारा धर्म तो निर्बल की ओर हमदर्दी रखने का है और गलत काम करनेवालों को भी चाहना है । ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. १२)

✤ जगत है, वहाँ तक इसमें अनेक प्रकार के प्रवाह और प्रतिकूल प्रवाह रहा ही करेंगे । सत् और असत्, सुख और दुःख, प्रकाश और अंधकार, ऐसे द्वन्द्व संसार में रहा ही करेंगे । हाँ ! ऐसा हो कि कभी सत् अधिक प्रमाण में प्रधानरूप में रहा करे कि उसे हम 'सत्ययुग' कहते हैं । इसतरह सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग, ऐसे चार काल की कल्पना उद्भवित हुई होगी । प्रत्येक युग में थोड़े प्रमाण में बाकी के तीन युग होते हैं ही और हम में भी चार युग हैं । उसमें से दूसरे युगों को घटा घटाकर और फिर वह सत्ययुग के भी ऊपर होकर जीना हमारा ध्येय है । स्थल और काल तो हमारे शरीर तथा उसके अंदर के तत्त्वों के खेल के बारे में है और उनके कारण है ।
('जीवनमंथन', आ. २, पृ. १५-१६)

✤ जो कुछ है, वह यथायोग्यरूप से ही प्राप्त हुआ है, इसलिए कुछ भी नकारना नहीं है, पर जो है उसका साधना की दृष्टि से और रीत से उपयोग करना है और उसके विषय में समझ को बढ़ाते रहना हैं ।
हमें प्राप्त जगत, शरीर, मातापिता, सगेसंबंधी, भाईबहन, पति-पत्नी, धन-संपत्ति, संयोग, परिस्थिति और इन सभी के अलावा यह जीवन भी केवल साधना के उपयोग के लिए मिला है ।
('जीवनमंथन', आ. २, पृ. २०)

✤ जगत या जीवन में यदि दूर दृष्टि से देखें तो लगेगा कि कोई भी कहीं भी स्वतंत्र नहीं है । हमारी मानी हुई समझ, मान्यताएँ, जीवन के सुख के साधनों की हमारी समझ-उसी अनुसार ही यह सब निर्विघ्न चला करे । उसमें अखंडता रहा करे, कहीं भी जरा भी संघर्ष न हो ऐसे संयोग और ऐसी वृत्ति को हम स्वतंत्रता मान लेते हैं पर सचमुच में

उसमें स्वतंत्रता नहीं है । यह तो इन्द्रियों की वृत्तिओं के गुलाम होते जाने का रास्ता है। जगत में कोई भी स्वतंत्र नहीं है। जिसने श्रीभगवान का अनुभव किया है, वही एकमात्र स्वतंत्र हो सकता है, बाकी सभी तो संसारचक्र की गुलामी में पड़े हुए हैं और संसारचक्र की लीक में तो कौन नहीं है ? ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. २३)

✤ जगत मिथ्या नहीं, असत्य नहीं है पर जगत को देखने की हमारी दृष्टि असत्य है । जब हम भावनामय हो जाते हैं, तब जगत 'जगत' की तरह नहीं रहता, श्रीभगवान के व्यक्त स्वरूप के रूप में हमें वह दीखता है ।

हमें व्यवहार को नकारना नहीं है और उसके वश में भी नहीं होना है। हमें श्रीभगवान के एक जीवन्त सज्ञान, भानपूर्वक चेतनावाहन के रूप में संसारव्यवहार में जीना है ।

('जीवनमंथन', आ. २, पृ. २८)

✤ सतत अभ्यास और वैराग्य के बिना हमें सही दृष्टि, सच्चा ज्ञान नहीं मिलेगा । **अभ्यास यानी कि हमने जो ध्येय रखा है—श्रीभगवान को प्राप्त करने का—उसका ही सतत चिंत्वन प्रेमभक्तिभाव से, हमारे में जाग्रत रहा करे वह ।** वह हमारी जिज्ञासा और तमन्ना को वेगवान, प्राणवान, बलशाली और चेतनाशील बनाया करेगा । इन सब के लिए हम में वैराग्य की भावना भी खूब प्रबल होनी चाहिए । **वैराग्य अर्थात् 'संसार जगत मिथ्या है' आदि विचार नहीं पर किसी भी बात की हमारी आसक्ति न रहे, राग न रहे उसका नाम वैराग्य । वैराग्य अर्थात् निष्काम, निर्मोह, निराग्रह, निरहंकार, निर्लोभ आदि की समग्रता ।**

('जीवनमंथन', आ. २, पृ. २९-३०)

✤ पर्वत की बड़ी बड़ी शिलाओं के अंदर रहा पानी उसके छिद्रों में से भी बहने का जोर करता रहता है। उसी तरह हमारे अंदर रहा भगवान प्रकट होने के लिए हमेशा तैयार होता है । केवल हमारी तैयारी या तमन्ना जागी नहीं होती है । ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. ३२-३३)

✣ हमारे लिए कोई थोड़ा कुछ करे अथवा दूसरों का राई जितना भी यदि अच्छा हो, वह हमें भावना से पहाड़ जैसा लगा करे, ऐसी साधक की दृष्टि विकसित होनी चाहिए । इससे परस्पर हृदय अधिक पास आया करेगा । ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. ४८)

✣ प्रेम को तो हम अपनी भूमिका के माप से मापने को मथते रहते हैं, इसलिए बाधा आती है न ? लोग जिसे 'प्रेम' 'प्रेम' पुकारा करते हैं, वह प्रेम नहीं है, पर अपने स्वार्थ की समझ के अनुसार केवल उस प्रकार का भाव है । ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. ५४)

✣ हमारा कोई कर्म योग्य था या नहीं उसे समझने की उत्कंठा एवं आतुरता हो वह समझ सकते हैं, परन्तु एक बार कर्म करने के बाद उसके विषय में बहुत फिकर चिंता नहीं करनी चाहिए। ये सारे विचार कर्म के प्रारंभ में करें । ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. ६०)

✣ श्रीसद्‌गुरु विषयक या हमारे साधनामार्ग विषयक हमारे आसपास, सगेसंबंधी या मित्रों में वाणी से या लेखन से जल्दी में अधीरताभरा प्रचार नहीं करना चाहिए। हमारे जीवन का विकास या हमारे स्वभाव का रूपान्तर जैसे-जैसे होता जाएगा, जैसे-जैसे उसकी सुंदर छाप, असर उन पर पड़ती जाएगी वैसे-वैसे उन्हें भी **इस** मार्ग के महत्त्व के बारे में अपने आप लगे बिना नहीं रहेगा और ऐसा लगे तो वह अधिक तत्त्ववाला और गहरा असरकारक होगा ।
('जीवनमंथन', आ. २, पृ. ६१)

✣ जीवनविकास के लिए रचनात्मक पठन हमारी समझ को बढ़ाने में मददरूप हो सकता है। जो कुछ करें वह साधना के अंग रूप में गिन लेना है। ऐसा पठन वह भी भावना के विकास के लिए है, इस दृष्टि से यदि पढें तो लाभ होगा । ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. ६२)

✣ दोष का बार-बार विचार न करें । इससे तो श्रीभगवान की भक्ति में मन लिप्त रहे वह अधिक उत्तम है । केवल दोष ही खोजने के लिए प्रयत्न नहीं करना है। इसका अर्थ ऐसा नहीं कि दोषों के प्रति दुर्लक्ष करना । कर्म तो मात्र कोरा कर्म है । इससे तो प्रभुभाव से

स्निग्ध हृदय रखने का पुरुषार्थ हुआ करे तो सब कुछ सरलता से हुआ करेगा । ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. ६३-६४)

✣ जीवन में जब अनेक co-incidents-योगानुयोग-हो, तब उसमें कहीं दिव्य श्रृंखला है, ऐसे अनुमान पर आए और उसे ऐसी हकीकत के रूप में माने तो वह मात्र कल्पना है ऐसा नहीं कह सकते। और उसके लिए प्रत्यक्षरूप से श्रद्धा-विश्वास जागृत करनेवाला भी हो सकता है । ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. ६४)

✣ सदाचार वह आध्यात्मिक जीवन का मूल आधार है। तब भी साधक अपनी अंतरात्मा की साधना में गहरे से गहरा जैसे-जैसे अनुभव से दृढ़ होता जाता है, वैसे वैसे उपरोक्त प्रदेश में भी वह बद्ध नहीं रह सकता है । एक समय सदाचार उसके जीवन का मूल आधार था और हकीकत रूप से सत्य भी था और वही सर्वस्व कुछ था, परन्तु आगे चलकर, अब उस प्रदेश का कार्य पूरा होने पर, वह प्रदेश—भूमिका—पर पहले जैसा जागृत झुकाव उसका रहता था, वह जागृत झुकाव का प्रदेश अब कोई उच्चतर दशा में मुड़ गया होता है, इतना ही है और वहाँ भी अपनी ज्ञानभक्तिपूर्वक की जागृत तटस्थता तो वह रखता ही है । ('जीवनसंदेश', आ. ४, पृ. २४६)

✣ **जो गरीब बकरी से भी अधिक गरीब है और साथ साथ जिसके अंतर में सिंह के जैसी शक्तिभरी है, वह सच्चे अर्थ में नम्र है ।**

शक्ति स्वयं ही नम्र से भी नम्र और उग्र से भी उग्र है । यदि वह स्वभाव से नम्र से भी नम्र न हो तो वह जड़ जैसे दीखते पदार्थ में वह कहाँ से मिल गयी होती ?

✣ **शून्यता यह नम्रता का अंतिम माप है । शून्यता अर्थात् अहंता का सर्वांश में लय ।**

जिसमें लेशमात्र भी अहंता या अभिमान नहीं रहा है, उसको नम्रता पसंद करती है ।

अहंता कभी कभी तो नम्रता का स्वांग रचकर अपना वेश बदलकर छिपाती है ।

('जीवनसंदेश', आ. ४, पृ. २४७ से २४९)

✤ **कोई हमारा विरोध करे, तब हम धीरज न खो बैठे और जिसके साथ हमारा विरोध हो, उसके प्रति हम नम्रता से और आध्यात्मिक सद्वृत्ति से व्यवहार करें ।**

साधारणतः हमारा यह स्वभाव ही हो गया है कि कोई हमारे मत को न मानता हो, उसे हम अपना विरोधी मान लेते हैं । यह असहिष्णुता का स्वरूप है ।

('जीवनसंदेश', आ. ४, पृ. २५१)

✤ गहरा बैर हमेशा किसी न किसी प्रकार के गहरे घाव के कारण जन्म लेता है । फिर भले ही घाव करनेवाला व्यक्ति कोई दूसरा ही हो । घायल व्यक्ति फिर नहीं देखता कि घाव देनेवाला कोई है और अब मैं जिसे घाव दे रहा हूँ वह तो दूसरा ही कोई है ।

('जीवनसंदेश', आ. ४, पृ. २५२)

✤ भयानक और अनिष्ट दीखती प्रवृत्ति में भी, यानी प्रत्येक प्रकार की प्रवृत्ति और प्रकृति में, इष्ट एवं अनिष्ट दोनों प्रकार रहते हैं ।

किसी भी काम करने की रीति में भी ऐसी 'सही और गलत' रीति का संमिश्रण रहेगा ही ।

सामान्यरूप से अनिष्ट गिनी जाती वस्तु या परिस्थिति का सामना करने में आये, तब उसमें भी कुछ तो इष्ट है यों समझकर उसका सामना ही न करना यह जैसे एक प्रकार की भ्रमणा या अयोग्यता है, इसीप्रकार उसका सामना करने में तटस्थता न रखते हुए कड़वाश धारण करना यह दूसरे प्रकार की भ्रमणा है ।

('जीवनसंदेश', आ. ४, पृ. २५२-२५३)

✤ संपूर्ण समभाव और प्रेमजन्य समझ से हमें संसार के अनिष्टों का स्वीकार करना चाहिए और उसकी आवश्यकता लगे वहाँ आवश्यकतानुसार उतनी मात्रा में सामना करना पड़े तो वह करना चाहिए । ('जीवनसंदेश', आ. ४, पृ. २५३)

✤ दिव्य चेतनाशक्ति तो मनुष्य को जैसा हो वैसा का वैसा ही स्वीकारती है, और वह निर्बल हो या सबल, जगत की दृष्टि से इष्ट हो या अनिष्ट

हो, तब भी उस पर प्रेम रखती है, क्योंकि जिसमें उस चैतन्यशक्ति ने वास किया होता है, उनका प्रेम तो स्वयंभू और निरालम्ब होता है। इस प्रेमशक्ति से ही दुष्ट से दुष्ट लूटेरे या अधमाधम पतित मनुष्य को वे संत कोटि में पलटा सके हैं। ('जीवनसंदेश', आ. ४, पृ. २५३)

✣ सत्कर्म का बदला सत्कर्म ही दे सके, उसमें अपेक्षा को स्थान नहीं है।

✣ वासनाओं का उनकी तरह उपयोग करने से उनका वेग बढ़ जाता है। इसतरह उनकी शुद्धि साध नहीं सकते। पर उनके बहाव के पाट से भिन्न तरह से उसका ज्ञान-भक्तिपूर्वक उपयोग करना है। उन्हें नकारना भी नहीं है, नहीं उन्हें जड़ बनाना है। नकारने और जड़ बना देने से उनका अस्तित्व कोई नष्ट नहीं होनेवाला है।

✣ जिस गति से हम में जागृत श्रद्धा पैदा हो, जिस गति से हृदय में भक्ति की प्रेरणा जागृत हो, सचराचर में व्याप्त चैतन्य को अंतर की उमंग से प्रणाम करने की सहज भावना जागे और जहाँ-जहाँ और जब-जब हो, वहाँ-वहाँ अपने श्रीगुरुचरण हैं ऐसा अनुभव करें।

('जीवनपाथेय', आ. ३, पृ. १३)

✣ **नमन अर्थात् जिसे नमन किया जाता है, उसमें से ग्रहण करने लायक जो कुछ भी उत्तम हो, वह ग्रहण और स्वीकार करने की हृदय की उत्कट भावना से नमनकर उसे लेते जाने का भाव रखना वह।**

स्थूल नमन करने से कोई लाभ नहीं है बल्कि दंभ बढ़ने की संभावना है। संत महात्माओं को मात्र चरणवंदन करने से कुछ होनेवाला नहीं है। ('जीवनपाथेय', आ. ३, पृ. १३)

✣ **जिसे चिंता होने के पूरे सबल कारण होने पर भी उसका कोई भार ज्ञानपूर्वक लगता नहीं, ऐसी प्रेमभक्तिपूर्वक की स्थिति को प्रसन्नता कह सकते हैं।**

प्रसन्नता यह कोई उबाल की स्थिति नहीं है और न ही किसी भाव की विह्वलता। ('जीवनपाथेय', आ. ३, पृ. ३३)

✤ मानसिक और ऐहिक विकास के लिए जैसे अनेक प्रकार की शिक्षा लेते हैं, वैसे जीवनविकास के लिए शारीरिक और मानसिक कष्ट भोगने और उत्साहपूर्वक शारीरिक श्रम उठाने की तालीम बहुत ही आवश्यक है ।

✤ अभी तक जिसे हम त्याग मानते थे, वह त्याग न था । सच्चा त्याग तो आनंद में परिवर्तित होता है । विवशतावश हो उसे त्याग नहीं कह सकते । ('जीवनपाथेय', आ. ३, पृ. ८८)

✤ समर्पणयज्ञ हमारे अंदर के करणों को उनके प्रकृतिधर्म से मुक्ति दिलाता है, जबकि **जीव**प्रकार का काम आना या देने का भाव हमें अधिक जकड़ता है ।

✤ यौवन तो चार दिन की चांदनी है। उसका उत्तम उपयोग आत्मा की पहचान के लिए होना चाहिए । संसारी के मन वह अमर है। साधक के मन वैसा नहीं है । उसे जी चाहे इस तरह खरच देना उचित नहीं—**जो करना है, वह तत्काल कर लेना है ।** वह तभी कर लेना है । यौवन वह जीवन का सर्वश्रेष्ठ काल है। साधक के लिए भी यही समय उत्तमोत्तम है। साहस और अनजाने में कूदना यह तो मात्र यौवन ही कर सकता है । साधक का प्रथम धर्म इस अवधि को प्रेम से उत्साह में—आदर्श की रणभूमि में—जोड़ देना है । ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. ८९-९०)

✤ कमजोरी का स्वीकार सबल होने के लिए है—कमजोरी में पड़े रहने के लिए नहीं है ।

मनुष्य मनुष्य को चाहता है, वह मनुष्य के लिए नहीं चाहता, परन्तु किसी न किसी प्रकार के उसकी ओर से संतोष पाने के लिए ही चाहता है या जुड़ता है यानी कि अपने लिए ही चाहता है । ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. ११०-११२)

✤ जो कुछ बोलना हो वह दिखावटी न हो, पर अंतर को प्रकट करनेवाला हो । स्वभाव, भावना से प्रेरित होकर उसके हथियार रूप में जो बोलने का हो और बोल दे वह अलग और भावना से हम उपयोग करते हैं वैसे सभान ज्ञानपूर्वक के ख्याल सहित उसका जो

उपयोग बोलने में हो वह हकीकत अलग है। पहले में बोले हुए बोल हमारे मालिक बन बैठते हैं, जबकि दूसरे में बोले हुए बोल के हम मालिक बनते हैं। ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. १२६)

✤ खाली खाली मन को अन्यथापन में फँसने की आदत होती है, तो वैसी आदत से मुक्ति प्राप्त किये बिना सामनेवाले के दिल को सही ढंग से हम नहीं समझ सकते हैं।
('जीवनमंथन', आ. २, पृ. १३३)

✤ गुरु का कार्य तो डॉक्टर का है। रोग, फोड़े, व्रण आदि दूर करने के लिए आवश्यकता पड़ने पर नस्तर—ऑपरेशन—करने का कार्य है। ऐसे समय में उस क्रिया को जो प्रेम से अपनाता है, उसका विकास शीघ्र होता है। ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. १३३)

✤ चटपटी में मनोभाव-भावना की बाढ़ होती है सही, और वह उसी में ही—एक में ही—एकाग्र और केन्द्रित कर डालती है, परन्तु साथ साथ तटस्थता का गुण तब विकसित किया हो तो चटपटी से भी वह आगे ले जाएगी। चटपटी होना उत्तम है पर उसमें ही खो जाना ठीक नहीं है। चटपटी डूबने के लिए नहीं है परन्तु ऊर्ध्वगति के लिए है। उसका उपयोग हो, उपभोग नहीं।
('जीवनमंथन', आ. २, पृ. १३८)

✤ खुल्ली आँख से जो देखा हो, कानों से जो सुना हो, तब भी वैसे देखने और सुनने में हमारे मन की समझ जिस प्रकार की हो, उस समझ के प्रकार की ढब में ही उसे देखने और सुनने का मर्म हमारी समझ में आता है—उन क्रियाओं के पीछे देखने और सुननेवाला सचमुच में तो मन है और मन की समझ सत्य नहीं हो सकती। आँखों देखा और कानों सुना भी कितनी बार हम जो समझे होते हैं, उससे अलग होना भी संभव है, यानी कि असत्य भी हो सकता है। ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. १३८)

✤ दूसरों के कहे अनुसार हेतुपूर्वक और ज्ञानपूर्वक आचरण करने से हम निराग्रही होते जाते हैं, क्योंकि दूसरों का कहा करने में हमारी समझ

से दूसरी तरह भी व्यवहार करना पड़ता है और उस तरह हमारे अहम् को पिघलाते रहना पड़ता है। दूसरों का कहा आनंद से और हेतुपूर्वक करने से हम गुलाम नहीं बन जाते हैं, उल्टे हम सामनेवाले से अपने आपको ऊँचा ले जाते हैं, जैसे भारी वस्तु हल्की होने से वह हवा में ऊपर तैरकर रह सकती है वैसे। स्वयंस्फूर्ति एवं उत्साह से स्वविकासार्थ सर्वस्वरूप से और सर्व भाव से किसी योग्य समर्थ के शरण में जाने से जीवन का अद्‌भुत विकास कर सकते हैं। **शरण अर्थात् गुलामी नहीं, शरणागति का रहस्य महामूल्यवान है।**
('जीवनमंथन', आ. २, पृ. १४५)

✤ मनुष्य सब कुछ करने में समर्थ है। यदि इस विधान का स्वीकार करें तो फिर प्रारब्धवाद या नियति जैसा कुछ नहीं रहता। प्रारब्ध, पुरुषार्थ ऐसे सारे वाद जिसे सही दहकती तमन्ना पैदा हो जाती है, उसे चिपके नहीं रह सकते। ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. १४८)

✤ जगत में, प्रकृति में जहाँ देखो वहाँ सुसंवाद, सुमेल है। विसंवाद लगता है पर वह तो है मात्र सतही। समुद्र में बड़ी बड़ी लहरें उठती हैं सही, पर उनके भीतर तो गंभीरता और स्थिरता है। इतने सारे तकरार, इतने सारे भयानक विश्वयुद्ध, अनेक प्रकार के द्वेष, संघर्ष—इन सभी के होने पर भी समाज टिका हुआ है मात्र सुसंवाद के बल पर। यह सुसंवाद मानवसमाज के हार्द में गूढ़रूप से विद्यमान है। जैसे चेतन को हम देख नहीं सकते, पर वह हकीकत है, वैसे यह अंतर्गत सुसंवाद का भी है। ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. १६५-१६६)

✤ मनुष्य कितना अधिक डरपोक होता है, कहीं युद्ध आया, कहीं रगड़ाहट हुई, कहीं टकराहट हुई कि मानो दुम दबाकर भाग खड़ा होता है। जीवन का साधक तो संग्राम में प्रेम से, शौर्य से झूम उठता है। वह तो जीवन में लड़ते-लड़ते खत्म हो जाने की उमंग से पूरीतरह तैयार होता है। वह तो कहता है कि शायद हारेंगे तो वह जीतने के लिए ही, वैसी उसकी हार में भी पराक्रम और पौरुष पैदा होता है। श्रीभगवान को उस समय वह अधिक से अधिक हृदय से

चिपकता है । श्रीभगवान ही उसका सहारा है, ऐसा उसे लगने लगता है । 'एक सहारा राम' यह वह अनुभव करता है । श्रीभगवान के लिए आर्तता और आर्द्रतापूर्वक हृदय से निकली हुई पुकार और उस समय उससे होती गद्‌गद भावनायुक्त प्रार्थना यही उसकी रामबाण औषधि है । ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. १६९)

✤ मैत्री की भावना जैसे जैसे विस्तरित होती है वैसे वैसे स्पर्धा का भाव मिटने लगता है, करुणा जिस प्रकार ज्ञानपूर्वक आती जाती है और जैसे-जैसे उसका विस्तार बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों अहंकार का लय होते हुए अनुभव होने लगता है । मुदिता का, सर्व प्रकार की प्रसन्नता का उदय होते ईर्ष्या का नाश होता जाता है । निःस्पृहता से क्षोभ, क्लेश, मोह, ममता आदि का लय होने लगता है । अतः साधक को **जीव**प्रकार की प्रकृति की आदतों को—नकारात्मक वस्तुओं को—निकालने के लिए उन पर जोश न देते या महत्त्व न देते मैत्री, करुणा, प्रसन्नता, निःस्पृहता आदि सात्त्विक भावनाओं को पुष्ट करने में जागृति के साथ ज्ञानपूर्वक प्रयत्नशील रहा करना चाहिए ।

('जीवनमंथन', आ. २, पृ. १८२-१८३)

✤ उपभोग करने जैसे समग्र पदार्थों के विषय में उपयोगी हो, उतना ही लें । जैसे इरंडी तेल पीने की गरज—आवश्यकता—जब लगती है, तब उसे उपयोग से थोड़ा भी अधिक नहीं लेते, वैसे ही वस्तुओं का उपयोग मात्र निर्वाह जितना करें ।

जो कुछ अच्छाबुरा, कमज्यादा मिला करे, उसके विषय में संतोष की भावना रखें । ऐसा करने से समता बनाये रखने में मदद मिलेगी ।

भूख, दुःख, अपमान और विरोधी के प्रति भी प्रीति रखें तो सभी जगह अनुकूलता प्राप्त हो पाएगी । अपमान को अमृत मानकर सेवन करनेवाले और मान को विष के समान समझनेवाले जीव का कभी पतन होने का अवसर नहीं आता । मान से देहाभिमान और अहम् बढ़ता है ।

('जीवनमंथन', आ. २, पृ. १८४-१८७)

✤ रास आये तो काम का भोग करो, रास आये तो राम का भोग करो ।

✤ जीवन में सद्भाव का संपूर्ण प्रभाव पैदा हुए बिना सभी जीवों के साथ हम उत्तमता से व्यवहार नहीं कर सकते ।

✤ जब हम बोलते हैं, तब शब्द की गति की लहर हमारे और दूसरों के कान पर पड़ती है, उसी तरह तेज की किरणों की गति के कारण देख सकते हैं । शब्द और तेज को ग्रहण कर सके ऐसा यंत्र यदि हमारे शरीर में योग्य ढंग से न हो तो हम सुन या देख नहीं पाते— जैसे कि बहरा और अंधा । इसीतरह विश्व में जो सूक्ष्म क्रियाएँ हो रही हैं, उनके प्रति हम बहरे और अंधे हैं । स्थूल इन्द्रियाँ उस सूक्ष्म को ग्रहण करने में असमर्थ हैं और सूक्ष्म इन्द्रियाँ जिसकी विकसित नहीं हुई हैं, उसे यह सब पहेली जैसा लगता है । जब जो श्रीभगवान की दिव्य सृष्टि के साथ और उसके दिव्य हेतु के साथ जुड़ जाते हैं, जिन्हें दिव्य दृष्टि मिल चुकी है, वे—उन विरल आत्माओं—मिट्टी के देहधारी होने पर भी विश्व में सक्रिय रहे सूक्ष्म तत्त्वों के आंदोलनों को वहन कर सकते हैं—ग्रहण कर सकते हैं—उनके साथ तार मिला सकते हैं, सुन सकते हैं, देख सकते हैं ।
('जीवनमंथन', आ. २, पृ. २२७)

✤ संपूर्ण विश्व गति से बना हुआ है । सचेतन और अचेतन सभी वस्तुओं में जैसी जिसकी प्रकृति वैसी उसकी गति की लहर । हमारे में भी वैसी गति की लहरें हैं । क्रोध, प्रसन्नचित्त, विकारी वृत्ति में हो ऐसी किसी भी वृत्ति में हो तो उस प्रकार की लहरें पैदा होंगी । वृत्ति की जैसी और जितनी उत्कटता ऐसी उसकी लहरें । जिसे दिव्य दृष्टि मिल चुकी है, वह उन लहरों को देख सकता है, परख सकता है और आकलनकर सकता है । ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. २२८)

✤ जो सभी में से मुक्त हो गया है, वैसा ही सभी में अपने ढंग से जकड़ा भी रह सकता हैं । ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. २३१)

✤ जो भावना के गुण स्त्रीहृदय में रहे हुए हैं, उन्हें स्त्रीत्व कह सकते हैं । भावनापूर्वक का ऐसा स्त्रीत्व कितने ही समर्थ पुरुषों ने विकसित

कर जाना है । श्रीरामकृष्ण परमहंस के जीवन में ऐसा भाव आ चुका था यह सुविदित है । इससे ऐसे स्त्रीत्व की भावना पुरुषपन में भी प्रकट हो सकती है, इसकी संपूर्ण संभावना है ।

('जीवनमंथन', आ. २, पृ. २३२)

✣ अति स्थूल निकटता प्रेम को समझने, अनुभव करने के लिए आवरणरूप है । यदि हम स्थूल रूप में समीप होंगे, तब भी हृदय के प्रेम को परखने, समझने और अनुभव करने की कला यदि हृदय से नहीं मिली होगी, तो ऐसी निकटता हमें विघ्नरूप भी हो सकती है और स्थूल रूप से निकट होने पर भी अंतर में अंतर से हजारों मील दूर होंगे । ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. २३५)

✣ सामान्य रूप से तो कोई भी **जीव** को हम जो मदद करेंगे उसका उपयोग वह अपनी प्रकृति और स्वभाव अनुसार ही करनेवाला है, इसे निश्चित समझ लें । उस मदद का दुरुपयोग होने के बाद उस विषय में मन में कोई विचार होने देना ठीक नहीं । भविष्य में हम उसके साथ सोचकर व्यवहार करें अथवा हमारी अपनी उदारता और विशालता लाने के लिए भी, उस जीव की फिर से मदद हो सकती है । इसमें केवल एक हकीकत का ख्याल रखना होता है कि हमारे वैसे व्यवहार से सामनेवाले की प्रकृति की पकड़ को बढ़ाने और उसके अयोग्य व्यवहार में हम मददरूप हो रहे हैं और व्यक्ति व्यक्ति को और हमारे आंतरिक भाव को समझ समझकर परिस्थिति के अनुरूप योग्य निर्णय करना होता है । ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. २४९)

✣ कुछ भी किसी से भी ऊँचेनीचे न हों, वह योग्य तो है, परन्तु वैसी दशा होने पर हमें सोचना है कि इससे हमारी प्रगति होगी या पीछेहठ ? हमें जो करना है, उसे करने के लक्ष्य में हमारी विशेष एकाग्रता और केन्द्रितता हो और इसके लिए आतुरता उत्तरोत्तर बढ़ती जाय और तेजस्वित होती यदि न अनुभव हो तो हम जहाँ थे वहीं रहेंगे या शायद पीछेहठ भी हो । जब हमारे ध्येय के प्रति हृदय की

भावना ज्ञानभक्तिपूर्वक एकाग्र और केन्द्रित हो चुकी होगी, उसके बाद ही कहीं किसी के प्रति ऊँचानीचा होनापन नहीं बनेगा ।

('जीवनमंथन', आ. २, पृ. २५३-२५४)

- जीवन में—साधना में—हमारा शरीर—हमारा देह—एक बहुत बड़ी से बड़ी भूमिका निभाता है । उसके बिना मुक्ति मिलना संभव नहीं है । शरीर मातापिता के कारण मिलता है । उसमें भी जननी ने माँ ने तो नौ नौ महीने पेट में रखकर अपने खून में से खून दिया है, अपने माँस में से माँस दिया है । उसके देह के आधार पर हमारा देह जन्मा है, पालन-पोषन हुआ है, वृद्धि हुई है । ऐसी जननी के प्रति गंगा के पुनीत प्रवाह की तरह हमारे हृदय की हुलासभरी भावना अखंड, निरन्तर और समग्ररूप से अनुभव न कर सके तो हमारी साधना उतनी कच्ची है समझें । माँ वह स्थूल माँ नहीं है । वह तो जीवन की प्रेरक और द्योतक है । माँ के प्रति हमारा व्यवहार हमारे हृदयस्थ भाव को विशेष रूप से पैदा करने के लिए है ।('जीवनमंथन', आ. २, पृ. २५६)
- हेतु की शुद्धता से, ज्ञानपूर्वक नम्रतायुक्त व्यवहार से तथा ऐसे व्यवहार में झलकती गहन हृदय की मार्दवता द्वारा हमें बुर्जुगों के मनहृदय को जीत लेना है । जीवनपथ में हमें किसी से अलग नहीं होना है । सर्वप्रकार के भेद टालना तो हमने चाहा है । हमें तो हृदय से हृदय को जोड़ने के लिए प्रयत्नरत रहना है और ज्ञानपूर्वक के व्यवहार में अभेदभाव आये ऐसा जीवन प्रभुकृपा से लाना है । इसलिए यह भेदपन जो है, उसे साधनरूप में लिया गया है । भेद को अभेद में परिवर्तित करना है । ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. २६०)
- शांति, समता, प्रसन्नता, तटस्थता आदि जिस तरह अधिक से अधिक समय प्रतिदिन व्यवहार में रहा करते हों, उस तरह व्यवहार करें तो भावना से जीवन में आचरित होना संभव है । भावना में एकाग्रता और केन्द्रितता आये बिना साधना का हार्द नहीं पकड़ा जा सकता । भावना यह ज्ञानप्रेरक है, भाव आने पर ज्ञान आता है ।

('जीवनमंथन', आ. २, पृ. २६८)

✤ किसी भी **जीव** के मृदु भाव को भूल से भी अवज्ञा की दृष्टि से न देखना चाहिए । प्रत्येक स्त्री का स्नेह कहें, भाव कहें, प्रीति कहें, मनोभाव कहें, इसका हमारे हृदय में जीवनविकास की भावना का एक प्रतीक रूप में स्पर्श होना चाहिए । उनके लिए जीवन में संपूर्ण सद्भाव, मान, आदर और भक्ति हमारे जीवन में उन्मेषित हो जाने चाहिए । ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. २७४-२७५)

✤ **जीवनविकास की साधना से जो सर्वभूतहितरतपन पैदा होता है, वह उत्तम प्रकार का दान है ।** ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. २७६)

✤ मात्र धर्मशास्त्र के अभ्यास द्वारा या बुद्धि के सूक्ष्म गहरे चिंतन द्वारा दिव्य शक्ति की दृष्टि और शक्ति नहीं मिल सकती, क्योंकि द्वन्द्व प्रकार की वृत्ति—वासना से मुक्ति पाये बिना, रागद्वेष से पर हुए बिना, अज्ञान की दृष्टि लुप्त हुए बिना, कामनाओं पर विजय प्राप्त किये बिना और अहंकार से संपूर्ण निर्मूल हुए बिना बुद्धि में बुद्धि की संपूर्ण शुद्धि और सात्त्विकता नहीं आ सकती । योग की साधना द्वारा ऐसी शुद्धि आ सकती है । **साधना के मूल हार्द में कामना और अहंता की मुक्ति निहित है ।** ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. २७७)

✤ कोई महान, ज्ञानी, अनुभवी आत्मा की प्रेरणात्मक जीवंत संस्कृति से तीर्थ प्रकट होता है । तीर्थ यह **जीव** की भावना और संस्कृति का प्रतीक है । ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. २७७)

✤ मनुष्य जिसके पास से अपने जीवन का प्रकाश पाता है, उसकी बातें करने के लिए हृदय के भाव स्वयं स्फुरित होते हैं । ऐसे हृदय के भाव को संयम और विवेक की मर्यादा में रखना है । ऐसी प्रकटी हुई भावना का उपयोग साधना के भाव में करना है ।
('जीवनमंथन', आ. २, पृ. २८०)

✤ जीवन के जो सारे आनंद जीवन के निचले स्तरों की भूमिका के हैं और जब तक वह अति महत्त्वपूर्ण लगते हैं, इतना ही नहीं, परन्तु वह जीवन में निश्चितरूप में मन से दृढ़ बने हुए होते हैं, वहाँ तक हम उन सभी को छोड़ नहीं पाते । निचले स्तरों के ऐसे सुख की वासना

मनुष्य तभी छोड़ सकता है, जबकि उन सभी का और उन सभी में से हृदय के दृढ़ अनुभव से उसका पूरीतरह भ्रम टूट गया हो । जहाँ पार्थिव सुख का पूरा अंत आता है, तभी उसी क्षण से ही पारमार्थिक जीवन प्रारंभ होता है । ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. २८०)

✤ कितनी ही बार मनुष्य की मान्यता अनुसार भरपूर सुख के आनंद में भी कभी कभी अतृप्ति या असंतोष की ज्वाला पैदा होती है । ऐसे ऐसे जीवन की फाट में होकर भी कितनी ही बार हृदय के किसी उन्नतगामी जीवन की पुकार सुनायी पड़ती है, परन्तु ऐसे समय में योग्य तत्परता न होने पर ऐसी स्फुरित प्रेरणा अनेक बार शान्त हो जाती है और फिर दुबारा अंधकार छा जाता है ।

('जीवनमंथन', आ. २, पृ. २८०)

✤ जीवन और जगत की सभी समस्याओं और प्रश्नों का हल हम अभी तत्काल पूरीतरह ला देंगे ऐसा मानना केवल अज्ञान है । ऐसे सभी समाजसुधार के प्रयत्न में सच्ची प्रामाणिकता, वफादारी, नेकदिली और पूरी सच्चाई होने पर भी 'यह एक साधन ऐसा है कि जिसकी परिपूर्णता होने पर समाज का पूरीतरह सर्वांगीण उद्धार हो जाएगा ।' ऐसे प्रचार की उग्रता जब आती है, तब उसमें से सत्य की शक्ति फीकी हो जाती है । इसलिए जब 'यह सही है और दूसरा नहीं' ऐसी समझ जिस प्रयत्न में है, वहाँ चेतना का सही पूरा व्यक्तित्व नहीं है ऐसा मानें ।

(फिर भी) हमें तो जिसमें सत्य यत्न है, प्रामाणिकता है, सच्चाई, वफादारी तथा निष्ठापूर्वक का व्यवहार है, वहाँ वहाँ सविशेषरूप से सद्भाव ही रखना चाहिए । हमारी पद्धति संपूर्ण है और दूसरों की संपूर्ण नहीं है ऐसा मानने में भी दोष है । सत्य के अनेक पहलू हैं, इससे अमुक ही ढंग सही ऐसा आग्रह नहीं रखना चाहिए ।

('जीवनमंथन', आ. २, पृ. २८१-२८२)

✤ जैसे-जैसे **जीव** का आंतरविकास होता जाता है, वैसे वैसे उसकी जीवनदृष्टि भी बदलती जाती है । कोई साधक साधना में अमुक

मर्यादित उद्देश्य से ही—जैसे कि देश के उद्धार के लिए शक्ति प्राप्त करने के लक्ष्य से—जुड़े परन्तु उसमें गहरे उतरने पर उसने धारण किये हुए उद्देश्य की दृष्टि के पीछे उस समय अज्ञान था, ऐसा तब वह समझे बिना नहीं रहता। और इसतरह वह उत्तरोत्तर उच्च प्रकार के जीवन में प्रवेश करता जाता है। ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. २८३)

✤ **सुख बाह्य प्रकार के साधनों में नहीं है, सुख तो है अंतर में प्राप्त होती सच्ची समझ में और उसके अनुरूप आचरण में।** ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. २९०)

✤ **अखिल विश्व में जो द्वैत है, उसका रहस्य प्रेम में निहित है। द्वैत होने के कारण ही आकर्षण रहा करता है। उसमें एक तरफ अवतरण है और दूसरी तरफ आरोहण है। स्त्री-पुरुष का द्वैत भी चेतन के अनुभव के लिए है। सर्जन के लिए द्वैत आवश्यक है, अनिवार्य है।** ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. २९८)

✤ मनादिकरण में जो उच्च प्रकार की संस्कृति और समृद्धि दिखाई देती है, उसे भी रूप कह सकते हैं। जीवन संस्कार की खिल उठी भावना को भी रूप कह सकते हैं। ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. ३००)

✤ **पुरुष-प्रकृति** के विकास के अनुकूल नारीशक्ति अर्थात् जगतजननी आद्यशक्ति।

जिसे अतिमनस प्राप्त करने की साधना करनी हो, वे वह प्रेम से करे, परन्तु उसे योग्य ठहराने दूसरी प्रवृत्ति का भी योग्य मूल्यांकन आंकने और उनकी योग्य कदर करने की सात्त्विक मानसिक तैयारी वैसे साधक की होनी चाहिए।

चर्चा न करें, चर्चा करने की स्थिति यदि आये ही, तो वह मात्र जानने, समझने के लिए हृदय की नम्रताभरी जिज्ञासु भावना से वैसा करना चाहिए। ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. ३०१-३०४)

✤ **ठीक से सुनना भी एक अनोखी कला है। जब हम कुछ सुनते हैं, तब कहनेवाले का प्रत्युत्तर की तैयारी मानसिक रूप से हुए बिना तथा प्रत्याघाती मानसिक आंदोलन रोककर या उस विषय**

में हमारे मन में दूसरे कोई भी विचार जगाये बिना पूर्ण स्वस्थ और नीरव मन से तथा एकाग्रचित्त से सुनने की आदत बनाये रखने जैसा है। ऐसा कर सकें तो कोई भी चर्चा का लाभ मिलने जैसा हो तो मिल न सकेगा तथा प्रतिपक्षी के दृष्टिबिन्दु को यथायोग्य समझने में सरलता भी हो सकती है।

- दूसरे व्यक्ति को अमुक काम में रुचि लेता करना हो तो जिस काम में वह जुड़ा हो, उसकी सारी हकीकतों से उसे परिचित करना चाहिए। इससे उसकी उस काम में रुचि बनी रहेगी और हमारी अभिलाषा पूरी हो सकती है।
- जो कुछ भी मानते हें, उससे ऊँचे प्रकार का आगे और आगे हैं ही यह निश्चित जाने। इसलिए जो मानते हों, उसे नये के स्वीकार करने के लिए छोड़ते रहना है। ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. ३२२)
- **जो उच्चतम प्रकार के संगीतशास्त्री, कवि, शिल्पी, चित्रकार, साहित्यकार, कलाकार हैं, वे वे सभी उस चैतन्यशक्ति के अवतरण की सूक्ष्म पूर्वभूमिका के समान है। उनमें से कितने ही तो उस चैतन्यशक्ति का (जब वे अपने क्षेत्र के भाव की उच्च कक्षा में प्रकट हुए हो तब) स्पर्श भी करते होते हैं और ऐसे स्पर्श के कारण उत्तम कोटि का सर्जन कर सकते हैं। ऐसे महान साहित्यकार या कलाकार का चरित्र सदाचार या नीति की दृष्टि से उत्तम प्रकार का शायद न हो तो इससे आघात लगाने की आवश्यकता नहीं है। भावना की एकाग्रता आती है और उसकी उड़ान अमुक ऊँचाई तक होती है, तब एक प्रकार का चेतनात्मक स्पर्श जीवन में अनुभव होता हैं। महान कलाकार या साहित्यकार का उस काल का सर्जन या लेखन ऐसे स्पर्श के कारण उद्भव होता है। ऐसे सर्जन या साहित्य को श्रीभगवान की शक्ति का सर्जन गिन सकते हैं। इसके साथ सर्जक के स्थूल जीवन को नहीं जोड़ना चाहिए। इसप्रकार का विवेक योग्य मूल्यांकन के लिए आवश्यक है।**

('जीवनमंथन', आ. २, पृ. ३२४-३२५)

✤ ऐसे कितने ही संत-भक्त होते हैं, जिसे उनकी हृदय की नम्रता के कारण कोई शीघ्र नहीं समझ पाता । ऐसों को हृदय की उनकी नम्रता उनकी दिव्य चेतना का ढक्कन बन जाती है और उनका जहाँ-तहाँ रक्षण करती रहती है । तब भी उनकी प्रतिभा दबी ढंकी नहीं रह सकती—यदि हम हृदय से ऐसे गुण की कदरभक्तिवाले हो गये हों तो । ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. ३२५)

✤ चेतन हमेशा चाहता है कि अचेतन उसे जीत न सके । चेतन को अचेतन में संपूर्णतः प्रवेश प्राप्तकर वहाँ संपूर्ण अभिव्यक्ति करनी है । अचेतन एक ईंच भी वैसे का वैसा छोड़ता नहीं है । यहाँ चेतना का अर्थ जितना विस्तरित करें उतना कम है ।

('जीवनमंथन', आ. २, पृ. ३३०)

✤ हम शीघ्रता और हकीकत से अधिक प्रमाण का न मान लें और साथ ही दिव्यशक्ति की संभावनाओं को असंभव भी न मानें ।

खुला होना अर्थात् जीव प्रकार की समझ, रीति, मान्यता, आदत, आग्रह तथा मनादिकरण के प्राकृतिक धर्म से मुक्ति । **ऐसा खुला होना वह ज्ञानपूर्वक का खुला होनापन गिन सकते हैं । ऐसा खुला होनापन अर्थात् ज्ञानात्मक, शरणागति । ऐसा खुला होनापन अर्थात् जीव का जीवपन टालने की मंगलमय प्राथमिक भूमिका । खुला होना अर्थात् जीवप्रकृति का जीवप्रकृति में से मुक्ति प्राप्त कर चेतन के प्रदेश में कदम उठाने का मंगलाचरण ।**

श्रीसद्गुरु के वचन के तात्पर्य को —हार्द को— उसकी संपूर्ण ज्ञानात्मक दशा से ग्रहण करना यह कोई जैसा तैसा कर्म नहीं है । सभी इसे अपनी अपनी तरह से अधूरे ढंग से समझते हैं ।

कोई भी सिद्धि—और मुक्ति भी—प्राप्त करनी वह एक वस्तु है और उसे क्रियान्वित करके कार्यक्षेत्र में सफलतापूर्वक काम में लाना वह दूसरी वास्तविकता है । जैसे अमुक वैज्ञानिक शोध और उसका व्यवहार में उपयोग और क्रियान्विति दोनों भिन्न वस्तुएँ हैं वैसे ।

यदि साधक अपनी वृत्तिओं का रूपान्तर होते हुए हृदय से अनुभव कर सकता है, तब ही उसकी साधना सच्ची साधना है, नहीं तो वह बंधन है, उलझन है । ऐसा समझकर समझकर उसे ऐसी साधना को छोड़ने में हिचकिचाना नहीं चाहिए ।

हमारा हृदय दूसरों के सत्कर्तव्य की कदर से अपनेआप प्रेमभाव से भीग जाना चाहिए । परन्तु हम वैसा नहीं करेंगे तो दूसरों को ठीक नहीं लगेगा अथवा दूसरे अमुक प्रकार का मानेंगे ऐसा मन में न सोचें । हमारा ख्याल हम तक ही रहे तो उत्तम । हमें कदर जो करनी है, वह अपनी गुणग्राहकता के गुण विकसित करने और अपने जीवन में उतारने के लिए । ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. ३३५ से ३४०)

✣ कर्म का जिस तरह उपयोग होता है और उपयोग में जिस प्रकार की रुचि ली जाती है, उसीके अनुसार कर्म का परिणाम आना संभव है। कर्म के साथ भावना का संबंध रहता है ।

प्रत्येक कर्म में जागृतिपूर्वक का उसके उद्देश्य का ख्याल उसे आना चाहिए । इसप्रकार करने से उस प्रकार की अखंड जागृति उसमें होनी चाहिए । वैसी सतत एक-सी आई हुई जागृति फिर तो उसे अनायास ही आ जाएगी ।

यदि हमें कोई बड़ा माने, अच्छा मानकर सम्मान और आदर दे, उत्तम कदर करे, उत्तम आसन पर बिठाये आदि सम्मान दे तो हम उसके अधिकारी नहीं हैं ऐसा समझें, परन्तु सर्व के कृपापात्र हैं ऐसा मानें और सभी ने कृपाकर ऐसा अधिकार प्रेम से दिया है, ऐसी समझ रखते हुए, भगवान की भक्ति को योग्य रूप से प्राप्त करने में अभी देर है ऐसा समझकर ज्ञानपूर्वक नम्रता का सेवन करना और ईश्वर का आभार मानकर सभी की कृपा याचना करें ।

दूसरों के उपकार का बदला नहीं चुका सकें ऐसी परिस्थिति में हृदयपूर्वक अत्यधिक कदर और आदरभक्ति बुद्धि से जीवन्त रखें । यदि ऐसा नहीं करेंगे तो कृतघ्नता का दोष हमें लगेगा ।

परम तत्त्व को प्राप्त करने के उपायों की मात्र जाननेवाले की अपेक्षा उसकी प्राप्ति के मार्ग के विघ्नों को यथार्थरूप में जाननेवाले और हिम्मतकर उसे प्रभुकृपा से हटानेवाले—उत्तम माना गये हैं ।

हमें जब स्वार्थ की खूब चटपटी लगी होती है, तब हम जैसे हर किसी का सहीगलत सहन कर लेते हैं, वैसे परमार्थ के विषय में—प्रभुप्राप्ति करने के विषय में—भी जो जो प्रतिकूलता आती है, उसे प्रेमपूर्वक स्वीकारकर, तपस्याभाव से सहनकर, किसी के भी गुणदोष न देखकर सभी को अनुकूलता कर दें, वह प्रभुप्राप्ति होने में साधनरूप है । ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. ३४१ से ३४४)

✣ संबंधी, स्वजन के विचार तथा व्यवहार को न देखते हुए, उनके कल्याण की ओर ही हमें ध्यान रखना है । जब उन्हें समझ में आयेगा कि हम तो उनके कल्याण में ही तत्पर रहते हैं, तब वे हमारे प्रति अपना प्रतिकूल व्यवहार छोड़कर हमारा अनुसरण करना होगा तो करेंगे ।

जिसका हृदय सदा अविरत प्रसन्न है, उस पर शुभ संस्कार पड़ने से प्राप्त होनेवाले प्रत्येक प्रसंग में आनंद का अनुभव करने की मन को सतत आदत पड़ती है । फिर उसे कोई वस्तु, प्रसंग, घटना, अरुचिकर नहीं लगती । जिस-तिस में आनंद, रसज्ञता और माधुर्य को अनुभव करने का ज्ञानभक्तिपूर्वक का अभ्यास होने से मन को शांति मिलती है, प्रसन्नता होती है तथा उसकी तेजस्विता और शक्ति और ज्यादा बढ़ती है ।

व्यवहार के समय व्यवहार और साधना के समय साधना, इसतरह दो हिस्से कर देने से नहीं चलेगा । साधना का भाव यदि प्रेमभक्तिपूर्वक, साफ दिलवाला, पूरी तरह हो तो वैसी भावना का ज्ञानपूर्वक उपयोग सर्व क्षेत्र में किया करें, तो साधक के स्वभाव का रूपान्तर हुआ करेगा, अन्यथा नहीं । ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. ३४५-३४६)

✣ जब हम समता-तटस्थतापूर्वक पृथक्करण करते हों, उस समय हृदय का महत्त्व तो नामस्मरण में हुआ करता है और पृथक्करण करने से

दूसरी जगह भटकने का मूल कारण समझ में आ जाता है और उसका निराकरण हो, इसतरह का पैमाना जीवन में आना चाहिए ।

('जीवनमंथन', आ. २, पृ. ३५२-३५३)

✤ जैसे व्यवहार की सारी चीजें इन्द्रियों से परखी जाती हैं। उनका आकलन भी होता है, उसी तरह **श्रीभगवान का जो भाव है और जो अनिर्वचनीय है, उसे पाने या परखने के लिए जो शक्ति हमें काम में आये उसका नाम श्रद्धा । श्रद्धा अर्थात् तो आंतरदृष्टि भी ।**

('जीवनमंथन', आ. २, पृ. ३५३)

✤ श्रीभगवान के दर्शन अर्थात् अमुक काल्पनिक भाव, मन की कोई कल्पना नहीं है । संस्कार परंपरागत आई हुई हम में जो एक प्रकार की भावना है, वह भी नहीं। **श्रीभगवान के भाव का हमारे में स्पष्ट होना इसका अर्थ यह है कि उस भाव के अंदर रहे तत्त्व जैसे कि उसकी सचराचरता, अनंत, अमर्यादित शक्ति, अनेक प्रकार के गुणों की और गुणों से पर की शक्ति, उसकी अविकल्पता और निर्विकल्पता आदि हमारे में प्रत्यक्ष अनुभव रूप प्रकट हो, तब उसके दर्शन हुए गिना जाएगा । श्रीभगवान ने जो यह सृष्टि रची है, उसके पीछे कोई गूढ़ उद्देश्य होगा ही—है, उस उद्देश्य को पूरा करने में प्रत्येक जीव जुड़ा है । हमें आत्मा की स्थिति का भान होते, उस उद्देश्य के स्पष्ट दर्शन होते हैं और ऐसे हम उसके यंत्र बनते हैं । प्रत्येक पल ऐसी भागवत स्थिति में निरहंकार रूप से और अभेदभाव में रहा जाय और प्रत्येक पल ऐसे भागवती कार्य हुआ करे इसका नाम श्रीभगवान के दर्शन ।**

('जीवनमंथन', आ. २, पृ. ३४)

✤ श्रीभगवान के अनुभव के लिए अमुक शर्त पूरी करनी होती है। उसमें से अमुक निम्न अनुसार हो सकती है ।

श्री भगवान के अस्तित्व का हृदय की ज्ञानभक्तिपूर्वक का निश्चय, 'सर्वरूप श्रीभगवान यह मेरी आत्मा हैं' ऐसी गहरी अंतर की ज्ञानपूर्वक की समझ, सर्वरूप भगवान ही है, ऐसा हृदय में हृदय से

ज्ञानभक्तिपूर्वक का स्वीकार, अपने आपकी संपूर्ण रूप से पहचान, उसे स्वकर्म से संतोष देना ही उसकी पक्की समझ, ऐसा हम श्रद्धा से प्रत्येक दिन निश्चयात्मक बुद्धि से, हृदय से हृदय में यह सब विकसित करते रहें और यह सब अति गहरी समझ से उतार कर उसका अनुभव किया करें तो हम श्रीभगवान के हैं और वे हमारे हैं, ऐसे तत्त्व का अनुभव होकर ही रहेगा ।'

('जीवनमंथन', आ. २, पृ. ४५)

✣ सारा समाज उन्नति के सर्वोत्कृष्ट शिखर पर पहुँच जाय ऐसा होना संभव नहीं लगता । व्यक्ति बढ़ सकता है और बढ़ेगा । समाज भी व्यक्ति की ओर टकटकी लगाये रहता है, व्यक्ति से संचालित होता है और व्यक्ति से अपनी प्राण-शक्ति बढ़ती वह अनुभव करता है । समाज व्यक्तियों से बना है । इस प्रकार व्यक्ति जितना ऊपर बढ़ने के लिए संघर्ष करेगा और अधिक से अधिक व्यक्तियों उच्च जीवन प्राप्त करने में रुचि लेकर उसके प्रति निष्ठा जितनी होगी, उतने प्रमाण में समाज का भी उद्धार होगा, यह बात निश्चित है ।

('जीवनमंथन', आ. २, पृ. ३५५)

✣ प्रत्येक समाज की अपनी विशिष्ट परम्परा और संस्कृति होती है, जिसे हम विशिष्ट गुणशक्ति भी कह सकते हैं । उसकी प्रेरणा प्राप्तकर वह चलें तो उसका विकास हो सकता है । प्रत्येक समाज की ऐसी स्वतंत्र संस्कृति होती ही है । ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. ३५६)

✣ **मनुष्य के जीवन में जो अव्यक्त ईश्वर का स्वरूप है, उसे एकाग्र और केन्द्रित साधना के भाव द्वारा प्रत्यक्ष करके उसे क्रिया के प्रवाह स्वरूप में उसकी कृपा से प्रवाह में रखने का करें, उसका नाम ही साक्षात्कार । हमारे में जो अव्यक्त प्रभुमय जीवन है, उसे प्रेमभक्तिज्ञानपूर्वक की चेतनायुक्त जागृतिमय साधना के प्रत्येक पल के अभ्यास द्वारा, जीवन में प्रत्यक्ष काम करते अनुभव करना ही है साक्षात्कार ।**

('जीवनमंथन', आ. २, पृ. ३४२-३४३)

- श्रीसद्‌गुरु साधक की कमजोरियों के प्रति कठिन से कठिन होकर उसे उसका पूरी तरह भान करवाता है, जबकि दूसरों की कमजोरियों के प्रति पूरी तरह ज्ञानपूर्वक, क्षमाशील रहने, साधक को भी वे सूचित करते हैं । ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. ३५७)
- दूसरों की कमजोरियों के प्रति जब **जीव** को भान होता है, उसे यदि पूरीतरह ज्ञानयुक्त तटस्थता न आ पाये तो उस अवसर पर वह जीव उसके प्रति नरक पर मक्खी जैसे भिनभिनाती हैं, वैसे वह भिनभिनाने लगता है । ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. ३५७)
- हमारे जीवन में गहराई में जड़ डालकर बैठे हुए सर्व संस्कार, विचार, वृत्ति, समझ, मान्यताएँ आदि आदि का विरासत गुरु का हुक्म होते ही एकदम बदल जाएँगी ऐसा मानना यह कोरी अज्ञानता है । श्रीसद्‌गुरु तो दृष्टि देता है । विभिन्न परिस्थितिओं में योग्य विचार के लिए हमें प्रेरित करता है । बाकी सबकुछ तो हमें ही करना होता है । ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. ३५८)
- श्रीभगवान के चरणकमलों में ताजे ही फूल चढ़ाने चाहिए, उस तरह यौवन में प्रभुमय जीवन बिताना जिसे स्वीकार्य है, वही अधिक उचित है । यौवन यह ताजे फूल की तरह है । वृद्धावस्था में अधिकतर कोई गोविंद के गुण नहीं गा पाता । जीवन की साधना इतनी सरल नहीं है । साधना में आवश्यक साहस, हिंमत, अडिगता, पुरुषार्थ का बल, उत्साह, मेहनत, धीरज आदि गुण यौवन में ही अधिक खिले रहते हैं । वैसे समय में यदि जीवन की साधना में यदि अंदर पैठा जा सके तो ऐसे अनेक गुणों का उत्तरोत्तर विकास होता रहेगा । ऐसे गुण उनकी श्रेष्ठ पैमाने पर पहुँचकर परिपक्व होकर दिव्यता के अंशरूप परिवर्तन पा सकते हैं । तब वे गुण, गुण नहीं रहते पर शक्तिरूप में प्रकट होते हैं । तब ऐसा मनुष्य वृद्ध होने पर भी उसमें बूढ़ापन नहीं होगा । ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. ३६०)
- जीवन की साधना यह हँसीखेल नहीं है । ये तो मर्दानगी के खेल हैं । इसके महत्त्व का, गँभीरता का ख्याल हमें पूरी तरह नहीं होता

है। सर्व प्रकार से, सर्व भाव से जीवन को न्योछावर करते हुए त्याग, बलिदान और समर्पण करने की उत्कट भावना हरपल जागृत रखकर हमें न्योछावर होना है। ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. ३६०)

✤ दूसरों में प्रेमभक्ति रखते हुए भी हमें तो अपनेआप में ही मस्त रहना है। **हो सके उतने निःसंग रहें - स्थूल रूप से और सूक्ष्म रूप से दोनों तरह से, हमारे में रहे मंतव्य, गिनती, माप, मूल्यांकन, उलझनें, पसंदनापसंद, रागद्वेष, समझ, संस्कार—सभी हमारे संगी हैं। अब हमें इनमें से निःसंग होना है।**

('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. १२)

✤ हमें पसंद आते विचार और कार्य, जिसे अनुकूल न आते हों, उसके प्रति अवगणना की वृत्ति, उसके सात्त्विक कार्य के प्रति बेदरकार वृत्ति आदि हम में नहीं आने चाहिए। ऐसी अनुदारता और असहिष्णुता निकल जानी चाहिए। ('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. १२-१३)

✤ प्रभु का संपूर्ण यंत्र बननेवाला **जीव** सकल कुछ किसका संपूर्ण ज्ञान रखता है, ऐसी हकीकत और समझ योग्य नहीं। उसके अनुभव के विषयों में तो अपवाद रूप से वैसा ज्ञान निमित्त के कारण प्रभुकृपा से कभी कभी ही उदय होता है। ('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. २१)

✤ जिसके माध्यम से हमें प्राप्त करना है, उसके दिल में हमारा दिल एक कर दें और यदि हम उसके ही पूरीतरह हो सकें तो उसका दिल हम पर प्रकट होता है। ('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. २१)

✤ जिसके पास से प्राप्त करना है, उसके प्रति कृतज्ञता की भावना जागनी चाहिए। जिसके द्वारा हमारे दिल में भाव प्रकट होते हैं, उस भाव के परिणाम स्वरूप कृतज्ञता की भावना का प्राकट्य सहज होता है। और जैसे-जैसे फिर **भाव** का स्वरूप लेता है वैसे-वैसे हम अनुभव करते हैं कि कृतज्ञता की भावना ही **इस** मार्ग के आगे प्रवास का परिणाम है और इससे अधिक आगे बढ़ने का कारण भी वह है।

('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. २१-२२)

✤ अशिष्ट और धूर्त वेश की आड़ में साधना करनेवाले साधक को गुप्तरूप में शांति से साधना करने की सरलता मिल जाती है तथा इससे दूसरे किसी ढंग से कदाचित् ही सीख सकें ऐसी नम्रता के पाठ समाज के हाथों सीखने मिलते हैं । मानअपमान से पर होने के अभ्यास की संभावना भी उसमें से मिलती है और परिणाम स्वरूप सभी के प्रति सद्भाव रखने की आवश्यक तालीम इससे मिलती है— यदि सतत हेतु का लक्ष और जागृति रख सकें तो ।

('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. ३१)

✤ 'वृत्ति का संयम करो', 'संयम करो' और अमुक 'यह पालन करो या वह पालन करो' ऐसे पुकारों से या ऐसा बोध देने से कहीं किसी को अधिक नहीं मिलेगा। जब मनुष्य को अपने जीवनध्येय की दिल में सचमुच तमन्नायुक्त व्याकुलता होती है, तभी जीवनविकास के मार्ग का सही ढंग का काम होता अनुभव कर सकते हैं ।

('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. ३८)

✤ कोई कीमती वस्तु खो गई हो तो वह मिले नहीं, वहाँ तक हमारा लक्ष्य स्वयं दूसरी प्रवृत्तियाँ करते समय भी सतत जारी रहता है, वैसे हमारे जीवनलक्ष का जागृत ख्याल और भगवान का स्मरण हमारी इतर सकल प्रवृत्ति में रहना चाहिए ।

('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. ४१)

✤ खराब अनुभव हो तब विचलित न हों । वह भी बादल की तरह बिखर जानेवाले हैं ।

जीवनध्येय के प्रति भावना, किसी भी प्रकार से दैनिक कर्मव्यवहार में अखंडरूप से बहा करे और आंतरिक करणों के *जीव*प्रकार के प्रवाह में न बहकर तथा उसमें ताटस्थ्य, समता, शांति, प्रसन्नता आदि प्रकट होते जाय और वैसा करने हृदय से जागृतिपूर्वक प्रभुकृपा से संघर्षरत रहे उसका नाम सच्ची साधना । ('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. ४९-५०)

✤ जो भी कोई **जीव**दशा का हों या प्रकट हों यदि उनका जागृतिपूर्वक इनकार होता जाए और यदि उसकी लंबी परम्परा न चले और

मनादिकरण भावना में एकाग्रता से रमा करते अनुभव हों तो सच्चा इनकार हुआ ऐसा गिना जा सकता है। ऐसी कला में अखंडता बनी रहे उस समय से सही साधना की शुरूआत होती है।

('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. ५०)

निरंतरता की भावावस्था में से चेतन का व्यक्त होनापन स्वयं प्रस्फुरित होता है।

दिल में और दिल से प्रकट हुए भाव में कोई गिनती नहीं रहती, तथा उसके प्रकार नहीं उठते। जहाँ कोई गिनती है, वहाँ दिल पूरा प्रकट नहीं हुआ है, ऐसा मानें।

मनुष्य क्या काम करता है, संसार के पैमाने पर उसका व्यवहार कैसा है, उसके ऊपर उसकी जीवकक्षा या जीवन की उच्चता का आधार जरा भी नहीं है। सही आधार तो उसके अंदर का सत्त्व कैसा है और कैसा निर्माण होता जा रहा है, उस पर है, इसलिए वह जहाँ तक हम नहीं जानते हैं, वहाँ तक हमें किसी का भी मूल्यांकन करने का सही अधिकार नहीं है।

✤ दूसरा, दूसरी बातों में—जैसे कि राजनीति, समाजसेवा, तत्त्वज्ञान के वाद भी—इन सभी में आग्रह अर्थात् एक प्रकार का सूक्ष्म अहम्, फिर भले ही वह विस्तृत समझ के प्रकार का हो !

('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. ५१, ५३, ७३, १००)

✤ धर्म में भी अहम्भरे आग्रह होते हैं। हमारा ही धर्म सही और उसी अनुसार दूसरे जीयें तो ही उनका कल्याण हो या जल्दी या अधिक कल्याण होगा, ऐसा मताग्रह होता है। इसी तरह आध्यात्मिक मार्ग में भी देखा जाता है।

जगत में वाद, मत, पद्धति आदि के जो संघर्षण फैले हैं, उसका मूल इस अहम् में है। ('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. १००)

✤ दूसरों के दोषों की ओर नजर डालने के बदले उनके गुणों की ओर दिल में यदि दृष्टि रहा करे, तो वैसे गुण हमारे में भी विकसित हो सकते हैं। साधना में ही क्या, जीवन के किसी भी क्षेत्र में,

कदरभावना और गुणग्राहकता का गुण अति उपयोगी और जरूरी है । हमारा लक्ष जिस पर रहेगा, वह तत्त्व पहले या देर से हम में आएगा । ('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. १०३)

✣ समर्थ पुरुष काल का निर्माण करता है या काल समर्थ पुरुष को पैदा करता है, इस तात्त्विक चर्चा को जाने दें । इतना तो निर्विवाद है कि समर्थ पुरुष या मुक्तात्मा काल के निर्माता अवश्य होते हैं । वे काल के प्रभाव अनुसार व्यवहार करते हैं, वह हकीकत सत्य है, परन्तु वह उसमें बहकर नहीं, उस पर तैरते रहकर, अवतार स्वयं तो काल की असर से पर होता है, पर जगत में उनके अवतार के समय की दूसरी किसी रीति से न भरी जा सके ऐसी चेतना के आविर्भाव की माँग वे पूर्ति करते हैं और वही उनके देहधारण का हेतु होता है ।

जिस किसी परम पुरुष ने जो कुछ भी जगत में किया, वह उनके युगकाल के धर्मानुसार किया और उस काल के धर्मप्रमाण में उस तरह से जगत में उनका व्यक्तत्व हुआ । इससे क्या वे इतने में ही समाये थे, उतने ही उनके शक्ति-सामर्थ्य थे, ऐसा मानना इसमें विचारदोष दिखाई देता है । ('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. १११)

✣ हमें तो सर्व धर्म के प्रति, धर्मों के मूल आचार्यों के प्रति तथा सर्व सत्पुरुष या मुक्तात्मा के प्रति हृदय का भक्तिपूर्ण छलकता सद्भाव पूरीतरह बनाये रखना है ।

सब के प्रति ज्ञानयुक्त सद्भाव पूरीतरह रखे बिना सब के प्रति समत्व की भावना नहीं आ सकती ।

Exclusively - अकेला, अलगरूप से भक्तियोग वह भक्तियोग नहीं है, ज्ञानयोग वह ज्ञानयोग नहीं, कर्मयोग वह कर्मयोग नहीं है । जीवनसाधना में वे सभी एकदूसरे में परस्पर ओतप्रोत हो गये होते हैं ।

जहाँ तक हम में तटस्थता, समता, साक्षीभाव पूरीतरह न आये हो, वहाँ तक हम किसी को भी योग्य रूप में तौल नहीं पाएँगे । इससे

दूसरों को खराब देखना उसकी अपेक्षा हम उसमें से पराङ्‌मुख हो जाय वह हमारे श्रेय के लिए उत्तम है ।

('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. ११२, ११४)

- हम मित्रों को किस तरह अधिक उपयोगी हो सकें और उन्हें किस तरह अधिक महत्त्व दिया जाय और हम स्वयं तो शून्य से शून्य रह सकें ऐसे आचरण से शरणागति की भावना विकसित होती आती है । यद्यपि ऐसे आचरण से अनेक बार प्रत्यक्ष गैरलाभ भी होता है, किन्तु ऐसे गैरलाभ में भी सच्चा लाभ समाहित होता है, वह अंत में पता लगे बिना नहीं रहेगा । ('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. ११६)
- जीवनपथ में आनेवाले विघ्न, कठिनाइयाँ, उलझनें तो उल्टे आध्यात्मिक तंदुरस्ती और बल को पुष्ट करनेवाली औषधि जैसे प्रतीत होते हैं— यदि हमारी उनके प्रति जीवंत, वेधक, सारग्राही दृष्टि पैदा हुई हो तो । ('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. ११६)
- दूसरों के सद्‌गुण के प्रति सहज आकर्षण और उसकी कदर साधक के जीवन में यदि व्यक्त होती अनुभूत न हो तो अपनी दिशा गलत है ऐसा समझें । ('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. ११९)
- दूसरे किसी **जीव** के गुणगान या बखान सुनते हुए यदि मन में द्वेष-ईर्ष्या या ऐसी कोई वृत्ति उद्‌भव हो और उसके प्रतिकाररूप से उस जीव की हमारी समझ की टेढ़ीमेढ़ी बात हृदय में लगे या व्यक्त हो जाय तो समझ लें कि दूसरों के सद्‌गुण के प्रति सहज आकर्षण अभी हम में आया नहीं है और इतने अंश में सद्‌भाव की साधना लुली अर्थात् अधूरी समझें ।
- **हृदय यह शब्द स्थलवाचक नहीं है, परन्तु कक्षावाचक और भूमिकावाचक भी है ।** ('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. १२०)
- जीवन मात्र कुछ गुणों का समूह नहीं हैं । गुणों में जीवन है, यह बात सच है । सद्‌गुण से जीवन शोभा देता है यह भी सही है, परन्तु जीवन की सच्ची वास्तविकता और उसकी मर्यादा अकेले गुण के घेरे में बंद नहीं रह सकती । वह उसके पार भी है ।

इसलिए गुण यह हमारा लक्ष्य नहीं है। गुणों को प्रेरित करनेवाली जो शक्ति और गुणों में निहित जो शक्ति, उस शक्ति का हमारे जीवन में ही प्राकट्य हो और वह हमारे सकल कर्मों में, व्यवहार आचरण में कार्यसाधक होती हुई अनुभव करें यही हमारा ध्येय होना चाहिए ।

('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. १२१)

- मनुष्य का विकास ऐसे तो प्रकृति के अंचल में हुआ ही करता है पर वह प्रकृति में विकास होता जाता है, चेतन में नहीं। वह चेतनतत्त्व प्रत्येक के जीवन का जो प्रकृति के अंचल में पड़ा हुआ है, उसके द्वारा व्यक्त होता है, अर्थात् चेतन को व्यक्त करने के लिए प्रकृति के भाव को चेतनाभिमुख करना होता है । ('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. १२७)
- बहनों और माताओं के साथ का निर्मल भावसंबंध यह पतन करनेवाला साधन नहीं, परन्तु बल और प्रेरणा देनेवाला साधन है । उस संबंध से अंतर के हार्द में जीवनविकास के ध्येय का ज्ञानभक्तिपूर्वक का भान पैदा होना चाहिए । ('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. १४१)
- संबंध बढ़े वैसे वैसे निःसंग की भावना भी सविशेष आती जाय उस ओर लक्ष देना चाहिए । सत्संग की भावना रखने से यानी कि जो कुछ मिले उसके साथ जीवनविकास के उद्देश्य से ज्ञान की भावना फलीभूत होने की एकमात्र एकाग्र और केन्द्रित दृष्टि, वृत्ति और भाव प्रकट हो तो ऐसे सत्संग से निःसंग की भावना यानी कि आत्मा की भावना बनती जाती है ।

  सभी प्रकार के संबंध और कर्म भी भावना पैदा करने के लिए हैं और जीवनविकास के निर्माण और चुनाई के लिए हैं। उसके बिना संबंध या कर्म का दूसरा कोई अर्थ या उद्देश्य नहीं है ।

  ('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. १४० से १४२)
- भावना में जब एकाग्रता और केन्द्रितता परिवर्तित हो और स्थिर रहे यानी कि उसमें ही इतनी तो गाढ तन्मयता जन्म ले कि आगेपीछे का भान भी न रहे। ऐसी स्थिति बार-बार जब हो जाती हो, तब की स्थिति में संपूर्ण ऐसी भावावस्था हो जाने की तैयारी हो, तब जैसा

होने का दिल हो, उसकी सद्‌भावना सचेतनरूप से यदि हम हृदय में रख सके, तो हमारी प्रगति बहु शीघ्र होगी ।

('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. १४६)

- हमें जिसके प्रति अरुचि हो या बने उसे ज्ञानभानपूर्वक खास सविशेष प्रेम से चाहना और वह भी हमारे कल्याण के लिए वैसा करना है ।
- व्यवहार की बाह्य प्रवृत्तिओं से अलिप्त रहना है, वह बात सच है, परन्तु जो प्रवृत्ति आ मिली हो, उस ओर एक प्रकार की अरुचि की वृत्ति, त्रास या ऊब की वृत्ति आती हो और इसके कारण उसमें से भाग जाने की वृत्ति पैदा होती हो, तो वह योग्य नहीं है । यह भी एक प्रकार का तमोगुण है ।
- सत्संग की महिमा बहुत गाई गई है । वह इसलिए कि मुक्तात्मा के साथ प्रेमभक्तिज्ञानपूर्वक के आंतरिक परिचय से जीवन में प्रेरणात्मक भाव आता है और ऐसे भाव का सदुपयोग अंतर्मुखता विकसित करने के लिए होता है ।
- शोक होने पर वह भी एक प्रकार की भावना पैदा होती है । उसका भी नामस्मरण में उपयोग हो सकता है, उससे एकाग्रता ला सकते हैं । किसी भी भाव, मनोभाव को रचनात्मक साधना के उपयोग में ले सकते हैं ।
- **जीवप्रकार की कोई भी वृत्ति के बल से मुक्त, ऐसा जो बिलकुल बल बिना का जीव वही सच्ची अबला ।**

  जब संपूर्ण निरासक्ति, निर्ममत्व, निराग्रह, निरहंकारिता आदि जीवन में काम करते हो जाते हैं, तभी सही रूप से श्रीभगवान पर आधार रख सकते हैं ।

  आध्यात्म पथ में 'निर्धन' हो जाना है यानी कि जीवप्रकार का—जीवप्रकार की वृत्तिओं का—खजाना है, उसे खपाकर उस अर्थ में पूरीतरह भिखारी बनना है ।

('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. १६८-७२-७३-७५-९०-९७)

✣ गुरुभाव अर्थात् गुरु स्वयं नहीं अथवा उनका शरीर भी नहीं, परन्तु जीवन का विकास होने के लिए हमें जो उत्कट तमन्ना जागी होती है, उसे एकाग्र और केन्द्रित करके उसमें से प्रेरक बल और चेतनवंत प्राण प्राप्त करने के लिए जो लक्ष्य, जो साधन है वह ।

('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. २०३)

✣ हृदय की अज्ञात प्रेमभक्ति से ऋषि-मुनिओं की सेवा करने में इतिकर्तव्यता माननेवाले भी तैरकर पार गये उसके शबरी जैसे उदाहरण भी हैं। इसलिए जीवनविकास की साधना में एकाग्र और केन्द्रित होते जाँय तो विविध गुणशक्तियों साथ में विकसित होती हैं और ऐसा करते करते पूर्णत्व की कक्षा में भी पहुँच सकते हैं ।

✣ साधना में कालबद्ध योजना की तरह ऐसे किसी काल का—अमुक समय के अंत में अमुक स्थिति या भावना हो ऐसी निश्चितता का—निर्णितता का स्थान नहीं हो सकता। जो कोई अपने 'आज' को योग्य रूप से सँभालता है, उसका 'कल' योग्य रूप लेनेवाला ही है ।

✣ अपने मन अथवा भाव को स्थिर करने के लिए साकार आलंबन की जरूरत पैदा होती है। इससे एक या दूसरे प्रकार से मानवसमाज में मूर्तिपूजा के संस्कार जीवंत रहेगा। श्रीसद्गुरु की प्रथा के पीछे का अंतर्गत हेतु तो एक आलंबन रूप का है ।

✣ सेवा के प्रेम से तो भेद कम हो अथवा घटने लगे, परन्तु भेद की मात्रा सेवाक्षेत्र में यदि बढ़ी हुई अनुभव होती हो तो उसे सच्चे अर्थ में 'सेवा' गिन सकते है या नहीं यह सोचना रहा ।

✣ **सही और इच्छित योग्य चमत्कार तो प्रकृति का रूपान्तर हो वह है। भावना में अखंडता उत्पन्न होते ही मन में नीरवता, बुद्धि में प्रज्ञावस्था, चित्त में चेतन की भावना, प्राण में एकमात्र भगवद्भावना की भावना और अहम् में प्रभुप्रेरित शक्ति, फलित होते होते शरणागति को प्रभुकृपा से प्राप्त करेंगे। हमें तो इसप्रकार के भावात्मक-परिणामजनक चमत्कार की इच्छा रखनी है ।** ('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. २१३, २१५, २२५, २६९)

- ✤ अव्यक्त में आसक्ति होना यह अधिक दुविधाजनक है। साकार की भक्ति प्रमाण में अधिक सुगम है। इससे साधना के लिए भक्ति विशेष सानुकूल है। भक्ति से ज्ञान प्रकट होता है और ज्ञान से योग प्रकट होता है और वे सभी में से कर्मकौशल्य भी पैदा होता है।
('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. २७७)

- ✤ साधन के अभ्यास से साकारता अर्थात् उसका भाव और उसमें से पैदा होती एकाग्रता, केन्द्रितता एवं अटूटता और उसके पश्चात् उसका होता जाता विस्तार।

जैसे शिक्षण में आगे बढ़ने के लिए साकार की शरण लेना वह शिक्षक, उसी तरह जीवनविकास के पथ में अवलंबन लेने का जो योग्य साकार साधन वह श्रीसद्गुरु।

कर्म करने पर भी उस कर्म के पीछे की इच्छा कोई लौकिक प्रकार की नहीं होनी चाहिए, किन्तु साधना के भाव को प्रेरक बल रूप बन सके इसतरह और ऐसे भाव से प्रभुप्रीत्यर्थ प्राप्त कर्मों को यज्ञ भाव से हमें करते रहना है।

मौन तो अच्छा ही है, परन्तु वह मौन रूढ़ प्रकार का, शुष्क कोरा कोरा नहीं होना चाहिए। मौन में आंतरिक प्रवाह भावनामय प्रकट हों और वैसा न हो, उस समय में मननचिंत्वन की प्रक्रिया चलती रहे, यानी कि किसी न किसी प्रकार मौन पालते समय साधना के रचनात्मक साधन में समर्पित रहा करें वही मौन विकासात्मक है।

संसारी मनुष्य और साधक दोनों जन सांसारिक, व्यावहारिक कर्म करते होंगे। अर्थात् दोनों के काम का प्रकार बाह्य रूप से तो एक ही होने पर भी कर्म के पीछे रहे भाव में नींव का अंतर होता है। संसारी का लक्ष तो संसार के प्रति रहेगा और उसके चित्त में संसार जन्म लेगा, जबकि साधक अपनी उस भावना को विशेष महत्त्व दे रहा होगा। यदि ऐसा न कर पा रहा हो तो वह उसकी कमजोरी है। उसकी कमजोरी उसका दोष है। उसमें से उसे निकल जाना चाहिए। इसलिए साधक जब सचमुच ही सभी प्रकार के कर्म करते करते अंतर में एकमात्र

साधना के ही भाव की एकाग्रतायुक्त ज्ञानात्मक धुन में प्रकट हो रहा होगा, तब वैसे वैसे कर्म के क्षेत्रप्रकार के संस्कार उसके चित्त पर नहीं पड़ सकते, परन्तु उसके बल में इससे तो बढ़ोत्तरी होगी ।

('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. २७८, २७९, २८०, २९०)

✣ श्रीसद्‌गुरु के साथ एकता यानी श्रीसद्‌गुरु जैसा होना है ऐसा नहीं है, परन्तु इसका अर्थ तो इतना ही है कि हृदय हृदय के साथ मिलकर एकरस हो गया हो और दिल-दिल का ज्ञानभक्तिपूर्वक का तादात्म्यभाव पूरीतरह प्रकट हो जाय और एक के दिल में से दूसरे के प्रति की भावना दूसरे के दिल को भी मिल सके ऐसे दिल की उस प्रकार की एकता और वैसा होने के लिए हमें प्रयत्न करना है । बाकी हमें एकदूसरे जैसा नहीं होना है । **हमें तो प्रभु जैसा होना है । प्रभु की जो सगुण भावना है, उसकी धारणानुसार अपने जीवन का विकास करना है ।**

कर्म योग्य प्रकार के हुआ करे और उसमें व्यवस्था प्रकट हो उस पर झुकाव और महत्त्व न देते हुए कर्म करते करते मन का भाव हमारी साधना के अनुकूल अंतर्गतरूप से बहा करे, उसे महत्त्व देना है । भाव को महत्त्व देते उस प्रकार होते कर्म में यद्वातद्वापन पैदा होगा, यह मान्यता वह एक भ्रम है । कर्मकौशल्य एकाग्रता में से प्रकट होता है ।

भाव विकसित होकर एकाग्र और केन्द्रित होता जाता है । उसका प्रत्यक्ष लक्षण यह है कि वृत्तियाँ शमित और स्थित होती हैं, वह है ।

जैसे किसी निपुण बजानेवाले या प्रवीण गानेवाले को थोड़ा भी सूर बेसुरा होने पर तुरन्त पता चलता है वैसे हमें कहीं भाव की धुन से थोड़ा भी भिन्न होने पर एकदम हचकोला लगना चाहिए । इसतरह का अनुभव यदि हो तो हम भाव की धुन में हैं समझें ।

('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. २९५ से २९९)

✣ किसी भी प्रकार की अन्यथावृत्ति किसी के विषय में न आने दें और करनी भी नहीं, क्योंकि उसमें अपना अहित है । मानो कि हमें वैसा

होने का सच्चा योग्य कारण मिला हो तो भी वैसा होने से उस अन्यथावृत्ति के वैसे संस्कार हम में ही पड़ेंगे, जिससे हम अपना अहित स्वयं कर रहे हैं, ऐसा साधक को लगना चाहिए । इससे सचमुच तो साधनापथ में सभी के प्रति किस प्रकार केवल सद्‌भाव विकसित हो, उस ओर लक्ष रखना चाहिए । यथार्थरूप से होती हुई साधना के भाव में से तो वैसा सद्‌भाव ही प्रकट होता रहता है ।

('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. ३००)

- हमने जो भाव दृढ़ करने का निश्चय किया हो, उस निर्णय को मदद करे ऐसा जो सोचने का बने वह तो समझो उत्तम, परन्तु जो इधरउधर प्रकट हो, तब उसके प्रवाह में बहना न चाहिये, इतनी जागृति रखनी चाहिए ।
- एकाग्रता का भी एक प्रकार का आनंद होता है । कुछ भी किसी में प्रकट हुई एकाग्रता में से भाव और आनंद जन्म लेते हैं । जैसे जैसे एकाग्रता विकसित होती जाती है, वैसे वैसे भाव अधिक और अधिक खिलता जाता है ।
- करुणा से दूसरों के लिए प्रेरित हो जाना होता हों तो हमारे स्वयं के लिए ही प्रथम करुणा क्यों नहीं ? हम हमारे अपने लिए तो हृदय की योग्य प्रार्थना करने को पूरे समर्थ हुए नहीं हैं, वहाँ दूसरे के लिए वैसा करने की वृत्ति करना यह गुमराह होने के समान है ।

('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. ३०१ से ३०४, ३११)

- गीताजी में जो '**भजते**' शब्दप्रयोग आता है, उसका सामान्य अर्थ मात्र वाणी द्वारा या भाव द्वारा भजन करता है ऐसा अर्थ या भाव नहीं होता, पर हमारी संपूर्ण चेतना प्रत्येक पल पल प्रभु के भक्तिभाव की सतत और अटूट धारा से उमड़ती रहे वह '**भजते**' का अर्थ है । फिर मनसा, वाचा, कर्मणा भजने के अलावा अथवा उससे अधिक स्पष्ट अर्थ में '**सम्यग् व्यवसितो हि सः**' कहा है । यानी कि उसके जीवन के प्रत्येक आचारविचार योगयोग्य चेतनात्मक प्रकार के प्रकट हुए होने चाहिए, उसके अंदर के सभी मनादिकरणों में

सुमेल, सुसंवाद होना चाहिए, यानी कि वे सुव्यवस्थित होने चाहिए एवं उसके जीवन में और जीवन के सर्व क्षेत्र और सर्व पहलुओं में उसमें भावपूर्ण योगयोग्य व्यवस्थिति प्रकट हुई होगी और इससे उसका जीवनव्यवसाय भी उसप्रकार का होगा, ऐसा भक्त **'क्षिप्रम्'** शीघ्र धर्मात्मा हो जाता है, चिर शांति पाता है, अखंड धारावत् हृदय का आह्लाद पाता है। ऐसे भक्त के लिए भगवान वचन देते हैं कि उसकी भक्ति मिथ्या नहीं होती, वह नष्ट नहीं होता है।

('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. ३२६)

✣ **'निर्बल के बल राम' का सच्चा अर्थ तो यह है कि जब *जीव*दशा में से संपूर्ण अहम् का लय हो जाय और अंतिम घड़ी तक सभी पुरुषार्थ करते हुए 'हारे को हरिनाम' ऐसी स्थिति प्राप्त हो, तब 'निर्बल के बल राम' ऐसे हम सच्चे भाव से पुकार सकेंगे।**

('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. ३२३)

✣ बहुत से भाष्यकार अमुक सांप्रदायिक मत को पोषण देनेवाले या अपनी रुचि या कक्षा अनुसार या स्वयं के Mission प्रभुप्रेरित उस स्थानकाल के लिए उनके कर्तव्य अनुसार मूल श्लोक का अर्थ करते होते हैं और वह उनके लिए योग्य भी है। पर हमें तो मूल श्लोक का ही स्वयं अपने जीवनयोग के अनुकूल जिस तरह अर्थ सूझे इसतरह उसमें से उसका हार्द पकड़ना है।

('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. ३२८)

✣ **ज्ञान का सही अर्थ समझ नहीं पर वैसा जीवन।**

('जीवनसंशोधन', आ. ४, पृ. ३६६)

✣ मनुष्य के संयोगों से, बुद्धि के प्रभाव से, मन के अभिमान से, विद्वत्ता के घमंड से, जीवनव्यवहार में मिले लाभ तथा जय और यश से, आगेपीछे के लोगों की बोलबाला से, वातावरण से आदि ऐसे अनेक कारणों से जीव में एकप्रकार की अहंप्रेरित personality का—विशिष्टतायुक्त व्यक्तित्व की—परत जमती जाती है और वह जीवन में विकासपथ में भारी विघ्नरूप बनता जाता है। अहंप्रेरित विशिष्ट

व्यक्तित्व के या ऐसी दूसरी वृत्ति के ढ़ाचे में यानी कि अभिमन्यु के चक्रव्यूह में हम घुसे तो फिर तो भुलभुलैया में भूले पड़कर भटका करेंगे। ऐसे चक्रव्यूह में से बाहर खींच निकालनेवाला यदि कोई हो तो वह जीवनविकास की साधना है। उस साधना के बल से हम समय रहते जागृत हो जाते हैं और हमसे हो रही चूक दीये जैसी स्पष्ट दिखाई देती है, ऐसी भुलभुलैया में से प्रभुकृपा से बाहर निकल सकते हैं। ('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. ३३६, ३३८)

- चर्चा का मूल उत्पादक कारण अहंकार है। चर्चा में दूसरे पक्ष के लिए एक प्रकार की सूक्ष्म अनुदारता रही होती है। सामनेवाले को पहचानने की शक्ति हुए बिना उसके विषय में जाने-अनजाने हमें इसप्रकार मानने का मन होता है कि हम उससे बुद्धि में और समझ में और उसकी योग्यता से बढ़कर हैं। फिर सूक्ष्म रूप से उसमें दंभ भी निहित रहता है, क्योंकि चर्चा के रस में बहकर सामनेवाले व्यक्ति के कथन में जो कुछ रहे हुए सत्य को स्वीकार करना असंभव होता है और कई बार वह गहराई में समझ में आता हो, तब भी उसके प्रति दुर्लक्ष रखकर हम अपना उल्लू सीधा करने के लिए प्रयत्न करते हैं। चर्चा में बुद्धि का दुरुपयोग भी होता रहता है। ('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. ३४०)
- 'अमुक कार्य की सिद्धि उसका काल पके तभी होती है' ऐसा जो कहा जाता है, वह 'काल पकेगा' निर्माण की हकीकत जितनी सत्य है, उतनी ही फिर काल पकने की मुदत में कमज्यादा होना हमारी तमन्ना की उत्कटता, जीवनविकास की प्रेमभक्ति आदि में से फलित होते आंतरिक प्रयास से हो सकता है, यह हकीकत भी सच है। ('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. ३४५)
- **साधना अर्थात् काल को शीघ्र और साथ ही योग्यरूप से पकानेवाली जड़ीबूटी। प्रतिकूल संयोगों को अनुकूल करने की कला यानी साधना ऐसा भी कह सकते हैं। प्रकृति द्वारा जीव की होती उत्क्रांति में शक्ति और प्राणसंचार लाकर उसे वेगशील**

और भावात्मक बनानेवाली जिस चेतन की प्रक्रिया है, वह साधना है, ऐसा भी कह सकते हैं ।

('जीवनसंशोधन', आ. २, पृ. ३४५-३४६)

✤ युद्ध अर्थात् मात्र संहार यह समझ बहुत अधूरी है । युद्ध से खंडन और मंडन दोनों होता है, युद्ध अर्थात् खंडन और मंडन दोनों ।

✤ बुद्धि के क्षेत्र में, मन के क्षेत्र में, प्राण के क्षेत्र में, शारीरिक क्षेत्र में इसतरह मनुष्य के आधार के प्रत्येक करण की प्रवृत्ति में युद्ध चलता रहता है ।

जहाँ द्वन्द्व है, वहाँ युद्ध है । अनेक प्रकार के द्वन्द्वों के युद्ध द्वारा सृष्टि में भगवान का दिव्य सूक्ष्म हेतु सिद्ध होता जाता हैं ।

✤ जगत में सब अभेदरूप से ही तत्त्वरूप है, इसलिए जो कुछ बना करे वह हमारे कारण ही है । उसका मूल कारण तो हम में ही है ।

('जीवनसंदेश', आ. ४, पृ. ९)

✤ कुछ भी कहीं (नापसंद या दुःखदायक भी) उद्‌भवित होने पर या होते हुए उसके मूल को अपनेआप में ही देखने का प्रयत्न करे और देखें उसका नाम है अभेद उपासना । ऐसा करते करते जगत का मूल हम ही हैं, ऐसा अनुभव हुए बिना नहीं रह पाता ।

('जीवनसंदेश', आ. ४, पृ. ११)

✤ **साधना अर्थात् भक्ति, ज्ञान, ध्यान और कर्ममार्ग का समन्वय । भक्ति यह भावना का झरना, ज्ञान वह उद्देश्य, ध्यान यानी एकाग्रता और केन्द्रितता, कर्म अर्थात् उन सभी का सुयोग्य रूप से, सुमेलपूर्वक प्रवाहित होने का पाट - channel.**

('जीवनसंदेश', आ. ४, पृ. १०)

✤ प्रार्थना भी एक प्रकार का ध्यान ही है । प्रार्थना साकार है । ध्यान निराकार है । ध्यान में हम किसी का आधार नहीं लेते, भाव की वृद्धि के लिए प्रार्थना का साधन रूप में आधार लेते हैं पर दोनों का परिणाम एकसमान है । प्रार्थना के समय हमें ध्यानस्थ होना चाहिए । भावना का भाव में लय हो जाय यह प्रार्थना का रहस्य है ।

('जीवनसंदेश', आ. ४, पृ. १३)

- **गुरु अर्थात् साधक को उसके जीवनविकास की सीढ़ियाँ उत्तरोत्तर चढ़ानेवाली एक सीढ़ी, उसकी समझ को उच्चतर और उच्चतम भूमिकाओं के साथ जोड़नेवाली श्रृंखला ।**

  ('जीवनसंदेश', आ. ४, पृ. १६)

- सूक्ष्मभाव में कहें तो गुरु की समीपता या दूरी कुछ है ही नहीं, क्योंकि गुरु यह तो भाव रूप ही है । ('जीवनसंदेश', आ. ४, पृ. १७)

- Trifles-क्षुल्लकता भी बेकार नहीं है । उसमें भी श्रीभगवान की ही चेतनाशक्ति खेल रही है । वह भी उसका ही स्वरूप है पर उसमें भी हमारा भाव तो उस चैतन्यभाव का ही बना रहे तो !

  ('जीवनसंदेश', आ. ४, पृ. ५८)

- जगत में कुछ बेकार नहीं है । जिसे मनुष्य बिलकुल खराब गिनता है, वह भी बेकार नहीं है । वह खराब दिखता है या गिना जाता है, उसका कारण हम उसे उस ढंग से गिनते, देखते, समझते, मानते, उपयोग करते आये हैं, वह है, बाकी खराब कुछ भी नहीं । जो भी है सभी यथास्थान पर योग्य ही है और श्रीभगवानमय है ।

  खेतों की खाद कितनी भी दुर्गंध फैला रही हो, तब भी उसका स्थान सृष्टि में है ही और वहाँ उसका उपयोग भी है ।

  ('जीवनसंदेश', आ. ४, पृ. ५९, १३४)

- आत्मविश्वास यह मिथ्याभिमान का भाव नहीं, परन्तु यह तो ध्येय के प्रति पहुँचानेवाला आवश्यक भाव है ।

  ('जीवनसंदेश', आ. ४, पृ. १०७)

- **तटस्थता और अनासक्ति लगभग पर्यायवाचक (समान अर्थवाही) शब्द है, तब भी उसमें भेद है । तटस्थता एक ढंग से अनासक्ति का परिणाम गिन सकते हैं ।**

  ('जीवनसंदेश', आ. ४, पृ. १३१)

- बुद्धि भाव से भी अधिक आग्रही और दीर्घकाल पर्यंत अपना जीवन टिकाने के लिए शक्तिशाली है । ('जीवनसंदेश', आ. ४, पृ. १३४)

- दुनिया में खेले जा रहे युद्धों में लगे हुओं का तो जगत को जानकारी भी होती है । उनके यशोगान गाये जाते हैं पर इस आध्यात्मिक युद्धक्षेत्र

में युद्ध खेलनेवाले साधक को तो कोई देख या जान नहीं सकता, क्योंकि जगत को—जगत में—वैसी दृष्टि और वृत्ति उस ओर बहुत कम होती है, इसलिए उसकी कदर या उसकी वाहवाह बोलनेवाले खास कोई नहीं होते । उसे अपने में से ही संतोष पा लेना होगा ।

('जीवनसंदेश', आ. ४, पृ. १४५-१४६)

- धिक्कारवृत्ति यह प्रेम की विकृत दशा है अर्थात् उल्टा पहलू है ।
- सच्चे अर्थ में स्वानुभव में जैसे सर्वानुभव आ जाता है, वैसे ही स्वकल्याण की प्रवृत्ति में सर्वकल्याण की प्रवृत्ति अपनेआप हुआ करती है ।

समदृष्टि अर्थात् निर्लिप्त समन्वयात्मक दृष्टि ।

('जीवनसंदेश', आ. ४, पृ. १६८-१७१)

- प्रेम यह हमारे दिल की भावना का गतिवाहक यंत्र है ।
- रामरावण युद्ध में राम, लक्ष्मण आदि को शायद सबसे अधिक त्रास इन्द्रजीत का था, क्योंकि वह अपना सच्चा स्वरूप मायावी स्वरूप में ढंककर, बादलों के पीछे छिपकर, न दीखे ऐसे स्थान से अपने बाण फेंकता था । उसी प्रकार प्रकृति के आक्रमण साधक के जीवन में अधिक से अधिक गुप्त वेश में होते ही जाएँगे । ऐसे मायावी स्वरूप से रक्षा करने का शस्त्र साधक के लिए तटस्थता और समतायुक्त आंतरनिरीक्षण है । ('जीवनसंदेश', आ. ४, पृ. २१३)
- संतसमागम से तथा उनके समीप रहने से वातावरण का हमारे करणों पर अच्छी असर होती है यह सत्य है—पर यदि उस संत के प्रति हमें सद्भाव, मान, आदर, श्रद्धा या प्रेमभक्ति हमारे हृदय में पैदा हुए होंगे तभी । ('जीवनसंदेश', आ. ४, पृ. २१७)
- जो **जीव** साधना में ओतप्रोत हो जाता है, उसमें तो जहाँ-जहाँ जगत में सौन्दर्य की भावना कोई भी कला रूप में व्यक्त हुई हो, उसके प्रति उसके हृदय की कदरवृत्ति खिलती जाती है । रम्य सूर्योदय या सूर्यास्त के समय, आकाश में पूर्णिमा की शीतल चांदनी खिली हो तब, जंगल की वनस्पति का प्राकृतिक सौन्दर्य भरपूर भरा हो तब,

समुद्र की आलोडन लेतीं लहरों में, मनुष्य के हृदय के सद्भाव में, नृत्य-संगीत-चित्र-शिल्पकला आदि ललितकला के तेजस्वित दर्शन में, कल्पना के उड्डयनशील प्रभाव में या कोई आकाशी भावना के साहित्य-सर्जन में—इन सभी में भगवान की चेतनाशक्ति का दिव्य स्पर्श हुआ है, ऐसी हृदय की धारणा बनकर वहाँ-वहाँ ऐसे साधक का प्रार्थनाभक्तिभाव से सिर झुकता है ।

('जीवनपाथेय', आ. ३, पृ. १८३)

- जिस मंथन, मनोव्यथा, रुदन में से कुछ शुभ नहीं जन्म लेता वह व्यर्थ है । मनुष्य रूठा हो, अकुलाया हो, रुंध जाये, आघात लगे तब रोना बने, परन्तु उसके प्रत्याघातों से उसके परिणामजनक अनुभव को हृदय में स्वीकार करने की तैयारीवाला यदि मनुष्य न बन सके तो ऐसा दु:ख, रोना आदि यह तो उसकी मूढ़ता के कारण है । मूढ़ता न हटे, वहाँ तक कोई योग्य समझ नहीं आएगी । मूढ़ता यह एक ज्ञान में आडे आनेवाला एक बड़ा परदा है ।

('जीवनमंथन', आ. २, पृ. १६२)

- **जीवनविकास के मार्ग पर सही ढंग से, सच्ची भावना से, हृदय की उमंग के साथ, प्रेमभक्ति से जो *जीव* एक के बाद एक कदम आगे ही आगे बढ़ता रहता है, उसका वह कार्य सच्ची गुरुदक्षिणा है ।** ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. १७१)
- **साधना के क्षेत्र में यदि लग गये, तो उसमें तो संपूर्णरूप से समर्पित हो जाना है । अलग-अलग दिशा में विभाजित हृदय को समेट समेटकर, उकसा उकसाकर सतत यज्ञ में आहुति देते रहना है । ऐसा प्रत्येक पल का जीवंत यज्ञ जीवन में जब तक प्रकट न हो, तब तक साधना का काम नहीं हो पाएगा । जीवन में जीवन का ऐसा निरन्तर अटूट चलनेवाला यज्ञ ही सच्ची गुरुदक्षिणा है । इसकी कीमत गुरुचरणों में लाखों रुपयों की भेंट से भी बढ़कर है ।** ('जीवनमंथन', आ. २, पृ. १९४)

✤ प्रत्येक **जीव** की अनेक जन्मों की समग्र और अटूट संस्कारशक्ति किस प्रकार की है और मृत्यु के समय उस **जीव** की कैसी गति रहती है (उपरोक्त समग्र और अटूट संस्कारशक्ति लिखी है उसके आधार पर) उस पर तुरन्त या देर से उस **जीव** के जन्म होने का आधार रहता है। ('जीवनप्रेरणा', आ. १, पृ. ११०-१११)

✤ पुरुष-शरीरी **जीव** दूसरे जन्म में स्त्री भी जन्म ले सकता है और स्त्री-शरीरी **जीव** पुरुष रूप में भी जन्म ले सकता है। पुरुष हो, वह पुरुष के ही रूप में जन्मे और स्त्री हो वह स्त्री के रूप में ही जन्मे ऐसा कोई नियम नहीं है। ('जीवनप्रेरणा', आ. १, पृ. १११)

✤ **मौन अर्थात् मात्र वाचा का मौन नहीं। यह तो उसके एक स्थूल पहलू का अर्थ है। सच्चा मौन तो पाँचों इन्द्रियों का होना चाहिए। सभी इन्द्रियों को स्वयं अपने विषय में रुचि लेती रोक सके, तभी सच्चा मौन गिना जाएगा। ऐसी दशा आने पर सारे जीवन की दृष्टि और सृष्टि में परिवर्तन आता है।**

('जीवनप्रवेश', आ. २, पृ. २५८)

॥ हरिःॐ ॥

खंड - ४
श्रीमोटा के विविध स्वरूप

॥ हरि:ॐ ॥

परमार्थ ऐसा करो कि वह समाज की समग्रता को स्पर्श करे

– मोटा

॥ हरिः ॐ ॥

१. संकीर्णता के बीच

श्रीमोटा के जीवन के भिन्न-भिन्न अनेक पहलू और लक्षणों के बारे में निश्चितरूप से स्पष्टता से लिखना यह एक प्रकार की बड़ी एक-सा कठिनाईवाला कार्य है। क्योंकि ऐसे लोगों का जीवन एक-सा, एकसमान, एक ही प्रकार का, एक ही भाँति की गतिवाला नहीं होता। अनेक प्रसंगों में आपश्री भिन्न-भिन्न रीति से बरतते होते हैं। उनके बरतने का ढंग एकदम निराला होता है। इसलिए कुछ निश्चितरूप से लिखना यह मेरे जैसे के लिए कठिन तो है ही। जितना भी ख्याल में है और जिस काल में जो भी हुआ है और जिस तरह आपश्री बरते हैं, उसे संपूर्णरूप से न्याय दे सकूँ ऐसा नहीं है। उन प्रसंगों के जानकार अनेक आज भी हैं। तथापि लिख सके ऐसी सभी सामग्री उपलब्ध नहीं है, इसलिए उन्हें पूछ पूछकर उतार लिया है :

श्रीमोटा ने ऐसी कोई परम्परायुक्त प्रसिद्ध ऐसी पद्धति से साधना नहीं की है। प्रारंभ में उनका नामस्मरण पर महत्त्वपूर्ण झुकाव था। जैसे-जैसे उसमें वे आगे बढ़ते गये वैसे-वैसे उनके हृदय में से सभी सूझता रहा। स्मरण, प्रार्थना, आत्मनिवेदन, अभय, नम्रता, मौन और एकांत हमारी बहिर्मुखता को घटाते हैं। अभय और नम्रता अंतर्मुखता लाते हैं—आंतरबाह्य सभी ढंग से।

यद्यपि उन्होंने गुरु किये थे और गुरु की मदद भी मिली थी, पर गुरु के पास बार-बार जा सके इतने उनके पास पैसे न थे। उनके गुरुमहाराज (श्रीधूनीवाले दादा श्रीकेशवानंदजी) मध्यप्रदेश में सांईखेड़ा गाँव से दूर एकांत में दिगंबर अवस्था में रहते थे और श्रीमोटा प्राप्त कर्म छोड़कर जाने में मानते भी न थे। **वे हमेशा मानते आये थे कि प्राप्त कर्म, स्थिति, संयोग, कर्तव्य और उसके प्रति हमारा जो धर्म है, उसे प्रेमभक्ति से अदा करना ही सच्चा धर्म है।** अपने जीवन में प्राप्त धर्म को छोड़कर बाहर जाने की बात उनके गले कभी उतरी नहीं थी।

• • •

२. जीवनविकास की (पाराशीशी) कसौटी

श्रीभगवान के मार्ग पर चलनेवाले लोग जब श्रीमोटा को ध्यान आदि के विषय में पूछते हैं, उन्हें कहते हैं, 'भाई, तुम्हारे से ध्यान एकदम नहीं हो सकेगा । ध्यान करने के लिए सचमुच एक प्रकार की खास भावना जागी हुई होनी चाहिए । फिर, ध्यान तो अपनेआप ही हो वह उत्तम और वह तब होगा जब काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, अहंकार, इच्छाएँ अनेक प्रकार की लोलुपताएँ फीकी होती जाएँ तब । यह उसका मुख्य उद्देश्य । रागद्वेष फीके करना साधक के जीवन का एक लक्ष्य होना चाहिए ।'

अनेक बार श्रीमोटा इस साधनापथ पर मुड़े हुए लोगों को कहते होते हैं कि जिस किसी को जीवनविकास के मार्ग पर जाना है और जिसमें उसकी सच्ची दानत हो, ऐसे मनुष्य कभी भी तामस में पिरोये नहीं होते । ऐसे लोगों को सतत निरन्तर कर्म में एकरस होकर पिरोये रहना चाहिए । कोई भी काम किये बिना पड़े रहना ऐसे मनुष्य के प्रति उन्हें (श्रीमोटा को) नफरत है, ऐसा तो नहीं कह सकता, पर मनुष्य दावा करे कि स्वयं श्रीभगवान के पथ पर पड़ा है, ऐसे दावे को श्रीमोटा कभी नहीं स्वीकार करते । रजस प्रकृतिवालों को एकांतवास करना चाहिए और अंतर्मुख होना चाहिए और तमस प्रकृतिवालों को कर्म में प्रवृत्त होना चाहिए, जिससे उसका तामस घटेगा और कर्म के साथ स्मरण, जप आदि में प्रवृत्त होना चाहिए ।

• • •

३. भगवान के मार्ग पर जाने का कर्म

श्रीमोटा बार-बार कहते होते हैं कि कर्ममात्र भावना को साकार करने के लिए है । कर्म के आधार बिना भावना का गाढ़ स्वरूप उसकी चेतनपन में प्रकट नहीं हो सकेगा ।

श्रीमोटा ने साधना के विषय में कोई साहित्य पढ़ा नहीं है । ऐसा पढ़ने का अभ्यास और समय भी न था । पढ़ने का दिल भी नहीं होता था । तथापि आपश्री निरन्तर साधना के पथ में ढकेलाते रहा करते । इससे

उन्हें जो समझ पैदा हुई है, वे उनके अपने हृदय के प्रयत्न किये हुए और प्रयत्न हुए मार्ग से ही मिली है। उन्होंने कितने सारे पत्र लिखे हैं! प्रत्येक साधक को लिखे पत्र सन् १९४०-'४३ दौरान लिखे हैं और श्रीअरविंद के पत्र १९४४ के पश्चात् प्रकट हुए हैं। उन पत्रों और श्रीमोटा के पत्रों में बहुत साम्य है। अहमदाबाद के प्रोफेसर रा. ब. आथवले साहब ने श्रीमोटा के एक पुस्तक की प्रस्तावना में यह हकीकत का बहुत स्पष्टरूप से उल्लेख किया है।

श्रीमोटा के जीवन की दूसरी विशेषता यह है कि प्रत्येक कर्म के लिए उन्होंने समय मुकरर किया है। श्रीमोटा कुछ भी यद्वातद्वा नहीं होने देते। उनके साथ साधना के भाव से संयुक्त हुए **जीवों** को भी उस अनुसार व्यवहार नहीं करने देते। यद्वातद्वारूप, किसी भी तरह स्वच्छंदता से व्यवहार करना यह साधक के जीवन का बेहतर लक्षण नहीं है। **बाहर जाना हो तो आपश्री योग्य समय पर ही वाहन मँगवाते। योग्य समय में वाहन आये उसकी लगन भी रखते हैं और समयपालन की उनकी रीत और वे प्रत्येक कर्म उस उस काल में उस उस तरह करना और उसी समय ही करना चाहिए ऐसी उनके जीवन में व्यवहार की रीत, यह भी अनोखी पद्धति है।**

अपने स्वभाव को जैसा और वैसा ही रखकर श्रीभगवान के मार्ग पर कभी भी विकास नहीं हो सकता और साधु-महात्माओं के केवल आशीर्वाद से कोई आगे बढ़ सके ऐसी मान्यता में भ्रमणा है, ऐसा श्रीमोटा कहते हैं। साधु-महात्मा के आशीर्वाद और कृपा में शक्ति नहीं है ऐसा नहीं है। शक्ति तो है ऐसा श्रीमोटा मानते हैं, पर हमारे में अपने पक्ष में इसकी पात्रता, योग्यता लाने की रहती है। ऐसी योग्यता और पात्रता हमारे में प्रकटी हो, तब ही हमारे में ऐसी संग्राहकता-'रीसेप्टिविटी'- प्रकटे।

• • •

४. दीक्षा

श्रीबालयोगी ने श्रीमोटा को दीक्षा दी थी और उस दीक्षा में क्या क्या हुआ उसका वर्णन किसी पुस्तक में नहीं है। श्रीमोटा को कभी कभी उस प्रसंग के विषय में बोलते सुना है।

श्रीबालयोगी महाराज ने प्रारंभ में श्रीमोटा को ध्यान करने को कहा था, पर यह ध्यान तो उनसे होता ही न था। श्रीमोटा कहते हैं, 'प्रभु ! मुझे अनेक प्रकार के विचार आते हैं। मन एकाग्र नहीं होता। एकदम शांत नहीं रहता।' मन शांत हो तब विचार, वृत्ति आदि न उठे और तदाकार निर्विकल्प अनुसार मन रहे, तब ही ध्यान हुआ गिनायेगा, ऐसी समझ श्रीमोटा की थी। परन्तु कौन जाने श्रीबालयोगी महाराज ने तो उनके सामान में से एक बड़ी कील निकाली। पाँच-छः ईंच लम्बी लोहे की जबरदस्त कील होगी और उस कील का आगे का जो डट्टा जोर से भ्रूकुटी के भाग में ठोका। तत् पश्चात् वे ध्यानावस्था में चले गये और तीन दिन तक उसी स्थिति में वैसे ही रहने का हुआ था। जब शरीर की सभानता में श्रीमोटा आये, तब ही इतना सारा समय बीत चुका है, ऐसा उन्हें पता चला। **तो चेतना में निष्ठा पाये हुए शरीरधारी आत्मा के साथ महात्मा के हृदय की जीवंत चेतनात्मक भावना से उस दूसरे अज्ञानी मनुष्य के हृदय के साथ जीवन के हेतुविकास की ज्ञानभावना की प्रेरणा से जोड़ना वह दीक्षा।**

• • •

५. गुरु ने मुझे पकड़ा

अनेक बार श्रीमोटा को भक्तों की तरफ से ऐसे भी पूछते सुना है कि, 'आप अपने गुरु से मदद मिला करने की बात करते थे, वह सभी बात तो करो।' तब वे अनेक बार कहते थे, 'गुरु ने मुझे पकड़ा था। मैंने कुछ गुरु को पकड़ा न था और गुरु की मदद और उनकी कला का मुझे कोई भान न था। मुझे तो उन्होंने साधन मात्र बताया : स्मरण, प्रार्थना, भजन, आत्मनिवेदन करने का। अभय, नम्रता, मौन, एकांतवास आदि प्रकट करने का।' यह खूब धुन से जुनून से करते और वैसा करते ही दिन में अधिक से अधिक समय साधना में ही बीते वैसे श्रीमोटा के सख्त प्रयत्न रहा करते।

वे रोज रात को श्मशान में सोने जाते, तब एकबार उनके गुरु महाराज के स्वप्न में दर्शन हुए और उन्होंने उन्हें साधन करना बतलाया। जब

वे जागे, तब स्वप्न की बात याद आयी । स्वप्न यह मिथ्या है, ऐसा गिनकर उसे कोई महत्त्व नहीं दिया। दूसरे दिन भी वही स्वप्न आया। तथापि उन्होंने महत्त्व नहीं दिया । तीसरे दिन भी उसी प्रकार का स्वप्न आया, तब भी महत्त्व नहीं दिया। चौथे दिन भी आया तब भी उसके प्रति लक्ष न दिया। पाँचवें दिन जब फिर से ऐसा ही हुआ, तब श्रीमोटा को ऐसा हुआ, 'अरे ! रोज का रोज एक प्रकार का ठीक एक ही प्रकार का वही का वही हकीकतवाला स्वप्न आता है तो उसका कोई हेतु होना चाहिए । तो हमें यह कर देखने में क्या जाता है ?' ऐसा सोचकर उस स्वप्न की हकीकत अनुसार साधन करने लगे। अनेक बार श्रीमोटा बोलते, 'पाँचवें दिन जब मुझ में यह स्वीकार करने की बुद्धि आयी, इससे मुझे बहुत खटका।' इसप्रकार, उनमें रीसेप्टिविटी-स्वीकारशक्ति-देर से आयी उसका उन्हें बहुत दुःख हुआ था। उसके बाद तो स्वप्नों द्वारा श्रीमोटा को उनके गुरुमहाराज ने कितने सारे साधन बतलाये थे । तब उनको ख्याल आया, 'अरे ! गुरु यह एक कैसी आध्यात्मिक शक्ति है !'

श्रीमोटा की गुरु के बारे में समझ कितनी अधिक स्पष्ट है और गुरु शरीर होने पर भी, व्यक्ति होने पर भी व्यक्ति नहीं है—यह एक ही वाक्य में उन्होंने बहुत अधिक कह दिया है। श्रीभगवान के मार्ग पर बढ़नेवाले साधकों को श्रीमोटा की इस गुरु पर की समझ पढ़ने जैसी सही। उनको लगा है कि इस गुरु की मदद यह वास्तविकता की हकीकत है और वह मिल सके ऐसा है और उनको हम अपने आधार* में जीवित कर सकें तो ।

यह समझ सचमुच तो उनके सद्गुरु ने ही दी थी, तब उनको लगा कि ऐसी समझ मुझ में आयी है तो इस गुरु को अपने आधार में किस तरह जीवित कर सकूँ ? इस पर उन्होंने बहुत विचार किया । प्रारंभ में तो गुरुमहाराज का जो स्वरूप था, उसे ही अपनी आँखों के सामने रख रख के बातें करने लगे । निवेदन करने लगे और इसतरह उस स्वरूप को दिन में बारबार, सैंकडों बार अपने मन की आँखों के आगे प्रत्यक्ष

* आधार यानी मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् । ये पाँच करण ।

करते । तत् पश्चात् आगे बढ़ने पर उनके गुरुमहाराज के स्वरूप का सूक्ष्म भाव उनके अपने आधार में प्रकट होने लगा । यह तो उन्होंने की बातें करता हूँ । मैं तो मात्र लिखनेवाला ही हूँ । इसमें से किसी पाठक को कुछ मिले और उद्देश्य की समझ पड़े तो पड़े ।

• • •

६. मगरमच्छ बता

एक बार पू. श्रीमोटा ने कही एक सुंदर बात याद आती है और उनके ही शब्दों में मैं प्रस्तुत करता हूँ ।

श्रीबालयोगी ने एक बार मुझ से कहा, 'मुझे एक मगरमच्छ देखने को ले चल ।' मैंने पूछा, 'प्रभु ! आपको ले तो जाऊँ, पर मगरमच्छ कौन सी जगह है, कहाँ है, यह मुझे कहो तो आपको वहाँ ले जाऊँ ।' पर उस स्थान का नाम बोले वे दूसरे । मैं तो अनेक बार उनको पूछा करूँ पर वे तो 'मगरमच्छ, मगरमच्छ' के सिवा दूसरी बात ही न करे । इसलिए मैंने सोचा कि उन्हें आणंद तक ले जाऊँ और आणंद से वडोदरा, खंभात और डाकोर तीन अलग-अलग दिशा में लाइन जाती है, इसलिए आणंद जाकर फिर उनको पूछूँगा । इसलिए हम टिकट लेकर गाड़ी में बैठे और आणंद उतरे । फिर श्रीबालयोगी महाराज के पैरों लगा और पूछा, 'यहाँ से तीन जगह जाया जाता है । एक तो वडोदरा जाया जाता है । वहाँ बाग में बहुत बड़े बड़े मगरमच्छ हैं ।' तो उन्होंने कहा, 'इस लाइन पर जाना नहीं है ।' 'अच्छा, तो फिर खंभात एक लाइन जाती है । वहाँ पर समुद्र है । वहाँ कभी मगरमच्छ हो' पर वे स्वयं तो कुछ बोले नहीं ! मुझे किस तरह जाना है ? कहाँ की टिकट लेनी यह बहुत बड़ी उलझन ! वे न कोई उत्तर देते और 'मगरमच्छ, मगरमच्छ'—बस इतना ही बोले । फिर तो मुझे हुआ चलो न डाकोर में । वहाँ गोमतीजी में ऐसे बड़े बड़े कछुएँ हैं । वह ममरे डालकर महाराज को बताऊँगा । ऐसा सोचकर मैंने तो ली डाकोर की दो टिकट । डाकोर उतरे । मेरे पास तब पैसे न थे कि जिससे महाराज को गोमतीजी तक घोड़ागाड़ी में बैठाकर ले जाऊँ ।' इससे हम तो चलते चलते गये और रास्ते में से दो पैसों के

ममरे लिये और गोमतीजी के पास जाकर पानी में ममरे डाले और इतने सारे बड़े बड़े कछुएँ आये ! इसलिए मैंने तो महाराज को कहा, 'महाराज ! प्रभु ! देखों यह मगरमच्छ !' 'अरे ! साला ! कैसा गधा जैसा बेवकूफ है ! तेरे में अक्ल नहीं !' ऐसा कहकर दो–चार गालियाँ दे डालीं । 'यह मगरमच्छ न हो तो तो बापजी किस मगरमच्छ और कैसे मगरमच्छ की आप बात करते हैं ? मुझे कुछ समझ नहीं आता और मैं तो बेचैन हुआ । तो मुझे मगरमच्छ दिखाने उन्हें कहाँ ले जाना ? !'

इतने में तो श्रीबालयोगी महाराज चलने लगे । उसे गोमती के किनारे के पास वर्तमान जहाँ तुला है, श्रीभगवान को जहाँ तौले थे, वह तुला है, उससे आगे जाने पर बायीं ओर एक जगह पर एक पागल मैलागंदा जैसा दिखता एक आदमी पड़ा हुआ था । उसके पास जाकर महाराज तो बैठे ! और फिर दोनों जन जो बातें करने लगे और उरांगउटांग क्या बोलते हैं वह मुझे तो कुछ समझ में न आये ! वह पूछे, 'आप कहाँ सोते हैं ? और वह कहे, 'मैं तो आकाश में सो जाता हूँ ।' आप क्या करते हैं ? ऐसी टेड़ीमेड़ी बातें करें । जिसके मुँह सिर—हेड एन्ड टेईल—कुछ भी हमें समझ में न आये । फिर सभी बात करने के बाद श्रीबालयोगी महाराज ने मेरी सिफारिश की, 'भाई ! यह लड़का है, वह कभी उसे साधना करते करते कोई कठिनाई आ पड़े और आपके पास आये, तब उसे समझ में आये ऐसी भाषा में बात करना ।'

फिर मैंने डाकोर में भी जाँच की । वे लोग उन्हें मस्तराम कहते और फिर व्यवहार पागल जैसा । बाजा बजवाते और कोई मिलने आये तब कहते, 'एय ! चाय लाओ, पकौड़े लाओ ।' ऐसे सभी खेल किया करते और बहुत कम मनुष्य ऐसी आध्यात्मिक कक्षा में, उच्च शिखर पर गये होंगे, ऐसा समझते होंगे । मुझे भी तब तो समझ न थी, पर तीनचार बार उनके पास मेरे अपने साधना के प्रश्नों को लेकर जाने का हुआ था । तब उन्होंने मुझे उसके जो उत्तर दिये उस पर से सब समझ में आया और भान हुआ, 'ओहो ! यह तो बहुत आगे बढ़े ऐसे निष्ठा पाये पुरुष हैं !' फिर उनके पास मैं जाता, तब तो मैं बहुत भक्तिपूर्वक नमस्ते करता । मुझे कोई स्थूल सेवा करने का सूचित करे तो मैं खुश

भी होता, ऐसे मेरी मरजी भी मैंने प्रदर्शित की थी । मात्र एक ही बार मुझे पावभर पकौड़े ले आने को कहा था । वह मैंने ला दिये थे । वह स्वयं खा गये । वे मुझे कहें, 'तुझे एक भी न दूँगा ।' मैंने कहा, 'प्रभु ! जैसी आपकी मरजी । मेरी इच्छा नहीं कि प्रभु, आप मुझे दो ।' और जब जब मैं गया, तब तब वे बाजेवाले को बुलाकर बाजे बजवाते । ऐसे एक मस्तराम वही मगरमच्छ ! पर उसका मुझे क्या पता कि ऐसा एक आदमी आध्यात्मिक कक्षा में उच्च में उच्च शिखर जिसने सर किया हो, उन्हें यह बालयोगी महाराज मगरमच्छ कहते होंगे ? इसका मुझे क्या पता चले ?

• • •

७. ब्रह्मचर्य के लिए साधना

उनको किसी अनुभवी ने कहा कि ब्रह्मचर्य को परिपक्व होने के लिए या ब्रह्मचर्य का यथायोग्य पालन हो, स्वाभाविक हो जाय, इसके लिए अमुक प्रकार की साधना की आवश्यकता है । हृदय में हृदय से भाव जब आते हैं, तब सभी प्राकृतिक हकीकत गौण हो जाती हैं । हमारे दिल में भाव जब चेतनशाली होता है, तब प्राण की, प्रकृति की निम्न हकीकत, विषय सभी गौण हो जाते हैं, ये हकीकत होने पर भी एक ऐसे साधना के अनुभवी ने सूचित किया, 'यदि तू चैत्र मास में कोई सचमुच एकांत स्थान में जाकर, पर्वत की एकांत जगह पर जहाँ जलाशय हो, वहाँ शिला पर सचमुच धूप में बैठकर यह साधना तू कर और तुम्हारे दिल में भावना तो है, इसलिए तुझे उस साधना से जो लाभ मिलेगा वह तो अनोखा होगा । यह तुझे अनुभव से समझ में आयेगा ।'

इससे श्रीमोटा ने वह सूचन का स्वीकार किया और किसी जगह, खास करके उन्हें याद है वहाँ तक नर्मदामाता का ही प्रदेश था । वहाँ दोपहर ग्यारह बजे से एक तपी शिला पर वे बैठ जाते और उनके बैठने की जगह से तीन फूट आगे डेढ़ फूट ऊँची और दो फूट चौड़ी ऐसी इक्कीस उपलों की धूनी । उसके पश्चात् दूसरे तीन फूट दूर ऐसी दूसरी

इक्कीस धूनियाँ और उसके बाद दूसरे तीन फूट के अंतर पर तीसरी इक्कीस उपलों की धूनियाँ गोलाकार पर बनायी थीं। ऐसी तिरसठ धूनियाँ जलाकर वे बैठते। गर्मियों के चैत्र मास का प्रखर ताप और शिला पर नग्न शरीर से बैठना और वह लगभग पाँच-साढ़ेपाँच घण्टे तक शाम पाँच बजे तक बैठे रहते। उस काल दौरान वे भावावस्था, ध्यानावस्था में अपनेआप जाते। भजन-कीर्तन करते तब भावावस्था हो जाती।

वे ऐसा कहते कि इस शरीर में भी जो अनेक प्रकार का मल है, जैसे मलशुद्धि साधना के लिए अनिवार्य है, वैसे शरीर के अनेक करणों की शुद्धि—चित्तशुद्धि, प्राणशुद्धि, संकल्पशुद्धि—इन सभी शुद्धियों की साधना में जैसे अनिवार्यता है, इसतरह इस शरीर के रोमरोम की मलशुद्धि होनी आवश्यक है और वह मल इस पसीने द्वारा ही निकल सकता है। शरीर में से पसीना निकलता है यह कुदरत ने हमारे शरीर में रखी प्रक्रिया हमारे शरीर की यथायोग्यता बनाने के लिए ही रखी है। इसका भान हम लोगों को बहुत कम से कम है। आज एक ऐसे प्रकार का काल आया है कि जब पवन के बिना मनुष्य को चैन नहीं आता। **खास करके शहरों के अंदर वातानुकूलित स्थान, पंखे घूमते और शरीर को अनेक प्रकार की वायु की लहरों से इसतरह रहने का जो लोगों को पसंद आ गया है, यह शरीर के आरोग्य के लिए उत्तम प्रकार की हकीकत नहीं है। भले आज यह सत्य यथार्थ लोग मानते न हो, उनके गले में यह सत्य कदापि उतर नहीं सकता, पर शरीर में से पसीना निकले अथवा तो शरीर का पसीना जितना अधिक से अधिक निकले यह शरीर के आरोग्य के लिए उत्तम प्रकार का यथार्थ है।**

श्रीमोटा इस तरह नग्नावस्था में तपी शिला पर, आगेपीछे तिरसठ धूनियाँ धधकती हो, उसके बीच, पाँच घण्टे तक बैठे रहने का होता, उसमें उनके शरीर में से पसीना बहुत सारा निकलता। वे उसे ऐसा मानते कि यह भी एक प्रकार का मल शरीर में से निकल जाता है, ऐसी उनकी दृढ़ समझ थी और उस समय दौरान भी सख़्त ताप के बीच उनके चित्त

की अवस्था तो भावना में ही रमा करती । सतत प्रार्थना, भजन, स्मरण, ध्यान में इन सभी में वे लीन रहते और भजन गाते गाते उन्हें जो भावावस्था हो जाती यह कितने समय तक चला करती ।

उसके समाप्त होने पर उन्होंने ऐसी व्यवस्था की थी कि दो आदमी नीम के कोमल कोमल जो पान हो, उन सभी को पीसकर एक आदमी एक कटोरे में रस निकालकर लाता और दूसरा आदमी दूसरे कटोरे में रस निकालकर लाता और उन्हें वे इसके लिए पैसे देते और फिर वे धूनी में से बाहर निकलकर दो रूमाल से सारा शरीर पोछते । तब वे उन दिनों में स्नान नहीं करते थे और उस नीम के रस को वे धीरे-धीरे, 'सीप' करते, थोड़ा थोड़ा पीते, मानो कि खाते हों इस तरह बारी-बारी से वह पीते और पूरा करते । वही उनकी खुराक और वही उनका पानी । उस अट्ठाईस दिन की साधना में उन्होंने कभी दूसरा खुराक नहीं लिया । पानी भी नहीं पीया । उन्होंने स्वयं कही साधना की यह हकीकत है और ब्रह्मचर्य पालन के लिए बहुत उत्तम से उत्तम साधना की रीत है, ऐसा उन्होंने हमने प्रश्न पूछा था तब कहा था ।

साधना ऐसे ही हो सकती है, उसमें विधिनिषेध है नहीं । श्रीभगवान के प्रति एक-सा चेतनाशील जीताजागता एकनिष्ठ भाव आये यही बड़े से बड़ी हकीकत है । यह भाव हमारे दिल में प्रकटा हुआ है, जीवित रहा करे तो दूसरे किसी साधन की आवश्यकता भी नहीं है, और यह भाव बनाये रखने के लिए अथवा तो चेतनाशील अपनेआप सतत बहा ही करे, इसके लिए उन्होंने अनेक अलग-अलग प्रकार की साधना का सहारा लिया है, पर यह हकीकत मैं नहीं जान पाया हूँ, क्योंकि वे अपनी हकीकत अपनेआप कभी कहे वैसे हैं ही नहीं । कुछ भी पूछे तब भी वे कहते ही नहीं । यह भी वे कहते नहीं थे, क्योंकि उनके जीवन में एक ऐसे प्रकार की निष्ठा प्रकटी है कि जो कोई साधन श्रीमोटा ने किया हो, उसका कोई प्रत्यक्ष साक्षी न हो तो वैसी हकीकत वे कभी नहीं कहते थे । पर यह मैंने उन्हें खास पूछा, '**मोटा** यह सारी हकीकत आप न कहो यह ठीक नहीं । खास कहनी ही चाहिए, क्योंकि ऐसे सभी साक्षी हमारे

जीवन में कहाँ से हो ? और आप वह हकीकत कहो तो हम सभी तो सच ही मानते हैं । दूसरे कोई यह माने या न माने उस विषय में हमें कोई स्पृहा न होनी चाहिए ।' तब उन्होंने मुझे बतलाया, 'आप कहते हो वह सच हो पर जब हम अपने जीवन की हकीकत कहने बैठे तब यह इतनी सारी सत्य की निष्ठावाली होनी चाहिए, इतना ही नहीं, पर उस सत्य का आचरण करते समय कोई भी हमारा आगेपीछे का स्वजन उपस्थित हो और जानता हो यह इस काल में बहुत आवश्यक है । आज यह काल ऐसा चलता है कि जब हम अपने जीवन की हकीकत खोलने बैठे हो, तब इस हकीकत को हम किसी भी तरह साबित कर सके ऐसी स्थिति में हो यह हमारे लिए उत्तम प्रकार का है ।'

• • •

८. आहार

आध्यात्मिक मार्ग में विकास करने के लिए किस प्रकार का आहार लेना, उसे वे बहुत महत्त्व नहीं देते । सही महत्त्व तो हमारे दिल में श्रीभगवान के मार्ग में जाने की जो तमन्ना, जिज्ञासा है, उस जिज्ञासा में कितना जी है और जिज्ञासा किस प्रकार की है, उस पर सारा मदार है । जिसे धधकती ज्वालामुखी जैसी तमन्ना, जिज्ञासा हो, फव्वारे की तरह सतत गतिशील, क्रियाशील और सर्जनशील रहे उसके लिए उन्होंने बहुत बहुत लिखा है ।

श्रीमोटा तो अनेक बार कहते हैं कि गाँवों में अनेक संत-भक्त हो गये हैं । गाँवों का गरीब मनुष्य सत्त्वगुण की खुराक, सात्त्विक लगती खुराक कैसे ले सकता है ? प्याज, लहसुन और मीर्च खानेवाले गाँव के मनुष्य में भी महान भक्त हो गये हैं । हम मांसाहार को नकारते हैं, पर ऐसे अनेक भक्त और ज्ञानी देशपरदेश में हो गये हैं कि जो शराब भी पीते और माँस खाते थे । इसलिए श्रीमोटा की समझ में तो यह है कि श्रीभगवान के पथ पर चलनेवाला यदि उत्कट में उत्कट दशावाली जिज्ञासा का हो तो इस प्रकार के खुराक का कुछ भी विधिनिषेधता उसे नहीं लग सकती ।

श्रीमोटा ने बचपन में गरीबी में बहुत मजदूरी की है, तब प्याज, लहसुन खाये हैं । रोट के साथ सब्जी खा सके ऐसी स्थिति न थी । लहसुन, नमक और लाल मिर्च पीसकर चटनी बना डालते, फिर रोट के साथ उसे खाते । प्याज भी खाते । आज वे प्याज और लहसुन नहीं खाते, इसका कारण तो उनके शरीर को दाह लगता है वह है । बाकी उन्हें यह खाने में किसी तरह की बाधा नहीं ।

• • •

९. पूर्वाग्रह तोड़ना

श्रीमोटा ने अपने जीवन में, व्यवहार में और कुटुंब में अनेक बार रूढ़िभंजक कर्म किये हैं, पर उसमें उनकी सुधारणा की दृष्टि न थी पर पूर्वाग्रह तोड़ने की दृष्टि थी । जब उनके बुजुर्ग बंधु का अवसान हुआ, तब उन्होंने किसी को रोने कूटने नहीं दिया था । दूसरी कोई भी विधि करने न दी थी । तब उनकी आर्थिक स्थिति कमजोर थी, पर ऐसे कर्म करने जितनी सहनशक्ति, ताकत उनमें थे । उसमें उनकी आध्यात्मिक पथ की भी थोड़ी असर थी ऐसा कह सकते हैं ।

पहले ऐसा गिना जाता कि मुसलमान के घर का खाने से मुसलमान हो जाते हैं । उनका एक मुस्लिम मित्र था । उसके साथ वे चाय पीते थे । उस मित्र को ऐसा हो आया कि एक बार श्रीमोटा उसके घर मांस खाय तो धर्मभ्रष्ट हो जाय । श्रीमोटा को इस बात का पता चला । तब उन्होंने उस मित्र के साथ उसके घर ही मांस खाया, पर इससे उनका धर्मभ्रष्ट न हुआ था और उन्होंने बेधड़क कहा था कि, इसतरह जहाँ-जहाँ उनके समझ की उलझन दिखती, वहाँ-वहाँ वैसी उलझन तोड़ने के लिए वे मथते । इसलिए मांस खाने के सामने पूर्वाग्रह तोड़ने के लिए ही उन्होंने ऐसा एक बार किया था ।

• • •

१०. बीमारियाँ

श्रीमोटा के शरीर में आज अनेक ऐसे रोग हैं कि जो घर कर बैठे हैं, तथापि उनकी प्रवृत्तियाँ देखते बाहर से किसी को ऐसा न लगे कि

उनके शरीर में ऐसे ऐसे रोग होंगे । इसलिए उनके विषय में अनेक के मन में विविध प्रकार के प्रत्याघात जन्मते हैं, जो कुदरती हैं ।

(१) कितने अध्यात्म विज्ञान में रस नहीं रखते ऐसे उनके मित्र हैं, जो समाजसुधारक के रूप में प्रतिष्ठित हैं, वे ऐसी आलोचना करते हैं 'श्रीमोटा अपने रोग पर आवश्यक शस्त्रक्रिया जैसे इलाज क्यों नहीं करवाते ?' (२) अमुक प्रशंसक ऐसे प्रश्न करते हैं, 'रामनाम से रोग मिट जाते हैं, ऐसा कहते हैं तो आपके जैसे संत को क्यों नहीं मिटता ?' (३) तब कोई भोला भक्त इतना अधिक आवेश में आकर बोल जाता है, '**मोटा !** आपको क्यों रोग होते हैं ? आप ढोंग करते हो !' (४) तो कोई स्वजन कच्चीपक्की समझ में ऐसा पूछता है, '**मोटा,** आपके शरीर में किसी के रोग जैसे आये वैसे उसे विदा क्यों नहीं करते ?'

'मुक्तों को रोग क्यों होते होंगे ?' इस विषय में समाज में बहुत गैरसमझ व्याप्त है, परन्तु प्रथम उपर्युक्त चार प्रकार के वर्गों के प्रश्न के बारे में प्रभुकृपा से खुलासा कर लेने के बाद दूसरी बात करें :

(१) एक प्रसिद्ध समाजसुधारक मुंबाई में जब-जब श्रीमोटा पधारते, तब उन्हें मिलने आते और उनकी तबियत की, खास करके 'प्रोस्टेट ग्लेन्ड' (मूत्रपिंड़ की बीमारी) की खबर पूछते । ऐसे दर्द पर शस्त्रक्रिया करवानी चाहिए, ऐसी बलपूर्वक वे सलाह देते । तब श्रीमोटा ऐसा उत्तर देते, 'आपका कहना सच है, पर यह रोग कितना सह सकते हैं, इसकी मैं कसौटी करना चाहता हूँ । इसमें हमारे खमीर और खुमारी की कसौटी होती है ।' ऐसा रोग श्रीमोटा को क्यों हुआ इसकी सच्ची समझ कोई पाना नहीं चाहता और बुद्धिमानों को श्रीमोटा का ऐसा व्यवहार तर्कशुद्ध नहीं लगता । 'चेतना में निष्ठा पाये के कर्म और प्रारब्ध तो कभी के जलकर भस्म हो गये होने पर भी उन्हें ऐसे रोग क्यों ?'— ऐसे प्रश्न सहज खड़े होने चाहिए और उस पर विचार होना चाहिए । जब उपर्युक्त महाशय को एक दूसरे भाई ने ऐसा सूचित किया, 'मुक्तात्माओं को होते ऐसे रोग विकेरियस सफरिंग होते हैं, अर्थात् दूसरों के बदले भुगतते होते हैं ।' तब उन्होंने असहमति रूप सिर हिलाया ! अहमदाबाद

में तो दूसरे एक प्रसिद्ध सद्गत समाजसुधारक ने श्रीमोटा को ऐसा सुना दिया, 'जंतरमंतर से रोग नहीं मिटता !'

(२) दूसरे वर्गवाले एक भाई ने सार्वजनिक सभा में पूछे प्रश्न के उत्तर में श्रीमोटा ने उस मतलब का बतलाया कि, इस भाई को यह क्षेत्र के विषय में कोई ज्ञान हो ऐसा लगता नहीं है । विचार तो करो कि श्रीरामकृष्ण परमहंस, श्रीअरविन्द, श्रीरमण महर्षि, स्वामी विवेकानंद, स्वामी रामदास जैसे मुक्तों को जानलेवा रोग क्यों होते होंगे ?.... पर इतना समझ लो कि श्रीमोटा के शरीर में व्याप्त रोगों को इस शरीर के साथ कोई संबंध नहीं है । रामनाम से रोग मिटे यह सही है । मेरा मीरगी का रोग इससे मिटा था । पर तब की (यौवनकाल के दौरान) मेरे देह की अवस्था और आज की अवस्था के बीच जमीन आसमान का अंतर है, यह समझ लो ।

(३) भोले भक्तों का तीसरा वर्ग तो ऐसा ही मानता है कि अपने आराध्य देव को ऐसे रोग हो ही क्यों ? इसलिए उन्हें अधिक समझाने का रहता नहीं है ।

(४) अंतिम जो चौथे वर्ग के प्रश्न करनेवालों को श्रीमोटा ने ऐसा समझाते हुए कहा, 'भाई ! जिस हेतु से यह रोग आया, वह हेतु जब तक हो नहीं, तब तक वह जाये किस तरह से ?' ईत अलम् ।

१९३९ में आपश्री ने चेतना में निष्ठा पायी अर्थात् चेतन के लक्षण उनमें प्रकट होने लगे । जैसे कि (१) तादात्म्यभाव (२) साक्षीरूप (३) भावातीत, गुणातीत और कालातीत होना (४) चेतनशक्ति का प्रादुर्भाव आदि । **इसलिए उन्हें जैसे-जैसे स्वजन मिलते गये वैसे वैसे स्वजनों के दुःखदर्द तादात्म्यभाव के कारण उनके शरीर में सहजरूप से प्रकट होने लगे । उसमें प्रयत्न से रोग लेने का नहीं होता । यदि प्रयत्न हो तो तादात्म्यभाव नहीं गिनायेगा और वह जीवदशा का लक्षण गिनायेगा ।** इस विषय में अधिक जानकारी अन्यत्र आती है, इसलिए उसकी पुनरुक्ति नहीं करनी, परन्तु इतना बतला दें कि उनके शरीर में दिखते करोड़रज्जु का रोग (स्पोन्डीलाइटीस), मूत्रपिंड की बीमारी,

अनिद्रा, बवासीर मस्सा, मीठी पेशाब, सिर और आँखो का एक रोग, दमा आदि रोग किस कारण हुए होगे वह अब समझ सकोगे ।

आज से लगभग पच्चीस-सत्ताईस वर्ष पहले आपश्री दक्षिण हिंद में थे, तब उनके शरीर को प्रतिदिन जाँचकर रोग की चिकित्सा करनेवाले और दवा लिखकर देनेवाले डॉक्टर को जब ऐसा मालूम हुआ कि इस शरीर में रोज अलग-अलग रोग होते दिखते हैं—आज का रोग कल न भी हो या कोई दूसरा ही दिखे !—तब वे बेचैन हो गये और पैरों में पड़कर उन्होंने कहा, 'स्वामी ! आपकी दवा मैं कर सकूँ ऐसा नहीं !'

आज की बात लें। बीच में उन्हें मीठी पेशाब का रोग हुआ था। सूरत के प्रख्यात डॉक्टर श्री आर. के. देसाई ने १९६९ की साल में श्रीमोटा की डायाबिटीस रोग की दवा की थी। आपश्री डॉक्टर की दवा करवाते, भोजन पर भी नियंत्रण रखते और पन्द्रह शेर जितना वजन कम किया था। और खूबी की बात यह है कि असाध्य लगता यह रोग उन्हें मिट गया ! प्रस्तुत डॉक्टर देसाई ने ता. ७-१०-१९६९ के श्रीमोटा को पत्र में लिखकर बतलाया था कि 'आपके रक्त की सर्करा अब बिलकुल तंदुरस्त मनुष्य की हो इतनी हो गई है। इसलिए अब चिंता नहीं। खुराक में - सर्करा के कारण मर्यादा रखने की आवश्यकता नहीं है। मैं हमेशा मानता आया हूँ और अब दृढ़रूप से मानता हूँ कि आपको मीठी पेशाब की बीमारी हुई ही नहीं !' यह क्या सूचित करता है ? श्रीमोटा का शरीर, उनके शब्दों में 'आश्चर्यकारी घटना हुआ करती हैं ।' पर उसकी उन्हें परवाह नहीं और तंदुरस्त मनुष्य की तरह आवश्यकता पड़ने पर घण्टों तक पलथी लगाकर बैठे रहकर कार्यमग्न रहते हैं और बालक की तरह माँगकर भोजन के समय बरफी भी खाते और मठियाँ तथा सेवममरा और धानी या शेकी 'मकाई' खाकर रहते। कोई बार पीलिया, कोई बार दोनों हाथ के बगल-कँखवारी हुई हो, क्षय की खून की उलटी होती हो, तीन-चार डिग्री बुखार चड़ा हो, तब भी प्रवृत्ति में रहे, लंबे अंतर का प्रवास करते, हमेशा प्रसन्नता के साथ विनोदमिश्रित चर्चाएँ करते और

सार्वजनिक कार्यक्रमों में खूब ही नियमित रूप से भाग ले, यह उनकी अध्यात्मशक्ति का व्यक्तव्य नहीं तो दूसरा क्या है ?

• • •

११. तादात्म्यभाव के कारण

सामान्य रूप से तो सभी कहते होते हैं कि, 'श्रीमोटा रोग ले लेते हैं।' यह बात ठीक नहीं है। 'ले लेनी की' बात गलत है। क्योंकि 'लेना' अर्थात् तो प्रयत्न हुआ कहलायेगा । प्रयत्न जहाँ हो, वहाँ प्रकृति का प्रदेश । यह तो सहजता से, अपनेआप निमित्त के कारण वैसा-वैसा और कभी-कभी होता है । आध्यात्मिक जीवन के भावना के प्रदेश में और जो भक्ति में संपूर्ण निष्ठावान होते हैं, उनमें ऐसे प्रसंगों में होता है। हमने अनेक बार ऐसे प्रसंग देखे हैं ।

एक बहन जो अभी जीवित है* और राजकोट में कन्याशाला में शिक्षिका है । उनका नाम जयाबहन व्रजलाल जानी है । उनको प्रसूति होनेवाली थी, और उसी दौरान उन्हीं दिनों में श्रीमोटा के पेट में इतनी अधिक मरोड़ उठी थी । हम ने उसे देखा और तीन दिन वह बहन जो मरणतुल्य स्थिति में थी और पेट की पीड़ा भुगत रही थी, उस समय श्रीमोटा ट्रिचीनापल्ली में थे । यह मेरी आँखों से देखी अनुभव की हुई बात है ।

गाँधीजी ने एक बार (१९४३ में) सत्ताईस दिन का व्रत किया था । एक बार उनके पेशाब में अति जहरी जन्तु दिखे थे । तब उनको बहुतों ने विनती की थी कि कुछ लो तो अच्छा । यह तो भयंकर स्थित कहलाएगी ! तब गाँधीजी ने कहा था, 'भाई ! कल सुबह देखो क्या स्थिति होती है ।' ठीक उसी दिन श्रीमोटा के शरीर के पेशाब, उन्होंने स्वयं चाहकर मेरे भाई हसमुखलाल को (कुंभकोणम् में) दिया और कहा, 'इस पेशाब का पृथक्करण करवाकर लाओ—पेथोलोजिकर पृथक्करण कराओ ।' और तब उसी प्रकार के जन्तु श्रीमोटा के पेशाब में निकले थे । यह परिचित हकीकत है और वह वास्तविक है । उसके बाद गाँधीजी

---

* वर्तमान में स्वर्गस्थ

के पेशाब में जहरी जन्तु नहीं होने का जाहिर हुआ। (ता. २४-२-१९४३) इस पर से सिद्ध होता है कि गाँधीजी का यह रोग श्रीमोटा में तादात्म्यभाव के कारण प्रवेश किया था। श्रीमोटा गाँधीजी के लिए कितना भक्तिभाव रखते हैं यह प्रसिद्ध बात है।

मेरे पुत्र सिद्धार्थ को हिमालय की यात्रा के समय दस्त लग गये। तब श्रीमोटा ने कहा था कि हम यात्रा में जा रहे हैं पर मजा नहीं आयेगी। यह सिद्धार्थ को दस्त लगे हैं। मैंने उनसे कहा कि, 'आप मिटा दो न !' मैंने उस समय ऐसा कहा था जो अब ऐसे समय में मैं शायद न बोलूँ, परन्तु सच ही सिद्धार्थ के दस्त मिट गये और श्रीमोटा को हुए। वह मेरी पत्नी, मेरी बड़ी माँ ने सभी ने देखा है और यात्रा के अंत में वह मिट गये। यह हकीकत है।

ऐसे अनेक दूसरे **जीवों** के साथ भी ऐसा तादात्म्यभाव श्रीमोटा को है, यह हमारी जानकारी में है। मेरे शरीर के साथ के एक-दो अनुभवों की मुझे खबर है। यह हकीकत कोई सनक के कारण नहीं लिखता, पर नजर के समक्ष प्रत्यक्ष वास्तविकरूप से जैसे जो हकीकत हुई है, वही मैंने लिखा है। ऐसे मनुष्यों में ऐसा होना मात्र संभावना की हकीकत नहीं, पर वास्तविकता है। उनमें ऐसी तादात्म्यता प्रकटी होने पर भी, वैसी-वैसी स्थिति में वे होने पर भी, वे वापिस जीतेजागते चेतनात्मकरूप संपूर्ण साक्षीभाव में व्याप्त होते हैं। वह तादात्म्यभाव उनमें प्रकट हुआ होने से जहाँ-जहाँ निमित्त हो, वहाँ-वहाँ उन लोगों के शरीर में ऐसे गुणधर्म प्रकटते हैं। यह हकीकत है।

जिन्हें हम चाचाजी कहते हैं, उन चाचाजी का पूरा नाम श्री गुरुदयाल मल्लिकजी। शांतिनिकेतन में गुरुदेव टागोर के साथ उनका निकट का परिचय और श्री एन्ड्रुज के मित्र। श्री एन्ड्रुज ने एक पुस्तक लिखी है, वह चाचाजी को अर्पण की है। उस पर से उनके बीच के घनिष्ठ संबंध का हमें ख्याल आता है। ऐसे चाचाजी के साथ के तादात्म्यभाव को लेकर उन्हें फोड़ा हुआ और बैठ भी गया।

दूसरा एक प्रसंग याद आता है : श्रीमोटा की भतीजी जिसे श्रीमोटा ने ही पाला और बड़ा किया और शिक्षिका की नौकरी में थी । उसकी नार में शादी की थी । उसे क्षय हुआ । श्रीमोटा के पास तो पैसे मिले नहीं, इसलिए उनकी माँ उन्हें बार-बार कहे कि, पुत्री को तुम अपने घर लाओ । पर श्रीमोटा 'ना' कहते, क्योंकि उनके पास पैसे नहीं थे, उसे घर लाये तो दवा करवानी पड़े । इसलिए माँ ने कहा कि दूसरा कुछ नहीं तो पुत्री को देखने तो मुझे ले चल । श्रीमोटा के पास इतने पैसे न मिले, पर उतने पैसे उधार लेकर दो जन नार गये । श्रीमोटा की भतीजी ने श्रीमोटा को कहा कि, 'चूनीकाका, आप भगवान की भक्ति करते हो । आप मुझे जिलाओ ऐसी आपके पास मेरी माँग नहीं, पर मुझे जो खाँसी और दूसरा सभी दर्द होता है, वह सहन नहीं होता और खून मुँह से गिरता है, वह मुझ से सहन नहीं होता । इसलिए मुझे हलकापन आये इतना करके आप दो तो बहुत अच्छा !' श्रीमोटा ने पुत्री को आश्वासन देते हुए कहा कि, 'पुत्री, मैं भगवान को प्रार्थना करूँगा ।' और सच ही उन्होंने साबरमती आश्रम में आकर प्रार्थना की और पहली बार यह तादात्म्य का किस्सा उनके जीवन में उनकी भतीजी के शरीर को जो क्षयरोग हुआ था, इससे श्रीमोटा के शरीर को यह अनुभव प्रत्यक्ष हुआ । श्रीमोटा को भी खून की उलटी होने लगी, खाँसी आने लगी । इसलिए उस समय आश्रम के मुख्य व्यवस्थापक श्री नरहरिभाई परीख थे । उन्हें श्रीमोटा के लिए बहुत भाव था, इसलिए उन्होंने कहा कि, 'चूनीभाई, यह रोग आपको हुआ है यह ठीक नहीं ।' इसलिए उनके स्नेही डॉ. मणिभाई भगत थे, उन्हें बुलवाया और उनके पास श्रीमोटा को जँचवाया और उनकी दवा शुरू करवायी । उन्हें खाँसी और खून की उलटी होती, वह हमने देखा था ।

तब भाई हेमंतकुमार नीलकंठ उनके पास रहते थे । उनका अनुभव है कि एक बहन रजस्वला हुई थी । उनके निमित्त उन्हें भी ऐसा अनुभव हुआ, वह भी अनुभव की हकीकत है ।

मेरे मामा की जलंधर की बीमारी श्रीमोटा में सहजरूप से आयी यह हकीकत है । ऐसे विकार और रोग उनके शरीर में तादात्म्यभाव को लेकर जो प्रकटे यह चेतन का गुणधर्म गिना जायेगा ।

एक बहन को डायाबिटीस—मीठी पेशाब का रोग हुआ, वैसा रोग श्रीमोटा के शरीर में भी हुआ । स्पोन्डीलाइटीस—कमर के मनके का रोग—भी हुआ है, वह भी ऐसे ही किसी कारण के लिए है ।

एक बार हम हिमालय की यात्रा में मेरी माँ और पत्नी साथ गये थे । तब मेरी माँ की पालकी लुढ़क गई और उसी समय—सायमलटेनी-यसली—श्रीमोटा का दूसरे स्थान पर लुढ़कना और तब स्वयं कहा कि आज बड़ी माँ उबर गयी और उस प्रसंग में जब वे बोले थे, तब मेरी पत्नी उनके साथ उपस्थित थी । उन्होंने ऐसा वचन सुना भी सही ।

ऐसे दूसरे कितने ही उदाहरण दे सकते हैं । दे सकता हूँ ऐसा नहीं पर ऐसे कितने ही प्रसंगों को प्रत्यक्ष जानता हूँ, पर ऐसे प्रसंगों का वर्णन करना यह योग्य नहीं । श्रीमोटा ने तो कितने ही उनके साधनाकाल के प्रसंग हमें बतलाये भी नहीं हैं और अभी भी बतलाते नहीं हैं । वैसा जाहिर होने से या लिखने से कुछ नहीं मिलता और समाज की कुतूहलता बढ़ाने में वे बड़ा भाग निभाते हैं, क्योंकि गौरीशंकर के शिखर पर कैसी स्थिति है, यह जानने में कोई समर्थ नहीं । यह बात सामान्य संसारी मनुष्य के दिमाग में उतर सके ऐसी नहीं है । पर हम ने तो प्रत्यक्ष सचमुच श्रीमोटा के शरीर में कितने ऐसे प्रसंग अनुभव किये हैं, इसलिए श्रीमोटा के जीवन के बारे में लिखा जा रहा है, तब यह हकीकत बतलाना यह मेरा अपना धर्म समझता हूँ, इसलिए मैंने संक्षिप्त में ही लिखा है ।

• • •

१२. स्थितप्रज्ञ

सन् १९३८* की साल से मैं श्रीमोटा के प्रत्यक्ष जीते-जागते परिचय में हूँ । मैंने अनेक बार देखा है कि सामान्य मनुष्य को जहाँ असुविधा हो वैसी ही परिस्थिति में, संयोगों में भी श्रीमोटा प्रेम से, मस्ती से और भावना से रह सकते थे । ताजा ही उदाहरण दूँ : नडियाद आश्रम

* श्री नंदुभाई ने हरिजन आश्रम, साबरमती में २-४-१९३९ से निवास शुरू किया था । इसके बाद में वे श्रीमोटा के परिचय में आये थे । ('जीवन सार्थकतानी केडीए' पुस्तक, पृष्ठ ४०४)

का उनके रहने का कमरा बहुत छोटा । भाग्य से १०' लंबाई और ८' चौड़ाई । एक चारपाई बिछी है । एक छोटी पानी भरने की मटकी रखने की पनसाल जैसा साधन, दो परछत्ती, उस पर श्रीमोटा के कपड़े आदि । इतने ही कमरे में वे रहते हैं । कितने ही लोगों ने उन्हें अच्छा बड़ा कमरा कर देने को कहा है । एरकन्डीशन्ड कर देने का कहा है, पर श्रीमोटा यह स्वीकार नहीं करते, इतना ही नहीं, आश्रम में बीजली का पंखा होने पर भी कितने वर्षों तक ऐसा का ऐसा उपयोग बिना का पड़ा रहा, परन्तु जब उनके शरीर को बुढ़ापा आने लगा और शरीर को बहुत गर्मी लगने लगी, तब उसका उपयोग करने में संकोच नहीं है । श्रीमोटा तीन तीन पंखे चलाते हैं । तब भी शरीर की गर्मी कम नहीं होती । यह गर्मी इतनी अधिक उन्हें लगती हैं कि पाँच पंखे हो, तब भी उन्हें कम पड़े । कितने ही लोगों ने कहा, 'हम एरकन्डीशन्ड कर दे । बीजली का बील भी हम भरेंगे ।' पर उसका उन्होंने स्वीकार नहीं किया । इसके अलावा प्रत्येक वर्ष समाज के काम के लिए जो संकल्प होते हैं, इसके लिए, पैसों के लिए, जो जो लोग रोट खाने का आमंत्रण दे, कितने मीलों की यात्रा होती कार में । इससे अनेक धक्के लगते और उनके शरीर के करोड़रज्जु के तीन मनके के बीच की दो गद्दी खिसक गयी हैं, इससे उनके शरीर को सख़्त दर्द तो हुआ ही करे और ऐसे दर्द में अब ऐसी कार की यात्रा में बढ़ोत्तरी होती है, पर उन्होंने इस दर्द की कोई गणना रखी ही नहीं है ।

नडियाद आश्रम की स्थापना हुई, प्रारंभ हुआ तब आपश्री सिर पर गठरी रखकर स्टेशन से चलकर अनेक बार चार मील दूर वहाँ गये हैं । उसके बाद बस में बैठकर जाते । उसके बाद नडियाद के ही भाई कुबेरदास भावसार ने उन्हें साइकिल दी उस पर बैठकर जाते । अनेक बार इस तरह श्रीमोटा सिर पर सामान लेकर जाते, यह जाना तब मुझे हुआ कि श्रीमोटा ऐसी तकलीफ उठाये यह हमारे लिए तो ठीक नहीं । इसलिए मैंने भाई नगीनदास को लिखा कि श्रीमोटा को इस तरह यात्रा नहीं करने देना और मेरे खर्च और हिसाब में उन्हें घोड़ागाड़ी में भेजना । तब से श्रीमोटा घोड़ागाडी में जाने लगे ।

उसके बाद सूरत आश्रम हुआ । सूरत आने का हो, तब गाड़ी में इतनी अधिक भीड़ हो, पर वह सभी तकलीफ में आते जाते । एक बार हमें नडियाद से सूरत जाना था । तब गाड़ी में 'रीझर्वेशन' करवाया था, पर नडियाद स्टेशन पर हमारे अनामत डब्बे में, अनामत-रीजर्व्ड करवाया था, तब भी जगह नहीं मिली और हमें सामान आदि रखने में बहुत तकलीफ उठानी पड़ी । तब अहमदाबाद के महाजन बुक डीपोवाले श्री चीमनभाई महाजन को हुआ कि ऐसे श्रीमोटा को तो बहुत तकलीफ उठानी पड़ती है, इसलिए हम उन्हें एक कार लाकर दे । उन्होंने कार लाकर दी, परन्तु उस कार का दुरस्त खर्च होता वह श्रीमोटा को रुचता नहीं । इतना खर्च हमें रास नहीं आता । उन्होंने कार वापिस दे दी । अभी भाई चीमनभाई उस कार की कीमत का ब्याज प्रत्येक नववर्ष के दिन श्रीमोटा को देते हैं । उसके बाद डभाणवाले रावजीभाई की कार मिली । उसमें वे आते-जाते । और अब वैकुंठभाई पटेल की ओर से सुंदर मरसीडीज कार मिला करती है । यह हकीकत है तथापि शरीर की असुविधा को श्रीमोटा ने किसी दिन गिना नहीं है ।

१९७१* में उन्होंने लगभग तेरह लाख के काम हाथ पर लिए थे । इससे जैसे-जैसे श्रीमोटा को किसी का आमंत्रण मिलता तब-तब श्रीमोटा जाते । ग्रीष्म की प्रखर गरमी में और वह ताप की गरमी उनसे सहन नहीं होती, वह हमारे मन में बिलकुल सच हकीकत है । ऐसे ताप में भी २००-२५० मील की रोज की मुसाफ़िरी कार में करते और शरीर की तकलीफ उन्हें होती, तथापि किसी भी प्रकार की गणना न हो, यह कितनी बड़ी हकीकत है, इतनी ही हकीकत उनकी आध्यात्मिक स्थिति प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है ।

शरीर के अनेक प्रसंग लिख सकते हैं, पर इतना ही बस है । ऐसी असुविधाओं को आपश्री बिलकुल गौण कर सकते हैं । **उनके सामने तो हमेशा प्राप्त हुए कर्म के साफल्य की ही मात्र विशेषता आगे**

---

* सन १९७३ में आपश्री ने सर्वक्षेत्र संशोधन के लिए पैंतालीस लाख रुपये की टेर डाली थी ।

रहा करती होती है । यही उनके जीवन में से हमारे जैसों के लिए सीखने जैसी बात है ।

फिर, सूरत आश्रम में पहले वे एक छोटे कमरे में ही रहते थे । नये-नये अनेक लोग आते रहते और छोटे कमरे में भी श्रीमोटा को तकलीफ पड़ती, पर उन्होंने अपने लिए बड़ा कमरा बांधने का कभी भी हम किसी को सूचित ही नहीं किया । भीखुकाका को भी नहीं कहा । सूरत आश्रम के व्यवस्थापक भीखुकाका हैं । उनकी पत्नी श्रीमती बिद्याबहन गुरुकुल में पढ़ी थी । स्वभाव से अति तेज । उन्हें श्रीमोटा के लिए बहुत ही भाव । सूरत के आश्रम में ही बीमारी भोगकर मरी, तब उनकी जो कुछ भी संपत्ति थी, वह आश्रम को दे दी थी । वह सारी रकम भीखुकाका श्रीमोटा को देने लगे । पर वे कहे, 'मुझे उसकी क्या आवश्यकता है ? मुझे वह नहीं चाहिए ।' ऐसे ही थोड़ा समय बीत गया । फिर भीखुकाका ने कहा कि, 'आपको छोटे कमरे में असुविधा होती है, इसलिए आपके लिए एक बड़ा कमरा बनवाएँ ।' तब श्रीमोटा ने स्वीकार नहीं किया, परन्तु जब ऐसी बात हुई कि नीचे एक तहखाना बनाये । तब श्रीमोटा ने कहा कि, 'तहखाना बनाओ, तब वहाँ एक मौनमंदिर जैसा ही हो । उसमें आदमी साधना करने के लिए भी बैठे सके । यह मुझे मंजूर है । बनाओ ।' तब विद्याबहन के पैसे से यह एक कमरा हुआ । नीचे एक तहखाना है । आज भी लोग उसमें मौनएकांत के लिए बैठते हैं । यदि कोई श्रीमोटा का सूरत का कमरा और नडियाद का कमरा, दोनों का अंतर देखे तो दोनों के बीच जमीन आसमान का अंतर देखेगा, परन्तु असुविधा या सुख-सुविधा, साहिबी भोगना यह दो के बीच श्रीमोटा के मन में कोई अंतर नहीं । राजा से लेकर मेहतर के घर तक, समाज के अनेक प्रकार के स्तर तक, अनेक प्रकार के लोगों के घर वे रहते थे । मेहतर के घर भी रहे हैं और वहाँ बर्तन साफ करके स्वयं खाना पकाया है । आज कैसी भी असुविधा को वे प्रेम से सहन कर लेते हैं और इससे विशेष प्रकार की सुविधा के लिए बेचैनी उनके मन में कभी जागी नहीं है । तपस्वी या साधुपुरुष हमेशा असुविधा भोगे ऐसा कुछ नहीं ।

सुखसाहिबी में रहते होने पर भी वे आध्यात्मिक निष्ठा में प्रकटे हो ऐसा भी हो । यह तो श्रीमोटा के जीवन विषयक उनकी कैसे प्रकार की रहनीकरणी है, वह बतलाने के लिए ही लिखा है ।

अमुक मित्रों ने श्रीमोटा को प्रथम पुष्पों के हार भी चढ़ाये हैं और फिर गालियाँ भी दी—दे सके उतनी और फिर वापिस प्रशंसक भी हुए। यद्यपि उनकी चढ़ती-पड़ती दौरान भी श्रीमोटा का भाव एकसमान रहा और उनका कल्याण ही चाहा। यह श्रीमोटा के जीवन की खास विशेषता है, खासियत है। अमुक उन पर न्योछावर होकर मासिक दक्षिणा जीवनभर देने का निर्णय कर थोड़े समय वैसा देकर फिर बंद भी कर दिया। तथापि उनके प्रति भी श्रीमोटा हमेशा तटस्थ रहे हैं । इतना ही नहीं, पर प्रेम रखा है ।

श्री इन्दुलाल याज्ञिक के साथ श्रीमोटा काम में लगे रहते थे और श्री इन्दुलाल अपनी जिम्मेदारी छोड़कर आधे से ही संस्था को छोड़कर भागे, तब श्रीमोटा को आठ-नौ महीने का वेतन भी नहीं मिला था और गरीबाई से उस समय भी अभ्यस्त थे, तब भी भाई इन्दुलाल के प्रति आदर उनके दिल में कभी कम नहीं हुआ । उनके गुणों और शक्ति के वे हमेशा चाहक रहे हैं। इतना ही नहीं, पर उनके वर्तमान नेनपुर के आश्रम में एक हजार रुपए की मदद भी उन्होंने की है ।

• • •

१३. जीवनकार्य

श्रीमोटा की खूबी यह है कि किसी के साथ वे कभी भी संबंध बांधने नहीं जाते । अनेक वर्षों से मैं उनके समागम में हूँ । इससे मैंने देखा है कि किसी के साथ अपने लिए अलग रूप से संबंध बांधने वे गये नहीं हैं। पर एक बार कोई भी किसी निमित्त के कारण उनके साथ इस तरह जुड़े हैं कि श्रीमोटा के काम को वे बहुत मदद और साथ देते रहते हैं । कितने भाई-बहनों को इतना सारा साथ दिया है कि हमें यह जानकर आश्चर्य भी लगे ।

श्रीमोटा ने उत्तर जीवन में जब बड़े बड़े काम हाथ में लिये, तब तो उन्हें कैसे-कैसे संबंध जीवन में प्रकटते गये और उन संबंधों से वैसे

मनुष्य, महानुभावों ने, श्रीमोटा को जो मस्ती से मदद की है, इसके लिए एक प्रकरण लिखे तो भी बस नहीं होगा । यह भी उनकी एक विशेषता है कि किसी के साथ वे अपने लिए अलग रूप से, अपनी रीति से, आगे होकर संबंध बांधने नहीं जाते और वह संबंध बंधता है, उनके साथ हृदय के भाव से, तो वे प्रेमप्यार किया ही करते हैं ।

ऐसे भी मनुष्य हैं कि श्रीमोटा उनके साथ प्रेम और भाव से व्यवहार करने पर भी, उनको स्वजन गिनते होने पर भी उनके साथ कभी-कभी इतने अधिक प्रेमभाव से सानुकूलता रखने पर भी ऐसे लोगों ने उनका अनेक बार द्रोह किया है । इतना ही नहीं, पर उनकी पीठ पीछे उन्हें बदनाम करते हैं, उनका खराब बोलते हैं । यह सब उनके प्रत्यक्ष जानकारी में आने पर भी वह सच में बहुत भाव और प्रेम से उन्हें मदद हो, उनके जीवन में उन्हें प्रेरणा-उत्साह मिला करे, उनकी अड़ी के समय खड़े रहकर उन्हें जो सूक्ष्म मदद प्रेरित की है, यह तो उनके जीवन की एक भव्य हकीकत है ।

इसके अलावा श्रीमोटा प्रत्येक पतिपत्नी के जीवन में, अनेक भाई-बहनों के जीवन में अनेक तरह से भाग निभाते रहते हैं । कितनी ही जगह तो पतिपत्नी हो या कोई तीसरा भी हो । इसप्रकार त्रिकोण संबंध बन गये हो ऐसी परिस्थिति में, प्रत्येक त्रिकोण की व्यक्तिओं के लिए, एक दूसरे के लिए सद्‌भाव, सुमेल, सहानुभूति, शांति, प्रेम, एक दूसरे के लिए प्रेम से कर चुकना, खप जाना—इसप्रकार की समझ का जीवन के व्यवहार में खूब उपयोगी हो उठती है, इतना ही नहीं, पर प्रत्येक के जीवन में इसप्रकार का आराम, शांति और परस्पर के प्रति जो सुमेलभरा हृदय का भाव आये ऐसी समझ प्रेरित की है । यह तो सचमुच जीवन के विकास में उस उस जीव को प्रेरित करनेवाली और उनके जीवन में सुख ही प्रेरित करनेवाली है, ऐसे अनेक उदाहरण प्रत्यक्ष स्वयं मैंने जाने हैं ।

ऐसे जीवन में वैसे उदाहरण कुछ अलग-अलग प्रकार के प्रकरण हैं । ऐसे कोई-कोई प्रकरणों में श्रीमोटा ने जो भाग निभाया है, प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से भी यह भाव उनके जीवन में उन्हें उपयोगी हुआ है,

इतना ही नहीं, पर उनके जीवन को कलुषित करते क्लेश, झगड़े और अनेक प्रकार के संघर्षों में से श्रीमोटा ने ऐसे कितने ही त्रिकोणों को उबार लिया है, यह तो समाज की बड़ी से बड़ी सेवा है। यह सेवा कोई जानता भी नहीं और उन्होंने यह किसी को बतलाने की दरकार भी नहीं की, यह बड़ी से बड़ी हकीकत है।

• • •

१४. ऊंधिया—भोजन का तृप्तिविस्तार

१९५९ की साल में हुई यह घटना है। सूरत के हरि:ॐ आश्रम में ऊंधिया* बनवाया था। आश्रम के नियमानुसार आश्रम में उपस्थित होते और भोजन करनेवाले हो उतने प्रमाण में ही रसोई होती। इसलिए आठ-दस आदमी खा ले इतना ऊंधिया तैयार था। श्रीमोटा ने सबसे पहले ऊंधिया का स्वाद जान लिया था।

ऊंधिया खाने के समय श्रीमोटा को मिलने अनेक लोग आये। श्रीमोटा ने उन्हें ऊंधिया देने को कहा। उस दिन सहज ही आनेवाले लोगों की संख्या क्रम से बढ़ने लगी। श्रीमोटा तो सभी को आग्रह करके बिठाये और ऊंधिया खाने को दें और कहते जाये, 'भाईओं, ऊंधिया स्वादिष्ट हुआ है, इसलिए सभी कोई पेट भरकर खाना।' श्रीमोटा सभी को आनंदविभोर करवाते जाते और खिलाते जाते।

नडियाद के आश्रम के ट्रस्टी में से श्री सोमाभाई भावसार तथा श्री चंदुभाई भावसार इस प्रसंग में उपस्थित थे। ऊंधिया बना है उसका प्रमाण वे जानते थे। इससे इनके विस्मय का पार न था। उनके मन में भारी चमत्कार था।

स्थूल वस्तु का प्रमाण हो, उससे अधिक बढ़े किस तरह ? ऐसा प्रश्न हो। श्रीमोटा ने इस घटना को समझाने का प्रयत्न किया था।

इस प्रसंग में वस्तु का प्रमाण बढ़ता नहीं होता, परन्तु जो मुक्तपुरुष ऐसी वस्तु का स्वाद करते हैं और पदार्थ को अल्प प्रमाण में लेने पर भी तृप्ति अनुभव करते हैं। यह तृप्ति मुक्तपुरुष को हुई होने से यह

* विविध शाक की एक गुजराती वानगी।

विस्तारदशा को प्राप्त होती है, क्योंकि मुक्त की सकल क्रियाएँ सहज होने पर भी प्रार्थनाभाव से विस्तृत भी हो सकती है। आत्मनिष्ठ का प्रधानलक्षण ही विस्तृतता में व्यक्त होता है। इससे, ऐसे पुरुष की तृप्ति विस्तार प्राप्त होने से जिस किसी व्यक्ति को वे खिलाते या दे तो वे वस्तु अल्प प्रमाण में लेने पर भी वह व्यक्ति तृप्ति अनुभव करता। इससे उलटा भी अनुभव मुक्तपुरुष करवा सकते हैं। अत्यधिक प्रमाण में खिलाया होने पर भी न खाया हो अथवा तो अल्प ही खाया हो ऐसा भी हलकापन अनुभव हो। ऐसा अनुभव आंतरिक होता है।

ऐसा सब 'निमित्त कर' बनता होता है। मुक्तपुरुष उपस्थित हो, तब प्रत्येक समय 'ऐसा ही हो' ऐसा कुछ हो नहीं सकता, ऐसा श्रीमोटा ने स्पष्ट बतलाया था।

• • •

१५. लाक्षणिकताएँ

श्रीमोटा के जीवन का खास दिखता एक लक्षण वह अनाग्रह है। कोई किसी के प्रति आग्रह नहीं। कोई ऐसा कहे तो ऐसा करे और वैसा कहे तो वैसा करे। किसी के मन में तो ऐसा हो कि ऐसा तो कोई होता होगा ? पर हमने उनके जीवन में देखी हुई प्रत्यक्ष हकीकत हैं।

कुंभकोणम् में मेरे मामा जैसा करते वैसे आपश्री करने देते और श्रीमोटा की तब प्रत्यक्ष पल-पल की उपस्थिति होने पर भी योजना अनुसार चुनाई का काम हो नहीं रहा था, यह जानने पर भी वे बिलकुल चुप थे और कोई सामान्य व्यक्ति किसी कारणवश या बलपूर्वक चुप रहे तब कुढ़न हो, पर हम तो श्रीमोटा को हमेशा आनंद और प्रसन्नचित्त देखते हैं और उन्होंने मेरे मामा को जैसा करे वैसा करने दिया। उन्हें किसी प्रकार की सलाह भी नहीं दी। आश्रम अपना होनेवाला था। उसकी योजना भी अपने पास थी, पर जैसे जो हुआ करे वैसे-वैसे होने दिया, वैसे ही होये जाय उसमें ही उनके अनाग्रह की भावना रही है और मन में उस बारे में संताप कभी हुआ ऐसा कभी हम ने जाना भी नहीं। वे तो जानबूझकर एक अदने से अदना स्वयं कारकुन हो, इस तरह ही व्यवहार करते।

सद्‌गत परीक्षितलाल ने किसी दिन उनकी सलाह पूछी भी नहीं, क्योंकि परीक्षितभाई के मन में श्रीमोटा को प्रबंध, व्यवस्था, चतुराई, इसप्रकार की योग्य समझ नहीं है, ऐसी उस समय भी यह समझ हो सही । काम आपश्री ही सारा करते और सभी प्रकार के और वह योग्य प्रकार का व्यवस्थितिवाला, व्यवस्थापूर्वक हो । तथापि किसी को भी भान न हुआ कि श्रीमोटा में कुछ बुद्धि है । आज भी साबरमती आश्रम में उस समय के लोग रहते हैं । वे भी कहते हैं कि श्रीमोटा में इतनी सारी शक्ति–समझ होगी, इसका हमें भान न था । आपश्री संपूर्ण रूप से अनासक्तिपूर्वक व्यवहार करते । तब अमुक उनको बुद्धू भी कहते । मुझे अपने को ही तब ऐसा लगा कि, 'ओहो ! श्रीमोटा टाइप करते हैं ! अंग्रेजी भी जानते हैं !' यह जानकर मुझे भी आश्चर्य हुआ, क्योंकि तब श्रीमोटा का व्यवहार इसप्रकार का था कि, किसी को भी उनमें चालाकी का भान होता ही न था ! उन्होंने अपने जीवन को ज्ञानभक्तिपूर्वक का, हेतु की सभानता के साथ व्यवहार करके इस प्रकार का बना दिया था कि सब कुछ होने पर भी कहीं कुछ न हो, ऐसा सभी को तब आश्रम में भी लगता । अनाग्रह उनका इतना अधिक जबरदस्त कि कहीं कुछ बिगड़ता हो तो भी किसी को सलाह देने को वे तैयार न थे । आश्रम में हमारे अपने कुटुंब में वे बहुत वर्ष रहे, पर पूछे बिना किसी दिन किसी को कोई सलाह दी हो, कहा हो ऐसा मेरी जानकारी में नहीं है ।

हरिःॐ आश्रमजीवन के कारण श्रीमोटा अनेक के संबंध में आया करते हैं, पर किसी के साथ उन्होंने अपना आग्रह व्यक्त किया हो या अपने मंतव्य की पकड़ का किसी को भी भान कराया हो वैसा आज तक हुआ नहीं है । हाँ, साधना की सभानता लाने के लिए कहा है सही, पर यह हकीकत अलग प्रदेश की है ।

राज अमुक चिनाई करे तब अमुक तरह से ही काम होना चाहिए अथवा तो बढ़ई को अमुक लकड़ी अमुक काम के लिए गढ़ना हो तो उस काम की योग्यता अनुसार ही गढ़ना चाहिए । उसकी समझ श्रीमोटा में साधना के प्रति प्रकटी होने से साधना के विकास के लिए जो श्रीप्रभु–

कृपा से प्राप्त हो, उनके लिए कहा किया हो सही । बाकी, जीवन में अनेक प्रकार के क्षेत्रों में श्रीमोटा ने अनाग्रह ही रखा है, यह मेरा अपना अनुभव है ।

अनेक के साथ वे इस अनुसार बरते हैं । अनेक बार श्रीमोटा सारा कद्दू का कद्दू शाक में जाने देते और कभी एक कण भी न जाने देते । **आग्रह कहाँ रखें और कहाँ न रखें, ऐसी सूक्ष्म सूझ उनके जीवन में आई थी ।** उन्हें सूक्ष्म प्रकार का भावनात्मक, ज्ञानपूर्वक का भक्तिपूर्वक का विवेक उनके जीवन में जागा हुआ है, यह उनके जीवन की विशेषता है । अरे ! वे विवेक को भी पकड़ कर छोड देनेवाले हैं और विवेक को पकड़कर भी नहीं रखते । **कितनी सारी अवधूत मस्ती कि जो शब्द बोलते हमारी जीभ अटक जाय वैसे शब्द भी समाज में अत्यधिक प्रतिष्ठित लोगों के आगे बोलते मैंने श्रीमोटा को सुना है । इससे ऐसा बोलना यह सभ्यता को तिलांजलि देनी गिनायेगा । ऐसा भी कभी-कभी बोलते उन्हें संकोच नहीं होता ।** अवधूती छंद में—आनंद में हो तब भी ऐसा ही बोलना, ऐसा ही रहना और करना, ऐसे सभी ढाँचे में वे कभी फिट नहीं होते, यह भी हमारा प्रत्येक दिन का अनुभव है । किसी में भी जकड़े नहीं होते । कब, कैसे वे व्यवहार करेंगे यह कह नहीं सकते । वे 'मुक्त' हैं ।

उनको किसी का शौक नहीं । पहनने ओढने का भी कोई शौक नहीं । वे अलंकार पहनते हैं सही उत्सव निमित्त में प्राप्त, पर वह उनके अपने शरीर के उत्सव प्रसंग के समय ही । कभी वे अलंकार माँगते हैं, और अलंकार उन्हें मिले भी हैं । अच्छे कपड़े भी मिले हैं, परन्तु पहनने का उनका आग्रह नहीं । अच्छे-अच्छे कपड़े और अलंकार बेचकर उसके पैसे प्राप्त करके उसका अच्छे कामों में उपयोग करते हैं । स्वयं के पास में किनारीवाली धोती आवश्यकता से अधिक हो गई थी । उसे बेचकर भी पैसे इकट्ठे किये हैं । उन्हें केवल लंगोट पर रहना हो तो लंगोट पहनकर भी आराम से रह सकते हैं । कपड़े पहनने का उनका आग्रह है ऐसा कुछ नहीं । कराची

शहर में कपड़े निकालकर कितने घण्टों तक घूमे यह भी हकीकत है पर पराये देश में अनजाने और अनजानी बस्ती में जहाँ कोई पहचानता न हो, वहाँ घूम सकते हैं, पर गांधी आश्रम में ही मेरे घर के आगे ही नाथाकाका करके सोजीत्रा के एक पटेल भाई थे । वे अनेक बार मेरे वहाँ आते और श्रीमोटा को अनेक बार 'नंगी, नंगी' ऐसा वे बोला करे । जैसे श्रीकृष्ण भगवान शिशुपाल की अनेक प्रकार की गालियाँ अमुक तक सुना किया, उस तरह श्रीमोटा ने भी उन्हें कहा कि, 'नाथाकाका, यदि अब आप 'नंगी नंगी' बोले तो मेरी यह धोती निकालकर आपको ऐसा पकड़ के रखूँगा कि आप 'भाईसाहब कहोगे तब भी...फिर मैं तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ूँगा ।' 'अब बैठ बैठ, तुम बड़े कपड़े निकाल डालनेवाले न देखे हो तो बेवजह !' ऐसा श्रीमोटा को नाथाकाका ने कहा कि तुरन्त ही उन्होंने अपने कपड़े निकाल दिये, तब कितनी ही बहने हमारे आँगन में खड़ी थी । तब भी उन्हें बिलकुल संकोच हुआ नहीं और नाथाकाका को तो ऐसे भूत की तरह चिपक पड़े कि नाथाकाका तो दौड़ते जाएँ, श्रीमोटा पीछे दौड़ते जाएँ और नाथाकाका ने माफी माँगी तब उन्हें छोड़ा । इसलिए इसमें भी उन्हें सामाजिक क्षोभ या संकोच न था ।

आज भी श्रीमोटा को देखकर किसी को ऐसा नहीं होता है कि इन **मोटा** में इतनी सारी खूबी होगी, शक्ति होगी, समझ होगी । उन्होंने आश्रम बनवाये और संचालन किया । प्रबंध और उसकी व्यवस्था ही श्रीमोटा में कितनी समझशक्ति है, इसे साबित करने के लिए पर्याप्त हैं। इतना ही नहीं, पर आश्रम में कितने अलग-अलग स्वभाव के लोग आते हैं, बहनें आती हैं, बालक आते हैं, वृद्ध आते हैं—उन सभी के साथ श्रीमोटा का व्यवहार और उनके साथ हिलमिल कर घुल जाने का उनका तरीका ही कोई अनोखा है ।

श्रीमोटा की विशेषता एक दूसरी है **:** मानो कि श्रीमोटा के लिए मुझे भाव है, ऐसा कोई कहे तो आपश्री शीघ्र ही मान ले ऐसे नहीं । ऐसे भाव श्रीमोटा के प्रति उन-उन लोगों के मन के हो तो कर्म में साकार होने चाहिए। भाव हो और यदि सच्चे हो तो वे किसी तरह उसके साकार

रूप में प्रकटने चाहिए । जैसे कि हमें मोह हो, लोभ हो, काम हो या वासना हो तो वे साकार हुए बिना नहीं रहते । उसी तरह यदि सचमुच का भाव जागा हो तो वह साकार हुए बिना नहीं रहेगा, ऐसा श्रीमोटा का कहना है ।

श्रीमोटा ने किसी दिन किसी को अपने शिष्य होने का परोक्ष या अपरोक्ष रूप से सूचन नहीं किया । इस विषय में उनके पुराने मित्र और स्वजन श्री हेमन्तभाई नीलकंठ ने जो बतलाया है, उसका यहाँ उल्लेख करना आवश्यक लगता है ।

'कराची में जब ओम मंडली में से भी एक प्रकार की निराशा मिली और कोई मुझे ध्यान सिखाये इसके लिए आतुरता हुई । उन्होंने (श्रीमोटा ने) देखा तब अंत में उन्होंने कहा था कि, 'आपको बहुत इच्छा है तो अहमदाबाद आऊँगा, तब हम इकट्ठे मंथन करेंगे ।' मेरा अहम् मुझे ऐसा कहता कि वे प्रथम वर्ग में हैं और मैं बालमंदिर में हूँ। 'इकट्ठे मंथन' का अर्थ इस अनुसार किया था। फिर उनके साथ का आध्यात्मिक संबंध प्रारंभ हुआ । अनुष्ठान हुआ, फिर जो अनुभव हुए उस पर से मुझे हुआ कि उन्हें गुरु रूप में स्वीकार करूँ....श्री नंदुभाई भी उनके बुलाने से नहीं आये । **नंदुभाई को मैंने ही सलाह दी थी कि 'आप श्रीमोटा की सलाह लोगे तो उसमें आप सभी को लाभ ही है ।***

श्री हेमंतभाई ने श्रीमोटा का स्वीकार किया फिर दक्षिण की यात्रा पर जाते समय श्री रमण महर्षि के दर्शन करने जाने की अनुमति श्रीमोटा के पास से माँगी । तब उन्होंने हाँ ही कहा था और जब श्री हेमन्तभाई को स्टेशन विदाई देने आपश्री गये, तब श्रीमोटा ने उनसे कहा कि, 'अब वर्तमान में अभी – हमारे संबंध बंद होते हैं । आप मुझे पत्र न लिखना ।'

---

* श्री हेमंतभाईने वह भी बताया था कि जब श्री नंदुभाई और श्रीमोटा के बीच बिलकुल सम्बन्ध न था और श्रीमोटा साबरमती आश्रम छोड़कर जाते थे, तब— मैं अब किसके साथ वात करूँगा ? ऐसे श्री हेमंतभाई के प्रश्न के उत्तर में श्रीमोटा ने नंदुभाई को दिखाकर सूचित किया था कि 'उनके साथ सम्बन्ध बाँधना ।' यों श्रीमोटा ने बिना सम्बन्ध से श्री नंदुभाई को देख लिए थे ।

उसका रहस्य श्री हेमन्तभाई पीछे से समझे थे । श्री हेमन्तभाई ने दक्षिण के तीन बड़े आश्रम देखें और वहाँ उसमें से कोई भी एक का आकर्षण उन्हें हो जाय तो वे वहाँ भले रुक जाय उसकी छूट देने का श्रीमोटा का हेतु था । उसी तरह श्रीमोटा ने श्री नंदुभाई को भी उन्हें पसंद हो, उस आश्रम में जाकर रहने की सलाह दी थी । यों आपश्री बिलकुल निःस्पृह थे—सभी बात में और सभी तरह से ।

• • •

१६. अघोरीबाबा—मौत का सामना

श्रीमोटा जब गुजरात हरिजन सेवक संघ में थे, तब चेतना में निष्ठा पाये महात्मा के अनुभव के लिए हिमालय गये थे । उनका मुख्य उद्देश्य जमनोत्री, गंगोत्री, केदारनाथ, बदरीनाथ, तुंगनाथ और दूसरी जगह जाने का था । गंगोत्री में माताजी का मंदिर है । गंगामाता के मंदिर के सामने की ओर किनारे रहते कोई महात्मा की बात कभी-कभी वे करते थे सही । इसके अलावा, गंगोत्री से आगे केदारनाथ जाते कोई चट्टी के पास से उतरे, तब उनकी खासियत अनुसार सभी को पूछा, तब उन्हें पता चला कि एक अघोरीबाबा अमुक जगह रहते हैं । उस जगह की निश्चित जानकारी उन्हें यहाँ से मिली थी । उस चट्टी में दुकानवाला था । वह कहे, 'अमुक जगह से अमुक टेकरी पर चड़कर जाने का रास्ता नहीं है । पेड़ या बूटी ऐसा कुछ उगा हो उसे पकड़-पकड़ कर धीरे धीरे चढ़कर जाये, तब फिर दूसरा आरोहण आता है । वहाँ से तीसरा पश्चिम दिशा में जाकर पूर्व दिशा में मुड़कर उत्तर दिशा में जाना है । वह सारी चढ़ाई बहुत कठिन है । सभी मिलकर लगभग दस-बारह मील होता है । वहाँ एक अघोरीबाबा उच्च प्रकार के अनुभवी पुरुष हैं ।'

उनके साथ एक कुली था । उन्होंने उसे अपने पास से रकम देते हुए कहा, 'देखो भाई, पाँच दिन तक तुम यहाँ रहना । मेरा सारा सामान, रुपयों की यह रकम आदि तू अपने पास रखना । उसमें से खानेपीने का सारा खर्च करना । पाँच दिन पूरे हो जाय वहाँ तक मैं न आऊँ तो तू अपने घर ले जाना ।' इसके अलावा, उन्होंने परीक्षितलाल तथा उनकी

बा आदि को पत्र लिखकर पता लिख दिया और बतलाया, ‘यह पत्र तू घर जाये, तब पोस्ट करते जाना ।’

ऐसा कहकर वे तो गये । साथ में एकमात्र कंबल लिया । थोड़ा खाने का और सेना के सिपाही पानी पीने का रखते हैं वैसी वॉटरबेग । उनके कहे अनुसार रास्ता अति चढ़ाईवाला, कठिन और अपनी हिंमत, पराक्रम और शौर्य को चुनौती दे ऐसा था । एक दो समय तो उनके पैर फिसले थे और गिरे भी सही, तब भी बीच में पेड़ पकड़ रखने के कारण बच भी गये थे । हमेशा उन्हें श्रीभगवान में इतना सारा विश्वास है कि उससे उन्हें मदद मिला ही करती है । कैसे-कैसे लोगों ने उनको मदद की है, सहायता की है, सहारा दिया है यह देखा सत्य है । वे तो संघर्ष करते-करते चढ़े और बताये हुए स्थल पर पहुँचे ।

वहाँ दुर्गंध बहुत आ रही थी, इससे उन्हें लगा कि यही वह जगह होगी । वहाँ एक बड़ा पेड़ था, उसके आगे हड्डी और मल सब पड़ा था । वहाँ जाकर वे बैठे । ऐसा करते-करते रात होने आई । श्रीमोटा ने अपने पास पानी था उसमें से थोड़ा पीया । खाना साथ में था वह भी खाया । इससे एक दिन में सारा खाना समाप्त हो गया, क्योंकि साथ में बड़ा मोटा कंबल उठाना था, इसलिए अधिक भार लेकर चढ़ सके ऐसा न था । रात के एक-दो बजे । श्रीमोटा अपनी मस्ती में और अपने भजन में, भाव में मशगूल रहते, तब वे अघोरीबाबा आये । वे चुपचाप बोलेचले बिना बैठे रहे ।

वैसे तीन दिन बीत गये । श्रीमोटा को भूख और प्यास जोर से लगी थी पर उन्हें उसका आश्चर्य न था । वे अघोरीबाबा कुछ बोले चले नहीं और यह कुछ पूछे नहीं । चौथे दिन की बात । वे बाबा बोले, ‘बच्चा, भूखप्यास लगी है ?’ तब उन्होंने कहा कि भूख लगी है । इसलिए उन्होंने एक नारियल की नरेली में राब जैसा देकर बोले, ‘बच्चा पी जा । इससे तेरी भूखप्यास मिट जायेगी । इससे भूख भी नहीं लगेगी, तृषा भी नहीं लगेगी ।’ श्रीमोटा ने लिया । उसमें से बहुत दुर्गंध आ रही थी । उन्हें इस बात का परिचय था । इससे वे धीरे-धीरे पीने लगे । खाते-खाते उन्हें

कोई दूसरा स्वाद आया नहीं, पर सारा साफ कर गये । नरेली भी चाटकर साफ कर गये । पर उसकी एक बात अद्‌भुत थी कि इससे भूख गई और प्यास भी गई । और भाव ऐसा प्रकटा कि भाव की स्थिति में, भावावस्था में कितने समय तक वे तद्रूप हो गये !

उसके पश्चात् जब शरीर की सभानता में आये तब अघोरीबाबा ने कहा, 'अरे बच्चा ! तू मेरे साथ रह जा इधर । तेरे को जो कुछ दिल में करने की महत्त्वाकांक्षा है, वह सब इधर तेरे को संतोषपूर्ण मिल जायेगा ।'

श्रीमोटा ने कहा, 'मैं गरीब आपके दर्शन के लिए आया हूँ । बहुत सारे अनुभवी महात्माएँ हैं । उनकी शुभाशिष मुझे यदि मिल सके तो उसकी प्रार्थना करता हूँ । किसी के पास कुछ नहीं माँगता । उनके साथ ऐसा भाव रखता हूँ कि प्रेमभक्ति के कारण मेरे हृदय में एक ऐसे प्रकार की स्वीकार शक्ति (रीसेप्टिविटी) से भाव की तद्रूपता मेरे जीवन में प्रकटे और जीवंत बहा करे ।'

अघोरीबाबा ने कहा, 'तुम्हें इसके लिए यहाँ रहना होगा । यहाँ से जा नहीं सकेगा । मैं कितने समय से यहाँ ऐसे एक समर्थ शिष्य की खोज में हूँ, परन्तु बाहर खोजने मैं गया नहीं । मेरी भी एक ऐसे प्रकार की प्रचंड भावना है कि तुम्हें आकर्षण लगे बिना नहीं रहेगा । तुम अपनेआप आये हो । मैंने तुम्हें कोई बुलवाया नहीं है । तू खोजते-खोजते आया हो तो तू रह जा । तेरी मानी सभी ही इच्छा पूरी होगी, इसमें किसी प्रकार की शंका नहीं ।'

श्रीमोटा ने उनसे कहा, 'प्रभु, प्राप्त परिस्थिति, प्राप्त संयोग और उनके प्रति का धर्म और उनके प्रति धर्म का प्रेमभक्तिज्ञानपूर्वक इसके हेतु की सभानता के साथ इतना किया यही धर्म है । दूसरे किसी धर्म को मैं जानता नहीं । अभी मेरा धर्म हिमालय में आपके जैसे महात्मा और महानुभावों के चेतनात्मक भाव को स्वीकार करना, अनुभव करना— दिल में दिल से अनुभव करना यही मेरी यह यात्रा का हेतु है । मुझे अभी बहुत जगह जाना है । मेरा हेतु अभी फलित नहीं हुआ । मुझे वर्तमान

में प्राप्त हुए जो कर्म हैं, संयोग है, परिस्थिति है, उसके प्रति के मेरे कर्तव्य में से मैं मुक्त नहीं हो सकता । मुझे कोई बलपूर्वक रख सके ऐसी कोई ताकत नहीं ।'

वह बाबा बोले, 'मैं देखता हूँ कि तुम किस तरह से जाते हो ? तू मेरे साथ रहे तो अच्छी बात है । तुम्हें सब मिल सकेगा । यह हठ तू नहीं छोड़ेगा तो तेरा शरीर टिकना कठिन हो जायेगा । मैं देखता हूँ कि तू किस तरह से जाता है ?'

श्रीमोटा ने कहा, '**यह जीव** किसी भी प्रकार के भय को रखे ऐसा नहीं । भय को जीवन में से भगा रखा है । श्रीभगवान की कृपा से अभय मेरे गुरुमहाराज के आशीर्वाद से प्राप्त किया है । यह मेरे जीवन का बड़े से बड़ा शृंगार है, गौरव है । जीवन की एक ठोसता और चेतन अनुभव करने के लिए जीवंत वास्तविक आवश्यकता है ।'

वे भजन गाते-गाते मस्ती में नीचे उतर गये । उतरते उन्हें देर भी न लगी । नीचे आये, नाहये-धोये, फिर खाना बनाया और खाना खाने के बाद सो गये । सुबह उठे, तब उनका शरीर नीरोगी पर फिर उन्हें दस्त लग गये । बहुत दस्त हुए । बहुत दस्त हो, तब चट्टी में रिवाज कि वहाँ रहने न दिया जाय । श्रीमोटा एक झरने के पास वृक्ष के नीचे बिस्तर कर प्लास्टिक बिछाया और ऊपर सो गये । शरीर से चल सके ऐसी स्थिति रही, वहाँ तक दूर जाकर पाखाना जा आते, साफ करते, धोते फिर हाथपैर धोकर सो जाते । फिर से बेहोश हो जाने की तैयारी में थे, तब कोई बंगाली साधु जैसे उनके पास आये इतना उन्हें याद है ।

लगभग १८ से २० दिन बेहोश रहे होगे । वे बंगाली साधु उनकी सेवा करते थे । वे कहते थे, उस पर से श्रीमोटा ने जाना कि स्वयं बेहोशी की अवस्था में श्रीभगवान का निरन्तर एकाग्रता से और एकाग्रता की केन्द्रितता से ऐसी पुकार उनके हृदय में से निकलते कि श्रीभगवान उन्हें सुने । उन्हें अपने गुरुमहाराज पर ऐसा अटल विश्वास था ।

श्रीमोटा को उनके समर्थ गुरु ने बचाया । उसके बाद धीरे-धीरे उनके शरीर में चेतन आने लगा और ऊठते-बैठते हुए । बंगाली साधु

ने बहुत सेवा की। उनके पास ऐसा कुछ न था, उस सेवा का, ऋण का बदला चुका सके। ओढने-पहनने के लिए जो थोड़ा था, उसमें से उन्होंने एक पतला कंबल और पच्चीस रुपए साधु के पैरों लग, नमस्ते करके दिए। साधु ने कहा, 'भाई, यह सब तू क्या करता है ? तुम्हारे पास कुछ नहीं और मुझे देता है वह ठीक नहीं।' साधु ने कुछ नहीं लिया। 'मुझे तुम्हारी सेवा करने का आदेश मिला था, इसलिए मैं आया था। तुम कितने दूर थे, वहाँ मुझे किसी ने कहा कि, तू जा। फलाने ठिकाने मेरा भक्त है, उसकी तू सेवा कर। तेरी सेवा मैंने की है सही पर मैं निमित्तमात्र हूँ।'

फिर श्रीमोटा में चलने जितनी ताकत आने पर वहाँ से चलने का दिन निश्चित किया। दोनों जन बातें करते-करते चलते थे, उसके बाद वे साधु नहीं दिखे। श्रीमोटा को हुआ कि वे लघुशंका करने गये होगे, अभी आयेंगे। जब पीछे मुडकर देखा तो कहीं साधु मिले नहीं, दिखे ही नहीं, गये तो गये !

• • •

॥ हरिःॐ ॥

१७. वारांगनाओं का योगदान

सन् १९४२ में गुजरात के सिर ऐसी परिस्थिति आयी कि गुजरात हरिजन सेवक संघ की सभी संस्थाओं, शालाओं, छात्रालयों, सहकारी मंडलियाँ, कन्याशालाओं आदि में पैसों की बहुत कमी हुई। वह किस तरह चलानी वह बड़े से बड़ी कठिनाई थी। श्रीमोटा तो उस समय संघ की सेवा में से निवृत्त हो गये थे। उन्हें कुछ भी कहीं लागू न होता था।

१९४२ के अगस्त की एक रात को उन्हें अचानक हुआ कि, 'अब मुझे गुजरात या मुंबई में जाकर यह सभी संस्थाएँ निभ सके इस तरह उनकी कमी दूर करना यह मेरा वर्तमान धर्म है।' इस तरह उनके दिल में हुक्म हुआ, तब वे ट्रिची से निकल गये थे। उन्होंने मुंबई देखा भी न था। वहाँ के रास्तों का भी पता न था। मुंबई में ऐसा उन्हें कोई पहचानता भी न था। पैसे प्राप्त करने, फंड योगदान इकट्ठा करना एक कठिन काम है। उसके लिए जो योग्यता चाहिए वैसी योग्यता श्रीमोटा

में न थी । ऐसे प्रतिष्ठावाले मनुष्य के साथ उनका कोई संबंध न था । जिसका प्रतिष्ठावाले से संबंध हो, पहचान हो तो ही फंड योगदान मिल सके पर श्रीमोटा के पास ऐसा कोई साधन न था । तथापि आपश्री मुंबई आये ।

मुंबई में श्री हेमंतभाई की बहन के यहाँ वे रहते । सुबह के समय में वे खाना खाकर निकल के लोकल गाड़ी में बैठ जाते । तब स्वजनों के आये पत्र वे पढ़ते और उत्तर लिखते । किसी के साथ गाड़ी में वे बातचीत न करते । पर कोई उन्हें ऐसा करते देख पूछता कि, 'यह आप क्या कर रहे हो ?' तब आपश्री अपने जीवन की सारी हकीकत कहते, पत्रों की हकीकत वे कहते, वे किसलिए परिभ्रमण कर रहे हैं वह कहते और उन्हें श्रीभगवान की कृपा से, गुरुमहाराज की कृपा से किसी न किसी आदमी से भेंट हो जाती कि वह आदमी उन्हें फंड योगदान इकट्ठा करने में मदद करता ।

एक बार खार स्टेशन पर वे देर से पहुँचे । लोकल आ गयी थी और जानेवाली थी । इसलिए दौड़ते-दौड़ते जो डब्बा हाथ में आया, उसमें वे चढ गये । वह प्रथम वर्ग का डब्बा था । उसमें प्रवेश करते ही उन्होंने कितनी बहनों को बैठी देखी कि जो अलग प्रकार की थी ऐसा लगा । ऐसा करते-करते उनके साथ सत्संग हुआ और अपने उद्देश्य, प्रवास और योगदान की सारी बात की, तब उन बहनों ने कहा, 'आप हमारे यहाँ आओगे ? हम आपको अवश्य मदद करेंगे ।' 'अवश्य आऊँगा, मुझे कोई आपत्ति नहीं ।' ऐसा श्रीमोटा ने कहा । इसलिए आपश्री उनके घर गये । वह बहनों ने कहा, 'हमारे यहाँ आप कुछ लोगे- चाय-पानी ?' 'हाँ, अवश्य ।' और उन्होंने चायपानी पिये । दूसरी सभी बहनें इकट्ठी हुई । इसलिए श्रीमोटा ने अपने प्रवास और भ्रमण का उद्देश्य समझाया । यह सुनकर उन बहनों ने अच्छी ऐसी रकम इकट्ठी करके श्रीमोटा को भेंट रखी जो उन्होंने प्रेम से स्वीकार की ।

बहुतों को यह हकीकत जानकर ऐसा हुआ कि, 'ऐसी रकम लेकर कैसे खर्च कर सकते हैं ? उनसे स्वीकार नहीं हो सकती ।' परन्तु श्रीमोटा

तो बहुत बार कहते हैं कि, मनुष्य में गुण और अवगुण दोनों होते हैं। **अवगुण देखकर हम यदि उस मनुष्य की अवगणना करे तो श्रीभगवान की अवगणना करने जैसी है।** उनमें भी गुण और सद्भावना रहे हुए हैं। उस सद्भावना से जीवन में कभी ऐसा जीव प्रेरित भी हो सही। वह सद्भावी प्रेरित ऐसा जीव निम्न में निम्न कोटि में व्याप्त हो, तब भी उनमें भी सद्भावना मर नहीं जाती। ऐसे मनुष्य ने सद्भावना से प्रेरित होकर किया हुआ कर्म वह उत्तम कर्म है। ऐसे समय ऐसे कर्म की या ऐसे व्यक्ति की कभी भी अवगणना नहीं हो सकती। अवगणना करनी अर्थात् हम उनसे कोई उच्च दशा में हैं, उन्नत दशा में हैं, ऐसे प्रकार की हमारे में प्रकटी हुई अहम् की सभानता है। यह तो साधक के जीवन में कभी प्रकटी हुई नहीं होनी चाहिए और हम साधक न हो तो भी **हम दूसरों से उच्च हैं और दूसरे निम्न प्रकार के हैं ऐसा मानने से हम अपना हलकापन प्रदर्शित करते हैं।**

• • •

१८. आश्रमों की प्रणालिका

हो सके इतना सब ही, आश्रम में जो-जो चाहिए, वह ऐसा का ऐसा मिले, डेबिट-उधार-वाउचर बिना मिले वैसा उनका रिवाज। घी-दूध का अभाव, मिष्टान्न नहीं, तलने का भी नहीं ही और इससे ऐसा भोजन लेकर जीवन में प्राप्त योग्य पोषण प्राप्त हो ऐसी श्रीमोटा की समझ है।

श्रीमोटा अनेक बार कहते हैं कि हमारे आश्रम में ऐसा लिखा है कि जिसे आना हो, उसे बतलाकर ही आना और ऐसे-ऐसे आना हो तो अपना भोजन साथ लेकर आना। ऐसा स्पष्ट करते श्रीमोटा को कोई संकोच नहीं होता। सूरत के आश्रम में सूरत के अनेक भाई अपने साथ भोजन लेकर आते और श्रीमोटा के साथ खाते। ऐसी हकीकत एक प्रकार की आध्यात्मिक जीवन की भावना कितनी स्पष्टता से व्याप्त है, यह उसका प्रत्यक्ष नमूना है।

आश्रम में आश्रम के मकानों का सुंदर कलात्मक रूप से विकास किया करना और उसके द्वारा दूसरों पर आश्रम का प्रभाव डालना और इस तरह धन का उपयोग करना यह श्रीमोटा को मंजूर नहीं । नडियाद में आश्रम की जमीन की सीमा में दीवार करने के लिए आश्रम की बही में रू. १५,००० की रकम जमा थी, पर ऐसी दीवार करने के बदले उस रकम को किसी अच्छे उपयोग में आये और योग्य रूप से खर्च हो तो उत्तम ऐसा सोचकर खेड़ा जिल्ला में अस्पृश्यता निवारण काम के लिए यह रकम उन्होंने खर्च कर डाली । **आश्रम में चुनाई करनी हो तो ही करें अथवा तो प्राप्त करके भी करें, पर समाज के पास से मिली रकम में से उसका उपयोग ही न हो वैसा उनका पक्का नियम था ।**

आश्रम के मौनमंदिर भी उन्होंने वैसे ही बनवाये हैं और वे मंदिर बनवाते हुए उन्होंने स्वयं कितनी मेहनत की है, यह तो उस काल में श्री हेमंतभाई और मणिकाका थे वे जानते हैं और मौनमंदिर के लिए रकम मिल चुकी हो तो भी यह मौनमंदिर चल सकेंगे और उसमें बैठनेवाले मिल जायेंगे ऐसा उन्हें अनुभव से भरोसा हो तो ही वे नये मकान बनवाते । पैसे मिल चुके हैं, इसलिए मकान बनवाना ऐसा कभी उन्होंने किया नहीं ।

ट्रस्टी हो, वह रसोई भी करे, बर्तन भी साफ करे और झाड़ू भी निकाले और ऐसा उन उन ट्रस्टीओं* ने किया भी है । श्रीमोटा स्वयं भी कोई प्रकार के कार्य करने में संकोच नहीं करते । यद्यपि अभी आपश्री शारीरिक काम करने के लिए बिलकुल अशक्त हैं । वे पड़े रहते ही लगते हैं, इसलिए उनके पूर्व जीवन का कभी भी ख्याल दूसरों को न आ सके यह समझ में आये ऐसा है । पर उनसे पहले जब बैठा जाता था, तब भक्तों के बीच बैठकर सब्जी काटते और सत्संग करते थे । आवश्यकता पड़ने पर स्वयं रसोई बनाने में मदद करते, साफ-सफाई पर नजर रखते, हिसाब-किताब पक्का और नियमित रहे उस पर अभी तक बारीक नजर

* श्रीमोटा की हस्ती दरमियान समर्पित होकर हरिः ॐ आश्रम, सूरत में रहते और श्रीमोटा द्वारा चुने गये ट्रस्टी श्री भीखुकाका, श्री झीनाकाका और श्री रजनीभाई ।

रखते हैं और प्रातःकाल हमेशा चार बजे तो पहले से ही ऊठने का नियम वह आज भी इतने ही ठोसता से पालन करते हैं । उनको भोजन न करना हो तो भी सुबह दस बजे और शाम पाँच बजे रसोईघर में आकर सभी के साथ बैठते और प्रेम से सभी को प्रार्थना करके भोजन करवाते । इस दौरान हलकी मजाक, हँसी-विनोद मेहमान हो तो उनके साथ आनंद से बातें करते जाएँ और खिलाते जाएँ ।

उनके प्रत्येक व्यवहार में मितव्ययिता का स्थान है । जो काम पाँच पैसे से होता है और वहाँ भूल से भी दस पैसे खर्च हो तो वे कहे बिना नहीं रहते । आपश्री अनेक बार कहते हैं कि, 'भाई, हम तो भगवान के गुमाश्ता हैं, मुनीम हैं, कारकुन हैं । भगवान की लक्ष्मी का, लस्टम-पस्टम उपयोग करने की हमारी ताकत बाहर की बात है ।'

• • •

१९. विलक्षण कार्यरीति

श्रीमोटा के पास पहली बार आनेवाले धनाढ्य भाई पैसे की भेंट धरे तो उसका अस्वीकार करते । उनकी गुणभावना विकासक योजनाओं के लिए बहुत-से धन की आवश्यकता होती है, तथापि पैसे देखकर ललचाते नहीं हैं ।

श्रीमोटा अनेक बार ऐसा कहते होते हैं कि मेरा हजार हाथवाला भगवान है, वह मेरा काम पूरा करता है । यह बात बिलकुल सच है । श्रीमोटा की योजनाएँ वर्षों वर्ष सन १९६२ के बाद विस्तृत होती गई हैं । एक लाख से प्रारंभ करके वह दो लाख, पाँच लाख, छ लाख और सन १९७४ में तो लगभग साठ लाख तक की योजनाएँ हुई हैं । यह सच्ची प्रयोगात्मक बात है । श्रीमोटा को पैसे देनेवाले भाई भी अपनेआप मिल जाते हैं, यह सत्य है ।

एक दूसरी बात । चेतना में निष्ठा पाये शरीरधारी आत्मा की धारणा कोई कोई जीव को स्पर्श करती होती है और तब वह अपने शरीर की शक्ति की मर्यादा को भी लाँघकर भी काम करते होते हैं । ऐसे जीवों के जीवन की हकीकत प्रसिद्ध है । उनके नाम तो नहीं दिये जा सकते,

पर यह सत्य हमारी जानकारी में है पर ऐसे जीवों में 'रीसेप्टिव' — स्वीकारात्मक — आध्यात्मिक जीवन का ध्येय उनके जीवन में धधकता व्याप्त न होने से ऐसी चेतना की धारणा उनके जीवन में टिक न सकी और चली गई। जोकि उनके संस्कार चले न जाय पर जिसके जीवन में भक्ति प्रकटी न हो, उनके जीवन में उस चेतना की धारणा के संस्कार व्याप्त नहीं हैं। तथापि ऐसे जो कोई संस्कार पड़े होंगे, वे किसी न किसी समय उदय वर्तमान होंगे, तब आध्यात्मिक विकास के मार्ग में ले जायेंगे। सत्संग की महिमा इस कारण ही गायी है।

• • •

२०. अनेकविध लक्षण

श्रीमोटा को अपना काम हो तो छोटे से छोटे मनुष्य के घर जाते उन्हें संकोच न था। अनेक बार वे गये हैं और अपना काम हो, तब स्वयं ही जाना चाहिए, ऐसी पक्की समझ उनमें है। छोटे से छोटे मनुष्य को भी उसके वृत्त में उसे महत्त्व देना और उसकी विशिष्टताओं को उसके आगे लाना, यह श्रीमोटा के जीवन की एक खास विशेषता है।

दूसरा यह कि छोटे से छोटा मनुष्य स्वयं कुशादगी अनुभव करे इस प्रकार का व्यवहार आपश्री उनके साथ रखते हैं। श्रीमोटा सेठ के साथ गये हो, तब भी उनके ड्राइवर के साथ उसके सेठ के देखते ही बातचीत करते उन्हें संकोच नहीं होता। इतना ही नहीं, पर मोटरगाडी में वे सारथि के साथ ही बैठने का रखते हैं। श्रीमोटा का समाज में आज बहुत प्रतिष्ठित स्थान है, प्रतिष्ठा है, तथापि वे हमेशा उस सारथि के साथ ही बैठते होते हैं। इसका कारण तो स्वयं छोटे से छोटे सेवक हैं, इतना ही नहीं, पर ऐसे लोगों को भी जीवन में हम महत्त्व यदि ज्ञानभक्तिपूर्वक दें तो हमारा ही काम अच्छा होता रहता है, ऐसी उनकी समानता है।

श्रीमोटा हमेशा बालकों को महत्त्व देते रहते हैं। बालकों में ओतप्रोत होते देर नहीं लगती। बालकों में साहस, हिंमत, पराक्रम, अभय आये इसके लिए वे शिक्षक थे, तब से बरते हैं और हमारे बालकों के साथ भी इस तरह का व्यवहार किया है। वे रात के अंधेरे में बालकों

को पानी भरने भेजा करते । मेरा पुत्र छोटा था – सात वर्ष का भाग्य से ही हुआ होगा, तब सायला गाँव में कालीचौदश की रात में, दूर एक तालाब है । उस तालाब में से लोटा पानी भर लाने को श्रीमोटा ने उसे भेजा और मुझे कहा कि, ''भाई नंदु, तू भी उसके पीछे पीछे जा । वह जाने नहीं उस तरह उसके पीछे जा ।'' तालाब तक भाई सिद्धार्थ गया तो सही , पर तालाब के किनारे बहुत कुत्ते थे, वे भौंकने लगे, इसलिए वह थोड़ा पीछे पड़ गया सही । तब ही मैं जाहिर हुआ । इस तरह उन्होंने बालकों में अभय लाने का काम किया है ।

इसप्रकार, उनके साथ के लोगों के जीवन में से भय टले ऐसा वे हमेशा सोचते ही रहते हैं और बहनों को जीवन में आगे लाने के लिए उनकी शक्ति का विकास करने के लिए उन्होंने हमेशा प्रयत्न किया है । जहाँ–जहाँ जिस जिस कुटुंबों के साथ संबंध हो, उन–उन कुटुंबो की बहनों को महत्त्व मिला करे उस तरह उन कुटुंबो के पुरुषों के साथ बातचीत की है । इतना ही नहीं, पर समग्र गुजरात की बहनों के जीवन में ऐसे गुण और भाव आये, इसके लिए ट्रस्ट भी बनवाये हैं ।

किसी को कुछ काम सौंपने के बाद प्रबंध में हस्तक्षेप न करना, यह उनकी हमेशा की आदत रही है ।

प्राणिओं के साथ उनकी मैत्री अद्‌भुत प्रकार की है । यह हमने देखा है । ट्रिचीनापल्ली में केरापट्टी में जहाँ हम रहते, वहाँ एक कुत्ता था । उस कुत्ते को एक भाई ने बंदुक की गोली से मार डाला, तब उन्होंने उसकी अंत्येष्टि विधि पूरी की और उसकी भस्म को कावेरी नदी में प्रवाहित की । ऐसे तो वे कुत्ते पालने के विरुद्ध में हैं, पर पालना है तो उसे अपने बालक की तरह पालने की दानत–लगन हो तो ही पालना बाकी नहीं, ऐसे उनकी समझ है । पर वह कुत्ता रोज हमारे यहाँ रहता, खाकर आता किसी के यहाँ पर सारी रात वह श्रीमोटा के पास ही बैठता । श्रीमोटा को प्राणिओं के प्रति प्यार है, प्रेम है । उन्हें जिन कुटुंबों के साथ संबंध हुआ है, उन कुटुंब के प्रत्येक व्यक्तिओं में सुमेल आये, भाव आये, मेल हो और मेल का सेतु बने उस प्रकार की समझ उस कुटुंब की प्रत्येक

व्यक्तिओं को वे देते रहते हैं । अनेक कुटुंब के व्यक्ति परस्पर विरुद्ध में बरतते होते हैं, तब भी उस प्रत्येक व्यक्ति को सलाह, सुमेल और सहकार का ही उपदेश देते रहते हैं ।

श्रीमोटा में चुनाई की कुशल कारीगर की शक्ति है । सूरत के आश्रम में एक छोटी सी खाड़ी है । उसमें से कितने ही गाँवो की नहर का पानी बह जाता है* । उस खाड़ी का बांध श्रीमोटा ने जिस प्रकार बनवाया है और कुंभकोणम् की कावेरी नदी में जिस तरह की अटारी की है – यह दो तथ्य ही ऊपर के कथन को साबित करने को पर्याप्त हैं ।

चुनाई की तरह खेती की जानकारी भी उन्हें सही । आश्रमों के अंदर अमुक-अमुक प्रकार के शाकभाजी हुआ ही करे, इसके लिए उनका हमेशा आग्रह रहता । यह तो अंत में उन्हें जहाँ-तहाँ जिस प्रकार के व्यक्ति मिले, उस प्रकार का कामकाज उन्होंने उनके पास से लिया है ।

दूसरी एक हकीकत मैंने यह देखी है कि श्रीमोटा ने किसी को शिष्य नहीं बनाया है । कोई साधना में आगे विकास करने के भाव को लेकर आये तो उसे मना भी नहीं करते, पर साधना करने के लिए कुटुंब से अलग होना या प्राप्त कर्म से अलग होना ऐसा आपश्रीने कभी किसीको कहा नहीं । इतना ही नहीं, पर मिले कर्म का आचरण करते हुए साधना के गुणभाव लाना ऐसी ही श्रीमोटा की समझ है । कोई साधक परिणीत हो तो ऐसे साधक को उसकी पत्नी से, बालकों से विलग होने का कभी उन्होंने नहीं कहा । उलटा साधक सच्चे प्रयत्न से मंथन करनेवाला हो तो वैसा साधक अपने कुटुंब का भी सहकार लेने में मददकर्ता हो सकता है । इस तरह अनासक्त हो, अपने कुटुंब के प्रति का मोह, राग, लोभ इत्यादि घटे और निष्काम भाव आये, निर्ममत्व आये, उसके प्रति झुकाव रखे ऐसा श्रीमोटा उस साधक को समझाते रहते हैं । यदि कोई अपरिणीत हो तो, उसे शादी करने की सलाह नहीं देंगे । यदि उसे साधना के मार्ग में न्योछावर होना हो तो उसे वैसा करने की भी सलाह देंगे, परन्तु इस

* वर्तमान में बंद कर दिया है ।

साधना का पथ कितना विकट है और वह माने उतना सरल नहीं, ऐसा भी वे बारबार कहते होते हैं ।

निकट में निकट के साथी या शिष्य को या श्रीमोटा के साथ रहनेवाले को स्वयं को त्याग देने की पूरी स्वतंत्रता हमेशा वे देते रहते हैं। उनके मन में कभी ऐसा नहीं होता है कि यह व्यक्ति मेरे साथ सतत लगा ही रहता है, चिपका रहता है । पर यदि आश्रम की व्यवस्था में आगेपीछे हो तो उसे कहने में उन्हें कोई संकोच भी नहीं होता । आश्रम की व्यवस्था योग्य रूप से कैसे रहे और जिस-जिस व्यक्ति की जो-जो प्रवृत्ति और स्वभाव हो, वह जानते होने पर भी मनुष्यमात्र अपने स्वभाव द्वारा आश्रम का काम योग्य रूप से न करे तो उन्हें कहते संकोच भी नहीं होता ।

इस तरह हम ने कितनी बार देखा है कि आश्रम में नौकर या सेवक को एक बार सेवा में लेने के बाद उसके अनेक दोष हो — मानो कि उसने चोरी की हो या ऐसा दूसरा दोष किया हो — तथापि श्रीमोटा ने कभी उसे अलग नहीं किया, उलटा विशेष प्रेम करके उसे प्रेम से रखा है और उसने बाद में आश्रम में चोरी की नहीं है ऐसा भी हुआ है ।

श्रीमोटा का दूसरा लक्षण कि उन्होंने हमेशा कलाकारों को उत्तेजन दिया है, वैसे कलाकारों की उन्होंने कदर की है, कलाकारों को उनमें रस भी उत्पन्न किया है। इतना ही नहीं, पर जहाँ-जहाँ जिसने-जिसने साहस किया हो, उनके प्रति तो श्रीमोटा हमेशा कुछ न कुछ प्रथम भेंट करने का किया है ।

दूसरी एक खास विशेषता यह है कि उनके संबंध में कोई बीमार हो तो वे स्वयं उसे देखने गये बिना नहीं रहते और बहुत काम हो तो काम को एक तरफ रख सकते हैं ।

अनेक युवक दीक्षा लेकर आश्रम में रहने आने को कहते हैं, पर उन्हें श्रीमोटा ने हमेशा मना किया है । विच्छिन्न हुए दंपति को हमेशा फिर से संबंध बांध के देने में, साधनापथ में लाने में उन्हें हमेशा प्रेम से मदद की है । किसी-किसी बात में उन्हें जीत भी मिली है । पत्नी यदि साधनापथ पर हो तो पति को साधनापथ में लाने के लिए जहमत

उठायी है । पति यदि साधनापथ पर हो तो पत्नी को विकासपथ में लाने का प्रयत्न किया है ।

अन्याय के सामने न्याय करने की उनकी भावना हमेशा होती है । उपेक्षा हुई हो तो भी स्वधर्म पूरी तरह प्रेम से निभाने की उनका सचमुच हेतु है, दानत है । हरिजन सेवक संघ के लिए सन १९४२ और सन १९४५ के दौरान धनराशि लाकर दी है, यह हकीकत अन्यत्र आती है, पर यह लिखना इसलिए हुआ है कि उनकी ऐसी भावना की कदर न हुई थी, तब भी आपश्री तो बिलकुल साक्षीभाव से व्यवहार करते और कुंभकोणम् में ठक्करबापा के स्मरण में एक हरिजन वसाहत बंधवाई है, यह विशेष घटना है ।

उनकी दूसरी एक खास विशेषता है । कुंभकोणम् में उन्होंने हरिः ॐ आश्रम स्थापित किया । **कुंभकोणम् तो दक्षिण का काशी है, बनारस है ।** उस कावेरी नदी के किनारे अनेक बड़े-बड़े घाट हैं । घाट को कोई दुरस्त नहीं करवाता था । उस घाट की अनेक सीढ़ियाँ टूट गयी थी, तब एक-दो व्यक्ति डूब गये थे । उसका श्रीमोटा को पता चला, तब उन्हें लगा कि घाट को दुरस्त करवाना चाहिए । इससे आश्रम की सिलक में जितने रुपए थे, वे सभी ही देकर उसके व्याज में से अथवा उस रकम में से इस घाट को दुरस्त प्रत्येक वर्ष किया जाय ऐसी व्यवस्था की ।

सूरत आश्रम के पास कुरुक्षेत्र में एक बड़े से बड़ा घाट है । इस घाट से ही जहांगीरपुरा को आज रक्षण मिलता है । वह घाट इतना बड़ा और ऊँचा है कि बाढ़ के जोश को वह सहन कर लेता है । इसलिए इस घाट के कारण इस आश्रम का अस्तित्व टिका रहा है । वह घाट नदी की भयंकर बाढ़ के कारण सन १९५९ की साल में टूट गया । उसे दुरस्त करने के लिए एक पैसा भी नहीं मिला । मात्र रांदेर के एक वैद्यकाका ने श्रीमोटा को पाँच सौ रुपए दिये थे । उस घाट को श्रीमोटा ने सुंदर ढंग से दुरस्त करवाया । पैसे माँग माँग के भी वह दुरस्त करवाया था - दस हजार खर्च करके ।

• • •

२१. संकोच से मुक्त

एक बार अहमदाबाद में एक बड़ी शादी की पार्टी में जाने का हुआ। तब ऐसी पार्टी में देखा था कि किसी बालक को साथ नहीं ले जा सकते। श्रीमोटा को तो ऐसा संकोच न था। वे तो बालक के आग्रह के कारण बालक को लेकर ही गये और उसमें भाग लिया। तब देश के एक अग्रगण्य नेता वहाँ आये थे। उन्होंने उस सेठ को पूछा कि, ''भाई, यह कौन है उघड़े शरीरवाला और सिर पर साफेवाला ?'' तब उन्होंने श्रीमोटा की पहचान दी थी। हरिजन सेवक संघ के मंत्री रूप में अनेक वर्षों तक परीक्षितलाल मजमुदार के साथ काम किया होने से वे उनको नाम से जानते थे।

मेरे भाई के यहाँ कुंभकोणम् में आपश्री एक बार थे, तब मेरी भाभी ने अपनी चूड़ियाँ निकालकर श्रीमोटा को देते हुए कहा कि, ''लो, पहनो'' उन्हें ऐसा हुआ कि श्रीमोटा चूड़ी पहनते हैं कि नहीं इसे देखें। आपश्री ने कहा, ''पहनूँ तो सही पर तुम्हें वह वापिस न दूँगा। बोल, 'हाँ' कहे तो पहनूँ।'' फिर तो उसने 'हाँ' कहा, इसलिए श्रीमोटा ने वह पहनी। मेरे एक दूसरे मित्र की पत्नी थी। उन्होंने कहा कि, ''यह चूड़ी दूसरे हाथ में पहनो।'' इसलिए उन्होंने वह भी पहनी। फिर उन लोगों को हुआ की हमारी चूड़ी गई, इसलिए उन्होंने ऐसी दूसरी शर्त की कि 'हम यह चूड़ी दे देंगे पर आप यहाँ ही मात्र नहीं पर यहाँ से आप ट्रिची जाओ, मद्रास जाओ, मुंबई जाओ और फिर अहमदाबाद में मेरे पीहर जाकर वहाँ वह चूड़ी निकालो तो वह चूड़ी आपकी !' श्रीमोटा ने एसा ही किया। दोनों हाथ में चूड़ी पहनकर आपश्री ट्रिची, मद्रास (चेन्नाई), मुंबाई और अहमदाबाद घूमे और गांधी आश्रम में भी घूमे (सन १९४५)। इस दौरान गांधीजी दक्षिण भारत की यात्रा पर निकले, तब उनकी स्पेशियल ट्रेन ट्रिची में एक जगह पड़ी रही। तब उनके साथ श्री छगनभाई जोशी और स्व. नरहरिभाई परीख थे। वे हमारी पीढ़ी में आये थे, तब श्रीमोटा ने हाथ में चूड़ी पहनी देखकर बहुत आश्चर्य हुआ। वह देखकर पूछा कि, ''अरे चूनीभाई, यह आपने क्या किया है ?''

तो कहा कि, ''चूड़ी पहनी है।'' ''क्यों ?'', ''उन लोगों ने कहा कि, 'यह चूड़ी पहनकर हमारे घर अहमदाबाद तक जाओ तो चूड़ी आपकी। इसलिए चूड़ी पहनी, पहनने में तो हरकत नहीं। पहनकर वहाँ जा के साबरमती के आश्रम के समाजसेवा के काम के लिए दान में दे दूँगा।'' तब श्रीमोटा के आश्रम थे नहीं। कन्याकुमारी में स्त्री के कपड़े पहनकर मंदिर में दर्शन करने गये थे। ऐसा करने का कारण पूछते उन्होंने बतलाया, 'इससे स्त्री के भाव-भावना जन्मे और माताजी के दर्शन में अधिक तन्मयता आये।'

एक दूसरा प्रसंग : सन १९२९-'३० के दौरान नवसारी के हरिजन आश्रम में हुआ। एक बार दूधपाक बना। सभी विद्यार्थीओं और शिक्षकों ने वह अच्छी तरह खाया। शिक्षको में श्रीमोटा, श्री हरिवदनभाई, श्री हेमन्तभाई और दूसरे एक-दो थे। तब भी पा पतीला जितना दूधपाक बचा था। अब वह कौन पी जाय ? सभी ने गले तक खाया था। इसलिए छोटी कटोरी जितना भी अधिक दूधपाक कोई ले सके ऐसा न था। इसलिए सभी में अधिक विनोदी हरिवदनभाई — उन्होंने सूचन किया कि, ''हाँ, हाँ चूनीभाई, आप ही उड़ा जाओ !'' श्रीमोटा के सिवा सभी ने उस सूचना को मान ली और आग्रह किया कि, ''हाँ, हाँ, चूनीभाई, आप ही पी जाओ !'' श्रीमोटा ने तो मानो कि श्रीभगवान का आदेश हो ऐसे कहा, ''ऐसा ? तब मैं ही पी जाऊँ ?'' ''हाँ, हाँ, फिर।'' - चारों ओर से उत्तर मिला। इसलिए श्रीमोटा ने तो पतेला ही उठाकर दूधपाक मुँह में डाला। श्रीमोटा ने इतना सारा दूधपाक पीने के बाद भी कोई विक्रिया हुई न थी ! श्रीमोटा कोई ऐसे पहलवान न थे कि जो तो कितना भी खा सके अथवा ग्लटन - पेटू न थे। पर जब मित्रों ने थोड़ी मजाक के लिए, 'उड़ाने' के लिए, अधिक का दूधपाक पी जाने का आग्रह किया, तब उनके आश्चर्य के बीच श्रीमोटा के शरीर को कोई तकलीफ न हुई। यह समय उनके साधनाकाल का था और उसमें बहुत आगे बढ़ गये थे।

• • •

२२. लेखन-प्रकाशन

अनेक छंदों में उन्होंने बहुत सहजता से लिखा है। अनुष्टुप और गजल पर उनका काबू गजब का है। रास्ते में जाते जाते भी वे छंद में कविता लिख सकते हैं। उन्होंने सन १९७० के मई-जून महीने में 'जिज्ञासा' पर लिखा है। वह भी लगातार २०० श्लोक - पद्यांश में लिखे हैं। यह भी कितने व्यक्तिओं के साथ बातचीत में पिरोये हो, तब भाई रमेशभाई भट्ट को लिखवाते जाँए और मोटरगाड़ी में मुसाफिरी करते हों, तब भी लिखते जाते। यह उनके जीवन की एक विशेषता है, पर श्रीमोटा तो उन्हें तुकबंदी ही कहते हैं।

उन्होंने सैंकड़ों भजन-प्रार्थनाएँ साधनाकाल के समय लिखी —— केवल भावना के विकास के लिए, गुरु की मदद के लिए, उस द्वारा पुकार के लिए। उनमें से बहुत-सी पोथी आंदोलन के दौरान पुलिस जप्तिओं मे जप्त हो गई और उनमें से कितनी ही प्रकाशित हुई है। यद्यपि वे कृतियाँ उन्होंने स्वयं प्रकाशित नहीं की है। अपनी कृतिओं को स्वयं प्रकाशित न करना और दूसरों को वह आवश्यक एवं योग्य लगे तो वह प्रकाशित करे ऐसी श्रीमोटा की समझ है। **आश्रम के पास पैसा होने पर भी आश्रम के पैसे अर्थात् समाज के पैसे, समाज ने जिस उद्देश्य से धन दिया है, उसमें से श्रीमोटा ने एक भी पुस्तक नहीं छपाई है।** अभी तक सभी पुस्तकें दूसरों को जब वैसा करना योग्य लगा, तब तब उन्होंने वह खर्च देने का प्रयास किया है और उसमें से ही सारी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। उन पुस्तकों से आई सारी रकम और उसका ब्याज भी अपने निजी खर्च में उपयोग नहीं किया और सभी समाज को समर्थ करने की प्रवृत्ति में दे दिया है। वह पुस्तकें जो छपी हैं, उनमें उनका अपना नाम कहीं आया न था, यद्यपि यह नाम प्रसिद्ध होने पर उन्हें संकोच भी नहीं।

पहले तो श्रीमोटा अखबार में कुछ भी छपाने को मना ही करते, परन्तु व्यवहार में उन्हें जब समझ आया की समाज के लिए काम लिये हों, उस विषय में यदि कई कुछ अखबार में आये तो

श्रीमोटा को रकम मिलने में सरलता होती है । उसके बाद अखबार में छपे तो उन्हें कोई आपत्ति न थी । पर उसमें अतिशयोक्ति न हो जाय, उसके प्रति उनकी देखरेख इतनी की इतनी आज भी है ।

आश्रम स्थापित किये सही, आश्रम की प्रवृत्तियाँ हुईं — सब हुआ पर अभी तक कहीं किसी जगह उसका उल्लेख न हुआ था । श्री जयभिख्खु ने 'गुजरात समाचार' में एक लेख लिखा था । जब श्री जयभिख्खु नडियाद आश्रम में पधारे थे, तब श्रीमोटा उपस्थित न थे, पर 'गुजरात समाचार' में लेख आया, तब श्रीमोटा ने जयभिख्खु को पत्र लिखा, ''भाई, आप ने यह किया वह ठीक नहीं । इससे अनेक लोग जानेंगे और आश्रम में आयेंगे, पत्रव्यवहार करेंगे, **इससे हमें बेकार में झंझट होगी । आश्रम में आकर लोग जीवनविकास के लिए जीवन जीते हों तो आनंद है, पर लोगों को तो निरे स्वार्थ के जीवन में रचेपचे रहना है और फिर श्रीभगवान की बात करनी है, वह वदतोव्याघात है । इसलिए यह ठीक नहीं । ऐसे लोग कुतूहल के लिए आश्रम में आए उसका कोई अर्थ नहीं है ।''**

• • •

२३. माता और शिक्षक

श्रीमोटा के जीवन में एक पहलू बालकों के पालन-पोषन का बाकी रहा हुआ था, वह उन्होंने पूरा किया है । कुंभकोणम् में मेरे भाई श्री हसमुखभाई मेहता के बेटे हरि को उन्होंने जन्म से ही स्वयं पाला है । सिर पर कपड़ा बांधते, दिल खुल्ला रखते, पैरों में जूता, ऐसे वेशे में घूमा करते — हाथ में और कंधे में बालक को बिठाकर वह बालक हरि जैसा कहे वैसा वे करते ! सभी के सामने 'घोड़ा' होने को कहे तो 'घोड़ा' भी होते ! श्रीमोटा सभी को संबोधित करते हों, तब वह हरि कहता, ''**मोटा**, अब न बोलना ।'' तब वे बोलना बंद करते । उस हरि को बाजार के बीच, एक छोटी बच्चागाड़ी थी, उसमें बिठाकर वे उस गाड़ी को स्वयं खिंचते । वह छोटी गाड़ी वर्तमान जैसी फैशनेबल लोग

उपयोग करते हैं वैसी न थी । बिलकुल ग्रामीण प्रकार की थी । ऐसी गाड़ी को रस्सी बाँधकर वे भरे बाजार के बीच से खींचकर कुंभकोणम् में हमारी पीढ़ी है, वहाँ ले जाते । हमारे गुरु रूप में उनकी प्रतिष्ठा थी, तथापि उन्हें ऐसी किसी बात का कोई संकोच न था । बालक के मलमूत्र भी स्वयं साफ करते और नहलाते भी स्वयं । सुलाते भी अपने साथ, यह इतने तक की छोटा बालक अपनी माँ के साथ रहना न चाहता था । यह बालक चार वर्ष और छः महीने का हुआ, वहाँ तक उन्होंने स्वयं पाला और बालक में योग्य भाव लाने के लिए प्रेरित करने के लिए उन्होंने प्रत्यक्ष आचरण करके दिखलाया । कभी वे बालक के दादा (गोपालदास) यानी कि मेरे मामा अनेक बार श्रीमोटा को कहते थे, ''**मोटा**, आप इस लड़के को प्यार करके उसके जीवन को बिगाड़ डालोगे ।'' पर वह लड़का आज बड़ा हो गया है । उसमें जो भावना है, उसकी उम्र के अनुसार जो समझ है, जो विवेक है, यह आश्चर्यजनक है ! श्रीमोटा तब पान खाते थे । वे पान पहले बालक को भी खिलाते थे । तब मेरे मामा कभी कहते, ''**मोटा**, इसे क्यों ऐसी आदत डलवाते हो ?'' पर आज यह लड़का पान नहीं खाता है ।

एक प्रसंग याद आता है कि अहमदाबाद में प्रख्यात ज्योतिषाचार्य श्री गिरिजाशंकर जोशी की भी अवगणना करके बालकों को घूमाने ले जाने का वचन उन्होंने पालन किया था । बालकों को पास बिठाकर भोजन के लिए अग्र स्थान देना, उनकी निर्दोष अभिलाषाओं का पोषण करना, उन्हें उत्तेजना देना आदि श्रीमोटा ने जहाँ-जहाँ संसर्ग में आये, उनके जीवन में उस-उस तरह व्यवहार किया है ।

शिक्षक थे, तब किसी समय यदि बालक को दण्ड करने का हो जाए, तब उससे दुगुना दण्ड स्वयं अपने शरीर को देते और उनकी पीठ पर ऐसे साँट भी देखे हैं । बालकों को इससे श्रीमोटा के प्रति बहुत सहानुभूति होती और जिस उद्देश्य के लिए वे शिक्षा सहन करते और विद्यार्थी को भी शिक्षा होती उसका उद्देश्य फलित होते श्रीमोटा ने बहुत बार अनुभव किया है ।

बालकों की तालीम के विषय की सभानतायुक्त योग्य समझ उन्हें है । प्रवास करवाना और एक बालक को जन्म से लेकर पालना और बालक समझ की स्थिति में आ सके वहाँ तक उसे किस तरह पालना यह सारी कला भी हम ने श्रीमोटा में देखी है । प्रसूति कराने का अनुभव न होने पर भी सफलतापूर्वक वह काम भी उन्होंने पूरा किया है ।

बालक अमुक उम्र के हो, वहाँ तक उनकी माँगों को प्रेम से पूरी करना, उस बालक के जीवन में अमुक प्रकार का विकास होने के लिए आवश्यक यथार्थ है ऐसा श्रीमोटा मानते हैं और उसी अनुसार व्यवहार करते हैं और दूसरों को कहते भी हैं सही । बालकों को नीडर बनाने के लिए अलग अलग उपाय और रीत उन्होंने अजमायी हैं । केवल मुँह से उपदेश नहीं देते । स्वयं जैसा व्यवहार करते हैं, उसी तरह और उसी प्रकार की समझ से ही दूसरों को कहते होते हैं ।

• • •

२४. शौर्य सिंचन करते शिक्षक

नवसारी हरिजन आश्रम में आपश्री थे, तब की एक बात है । तब पास में एक दूधिया तालाब था । यह तालाब वर्षाऋतु में संपूर्ण भर जाता, तब उस पर सहेलगाह करने के लिए बिना पैसों के श्रीमोटा ने बेड़ा बनवाया । बेड़ा के अंदर बैठने की बहुत सुंदर सुविधा भी करवाई । उसके अंदर पानी भर न जाय ऐसी करामात करवायी और बारी-बारी सभी लड़कों को बिठाकर सारे दूधिया तालाब के आसपास घूमते और सहेलगाह की मजा अनुभव करते । श्रीमोटा ने उनको कहा था कि, ''देखो भाई, मैं ना होऊँ तब बेड़ा लेकर तुम कोई भी तालाब के पास न जाना ।'' पर ये तो लड़के हैं । श्रीमोटा एक बार बैंक में रुपए लेने गये, तब विद्यार्थी तालाब में बेड़ा लेकर गये । इतने में श्रीमोटा साइकिल पर रुपए लेकर आए और दूर से उन्होंने बेड़ा डूबता देखा । सभी लड़के पानी में पड़े दिखे । श्रीमोटा तो भगवान को प्रार्थना करते वहाँ आ गये, साइकिल फेंककर जेब में रुपए थे, उसके साथ ही उन्होंने पानी में छलाँग लगाई । जो पाँच-सात विद्यार्थियों को तैरना आता था, उन्हें कहा कि तुम

तालाब में कूदो और जो लड़के हाथ में आते जाये उन्हें पकड़-पकड़कर बाहर फेंको । भले उनके हाथ-पैर टूटे, पर उन्हें डूबकी मार-मारके बाहर निकालो और फेंको । ऐसे पाँच-सात लड़कों को खिंचकर बाहर फेंका और सभी लड़के डूबते थे, तब श्रीमोटा सारे समय प्रार्थनाभाव में थे और भगवान को पुकारते थे और भगवान की कृपा का पहली बार अनुभव उन्हें इस प्रसंग में हुआ । कितने छोटे-छोटे लड़के थे और कितनों को तैरना न आता था । वहाँ अत्यधिक पानी था और एकाद लड़का भी डूब गया होता तो श्रीमोटा की बुरी दशा होती । और इस जगत में तो रास आया वह सयाना और यदि कुछ आगेपीछे हुआ होता तो ठक्करबापा से लेकर स्व. परिक्षितलाल तक के सभी ही श्रीमोटा की इस प्रवृत्ति पर, यह पागलपन पर कूद ही पड़े होते, पर श्रीभगवान ने उन पर कृपा की । मतलब की विद्यार्थिओं में भी ऐसा साहस और गुण आये इसके लिए वे प्रयत्न करते ।

मेरे अपने ही बेटे का अनुभव है कि सिद्धार्थ जब सात वर्ष की उमर का होगा, तब उसे घुड़सवारी सीखाई थी । वह एक बार घोड़े पर से गिर गया, तब भी उसे घुड़सवारी सीखलाना जारी रखा था और अभी सात वर्ष भाग्य से ही पूरे हुए होंगे, तब उसे साइकिल सीखायी थी । इतना ही नहीं, पर आठवे वर्ष में उसे अहमदाबाद में तीन मील दूर शाला में साइकिल पर ही भेजने का निश्चित हुआ था । एक बार तो साइकिल बस के साथ टकरा गई, तब भी श्रीमोटा ने उसे उत्साह दिये ही रखा और वह तेरह वर्ष का हुआ, तब उसे मेरे भाई के बेटे और हमारे आश्रम के हरिजन विद्यार्थी उन तीनों को (१३, १५ और १६ वर्ष के लड़के) १४०० मील की यात्रा करने लिए उन्होंने प्रेरित किया । इसी तरह वे साहस, हिंमत, धीरज, सहनशक्ति वगैरह गुण लाने के लिए हमेशा प्रयत्न करते हैं । इतना ही नहीं, पर अंधेरी रात में छोटे बच्चों और बहनों को पानी भरने भेजते ।

केरापट्टी में (ट्रिची से दूर) हम सभी रहते थे । तब केरापट्टी के मैदान में गोरे सैनिक थे । दूसरे विश्वयुद्ध की बात हे । उस समय रात

को मेरी पत्नी कांता को श्रीमोटा ने कहा कि, ''कांताबहन, मैदान के आगे नल है । वहाँ से पानी भर के लाओ, मैदान लांघ कर के ।'' कांता भी तैयार हो गई । फिर आपश्री मुझे कहते हैं कि भगवान की कृपा से आपत्ति नहीं आयेगी, पर आगे वहाँ गोरे सैनिक हैं, इसलिए तुम कांता के पीछे-पीछे जाओ, उसे पता न चले उस तरह । वहाँ से पानी भरके लाये तब तक छिपकर रहना । लौटकर आये तब उसके पीछे-पीछे आना । कांता पानी का लोटा भरके केरापट्टी आयी, वहाँ तक मैं उसके पीछे आया हूँ, इसका पता उसे न चला । इस तरह श्रीमोटा ने अनेक के जीवन में साहस और हिंमत के गुण लाये हैं, विकसित करने के प्रयत्न किये हैं ।

तेनसिंग ने हिमालय के गौरीशंकर का शिखर सर किया, तब उसे भी अमुक रकम भेंट देकर उसकी कदर की है । मिहिर सेन सात समुद्र तैर गये । उन्हें तार से पैसे भेजे हैं । साइकिलों के प्रयोगवीरों को भी उन्होंने पारितोषिक दिये हैं ।

दूसरा एक ऐसा प्रसंग है जो हम जानते न थे । वह किसी को उन्होंने कहा भी न था, पर एकाद बार यह हकीकत कही, क्योंकि उन्होंने श्रीमोटा को पूछा था कि, ''**मोटा**, आप वन्य पशुओं के साथ रहे थे सही ?'' तब उन्होंने कहा कि मेरे एक एम. ए. हुए मित्र वजुभाई जानी थे और सौराष्ट्र सरकार के शिक्षा विभाग के अधिकारी थे । उनके साथ हम एक बार गिरनार गये थे । सिंह के साथ सात दिन तक रहे थे । मैंने वजु को कहा कि तुम्हारा कुछ भी हो पर किसी को बात करना नहीं और मैं भी किसी को यह बात कहनेवाला नहीं । उस समय भाई वजु ने मुझ से कहा कि, ''**मोटा**, मुझे अभय हो गया है ।'' तब मैने कहा कि, ''भाई, अभय ऐसे होना सरल नहीं । गिरनार के जंगल में जहाँ सिंह होंगे, वहाँ जायेंगे और उनके साथ रहेंगे ।'' इसप्रकार, हम सिंह के साथ रहने गये । श्रीमोटा सात दिन वहाँ गिर के जंगल में सिंह के बीच रहे ।

नडियाद के हरि:ॐ आश्रम में कितनी बहनें आती । तब उन्हें आपश्री बहुत बार देर रात अकेले स्टेशन से आश्रम तक चलकर आने

को कहते । हाथ में बैटरी और लकड़ी साथ रखने देते । नदी से रात के दो बजे उन्हें पानी भर लाने को कहते । आश्रम की प्रदक्षिणा करने को कहते । इस आश्रम में एक वटवृक्ष है । जिसमें दो–दो साँप भी अनेक बार घूमते देखे हैं । ऐसी जगह सोने के लिए वटवृक्ष पर मचान तैयार करवाया है । ऐसे मचान पर साधकों को मौन रखवाते । दिन और रात जितने दिन का मौन हो, उतने दिन मचान पर रहने का । स्नान, शौच, पेशाब और भोजन के लिए नीचे उतरने का । इससे डर चला जाय और अनेक बहनों के जीवन में ये सभी गुण विकसित हो ।

• • •

२५. जहाँ तहाँ अभय

हिमालय में श्रीमोटा मेरे कुटुंब तथा मेरी बा को यात्रा करवाने के लिए ले गये थे । तब उन्होंने ऐसा नहीं सोचा कि यह बुजुर्ग माँ है, जवान पत्नी है, छोटा लड़का है पर विकट में विकट मार्ग पर उनको ले गये थे । जहाँ केवल बरफ, इतना ही नहीं, पर मेरी साठ वर्ष से ऊपर की उम्र की बा । उन्हें हिमप्रदेश में उठाकर ले जाने के लिए व्यक्ति भी साथ आये थे, उन्हें श्रीमोटा ने गुस्सा होकर, गाली देकर भगा दिया था ! तब हमारे मन में हुआ भी सही कि, ''श्रीमोटा यह क्या कर रहे हो ? गुस्सा होकर व्यक्तियों को निकाल देते हैं ?'' पर उनके उद्देश्य का हमें पता नहीं, पर वह प्रदेश जब आया, तब वे डोलीवाले व्यक्तियों ने कहा, ''बा को इस डोली में तो नहीं ले जा सकते । कंडी में ले जा सकते हैं ।'' कंडीवालों को तो उन्होंने निकाल दिया था । इसलिए अब तो बा को चलना ही पड़ेगा । बा को चलवाना था यह श्रीमोटा का उद्देश्य था । इसलिए अब तो बा को चलना ही पड़ेगा । बा को चलवाना था यह श्रीमोटा का उद्देश्य था । परायों के कंधों पर बैठ–बैठ के यात्रा करने से यात्रा फलती नहीं । पैरों से थोड़ा बहुत तो चलना ही चाहिए और बा को उन्होंने बलपूर्वक भी चलवाया और इतना ही नहीं, पर यह इतना अधिक विकट मार्ग था और फिसलन थी । केवल बरफ कि चढ़ा ही न जाय । पवाली उस मार्ग का नाम । कांता (मेरी पत्नी) तो एक बार

गिर पड़ी थी और बीच में यदि वृक्ष न आया होता तो एकदम नीचे जाकर गिरी होती । उसका शरीर हाथ न आया होता, पर श्रीभगवान की कृपा कहो कि बीच में वृक्ष आने से कांता बच गई । व्यक्ति उसे पकड़ कर ले आया, पर उसके पश्चात् उसे चलने की बिलकुल हिंमत न रही, पर श्रीमोटा उसे अपने साथ चलाने लगे । इसप्रकार, वे ऐसे विकट मार्ग पर ले गये थे । श्रीमोटा में अभय के ऐसे गुण पहले से ही प्रकट हुए थे ।

जूना बिलोदरा गाँव में (नडियाद के पास) जहाँ श्रीमोटा ने आश्रम बनाया है, उस आश्रम के पहले कबीर आश्रम था और वे जूना बिलोदरा गाँव के लोग ऐसे थे कि उन साधुओं को कुछ-कुछ दिन में आकर मारपीट करते, उनके कपड़े ले जाते, बर्तन, अनाज सभी ही ले जाते और उनके पैसे दबाकर रखे होंगे ऐसा मानकर लोग उनको मारते, कुएँ में भी लटकाते । इसलिए वे साधु त्रसित हुए और आश्रम छोड़कर चले गये । आश्रम मिट्टी का बना था ।

यह यथार्थ श्रीमोटा ने जाना और वहाँ बसते लोग इसप्रकार के हैं, तथापि श्रीमोटा ने वहाँ आश्रम किया और स्वयं छः महीने वहाँ घूमेफिरे हैं । वे रात को आश्रम की प्रदक्षिणा करते, भगवान का नाम लेते । लाठी लेकर घूमते और बिलकुल डरते न थे । आश्रम का प्रारंभ हुआ, तब श्रीमोटा वहाँ न थे, कुंभकोणम् में थे । इस आश्रम को बड़ा करने में श्री कुबेरदास भावसार मुख्य थे । इन कुबेरदास भावसार ने महीने चालीस रूपए वेतन देकर एक चौकीदार रखा था । जब श्रीमोटा ने यह जाना, तब उन्हें लगा कि यह तो हमारे अस्तित्व का छेदन कर डाले ऐसा सत्य है । श्रीभगवान का आश्रम और उस आश्रम को सँभालने के लिए चौकीदार रखे तो उस भावना का खंडन होता है । चौकीदार रख ही नहीं सकते । इस बात को श्री कुबेरदास माने ही नहीं । बलपूर्वक समझा समझाकर चौकीदार निकालने को श्रीमोटा ने समझाया पर वे कहे कि, ''यही चौकिदार आपको परेशान करेगा, हैरान करेगा और चोरी करेगा ।'' पर श्रीभगवान की कृपा से ऐसा हुआ नहीं । उस व्यक्ति ने श्रीमोटा को बिलकुल हैरान न किया । गाँव के लोगों ने भी हैरान करना

छोड़ दिया और आज तो इतना अधिक अच्छा संबंध है कि, पहले तो कोई भी चीजवस्तु आश्रम में बाहर न रख सकते थे, ताला-चाबी में रखनी पड़ती, पर आज सब बाहर रहता है, तब भी कुछ कहीं नहीं जाता । तो ऐसे काम के विषय में भी श्रीमोटा ने हिंमत रखकर जो अभय बतलाया है, वह विशिष्टता है ।

दूसरों की असामाजिक दोष की टोकरी अपने प्रतिष्ठित जीवन का अंत लाकर अपने सिर पर लेकर आत्मविलोपन करने की तैयार बतलाने का प्रसंग उनके जीवन में हुआ देखा है, जो काम बहुत कम लोग कर सकते हैं । अपने सिर वैसा कलंक संपूर्णरूप से प्रेम से ले लेना और वैसी कलंकित दशा में जीना यह मामूली बात नहीं । यह तो अभय विकसित किया हो तो ही हो सकता है और उसके पीछे का उद्देश्य हरिजन सेवक संघ जैसी सामाजिक संस्था में शुद्धि बनाये रखने की थी, ऐसी उनकी भावना की समज ।

• • •

२६. पुरोहित

उनके प्रशंसक मंडल का विस्तार होते बहुत से लोग उन्हें विवाह, खातमुहूर्त, वास्तु, जनोई आदि धार्मिक प्रसंग के लिए उनकी उपस्थिति को — उनके पुरोहितपद को पसंद करने लगे हैं । कितने ही उनके आश्रम में विवाह के लिए भी आने लगे । एक बार दो जनों ने श्रीमोटा के शुभहस्त से उनका विवाह करवा देने की बिनती की, तब उन्होंने वह करने की संमति दी और विवाह भी करवा कर दिया । बहुत सादगी से, कम खर्च में और प्रसंग की गंभीरता, पवित्रता बनी रहे इस तरह उन्होंने विधि अपनाई । बाराती और अन्य उस प्रसंग में उपस्थित रहनेवाले सभी इस प्रसंग में सक्रिय भाग लेते हैं, उसका महत्त्व समझे और प्रसंग के अनुकूल उस तरह तब बरते इसलिए श्रीमोटा ने गुजराती में सप्तपदी की रचना की । खातमुहूर्त, वास्तु और जनोई गुजराती में

रचित हैं* । उन प्रसंगों में उपस्थित रहनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को विधि आदि के छपे हुए स्तोत्रों और प्रार्थनाओं की नकल बाँटी जाती । श्रीमोटा स्वयं विधि करते-करते वह बोलते और फिर सभी के पास वह बुलवाते, गवाते । इसप्रकार, समूह उसमें भाग ले । इससे प्रसंग की गंभीरता बनी रहती । बाकी चालू रिवाज के अनुसार एक ओर पुरोहित महाराज विवाह करवाते होते हैं तो दूसरी ओर उपस्थित लोग या तो बीडी-सिगरेट पीते होते हैं या अर्थहीन बातों मे मशगूल रहते होते हैं यह प्रतिदिन के दृश्य होते हैं । श्रीमोटा उससे विरुद्ध दृश्य उत्पन्न करने का हमेशा प्रयास करते हैं, यह उनकी विशिष्टता है ।

पहली बार एक विवाह उन्होंने अपने सूरत के आश्रम में करा के दिया तब उसमें सप्तपदी न थी । फिर किसी अधिकारी ने उनका ध्यान खिंचकर कहा कि, ''उच्चतम कोर्ट के कानून अनुसार कानूनी विवाह के लिए तीन वस्तु की आवश्यकता होती है : (१) अग्नि (२) सप्तपदी और (३) पुरोहित । इसलिए श्रीमोटा ने गुजराती में सप्तपदी की रचना की, उसी तरह जनोई के प्रसंग का भी सुंदर स्तोत्र रचा है ।

श्रीमोटा के पुरोहित पद को या उनकी उपस्थिति को पसंद करने के पीछे अनेक लोगों की दूसरी एक गिनती होती है । श्रीमोटा जैसे मुक्त के हाथ से विवाह हो, वास्तु हो या दूसरा कोई भी शुभप्रसंग पूर्ण हो तो स्वयं का विवाहित जीवन या नये घर में वास सुखमय होगा, घर में 'चरण' पड़ेंगे तो लाभदायी होगे, दुकान का उद्घाटन उनके शुभहस्त से हो तो व्यापार-धंधा, पूरे वेग से चलेगा - ऐसी-ऐसी गिनतियाँ उन-उन व्यक्तियों की व्यक्त नहीं तो अव्यक्त भी होती हैं । श्रीमोटा को इसका पता है और आपश्री इस संबंध में कहते भी होते हैं कि, ''मेरे हाथ से विवाह करवाने से या दूसरा कोई भी काम करवाने से सभी सीधा सरल होगा इसकी गेरन्टी नहीं देता । मेरे हाथ से विवाह होने पर भी किसी के विवाहजीवन निष्फल भी हुए हैं ।'' तथापि उनका ऐसा भी कहना है कि, ''जो ऐसी चेतना से निष्ठा पाये हुओं में हिल, मिल, घुल, घुस

* इस ग्रंथ में अन्यत्र ये विधिविधान प्रकट करने में आये हैं ।

गये होते हैं अथवा जिन्हों ऐसे महात्माओं की दीर्घकाल पर्यन्त सच्ची सेवा की है, उनके जीवन में ऐसे मुक्तात्मा सच्चे आशीर्वादरूप फलित होते हैं ।''

और श्रीमोटा विशेष में कहते हैं कि, ''तब भी जो मुझे बुलायेंगे उनके यहाँ ऐसे काम प्रसंग में अवश्य मैं हिचकिचाहट बिना जाऊँगा, क्योंकि वहाँ जाने से मुझे पैसे भी मिलते हैं और मुझे पैसों की खूब आवश्यकता है — मेरी समाजोपयोगी योजनाओं के लिए और कहीं भी भेंट लिये बिना किसी का आमंत्रण स्वीकारता नहीं । यह मेरा व्रत है ।''

• • •

२७. वृक्षप्रेमी

श्रीमोटा का वृक्ष पर का प्रेम भी इतना ही प्रसिद्ध है । युवानी में जब वे नडियाद में थे, तब उन्होंने स्वयं मेहनत करके वृक्षों को बो कर पानी देकर उन्हें बड़ा किया है । हरिजन सेवक संघ में थे और जहाँ-जहाँ गये वहाँ-वहाँ उन्होंने वृक्ष लगाये हैं । साबरमती आश्रम में उन्होंने एक पीपल बोया और बड़ा किया और फिर हमें उसे पानी पिलाने को कहा था । वह पीपल अभी भी वहाँ वर्तमान में है, हरिजन आश्रम के सामने । वह पीपल, वहाँ सड़क हो, तब चला न जाए, उसका निकंदन न निकले इसके लिए सारी देखरेख उन्होंने रखी यह हमारी जानकारी का सत्य है । १९३८ में वहाँ बोया और १९३९-'४० में मैंने उसे स्वयं पानी पिलाया था ।

खेड़ा जिले में फलाउ वृक्षों को बोने के लिए खेड़ा जिला पंचायत को तीनेक हजार का ट्रस्ट करके वह रकम सौंपी है ।

आश्रम के वृक्षों को होने तक कभी न काटने दे । इससे जो खास कठिनाई पड़ती हो तो उसे सहन कर लेना और वृक्षों को काटना नहीं ऐसी उनकी खासियत है और हुक्म भी सही ।

आश्रम में वृक्ष अनेक हो, तब भी ईंच-ईंच जगह का उपयोग करना ऐसी उनकी खासियत है और उसमें अनेक लोग संमत न भी हो,

तब भी श्रीमोटा कहते हैं की जगह के ईंच-ईंच का उपयोग करना चाहिए ।

गुजरात में पुराने से पुराना और बड़े से बड़ा कबीरबड़ का वृक्ष है । वह भावना का प्रतीक स्थान है और हमारे देश में कबीर साहब पधारे थे, यह ऐतिहासिक सत्य है । उस पेड़ की मरम्मत करने, पुनरुद्धार करने श्रीमोटा ने मेहनत की है । भरुच जिला पंचायत को इसके लिए उन्होंने २५०० रुपये की रकम भी सौंपी है । उसकी जटाएँ जमीन में उतार देने से वह वटवृक्ष अधिक वर्ष जीए, इतना ही नहीं, पर गुजरात राज्य के उच्च कक्षा के अधिकारी के पास उसकी समझ लाकर इसके लिए विशेष रकम प्राप्त कर पाँच हजार रुपये की दूसरी रकम भरूच जिला पंचायत मंडल को सुप्रत की है ।

नडियाद के आश्रम में उन्होंने उगाया जो वटवृक्ष वहाँ था, उसकी जटाओं को भी पहले से ही जसत की दस नली करवा करके कितनी सारी जटाएँ जमीन में उतरवा दी थी ।

उन्होंने दूसरों को भी वृक्ष उगाने के लिए प्रेरित किया है । प्रकृति के साथ उन्हें बहुत महोबत है । साधनाकाल में भी प्रत्येक वर्ष एक महीना छुट्टी लेकर वे घने जंगल में जलाशय के पास हो वैसी जगह पर बैठ जाते ।

कुंभकोणम् आश्रम में भी शुरूआत में उन्होंने ही पाँच-सात आम के पेड़ बोये थे और पानी सिंचा किया था । उसके बाद उन्होंने लगभग पचास-साठ आमवृक्ष बोआअे हैं । उनका लालनपालन तो दूसरों ने किया था । सूरत के आश्रम में भी ऐसे आम और दूसरे फलाउ वृक्ष लगाये हैं । मेहनत की है – भीखुकाका और झीणाकाका ने । सबसे अधिक कुदरती सौंदर्यवाला आश्रम हो तो वह कुंभकोणम् का आश्रम है । नडियाद आश्रम में दूसरे वृक्ष होते न थे, तब भी वहाँ आमवृक्ष बोआये हैं ।

• • •

२८. छोटों की कदर

डॉ. मंगलदास नाम के एक डॉक्टर थे । वे मंगलदासभाई सभी के लिए विनोद का साधन मानो क्यों न हो, उस तरह उनके प्रति सभी का व्यवहार था । पर वैसे मंगलदास के लिए भी श्रीमोटा ने उस काल में यानी कि सन १९४४ के साल में एक थैली इकट्ठा करने का निश्चित किया और सरदार वल्लभभाई पटेल के एक सौ, मावलंकरदादा के भी एक सौ और ऐसे कितने ही नामांकित व्यक्तियों के पास से भी श्री हेमंतभाई द्वारा रकम इकट्ठी करवायी और तीन हजार से अधिक का योगदान मंगलदासभाई के लिए इकट्ठा करवाया था ।

श्रीमोटा का घर के नौकर के साथ का व्यवहार और चाह, उनकी इस प्रकार की खासियत खास लक्ष में लेने जैसी है । नौकर के साथ संपूर्ण भाईचारे का भाव है । एकसाथ सभी को एक ही पंक्ति में भोजन लेना, जिससे उनके साथ हमारी दिल की एकता का कुछ ख्याल उनमें जागे तो जागे । पर सबसे विशेष तो हमें स्वयं को ही ये हमारे अंग हैं, ऐसी जीती-जागती समझ आये यह हमारे लिए उत्तम है ।

तंदुरस्त और सशक्त सेवक एक मिनट भी आराम से बेकार का समय न बिताये और दोपहर में सो न जाये ऐसा उनका नियम है । *इसलिए नौकरवर्ग नियम के रूप में सोते नहीं है* । दोपहर में सोने से तमस जमता है, इसलिए ऐसे नियम का पालन होता है । मौनमंदिर में भी साधकों को दोपहर में कभी न सोने की खास सलाह दी जाती है । नहीं तो भाव बदल जाये और आलस पैदा हो और अंदर रहना अच्छा न लगे ।

नौकरवर्ग के प्रति उन्हें इतनी सारी हमदर्दी और मानवताभरा व्यवहार होता है कि वह देखकर हमें खूब आनंद होता है । किसी भक्त के वहाँ उन्हें तीन-चार दिन तक रहने का होता, तो वहाँ के नौकरवर्ग तथा लिफ्टमेन को अचूक कुछ न कुछ बक्षिस देते जाते । किसी भक्त के यहाँ भोजन के लिए जाना हो तो उनके साथ के मोटर ड्राइवर को

---

* वर्तमान में इसमें बदलाव आ गया है ।

सभी की पंक्ति में ही भोजन के लिए बिठाते । उनके दर्शन के लिए आनेवाले भक्तवृंद के अलावा कोई हरिजन, घर के कमरे के बाहर दरवाजे के आगे से उन्हें प्रणाम करे तो उसे अंदर बुलाते थे और प्रसाद दिलवाते । ऐसा उनका करुणा से भरा व्यवहार होता है ।

• • •

२९. भावोद्रेक

श्रीमोटा किसी को देखकर भावविभोर हो जाते, आँख में आँसू आ जाते और काँपते हाथ से बिदाई लेते देखे हैं । भाई रतिलाल मेहता ने इस विषय में समझ देने उन्हें बिनती की । उसके उत्तर में उन्होंने ऐसा समझाया था ।

''एक तो हमारे लिए भाव है, प्रेम है, मनोभाव है । यह सामनेवाले व्यक्ति को जब सचमुच समझ आये, तब सामनेवाले को हमारे लिए कुछ दिल में हुए बिना रहता ही नहीं और उसके दिल में भाव पैदा करने के लिए यह कोई नाटकिय खेल नहीं है, नाटक नहीं । इससे कोई भाव आ सके नहीं । नाटकियता से आँसू आ सकते हैं, पर यदि नाटकी चाल से ही आँसू आते हो तो वह मिथ्याचार गिनायेगा और यह मिथ्याचार जीवन में पता लगे बिना तो कैसे रह सके ?''

''यदि एक जगह ऐसे नकली भाव हो तो जीवन के दूसरे प्रसंगों में इन नकली भाव का व्यक्त होना रूप हो नहीं सकता । इसलिए इस तरह के इन प्रसंगों को सोचे तो ऐसा लगता है कि श्रीमोटा दूसरों के दिल में, सामनेवाले के दिल में भाव पैदा हो और यह भाव, इसका मूल्य तो चिरंजीवी है और उस भाव का चिरंजीवी मूल्य यदि सामनेवाले के दिल में श्रीभगवान की कृपा से जागृत हो सका तो सामनेवाले के दिल का संबंध यह भी चिरंजीवी रह सकता है, भाव न हो तो संबंध का कोई अर्थ नहीं । संबंध जीताजागता भाव के कारण होता है । **संबंध का उपयोग भाव जगाने, भाव विकसित करने, भाव को तेजस्वित करने और भाव में चेतन लाने के लिए है । ऐसे भाव सामनेवाले के दिल में जागे तो इस भाव द्वारा ऐसे अनुभवी पुरुष उसके दिल में**

पैठ सकते है । प्रवेश करने के लिए भाव यह बड़े से बड़ा साधन है । पर यह बुद्धि से समझा जाय, तब सही है । पर जब मुझे प्रश्न पूछने में आया, तब बुद्धि स्वीकार कर सके वैसा कहा ।''

• • •

३०. सेवाचाकरी

श्रीमोटा स्वभाव से सेवाभावी और अकारण सेवा करनेवाले हैं । ऐसे कितने प्रसंग वे 'मोटा' हुए उससे पहले और उसके पश्चात् जानने को मिलते हैं । स्व. साक्षर श्री रमणलाल वसंतलाल देसाई की मासी के मोतिया के 'ऑपरेशन' के बाद रात की सेवा में श्रीमोटा उपस्थित रहते । तब नवसारी के हरिजन आश्रम में उनकी प्रवृत्ति थी । इसका उल्लेख करते साक्षरश्री ने एक स्थान* पर बताया कि, ''उन्होंने मेरी मासी की तीमारदारी हाथ में ली और रातों को जागकर धन्यवाद की थोड़ी भी अपेक्षा रखे बिना हमारे जागने को निरुद्देश्य बनाकर हम सभी को आराम दिया । मरीज की ऐसी एकनिष्ठ तीमारदारी करते बहुत ही थोड़े व्यक्ति मेरे देखने में आये हैं ।''

बोडाल आश्रम में श्रीमोटा के साथ उनके मित्र श्री हेमंतभाई नीलकंठ थे । सन १९३९ का वर्ष था । तब उन्होंने एक औषधालय खोला था । हरिजनों को मुफ्त और दूसरों के पास से पैसे लेने का रिवाज था । श्री हेमंतभाई इस संबंध में लिखते हैं कि हमारा दवाखाना बहुत अच्छा चलता था । जिस गाँव में डॉक्टर-वैद्य हो, वहाँ से भी लोग दवा लेने आते । श्रीभगवान की कृपा से ऐसी छाप पड़ी थी कि बोडाल में अच्छी दवा मिलती है और आराम होता है ।'' श्रीमोटा की इस बात में कैसी होशियारी और भावना थी, इसके दो प्रसंग देखने को मिलते हैं ।

एक बहन को मल बंद हो गया था और अंतिम दिन जा रहे थे, इससे वह बहुत ही परेशान होती थी । इसलिए उसके घर से बुलावा आते ही श्रीमोटा एनिमा लेकर उसके घर गये और एनिमा कैसे लेना इसकी

* श्रीमोटा कृत 'प्रणामप्रलाप' पुस्तक की प्रस्तावना में से ।

सूचना उस बहन ने दूसरे संबंधियों को दी, पर उस बहन के संबंधियों को वह काम रास न आया। यह बात श्रीमोटा को कही। इसलिए उन्होंने कहा कि, ''बहन को कहे कि कोई संकोच न रखे। मुझे बेटा या भाई गिने।'' बहन ने वह कबूल किया। श्रीमोटा ने उसे एनिमा दिया। नौ दिन से अटक गया मल निकलते बहन को बहुत आराम हो गया।

एक विद्यार्थी को कान में से पस निकलता था। उसकी दवा करते एक बार श्री हेमंतभाई ने कान की दवा के बदले भूल से आयोडिन की कुछ बूँदे उसके कान में डाली। लड़का अपने घर पहुँचते ही रोने लगा। कान में बहुत जलन हो और पछाड़ मारे। लोग इकट्ठे होकर आश्रम के औषधालय आये। मानो हुमला करने चीख-पुकार करके श्री हेमंतभाई के साथ लड़ने लगे। इतने में श्रीमोटा वहाँ आ पहुँचे। पहले तो सभी को डाँटकर उन्हें शांत किया और ''खड़े रहो, अभी दूसरी दवा डाल देता हूँ। इससे मिट जायेगा।'' ऐसा कहा और दूसरी दवा डाली। दर्द मिट गया उसके बाद श्री हेमंतभाई ने श्रीमोटा को पूछा कि, ''कौन सी दवा डाली आपने ?'' ''साबुन का पानी !'' उसकी एक-दो पिचकारी से आयोडिन धुल गया। ऐसी उनकी समयसूचकता और सूझ थी।

फिर उन दोनों ने होस्पिटल निकालने की भी तैयारी की थी, परन्तु सन १९३२ की लड़ाई प्रारंभ होते ही यह काम रुक गया।

जब श्रीमोटा साबरमती आश्रम में रहते, तब उनके एक पड़ोसी श्री भगवानजीभाई पंड्या के पुत्र (बलरामभाई) को उसकी बीमारी के कारण वा. सा. होस्पिटल में रखा गया था। श्रीमोटा दिन में संघ का काम करते और रात को होस्पिटल सोने जाते। श्रीमोटा की ऐसी सँभाल और तीमारदारी से श्री भगवानजीभाई बहुत खुश हो गये थे और बड़ी उपकारक वृत्ति से श्रीमोटा के सामने देखते थे।

ऐसी सेवा श्रीमोटा ने अपने स्वजनों की है और हरि:ॐ आश्रम की स्थापना के बाद आश्रम के सेवकों के सुख की खास निगरानी रखते होते हैं। बीमार सेवकों की देखभाल उनकी नजरों के सामने होती है। इतना ही नहीं, बाहर रहते मित्र और स्वजन बीमार हो तो उन्हें पत्र, तार या

टेलिफोन से खबर पूछते और एक ही शहर में हो तो वे उनके घर या होस्पिटल जाकर खबर निकाल आते अथवा खबर पूछने अपने किसी आत्मीयजन को भेजते ।

ता. ६-५-१९४५ के दिन महात्मा गांधीजी को सरकार ने छोड़ दिया । यह समाचार मुंबई से अहमदाबाद रेलवे गाड़ी में जाते रास्ते में श्रीमोटा और हेमंतभाई नीलकंठ के पढ़ने में आया । ऐसे शुभप्रसंग में कोई सतकर्म करना चाहिए ऐसा माना जाता है । श्री हेमंतभाई को ऐसी इच्छा हुई सही, पर वे विचार करते करते निद्रा में पड़ गये । इस दौरान उनके साथ के दो मुसाफिर कोई गंभीर बात अंदर अंदर करते थे । इसे देखकर श्रीमोटा ने श्री हेमंतभाई को जगाकर सूचित किया कि, ''ये दो भाई जो बात करते हैं, उनके साथ बात करके वह जो कहे उस अनुसार हम करें ।'' उन दो भाइओं में से एक भाई गाँव में शिक्षक था । उनकी पहचानवाली कोई कुमारिका बहन उसकी नैतिक भूल के कारण संकट में आ गई थी । उसकी सगाई भी हो गई थी । इसलिए अधिक जोखिम था । उसका अब क्या करना उसके चिंतन में सभी थे । उन भाइओं ने यह बात कही । यह सुनकर श्रीमोटा ने हेमंतभाई को कहा की इस भाई को श्री गटुभाई के पास ले जाओ और उस बहन के लिए अनाथाश्रम में वह 'मुक्त' हो, वहाँ तक रहने की व्यवस्था करो । (श्री गटुभाई म. रू. अनाथाश्रम के मंत्री थे) और श्री हेमंतभाई ने उस सूचना का पालन किया । इस तरह एक बड़ा सत्कार्य श्री हेमंतभाई की इच्छानुसार हुआ — श्रीमोटा के मार्गदर्शन में ।

अनेक साथिओं को व्यक्तिगत रूप से भी तन, मन और धन से (दूसरों से फंड इकट्ठा करके भी) मदद की है । ऐसे एक आजीवन कार्यकर्ता श्री खंडेरिया के पुत्र को 'लेप्रसी' का रोग हुआ था । केवल दस वर्ष का लड़का था और इस रोग की दवा करवाने का खर्च बहुत ही होता है । श्रीमोटा को इस बात का पता चला । उन्होंने उसके लिए रु. १९००/- लाकर दिये । इस तरह हरिजनों के प्रतिनिधि के रूप में तब के धारासभा के सभ्य श्री परसोत्तमभाई को भी लगभग रू. ५००/- की मदद लाकर दी । ऐसे अनेक छोटे-बड़े तो कितने ही उदाहरण हैं, जिनकी

हमें जानकारी नहीं है । उनके अपने पास पैसे न होने पर भी दूसरों से उधार लाकर भी व्यक्ति की मदद किया करनी यह उनकी विशेषता है । उनकी वर्तमान प्रख्यात हुई विशाल गुणभाव विकासक योजनाओं का बीज इस तरह उनके साधनाकाल दौरान रोपा जा चुका था । जिस-जिस जगह जिस-जिस प्रकार की सेवा देनी आवश्यक लगी हो — शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक या आर्थिक - वहाँ-वहाँ वे खूब उद्यम करके सेवा देते या दिलवाते । उन्होंने अपनी गरीबी के कारण ऐसी सेवाएँ दूसरों के पास से स्वीकार की है और उसका ऋण वे शायद इस तरह अदा करते होंगे । यद्यपि बचपन में और यौवनावस्था में भी उन्होंने जिसके पास भी किसी भी प्रकार की सेवा-मदद प्राप्त करते उसका बदला किसी भी प्रकार से चुकाये बिना नहीं रहते । (पढ़ाकर या इस तरह) और आज भी वैसा किये बिना नहीं रहते, यह उनके स्वभाव की विशेषता है ।

श्रीमोटा ने एक से अधिक व्यक्तिओं को उनकी दिव्यशक्ति द्वारा आत्महत्या करने से बचाये प्रसंग जानेमाने हैं । और ऐसा व्यक्ति कोई बार उन्हें पहली ही बार स्थूल रूप में मिला हो । एक युवक प्रेम में निराश हो करके और आघात असह्य लगने पर उत्तर हिन्द पहुँच गया और जहर खाकर जीवन का अंत लाने का उसने निश्चित किया । उसके मातापिता बचपन में ही मर गये थे । इससे उनके एक परिचित मित्र दंपती ने मित्रभाव से उसे पुत्र के समान बड़ा किया । उन्हें वह काका-काकी कहता है । तब वे उत्तर हिन्द में रहते थे । उन्हें अंतिम प्रणाम करने के इरादे से वह युवक उनके वहाँ गया । तब श्रीमोटा वहाँ थे । इस दौरान श्रीमोटा को उसकी मानसिक स्थिति का पता लग गया, इसलिए उन्होंने उसके काका-काकी को उसके मन की स्थिति से अवगत करवाया । इसलिए काका-काकी ने उस युवक को आत्महत्या करने से बचा लिया । युवक ने बाद में जहर की पुड़िया श्रीमोटा को सौंप दी थी । यह बात बहुत वर्ष पूर्व की है । फिर तो वह युवक श्रीमोटा के निकट संसर्ग में आया और आज वह उनका स्वजन बना हुआ है और आश्रम की, श्रीमोटा की हो सके उतनी सेवा करता है ।

• • •

३१. उपयोग या उपभोग

केवल गुणभाव की भूमिका बिना की प्राप्त लक्ष्मी हमारे में असुर पैदा करती है । गुणभाव की भूमिका के बिना की प्राप्त लक्ष्मी कभी गौरव नहीं दिला सकती, संस्कृति नहीं जन्मा सकती, संस्कृति का नाश करेगी, ऐसा उन्हें अनुभव से भरोसा हुआ है । लक्ष्मी की श्रीमोटा ने कभी अवज्ञा नहीं की है । लक्ष्मी यह शक्ति है, ऐसा आपश्री मानते हैं । पर जिसके जीवन में गुण और भाव प्रकटे नहीं हैं, उसे प्राप्त लक्ष्मी उसके जीवन का कभी उत्कर्ष नहीं कर सकती ।

जीवदशा की सुखसुविधा भले यह भोगे, पर जीवन के विकास की समझ ऐसी यह लक्ष्मी से पैदा नहीं हो सकती । **लक्ष्मी का उपयोग परमार्थ में ही होना चाहिए और अपने लिए तो मात्र जितनी आवश्यकता हो उतना ही भोगना चाहिए । इससे विशेष तलमात्र भी नहीं, ऐसी भी श्रीमोटा के अनुभव की समझ है ।** इससे भी श्रीमोटा को असुविधा भोगते देख सकते हैं । आश्रम में उन्होंने कभी मिष्टान्न करने-कराने की मनाई की है । पकौड़े भी तले नहीं जा सकते । वे स्वयं गरीबी में रहे हैं, इस कारण से यह नहीं होता । कितने ऐसा मानते हैं कि श्रीमोटा ने बहुत कठिनाई में और गरीबी में जीवन बिताया होने से उन्होंने इस प्रकार के रिवाज और पद्धति अपनाई हुई है, परन्तु सच्चाई तो ऐसी नहीं है । हम समाज से प्राप्त करते हैं और समाज को बोध लेने के लिए नहीं, किन्तु हमारा जीवन इतना अधिक स्पष्टतावाला पारदर्शक होना चाहिए कि जिससे समाज को और हम स्वयं जो कहते हैं, उसे सानुकूल उसी प्रकार का जीवनवाला वास्तविकतायुक्त हमारा जीवन हो तो ही हमारे कहने का तात्पर्य किसी के गले उतरना हो तो उतर सकता है । फिर, प्रत्येक शक्ति हमारे अपने वैभवविलास, मोजशोख या भोगने के लिए नहीं है । प्रत्येक शक्ति का उपयोग है ।

उपयोग और उपभोग में बहुत अंतर है । श्रीमोटा हमेशा उपयोग में मानते हैं । इसलिए हमें जो कुछ मिला है, वह उपयोग के लिए

है । उपयोग के लिए ऐसा समझा जाता है कि दस हजार, बीस हजार या पचास हजार खर्च करने की आवश्यकता हो तो उन्हें यह खर्चने में संकोच नहीं होता यह भी सत्य हकीकत है ।

श्रीमोटा कभी किसी का उपभोग करने का नहीं समझे हैं । यह एक उनके जीवन की विशेष खासियत है, जो बहुत कम लोग समझते होगे । बाकी ऊपरी दृष्टि से उन्हें देखनेवाले व्यक्ति को तो दूध में भी दोष निकाले ऐसा हो सकता है सही । श्रीमोटा का जीवन उन्होंने आध्यात्मिक साधना में कैसे-कैसे प्रसंग में कैसा-कैसा बिताया है, इन सभी की हकीकत तो आपकी और हमारी जानकारी में नहीं हैं । इस विषय में श्रीमोटा कभी कुछ कहते भी नहीं, क्योंकि ये सारे प्रसंग जानने से और ऐसा लिखने से प्रतिष्ठा बढ़ाना उन्हें बिलकुल पसंद नहीं है ।

• • •

३२. साधक का हृदय

श्रीमोटा बार-बार कहते आये हैं कि, ''भाई, गुण और भाव जीवन में विकसित करो । गुण की तालीम इसके लिए बहुत आवश्यक है । इतना ही नहीं, पर प्रत्येक **जीव** जब साधना की ओर जाता है, तब उसे उसके अपने दोष का भान होना चाहिए । अपनी खराब आदतों का भान होना चाहिए । इतना ही नहीं, परन्तु जो साधना में सचमुच दिल की भावना से मुड़ा हो, ऐसे साधक को अपने दोष, अपनी खराब आदत आदि उसे बहुत-बहुत डंसने चाहिए और यदि वे डंसे तो ही उस स्थिति में से भी निकल सकता हैं । स्वयं का जो स्वभाव है, वह वैसा का वैसा ही यदि रखकर साधना में विकास करना चाहता होगा तो वह भ्रमणा की हकीकत है ।

गुण और भाव जीवन में प्रत्यक्षरूप से कर्म करते-करते जिसमें विकसित और विकास होते जाते हैं, ऐसे ही *जीव* के जीवन में आध्यात्मिक साधना की भावना का विकास होता है, बाकी नहीं । वे तो बहुत बार कहते हैं कि साधु-संतों के पास जाकर आशीर्वाद और कृपा की लोग मांग करते हैं । यह तो मूखर्ता ही है और इस तरह

कहीं कुछ किये बिना आशीर्वाद और कृपा की मांग किया करने से यह समाज पंगु हो गया है। आशीर्वाद देने से नहीं दिया जाता, पर स्वयं बहा करता होता है। सूर्य का प्रकाश निकलता करता है, वैसे उसके लिए हम पात्र बने। योग्यता लाये, इससे अपनेआप यह प्रकटेगा, ऐसी उनकी समझ है और समाज में गुण और भाव प्रकटे उसके लिए श्रीमोटा अति उत्सुक हैं। इसके लिए उनके दिल में बहुत चटपटी है। यह चटपटी ऐसे तो वे व्यक्त नहीं करते, पर प्रत्येक वर्ष वे लिये काम को फलित करने के लिए मथा करते हैं और शरीर की परवाह किये बिना वे भागदौड़ करते हैं, उस पर से सभी परखा जाता है। यह कोई ऊपरी तौर से अनुमान की हकीकत नहीं है।

सन् १९७० से उनके शरीर का वजन बहुत अधिक कम होने लगा है। पर यह शरीर की तकलीफ और अपने संकल्प को फलित करने के मुकाबले में किसी की भी कोई गिनती नहीं, यह मेरे मन प्रत्यक्षरूप से तादृश्य अनुभव की हकीकत है।

अपने दिल में जैसे अपने साधनाकाल में गुण और भाव लाने के लिए जितना उन्होंने मंथन किया है और इससे ही अपने जीवनविकास की साधना के विकास में जो छलांग उन्होंने लगाई अथवा छलांग लगा सके हैं, उसका उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव है। इसलिए तो वे कहते हैं कि इस साधना के मार्ग में जो-जो कोई विकसित हुए बिना वह कोई साधना का विकास चाहेगा तो वह उनका अज्ञान है। **गुण और भाव विकसित करने अथवा तो संपूर्णरूप से उनका विकास हो, उसी स्थिति में आध्यात्मिक जीवन की साधना की संभावना है, बाकी नहीं।**

श्रीमोटा पहले बहुत भुलक्कड़ थे। व्यवस्था, व्यवस्थिति, यह सब गुण उनमें न थे, पर साधना के मार्ग पर चलते-चलते ये गुण विकसित करने का उन्हें सुझता गया था और उन्होंने उस प्रकार किया है। इतने सारे गुण उनमें विकसित थे और नम्रता के गुण को उन्होंने इतना विकसित किया कि उनमें अनेक प्रकार का ज्ञान होने पर भी उनमें कोई भी समझ नहीं इस तरह उनसे व्यवहार होता।

शरीर, मन, संयोग और ऐसी अन्य अनेक प्रकार की सुविधाओं के बदले जिस उद्देश्य को फलित करना है, उस उद्देश्य को ही उन्होंने हमेशा प्राधान्य दिया है। इससे हमें भी जीवन में यह एक मुख्य वस्तु सीखनी रहती है कि हमें जो करना है, उसका एक-सा मननचिंतन यदि हमारे जीवन में जागेगा और जीता-जागता चेतनात्मकरूप से एक-सा जीवंत प्रकटा न रहे, वहाँ तक यह साधना का विकास कभी काल नहीं हो सकता, यह भी सत्य है। जो कोई प्राप्त हुआ कर्म, संयोग उसे फलीभूत होने स्वयं हमेशा तत्परता रखनी, चटपटी रखनी, सहजरूप से रखनी, यह उनके जीवन का अभ्यासक्रम आज भी है।

• • •

३३. प्रार्थना

श्रीमोटा ने अपने साधनाकाल से ही प्रार्थना पर हमेशा झुकाव दिया है। प्रार्थना उनके साधनाकाल का बड़े से बड़ा जीवंत हथियार था। प्रार्थना एक ऐसी सहचरी थी और इस प्रार्थना ने उनके जीवन में इतनी सारी सफलता दी है कि आज भी कितने व्यक्ति अपने अपने प्रश्न, उलझन आदि के लिए आते हैं, तब श्रीमोटा कहते रहते हैं कि, ''आपके लिए भगवान को मैं प्रार्थना करूँगा।'' **वे अपने इन स्वजनों के फोटो ले लेते हैं और करना होता है, वह आपश्री करते हैं।** आज अनुभव की स्थिति में भी आपश्री कहते हैं कि, ''मैं तो भगवान का नौकर हूँ, चाकर हूँ, मुनीम हूँ। मैं अपने सेठ को प्रार्थना द्वारा आपकी सारी हकीकत कहूँगा, उनके चरणकमल में रखूँगा।'' ऐसा अनेक बार श्रीमोटा को बोलते मैंने सुना है।

इतना ही नहीं, पर जब वे साधनाकाल में थे, तब उनको जो जो वृत्तियाँ उठती थी, उसे मठारने के लिए उन्होंने कितनी ऐसी प्रार्थनाएँ की हैं कि जो उनके पुस्तकों में प्रकाशित हुई है और अनेक ऐसी अप्रकाशित पड़ी है। पर उन्होंने तब अनेकबार प्रार्थना का सहारा लिया है और प्रार्थना एक ऐसा बल हमारे अंतर में, आधार में जगाता है कि जिस बल द्वारा हमें जैसा होना हो वैसा अपने आपको गढ़ सकते हैं, प्रार्थना

एक ऐसा साधन है, एक ऐसी शक्ति प्रार्थना के भाव में प्रकट होती है कि जो प्रार्थना श्रीमोटा के लिए सजीवन, जीती-जागती हकीकत है ।

पर उस प्रार्थना का महत्त्व तब होता है, जब फव्वारे की तरह हृदय में ऐसा भाव प्रकट हुआ हो और ऐसे एकाग्र भाव से प्रेरित होकर वह गद्गद भाव से श्रीभगवान को हम कहें । जैसे मित्र मित्र को कहे, पत्नी पति से कहे, पति पत्नी से कहे, बालक माता से कहे, इस तरह ऐसे एक सगापन के भाव से जब श्रीभगवान के चरणकमल में रखने में आये, तब उस प्रार्थना से जीवन कैसे बदलता जाता है, जीवन जो एक निम्न प्रकार का था, उसका कैसा ऊर्ध्वीकरण किस प्रकार का होता है, यह श्रीमोटा का जीवन प्रत्यक्ष उदाहरणरूप है । कहीं कुछ हो, तब श्रीमोटा प्रार्थना द्वारा श्रीभगवान को आत्मनिवेदन करते । जेल में गये थे, तब वे प्रार्थनाएँ किया करते । ऐसी एक पुस्तक उदाहरणरूप से प्रकाशित है, ''हृदयपोकार'' और जेल में लिखने की सुविधा न होने से मौखिक रखा था । बाहर आकर पूना में रुककर उन्होंने उसे कागज पर लिख लिया था । श्रीमोटा ने ऐसी कितनी ही प्रार्थनाएँ साधनाकाल में, जीवदशाकाल में अपने ज़ीवन के ऊर्ध्वीकरण के लिए की थी वे प्रकाशित हुई हैं ।

इसलिए प्रार्थना एक ऐसे प्रकार का बल है कि यदि हृदय में सचमुच का भाव जागा हो तो इस हृदय के धकेलने से जो प्रार्थना होती है, उस प्रार्थना में प्राण होते हैं, चेतना होती है और उसमें से ऐसा बल प्रकट होता है कि जिसके द्वारा जीवन गढ़ा जा सकता है । **प्रार्थना यह श्रीभगवान का स्वरूप है, ऐसा श्रीमोटा कहते हैं । प्रार्थना से पर्वत को हिला सकते हैं,** यद्यपि यह चाहिए उससे अधिक बहुत बड़ी बात है । पर यदि उसे एक उपमारूप से कहें तो यह समझ सकते हैं, क्योंकि हम अनेक निम्न प्रकार के वृत्तिभाववाले, जीवदशा के भाववाले, काम, क्रोध, लोभ, मोह, और अहम् में फँसे ऐसे अनेक प्रकार के मनोभावों में से प्रार्थना द्वारा जीवन के उत्तम, दिव्य प्रकार के जीवन की स्थितियों में प्रवेशकर सकते हैं और वह प्रताप है प्रार्थनाओं का ।

• • •

● 'मोटा' होने से पहले ●

१. किशोरावस्था : श्रीमोटा के शब्दों में

» मैं छोटा था, लगभग १२-१३ वर्ष की उमर का । पिता अफीम के साथ ही मीठाई खाते, तब अफीम का नशा चढ़ता । मैं पढ़ाई में प्रथम वर्ग का विद्यार्थी था । इसलिए सभी विद्यार्थी मुझे पहचानते थे, इसलिए हलवाई के लड़के के यहाँ से मीठाई लाता । साथ के लिए पिता मुझे भी खिलाते । अफीम खाने से प्रमाद आता । इसलिए मैंने वह खाना बंद किया पर यह सब उनकी सेवा के भानरूप में करता था ।

» छोटी उम्र में खेत में मजदूरी करता । मजदूरी के रूप में दो आना और एक रोट रोज मिलता । मुझे दो रोट चाहिए । तब मेरे सेठ कहते, ''तुम्हारी उम्र छोटी है, इसलिए एक ही रोट मिलेगा ।'' ईंट के भट्ठे में भी काम किया था । बाद में अनाज के व्यापारी के यहाँ भी नौकरी की । ऐसा करते-करते वर्नाक्युलर फाईनल पास हुआ ।

» मेरे बड़े भाई जमनादास खास कुछ नहीं करते थे । बाद में हरिजन सेवा में वे जुड़े थे । दूसरे भाई मुझ से छोटे । हमारे यहाँ गाय भी थी । गाय के लिए घास काट लाने का काम मैं करता, क्योंकि खरीदकर घास लाना मँहगा पड़ता । साफसफाई का काम भी मैं करता । गाय को पानी पीने मैं ले जाता था ।

» मैं बिलकुल भी तूफानी न था । तूफान करने के संयोग भी कहाँ थे ? निरा शांत था । वडोदरा में कॉलेज में पढ़ता था, तब एक बार मांडवी के पास एक साधु ने मुझे बुलाया, ''बच्चा इधर आ !'' मैं उसके पास गया और उसने मुझे कुछ खाने को दिया । फिर मैं होश खो बैठा और उसके पीछे-पीछे चलने लगा । बहुत सारा चलने के बाद पेशाब जाने की वृत्ति हुई । पेशाब करते हुए अचानक होश आया कि, अरे ! मैं यहाँ कैसे आया ? उसके पीछे-पीछे क्यों जा रहा हूँ ? और फिर घर की ओर पूरी शीघ्रता से दौड़ने लगा । साधु देखता रहा !

» कालोल में हम रहते थे, तब मेरे पिता के लिए कालोल से मलाव खाना लेकर मैं जाता था। तब रास्ते में आलवा गाँव के पास एक नाले के पास भूख लगने पर खाना खाने बैठा। इतने में चोर आये और कहने लगे, ''लाओ जो हो वह !'' मैंने कहा कि, ''यह रोटियाँ हैं। चाहिए तो ले जाओ, दूसरा कुछ नहीं है। पहना कमीज है, वह चाहिए तो ले जाओ, पर थोड़ा खाने तो दो !'' पर चोर मारे बिना ही रोटियाँ उठाकर ले गये। तब मुझे कोई डर नहीं लगा था।

» हमारे कालोल गाँव में बिरादरी थी और बिरादरी में लड्डू बनते। हमारे नसीब में लड्डू देखने तो कहाँ से हो ? इसलिए युक्ति की। जब किसी एक जन की बिरादरी में लड्डू का भोज होगा तब लोगों की पंगत में किनारे कोई देखे नहीं ऐसे स्थान पर मैं छिप गया। और रचनानुसार मेरे ऐक मित्र ने लड्डू भरकर एक पतीला चुपचाप मुझे दे दिया। हाथ में आते ही लड्डू खाने का मन हो गया और खाने की तैयारी करता हूँ, तब बा और दूसरे घर के याद आये, इसलिए खाये बिना पतीला लेकर घर गया और लड्डू बा को दिये। बा ने पूछा, ''मेरे मुआ ! कहाँ से ले आया ?'' मैंने सारी बात बता दी। तब बा ने कहा, ''हम से ऐसे नहीं खाया जायेगा।'' और उसने दूसरों को लड्डू बाँट दिये।

» मेरी बा देवमंदिर जाये सही पर बड़े भाई आर्यसमाजी थे। इससे एक बार उन्होंने मेरी बा के पास से व्रत मांगा कि, ''तू देवमंदिर में जाना नहीं।'' मैंने बीच में पड़कर कहा कि, ''भाई, ऐसा वचन बा के पास से ले सकते सही ? मंदिर क्यों न जाय ?'' पर मेरा कौन सुने ? और मेरी बा ने ऐसा वचन दिया भी सही और अन्त तक पालन किया हाँ... यह एक गुण कहलायेगा।

» कालोल की ए. वी. स्कूल के हेडमास्तर की मैं सेवा करता और पढ़ता था, तब उनकी मासीबा वहाँ आतीं। उनकी नजरों में मैं चढ़ गया। अपनी सेवा-भावना द्वारा। वे पेटलाद रहती थीं। मुझे हाईस्कूल में पढ़ने जाने का उपस्थित हुआ, तब मुझे कृपा करके पेटलाद ले गयीं और अपने घर स्वजन की तरह मुझे रखा। मैं घर का सारा काम

करता था । अनेक बार रसोई होने में देर होती और शाला में जाने का समय हो जाता । इसलिए मैं दाल तैयार हो तो दाल केवल पीकर चला जाता । इसका पता सभी को चला तब मैं कहता कि मुझे दाल बहुत पसंद है, इसलिए केवल दाल पीकर जाता हूँ । इससे, मेरा नाम 'दालिया' रखा था !

» उसी घर के गहनें आदि सँभालने का काम भी मुझे सौंपा था । एक बार अंगूठी पहनने का मन हो गया ! कभी अंगूठी पहनी नहीं थी । इसलिए अपने ने तो अंगूठी पहन ली और बाहर निकल पड़े । रास्ते में कोई पहचानवाले मिल गये । उन्होंने मेरे हाथ में अंगूठी देखी । मैं पकड़ा गया, इसलिए जल्दी से दूसरे छोटे रास्ते से घर पहुँच गया और मासीबा को सच बात कह दी । मुझे अंगूठी चोरनी नहीं थी, केवल पहननी थी ऐसा बतलाया और कुछ कहा नहीं और अंगूठी वापिस से उस स्थान पर रख दी । वडोदरा में भी इसी मासीबा ने मुझे अपने यहाँ रखा था । ये मेरे आध्यात्मिक 'माँ' थे ।

• • •

२. श्रीमोटा का जन्म और उसके पश्चात्

» श्रीमोटा के शरीर के जन्म के संबंध में उनके बड़े भाभी पू. काशीबा ने बतलाया कि, मैं **मोटा** से छ-सात साल बड़ी हूँ । मेरी शादी छोटी उम्र में हुई थी, तब मेरी सासु अनेक बार कहती कि, चूनिया के जन्मदिन के दिन मेरी देवरानी की तेहरवीं थी । उस दिन बहुतों को खाने के लिए बुलाया था । शाम होने आयी थी और बहुत से भोजन करने आ गये थे, पर एक विद्यार्थी को निमंत्रण दिया था पर वह कैसे भी करके न आ पाया । मेरी सासु उसकी चिंता करे और जी जलाये कि वह विद्यार्थी आ जाय तो कितना अच्छा ! फिर शांति से 'छूटकारा' हो । तब उनकी तबियत अच्छी नहीं लग रही थी और प्रसवपीड़ा की शुरूआत लग रही थी । इतने में वह विद्यार्थी आया और सासु को शांति मिली । उसी क्षण रामजी मंदिर में आरती भी शुरू हुई और

दूसरी तरफ 'मोटा' का जन्म हुआ... और बाद की स्थिति के विषय में काशीबा कहतीं हैं :

"हमारी गरीबी की क्या बात कहूँ ? श्रीमोटा के जन्म के बाद सवा महीने तक मेरी सासु ने रोट और कोदरी खायी थी ऐसा वे कहती । प्रत्येक दिपावली में सभी को एक कुरता और धोती करवाती । श्रीमोटा मोटा चोला, धोती और सफेद टोपी पहनते । श्मशान में सोने जाते, तब हाथ में एक लकड़ी, कंबल और एकाद पुस्तक या नोटबुक कोई बार साथ रखते ।

» शादी के बाद उनकी पत्नी की मृत्यु हो गयी और सभी रोनेधोने लगे तब उन्होंने कहा कि, इसमें रोना क्या ? तथापि कोई चुप न रहा तो उन्होंने कहा कि, ऐसा करोगे तो मैं साधु होकर चला जाऊँगा । ऐसा होने पर भी अपने सास-ससुर से वे मिलने गये थे - आश्वासन देने ! फिर तो उनके साथ कोई संबंध न रहा ।

• • •

३. सेवा और साधना

» श्रीमोटा की बा में सहिष्णुता का अच्छा गुण था । बड़ा बेटा आर्यसमाजी और स्वयं चुस्त वैष्णव होने पर भी उनका सारा कहा वे करते थे । सन १९३२-'३३ में श्रीमोटा अपनी बा के साथ नवसारी के आश्रम में रहते थे । वहाँ श्री हेमंतकुमार नीलकंठ के साथ संबंध हुआ । श्री हेमंतकुमार सूरत उनके पिताजी के पास गये । उनके साथ श्रीमोटा की बा भी गई थी । श्री हेमंतकुमार के पिताजी प्रार्थनासमाजी इसलिए रोज 'ईश्वरप्रार्थनामाला' पढ़ने की । श्री हेमंतकुमार जोर से पढ़कर सुनाते । बा भी यह सुनती । इस पुस्तक में ऐसा आता कि 'मूर्तिपूजा को माने मूढ़जन' । फिर भी बा शांति से सुना करती । एक बार श्री हेमंतकुमार ने उनसे पूछा कि, "इस पुस्तक में तो ऐसा आता है तब भी शांति से क्यों सुनती हो ?' तब उन्होंने ऐसा कहा कि, "होगा, भाई, कुछ नहीं । भगवान का नाम तो लिया जाता है न ?"

ऐसी उनकी उदारता थी । यह उदारता और सहिष्णुता के गुण श्रीमोटा में अच्छी तरह आये हैं ।

» नवजीवन के निवृत्त व्यवस्थापक श्री जीवणजी देसाई के बड़े भाई श्री लालभाई भी श्रीमोटा को 'चूनिया' कहकर बुलाते । श्री लालभाई छापरा गाँव में रहते और नवसारी जाते हुए रास्ते पर ही आये हरिजन आश्रम में विश्राम करके जाते । हमारे 'चूनिया' भाई लालभाई का प्रेम से स्वागत करते, बातें करते, तब श्रीमोटा की उम्र ३४-३५ की तो सही हो । लालभाई उन्हें 'पहचाने' नहीं । उनका अवसान हुआ उससे पहले श्रीमोटा उन्हें देखने गये, तब श्रीमोटा को देखकर ही श्री लालभाई उन्हें भेंट पड़े !

» विद्यार्थी के रूप में छाप विषयक श्री रमणलाल देसाई लिखते हैं कि, वर्ग में वे प्रथम स्थान पर ही रहते... नानालाल के 'इन्दुकुमार' का एक प्रवेश मैंने पढ़ा और विद्यार्थिओं पर पड़ी उसकी छाप देखने के लिए मैंने विद्यार्थिओं के पास उसकी लिखित असर ली । मुझे अभी याद है की उन सारे लेखों में भगत का लेख मुझे प्रसन्न कर सका था ।

» साबरमती आश्रम में एक पड़ोसी का बेटा बीमार था । उसे वा. सा. होस्पिटल में रखा गया, तब भी उसकी सेवा उन्होंने निरपेक्ष भाव से पूरी रात की रात की थी । (देखो पृ. नं. ६५२)

» १९३७ में श्री हेमंतकुमार नीलकंठ गूजरात विद्यापीठ में शिक्षक थे । सामान्य रसोईघर का खाना उन्हें पचता नहीं, रुचता नहीं । इससे एक दिन श्री चूनीभाई अपने घर ले गये — साबरमती हरिजन आश्रम में । तब उनकी बा सूरजबा और काशीबा (**मोटा** की विधवा भाभी) उनके साथ रहती थी । तब घर की आय बहुत कम तब भी श्रीमोटा उन्हें दूध पीने को देते ।

» श्रीमोटा ऐसे तो हरिजन सेवक संघ के साथी मंत्री थे । स्व. परीक्षितभाई के बिलकुल समान कक्षा के, तब भी वे उनके सहायक हो ऐसा दिखलाते । तब उनसे उम्र में बड़े आश्रम के एक भाई ने किसी कारण

से चिढ़कर उन्हें कहा कि, ''आप तो गधे हो ।'' ''हाँ, मैं गधा हूँ, क्योंकि भगवान को भूल गया हूँ ।'' कहकर इस बात का निराकरण किया था । पीछे से उन्होंने उसी बात पर काव्य लिखकर उस भाई को दिया था ।

» एक बार श्रीमोटा को काँख में फोड़ा हुआ था – दोनों काँख में । उसे वे स्वयं ही साफ करते । उसका बहुत दर्द होता, तब भी एक भी दिन वे ओफिस देर से नहीं गये या कचरे की साफसूफी न की हो ऐसा नहीं हुआ ।

• • •

४. सदा का ऋणी हरिजन सेवक संघ

*सुबह से शाम तक काम में तन्मय और गुजरात हरिजन सेवक संघ के साथी मंत्री होने पर भी वर्षों तक उन्होंने कारकुन का काम किया । इन सब बातों की कदर मुझे उस समय थी या नहीं यह याद नहीं, पर अब (सन १९५०) में याद करता हूँ, तब वे दिन बहुत याद आते हैं । सतत प्रतिदिन के काम प्रसंग होने पर भी 'घर्षण' जैसी गंध कभी आयी नहीं और गुजरात हरिजन सेवक संघ के मेरे काम के निर्णय के विषय में उन्होंने कभी बाधा या मतभेद किया हो जाना नहीं है । इन दिनों में रोज लंबे लंबे भजनों के काव्य लिखने यह उनके लिए स्वाभाविक हो गया था । अनेक बार आश्रम की सायंप्रार्थना में हम उन्हें भजन गाने को कहते और वे भजन में तन्मय हो जाते । उनके भजनों में उन दिनों में ईश्वर की महत्ता के बखान और वर्णन तथा मनुष्य-स्वभाव और जीवन की पामरता का वर्णन होता था । उन दिनों में रात को उन्हें नींद न आती थी, ऐसी उनकी शिकायत रहती । रात को जब जागे तब श्री चूनीभाई बिस्तर में कुछ गुनगुनाते होते । कब रात को नींद आती पता नहीं, तब भी सुबह काम पर उपस्थित होते । कोई-कोई बार देर अंधेरी रात में वे श्मशान-वास करते ऐसा पीछे से उनकी ओर से जानने को मिला तब हमें आश्चर्य भी हुआ था ।

---

* श्री परीक्षितलाल मलमुदार के लेख पर से

संयोगवशात् हरिजन सेवक संघ को आर्थिक तंगी होने लगी और हमारा काम तो बढ़ता ही जाता था । यह प्रश्न उन्हें परेशान करता । इससे आश्रम के पड़ोस में एक श्रीमंत मित्र के यहाँ ट्यूशन किया और पूरे दिन काम के अलावा दोपहर या शाम को ट्यूशन करके उसमें से मिलते मासिक ३२/- रुपये संघ में अपने वेतन के बदले में जमा करने लगे । त्याग की यह एक प्रकार की पराकाष्ठा थी । यद्यपि उसकी कीमत आंकने की सूझ मुझे उस समय न थी ऐसा मुझे स्वीकार करना चाहिए । इस समय दौरान उनके मित्र-प्रशंसकों की भीड़ बढ़ने लगी । इन दिनों में उनके जीवन को धन्य करे ऐसे भविष्य के सूचक प्रसंग जो सामान्य भाषा में चमत्कार कहलाते हैं, वे होते गए, पर वे जहाँ भी हो, वहाँ हरिजन सेवक संघ के लिए फंड लेना न चूकते । इतना ही नहीं, पर संघ को स्थायी मदद मिले ऐसे कितने ही नाम मिल गये ।

हरिजन सेवक संघ में से दैनिक कार्यकर्ता के रूप में वे सन् १९३९ में विलग हुए । पर सन् १९४२ की लड़ाई के समय संघ की आर्थिक स्थिति पर उन्होंने ध्यान दिया और मुंबई से अपरिचित होने पर भी वहाँ दौड़े गये और सन् १९४४ में मैं जेल में से बाहर आया, तब संघ की आर्थिक जमा स्थिति दिखती थी और संघ की प्रवृत्ति जारी थी । उसका यश श्री चूनीभाई और श्री हेमंतभाई को है । तब से आज तक श्री चूनीमाई ने संघ में प्रत्यक्ष न होने पर भी प्रत्यक्ष की तरह रहकर संघ को आर्थिक मदद देने में बहुत मेहनत की है ।

यह सारी ताकत पाने के पीछे क्या-क्या साधना, त्याग या तितिक्षा होगी, क्या-क्या प्रेरक बल होगे यह तो कोई विरल ही कह सकेगा, पर **बिलकुल गरीबी में पला, अपरिचित और साधन बिना का मानव, मात्र प्रयत्न से और प्रभु में विश्वास रखकर उससे डरकर चलनेवाला व्यक्ति क्या स्थान प्राप्त कर सकता है, उसे देखने के लिए श्री चूनीभाई का जीवन एक सुंदर उदाहरण है ।**

गुजरात हरिजन सेवक संघ तो उनका हमेशा ऋणी है ही । संघ बाह्य दृष्टि से छोड़ने के बाद भी उन्होंने संघ की अनमोल सेवा की है

और संघ के नित्य काम के अलावा अकाल, रेलसंकट आदि प्रसंग में उन्होंने मित्रों और शुभेच्छकों से मदद दिलवायी है ।

अधिकार का लाभ नहीं, नामना की कोई परवाह नहीं, तब भी सेवा में अव्वल रहने का अलौकिक गुण लाने के लिए वे धन्यवाद के योग्य हैं और ईश्वर ने इस सद्‌गुण का भाजन उनको बनाने के लिए उनको अभिनंदन है ।

• • •

५. श्रीमोटा की साधना में सांईबाबा

सन्‌ १९३८ का समय । स्थान कराची । कालीचौदस की मध्यरात । श्रीमोटा दरिया की एक चट्टान पर बैठे थे । पास में सागर गरज रहा था । जब वे ध्यान में उतरने की तैयारी में थे, तब एक फकीर जैसा पुरुष उनके आगे प्रकट होता है और नीचे के अनुसार धमकाता है :

"इधर क्यों बैठा है ?"

"भगवान के ध्यान में ।" श्रीमोटा ने उत्तर दिया ।

"क्यों ?"

"यह मस्त लोगों की जगह है ।"

"मुझे भी मस्त बनना है ।"

"लेकिन इधर से तुम चले जाओ ।"

"नहीं जा सकता ।"

"तो मारूँगा"

"बहुत अच्छा ।" श्रीमोटा ने इतनी ही निर्भयता और दृढ़ता से उत्तर दिया ।

इससे उस ओलिया ने एक बड़ा पत्थर उठाकर श्रीमोटा पर फेंका । पत्थर उनके सिर को न लगा पर सिर के बाल को स्पर्श करके आबाद ढंग से चला गया । वह स्पर्श होते ही श्रीमोटा के अंतर में अंतर से लग ही गया कि इतना बड़ा पत्थर ऐसी आबाद कला से फेंकनेवाला व्यक्ति कोई सामान्य नहीं होना चाहिए, परन्तु कोई देवांशी आत्मा ही होनी चाहिए । इसलिए उन्होंने नीचे झुककर फकीर के चरण पकड़ लिये

और तुरन्त ही गहरे ध्यान में उतर गये । कुछ देर बाद पैर की पकड़ छूट गई अथवा उन महात्मा ने छुड़वायी और शीघ्र प्रातःकाल अपने स्थान पर लौट गये ।

उस समय कराची में से 'कराची डेइली' नाम का दैनिक प्रकट होता, जिसके तंत्री के रूप में श्री शर्मा थे । उनके यहाँ श्रीमोटा गये थे । उनकी उंगुली पर एक अंगूठी थी, जिस पर एक छबी जड़ी थी । उसे देखकर श्रीमोटा ने पूछा, ''यह छबी किसकी है ?'' ''सांईबाबा की ।'' ''ऐसा ? ! मैंने कल रात उनके दर्शन किये ।'' और रात को हुई सारी बात उन्होंने कही । तब श्री शर्मा ने पूछा, ''यह कैसे हो सकता है ? सांईबाबा का देह सन् १९१८ में गया । आज बीस साल हुए ! यह कैसे हो सकता है ?'' फिर, उन्हें याद आया इसलिए कहा, ''उनकी बड़ी छबी देखनी है ?'' ऐसा कहकर गले में पहनी चेन में से लोकेट में जड़ी सांईबाबा की बड़ी छबी बतायी । उसे देखकर श्रीमोटा ने कहा, ''ठीक इनका ही मुझे प्रत्यक्ष दर्शन हुए !'' इस तरह सांईबाबा ने श्रीमोटा की साधना में प्रवेश किया । ''मेरी साधना में फाइनल टच—अंतिम स्पर्श —सांईबाबा का था ।'' ऐसा उन्होंने अनेक बार कहा है ।

यद्यपि उनके श्रीसद्गुरु तो जबलपुर* के पास सांईखेडा गाँव से दूर जंगल में रहते श्रीकेशवानंदजी—श्रीधूनीवाले दादा के नाम से प्रसिद्ध अवधूत थे । जो दिगंबर अवस्था में धूनी लगाकर बैठे रहते और आक के फूल की माला ग्रहण करते—हनुमानजी की तरह थोक में आक की मालाएँ पहनकर रखते ।

श्रीधूनीवाले दादा ने एक बार श्रीमोटा को उनके साधनाकाल के दौरान बतलाया कि, ''मैं सांईबाबा हूँ, उपासनी महाराज हूँ, मैं ताजुद्दीनबाबा हूँ, अक्कलकोट का स्वामी हूँ ।'' इतना ही नहीं, पर जब श्रीमोटा ऐसा सुनकर समझ न सकने से विचार में पड़ गये, तब गुरुमहाराज ने अपने हृदयप्रदेश के आगे उंगुली रखकर उन्हें कहा, 'यहाँ देख ।' और श्रीमोटा

---

* गाडरवाडा Rly. Stn. (जि. नरसिंहपुर, म. प्र.) से लगभग ३० किलोमीटर सांईखेडा बस, ओटोरीक्षा से जा सकते हैं ।

ने क्या देखा ? वे चारों महात्मा वहाँ विराजमान थे ! इसकी प्रतीति श्रीमोटा को साधना में आगे बढ़ते प्रत्यक्ष रूप से हुई थी । ये सभी महात्माओं की ओर से उन पर कृपादृष्टि हुई थी । अज्ञातदशा में उन्होंने श्रीउपासनी महाराज की नड़ियाद में सेवा की थी और फिर १०-१२ दिन तक उनके आश्रम में (साकुरी में) रहकर कृपाप्रसादी प्राप्त की थी । सांईबाबा उनको कराची में मिले थे । जब वे साबरमती आश्रम में थे, तब उन्हें सपने में आकर सांईबाबा ने कराची जाने का आदेश दिया तब, ''पैसे दो तो जाऊँ ।'' ऐसा उत्तर उन्होंने दिया था । ओर उसके बाद अनजान व्यक्ति की ओर से सांईबाबा की सूचनानुसार साठ रूपए की रकम रजिस्टर्ड पोस्ट से उनको मिली थी ।

परन्तु बाकी के दो महात्माओं के विषय में उन्होंने कहीं लिखा नहीं है या किसी को कुछ भी बतलाया नहीं है, क्योंकि उसके कोई साक्षी न थे । यद्यपि उन दो सत्पुरुष की ओर से प्रसादी मिली थी ऐसा उन्होंने बतलाया है ।

इससे सांईबाबा का श्रीमोटा के समक्ष प्रकट होने का निमित्त भी उनके अपने गुरुमहाराज ही थे । ये सभी संत स्थूल रूप से अलग होने पर भी एक ही चेतन के आविर्भाव थे और श्रीमोटा इन सभी सत्पुरुषों के प्रति अपने ही गुरुमहाराज की भावना दृढ़ करते । इतना ही नहीं, पर उनमें अपने गुरुमहाराज के ही दर्शन करते ।

कराची में सन् १९३८ के दौरान रमजान महीने में श्रीमोटा ने रोजा किये और ईद के दिन ईदगााह के मैदान में नमाज पढ़ने गये । वहाँ से लौटते हुए 'श्रीसद्‌गुरु' (सांईबाबा) की आज्ञा से वे कराची शहर का छः-सात मील विस्तार बिलकुल नग्नावस्था में चल के-दौड़ के गये थे । पर इतना दुबारा समझ ले कि सांईबाबा का आदेश यह अपने सद्‌गुरु का आदेश है ऐसा मानकर उसका प्रेमभक्तिपूर्वक पालन करने में उन्हें जरा भी आनाकानी या विलंब न लगता, इसलिए उन्होंने इस प्रसंग के उल्लेख में 'सांईबाबा' के बदले 'सद्‌गुरु' शब्द उपयोग किया है । ऐसा

दूसरा अनुभव आता है समुद्र में चले जाने की आज्ञा और उसका प्रेमपूर्वक पालन ।

सांईबाबा ने कराची में एक बार श्रीमोटा को कहा कि, ''मेरे स्थान शिरडी पर जा ।'' परन्तु श्रीमोटा को तब वहाँ जाने की आवश्यकता नहीं लगी थी । प्राप्त कर्म और प्राप्त परिस्थिति को छोड़कर वे कहीं भी नहीं जाते । इस दौरान श्रीमोटा जिन्हें 'बापू' की तरह मानते थे, उन्हें अगम्य रूप से स्फुरणा हुई कि शिरडी जाओ और शिरडी में मौन-एकांत लें । श्रीमोटा को स्वानुभव में से मौन-एकांत की साधना हाथ लग गई थी । इसलिए जिज्ञासुओं को उस मार्ग पर ले जाने लगे थे । उनके 'बापू' ने कहा कि, ''मुझे शिरडी में मौन दे ।'' श्रीमोटा कहे कि, ''पराये प्रदेश में जहाँ हमें कोई पहचाने नहीं, वहाँ की भाषा हम जाने नहीं वैसे स्थान पर मौन कैसे लिया जाय ?'' तब बापू कहे कि, 'अरे ! पैसे खर्च करे तो सब संभव होता है ।'' और श्रीमोटा को लेकर वे शिरडी आ गये । श्रीमोटा की समझ में आ गया कि, ''यह तो सांईबाबा की करामात है ! उनकी इच्छा ऐसी कि मुझे उनके स्थान जाना हैं । इसलिए उन्होंने ही यह प्रसंग बनाया !'' और एक महीने तक शिरडी में सांईबाबा के समाधिमंदिर के सामने ऊपर का सारा हिस्सा किराये पर रखकर 'बापू' को मौन करवाया । शिरडी में उन दोनों को सांईबाबा के एक प्रख्यात भक्त अब्दुलबाबा की मुलाकात हुई । बात-बात में अब्दुलबाबा श्रीमोटा को संबोधन करके कहते कि, ''तुम तो हमारे कुटुंब के हो ।'' इस तरह एक भक्त ने दूसरे भक्त को पहचान लिया ।

• • •

• श्रीमोटा : मुक्तात्मा •

१. कैसे महात्मा

श्री नंदुभाई लिखित 'आश्रम की अटारी से' पुस्तक में एक प्रसंग आता है । सन् १९६१ में सूरत आश्रम के निकट के शिवालय का

जीर्णोद्धार के लिए एक महारुद्र यज्ञ का आयोजन हुआ था । उसमें श्रीमोटा को मुख्यपद पर बिठाकर मुख्य ऋत्विज ने विधि अनुसार पूजा की और यज्ञ में बैठनेवाले दंपती ने उन्हें पुष्पमाला पहनाकर तिलक किया । मानो यज्ञ के अधिष्ठाता देव श्रीमोटा हो वैसे उनका सम्मान किया । इससे यज्ञ में आनेवाले लोग उनके दर्शन करने जाने लगे । इतने में श्रीमोटा वहाँ से बिदा हो गये । इससे भक्त पूछने लगे कि, 'श्रीमोटा कहाँ है ?' सेवक प्याऊ की ओर उंगली दिखाकर कहते, 'देखो, वे पानी दे रहे हैं वह ।' सिर पर कपड़ा बाँधे और नीचे लुंगी पहने श्रीमोटा सभी को पानी पिलाते जाय और बोलते जाय, ''मुझे छुना नहीं... यहाँ पाई पैसे रखते जाओ... मेरा वेतन कैसे निकलेगा !'' लोग मन में सोचते जाये कि कैसे महात्मा ! क्षण में यज्ञ में पूजा स्वीकार करते थे और क्षण में पानी पीलाने बैठे ! ? श्रीमोटा को कोई बड़ापन या छोटापन या संकोच नहीं ।

इसी शिवालय के पास तापी नदी के घाट का जीर्णोद्धार श्रीमोटा ने दस हजार रुपये में करवाया था, जिसमें पाँच-छ: हजार तो उन्होंने अपने दिये थे—यानी की आश्रम के । जब इस जीर्णोद्धार के शीलान्यास की क्रिया श्रीमोटा के हाथों करवाने की इच्छा उनके संचालकों ने व्यक्त की, तब उन्हें बाहरगाँव जाना था, इसलिए स्वयं तो वे कर नहीं सके थे और अन्य को उनकी सलाह अनुसार उस विधि के लिए बुलाना पड़ा था ।

• • •

२. डॉक्टर का अद्‌भुत बचाव

दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान सेना में एक गुजराती आँख का डॉक्टर नौकरी करता था । अमेरिका, युरोप ओर अंत में जापान गया था और जापानी सेना के हाथ पकड़ा गया । उनके हाथों से किसी तरह छुटकर भारी यातनाएँ सहन करके भारत में भाग आया । सूरत के उनके ऐसे ही एक डॉक्टर मित्र जो आश्रम और श्रीमोटा को जानते उनके द्वारा

डॉक्टर सात दिन के लिए मौन मैं बैठे । बाहर निकलने के दो-तीन दिन पहले ही उनकी अस्वस्थता की निशानियाँ मिली थी । बाहर निकलने के बाद आश्रम के नियमानुसार, बारीस की मौसम के कारण सभी छप्पर के नीचे प्रार्थना के लिए इकट्ठे हुए, तब श्रीमोटा वहीं थे । पर वे डॉक्टर बाहर चौक में आँख बंदकर बैठे रहे । बहुतों को ऐसा लगा कि ध्यान या भावावेश में हैं, इसलिए उन्हें जगाया नहीं । प्रार्थना पूरी होने के बाद बाहर आकर देखा तो डॉक्टर अदृश्य ! बहुत जगह देखा पर निराशा हाथ लगी । तब तापी दोनों छोर तक थी । बगीचा का गेट खुला था । वहाँ से गये व्यक्ति के ताजे पैरों के निशान दिखे और वे नदी में पूरे होते थे, इसलिए नदी में ही वह पड़ा होगा ऐसा अनुमान हुआ ।

उनके सूरत के डॉक्टर मित्र ने श्रीमोटा को बतलाया कि इससे पहले दो-तीन बार पागलपन के दौरे आये थे । उस समय वे तोड़फोड़, मारामारी करते । डॉक्टर को तैरना आता है कि नहीं इसका किसी को पता नहीं । लोग चारों ओर देखने निकल पडे । श्रीमोटा तब नदी के किनारे बैठे ।

थोड़ी देर बाद वे मिले । आश्रम से डेढ़ मील दूर रांदेर गाँव है । वहाँ खलासी और गाँव के लड़के नदी में नहाने गये थे और मछलियाँ पकड़ते थे । उन्होंने वहाँ किसी बहते आते व्यक्ति को देखा । उन लोगों ने उसे पकड़ा और धकेलकर रस्सा डाल के किनारे खिंच लाये थे । मंदिर में खंभे के साथ उन्हें बांध दिया, क्योंकि नग्न होकर तूफान कर रहे थे । इसी दौरान आश्रम से वे डॉक्टर मित्र और दूसरे उस जगह पर पहुँचे । जैसे-तैसे उन्हें गाड़ी में बिठाकर आश्रम लाये और सूरत के डॉक्टर मित्र के घर सभी गए । उन्होंने घर में भी बहुत तूफान किया । धोती फेंक दी । काँच की बरनी फोड़ दी । रेडियो उठाकर दूर फेंक दिया, पर सद्‌भाग्य से रेडियो का कोई नुकसान नहीं हुआ । कठिनाई से काबू में रखकर उन्हें भोजन करवाया और डेढ़ बजे की फास्ट में अहमदाबाद उनके घर ले जाने का निश्चित किया ।

वे अपने दो मित्रों के साथ सूरत स्टेशन आकर पहुँचे । श्रीमोटा भी इसी गाड़ी में नडियाद जानेवाले थे, इसलिए वे और उनके मित्र

श्रीमोटा के साथ प्रथम वर्ग के डिब्बे में बैठे। श्रीमोटा के साथ बिठाये इस आशा से कि वह शांत रहे। अभी तक उन्होंने श्रीमोटा को देखा न था। इस बार पहली बार देखने पर ही वे श्रीमोटा के गले लग गये और श्रीमोटा ने भी उन्हें प्यार किया। वे शांत रहे। कभी हँसे, कभी गंभीर हो जाय, पर कोई तूफान नहीं किया। अहमदाबाद पहुँचने पर भी शांत रहे।

वह प्रसंग होने के बाद दो दिन पश्चात् वे डॉक्टर और उनकी पत्नी नडियाद आश्रम में श्रीमोटा के पैरों पड़ने आये। उन दोनों ने श्रीमोटा को पुष्पमाला पहनाने के बाद पास खड़े श्री नंदुभाई ने कहा कि, ''प्रभु का उपकार मानो कि तुम्हें तैरना आता था। इससे बच गये।'' तब डॉक्टर तुरन्त ही बोल उठे, ''नहीं, मुझे तैरना बिलकुल नहीं आता। मैं नदी में नहाने गया था। उसमें आगे बढ़ते-बढ़ते पानी की लहर आते मैं उसमें बहने लगा। अंतिम बार जमीन पर पैर टिके इतना याद है। फिर क्या हुआ उसका पता नहीं। मैं पानी में डूब क्यों न गया यही बड़ा आश्चर्य है। बाहर से मुझे कोई होश न था।

आश्रम में से जाने से पहले उन्होंने और उनकी पत्नी ने प्रत्येक ने श्रीमोटा के चरणों में पड़कर एक सौ आठ रुपए की भेंट रखी। श्रीमोटा को उन्होंने लिखे एक पत्र में ऐसा बतलाया था --

''श्रीतापी माता के पानी इस शरीर पर आ पड़े और सिर पर पानी आ गया तब 'तुम्हारी इच्छा प्रभु सदा मेरी' यह स्वामी रामतीर्थ की प्रार्थना मुझ से बोली गई और जीव सही-सलामत बाहर किसी अलौकिक ढंग से आ सका उस प्रसंग में हरिः आश्रम और उसके प्रणेता का गौरव बढ़ाने की ***उन*** *की इच्छा थी यह सिद्ध होता है।''*

• • •

३. १५ अगस्त का त्यौहार*

ता. १५-८-१९६७ के दिन कुंभकोणम् में वे सुबह ८-३० बजे श्री नंदुभाई के भाई श्री हसमुखभाई की राह देखते आश्रम में बैठे

* आश्रम की अटारी पुस्तक से

थे । वे उनके साथ कार में एक जगह जानेवाले थे । ८-३० बजे कार दिखी नहीं, इसलिए वे निकले । गांधी टोपी, लंगोट और चप्पल पहनकर—बस इतना ही ! शायद सामने रास्ते में श्री हसमुखभाई मिल जायेंगे इस आशा में वे चलने लगे । ऐसे चलते चलते वे पीढ़ी के मकान तक पहुँच गये । तब पता चला कि श्री हसमुखभाई दूसरे बहुत से विशेष काम में रुक गये, इसलिए निकल नहीं सके । उनका ऐसा वेश देखकर किसी को खास आश्चर्य तो न हुआ । क्योंकि उनके व्यवहार से परिचित थे ।

• • •

४. सूक्ष्म विवेक के ज्ञाता*

सन् १९६१ में श्रीमोटा के छोटे भाई की पुत्री के विवाह थे । इसलिए आपश्री तथा उनकी मंडली प्रातःकाल गणेशस्थापना के समय गये । कन्या के मामा श्रीमोटा के प्रशंसक और स्थिति से सामान्य । श्रीमोटा को गद्दीतकीये पर बिठाने की व्यवस्था हुई थी । वे वहाँ बैठे । कन्या के मामा दूरी पर बैठे देखने में आये । इसलिए उन्होंने खड़े होकर मामा को अपनी जगह, गद्दीतकीये पर अति आग्रह करके बिठाये । इसप्रकार, कन्या के मामा आश्रम में आते तब श्रीमोटा के पैरों पड़ते और सामने नीचे बैठते, पर आज का प्रसंग अलग था । श्रीमोटा वहाँ गुरु या महात्मा रूप में गये न थे पर कन्या के काका के रूप में गये थे और मामा का स्थान विशिष्ट । इसलिए उन्होंने ऊँचे आसन पर ही बैठना चाहिए । श्रीमोटा की यह विवेक भावना । इस दौरान दूसरे परिवारवाले आये उन्हें भी गद्दी पर निकट बिठाया और वे खिसकते खिसकते गद्दी के किनारे पर बहुत सफाई से आ गये ।

यह घटना बहुत सामान्य लगती है, पर **श्रीमोटा ऐसा सीखाते हैं कि योग्य समय में योग्य स्थान पर योग्य व्यक्ति को मान मिलना चाहिए ।** उनके ऐसे सूक्ष्म विवेक के अनेक प्रसंग देखने को मिलते हैं ।

सूरत आश्रम में सरकारी नौकरी करता नीचले स्तर का एक युवक श्रीमोटा के पास लगभग रोज आता और खूब सेवा करता । जब उसके

* आश्रम की अटारी पुस्तक से

पिता श्रीमोटा के दर्शन के लिए आते, तब खुद श्रीमोटा उन्हें बापजी कहकर बुलाते और, 'क्यों बापज़ी ठीक हो न ?'' ऐसा पूछते । इस तरह सभी स्वजनों के संबंध में । घर लौटते स्वजन को आपश्री अचूक कहते, ''बा को मेरा प्रणाम कहना ।' ''भाई को मेरी तरफ से प्यार करना ।' जब स्वजन उनको स्टेशन पर लेने गये हों, तब आपश्री उसके घर के सभी सगे-संबंधिओं की बहुत भाव से खबर पूछते, ''क्यों, दादाजी की तबियत ठीक है न ?'' ''भाई का अमेरिका से पत्र आता है ?'' आदि । श्रीमोटा का यह पहलू विवेक से भी अधिक उनके हृदय के प्रेभभाव को बतलाता है । श्रीमोटा के दो-तीन शब्द हो, तब भी कैसे अमृतमय, हृदय की गहराई में से आते हो उसका पता चल जाता है । उनके स्वजनों का एक अति विशाल वृत्त बना है । इसका कारण उनका प्रेम है । श्रीमोटा के जीवन के इस पक्ष को कवि श्री कनैयालाल दवे ने ''**मोटा** तेरा डायरा !'' इस गीत में हूबहू स्पष्ट किया है, यह हमें याद आता है ।

एक देखा अवधूत - संत, मीठा -
मोटा, - तुम्हारी छाया रे लोल ।
मानो बरगद घना हो अनदेखा,
मोटा, तुम्हारा दायरा रे लोल !

● ● ●

उनकी चेतना ने हमें जगाया,
खोले उर - द्वार रे लोल ।
मानो माँ ने बालक को खेलाया,
करवाये गोद में पालना रे लोल ।

सन् १९६० में डाकोर से एक 'किसान स्पेशियल' श्रीमोटा के करकमल से चलाने का निश्चित किया था । तब उन्होंने अचानक स्पेशियल के इंजन ड्राईवर का पुष्पमाला पहचानकर उसका बहुमान किया था । जब खुद श्रीमोटा ने स्वयं ड्राईवर का सम्मान किया, तब पूरा रेलवे स्टाफ आश्चर्यचकित हो गया था ।

और ऐसा हि सूक्ष्म विवेक सन् १९७० में मुंबई में देखा। महाराष्ट्र सरकार को अखिल हिन्द स्तर पर खुले समुद्र की तैराक स्पर्धा हर वर्ष आयोजित करने के लिए श्रीमोटा ने रुपए एक लाख देने का निश्चय किया। इसके लिए मुंबई के उनके स्वजन श्री चंद्रकांत र. मेहता और दूसरों ने विज्ञापनों का सूवेनीअर निकालकर एक नृत्यनाटिका रखी। तब 'बिरला मातृश्री सभागृह' में उस विषयक समारंभ के समय, श्रीमोटा की सूचना से आश्रम के द्वारा श्री रावजीभाई पटेल ने श्री चन्द्रकान्तभाई की वयोवृद्ध मातुश्री को फूलहार अर्पण किया था। मातुश्री ने उसे स्वीकार करने में बहुत आनाकानी की तब श्रीमोटा ने कहा था कि, ''माँ के बिना हम ऐसा कहाँ से कर सकते थे ?''

ऐसा विवेक व्यवहार आचरण करते हम श्रीमोटा को देखते हैं, तब दूसरी क्षण विस्मय होता है कि, ''ये तो कैसे मुक्तात्मा ?'' 'भक्तों के साथ व्यावहारिक बातें करते हो और बात-बात में अपनी मातृश्री और गुरुमहाराज को याद करते रो पड़ते हो, तो कोई अगम्य कारण से गुस्सा करते हो ! ऐसी विरोधी विशेषताएँ, लाक्षणिकताएँ देखकर ऐसा लगे कि यह सामान्य साधु नहीं है। सात-आठ तीव्र शारीरिक रोगों की चपेट में होने पर भी पीड़ा को 'आनंद की लहरी' में बदलकर सदा हँसते, प्रसन्न रहते और थके बिना सतत काम करते हुए देखते हैं !

उनको व्यक्तिपूजा नहीं चाहिए। आपश्री जैसे भक्त हैं, वैसे वेदांती, ज्ञानी हैं। **जब सभी 'गुरु' की बात करते होते हैं, फोटो और कान फूँकने की बात करते हैं, तब वे कहते होते हैं कि, ''गुरु, गुरु क्या करते हो ? गुरु यह देह नहीं, गुरु तो भावना है और 'मोटा' कहकर तुम जिसे पूजते हो, वह हड्डी, चमड़ी का मनुष्य नहीं, पर उसमें जागी चेतना है। उस चेतना के साथ प्रेम बांधो।''**

● ● ●

अनेक बार कितनों को ऐसा लगता है, '**मोटा** बार-बार एक का एक कहते होते हैं - ''**गुण और भावना बिना समाज बैठा नहीं**

होगा । समाज को बैठा करना यह सच्चा धर्म है । मात्र कथा, सप्ताह और सेमिनार से कुछ नहीं होगा — सभी सवालों का एक ही उत्तर — 'मास्टर की' Master Key की तरह है । 'कोई भी साधन करो, संयम, व्रत, जप, तप करो पर जहाँ तक हमारे राग-द्वेष फीके होते न अनुभव हो, वहाँ तक सब कुछ बाकी है ।' उस नाम की गज़ल में वे सीधा टंकार इस अनुसार करते हैं :

सभी एकादशी पाली, सभी व्रत आचरण किये,
सभी आचार विचार पूरी सँभाल से पाले,
जाकर देवालय में दर्शन किये समय समय पर
तब भी लगन न लगी अगर, गिनो सर्वस्व बाकी है ।

('प्रणाम-प्रलाप' आ. २, पृ. १४२)

● ● ●

कथाएँ सुनायी हैं, प्रवचन कितने ही दिये हैं,
सभी शास्त्र सुलझा के जगत को बोध दिया है,
परन्तु यदि जगत के सभी वृत्त में से न छूटा है,
धुरंधर भले गिनाते हो, - तब भी सब उसका बाकी है ।

('प्रणाम-प्रलाप' आ. २, पृ. १४२)

● ● ●

५. अनोखा आहुतियज्ञ*

श्रीमोटा ने बहुत से मौलिक कार्य करके बतलाये हैं । सन् १९६२ में नरोड़ा गाँव में उन्होंने एक आहुतियज्ञ किया, जिसमें सतत तीन दिन और रात चौबीस घण्टे आहुति (थोड़े जव और तिल की) श्लोक के अंत में देने की ! उसमें प्रत्येक स्त्री और बालक भाग ले सकते, कोई भी जातिपाति और धर्म के । **आहुति देनी है स्वयं की निम्न वृत्तिओं की । जीवनविकास के मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए प्रभु को प्रार्थना करने की** । ऐसा अपूर्व वह यज्ञ था । उसमें घी, जव, पंडित किसी का

* 'आश्रम की अटारी से' पुस्तक में से ।

भी खर्च नहीं । केवल बैठने के लिए मंडप और प्रकाश के लिए दीपक ।

जो श्लोक बोलने का वह संस्कृत में नहीं । सभी समझ सके इसलिए श्रीमोटा ने खास गुजराती में श्लोक नीचे अनुसार रचा था :

''पाने विघ्न से मुक्ति, शांति कल्याण चाहने,
आहुति दें प्रार्थना कर, उन्मुख दिल प्रेरित करने ।''

यहाँ विघ्न शब्द का अर्थ जो निकालना चाहते हो, उसे निकाल सकते हो — संसार के विघ्न, साधना के विघ्न, कोई भी विघ्न । जिस चाहना में दूसरी सभी तृष्णाओं का विलय हो गया हो ऐसी ही एकमात्र चाहना जीवित रहे तो ही शांति और कल्याण पा सकते हैं और ऐसी आहुति विषयक 'दिल उन्मुख बने' यही उसका परम लाभ ।

इसी समय नरोड़ा में पौने मील दूर के स्थान पर लक्षचंडी यज्ञ हो रहा था । जिसमें १२५० जितने ब्राह्मण आहुति देने के लिए इकट्ठे किये गये थे । १०१ से अधिक यज्ञ की वेदियाँ और असंख्य स्वयंसेवक और दूसरा लाखों रुपयों का धुआँ हो रहा था । रूढ़िगत यज्ञ विषयक प्रजा की अंधी श्रद्धा, इससे उनको क्या मिलता है यह तो वे जाने ।

श्रीमोटा के यज्ञ में तो सभी कोई भाग ले सकते । समाज के आगे श्रीमोटा ने सांकेतिक प्रतीकरूप से यह यज्ञ प्रस्तुत किया है । इसमें मौलिकता है, विशेषता है और जनसमाज को ऊर्ध्वमार्ग के प्रति ले जाने का संकेत है ।

इस यज्ञ के दौरान जरा मजाक भी हुई । उस यज्ञ के कितने ब्राह्मणों को श्रीमोटा के यज्ञ का पता चला और बहनें भी उसमें हिस्सा ले रही है ऐसी जानकारी हुई । इसलिए वे श्रीमोटा को कहने लेगे, ''आप अधर्म कर रहे हो, महाराज ।'' श्रीमोटा ने उत्तर दिया, ''इसका पाप और सजा मैं भोग लूँगा ।'' ब्राह्मण खिन्न हृदय से बिदा हुए ।

यह क्या बतलाता है ? जीवनमुक्तों के पास अनुकरण नहीं होता पर मौलिकता होती है । आज मी श्रीमोटा को जहाँ-जहाँ उचित समय में यज्ञ करना होता है, तब उपरोक्त तरह से ही वे यज्ञ का आयोजन करते

हैं, जिसमें सभी लोग सामूहिक रूप से भाग लेकर सच्ची आहुति दे सकते हैं और उसका आनंद उठाते हैं । ऐसी विधियाँ —— बारहवीं तेरहवीं की भी —— आपश्री स्वयं करने की सलाह सभी को देते हैं, क्योंकि स्वयं करने में भाव रहता है । दूसरे करते हैं वे तो किराये के होते हैं । इस तरह होती विधि किसे पहुँचे ? उनकी मातुश्री के देहावसान के बाद पिंडदान और ऐसी अंतिम क्रिया उन्होंने स्वयं की थी ।

• • •

६. जीवनमुक्ति

श्रीमोटा ने मुक्तात्माओं के विषय में अनेक बार उनके उत्सव के दौरान, उनके पत्रों और वार्तालाप में समझ दी है। जिसके विषय में संक्षेप में उसका सार आपश्री के शब्दों में बतलाते हैं——

'मुक्त' यह प्रभु का प्रतिनिध है ऐसा माना जाता है । प्रभु को पहचानना जितना कठिन उतना मुक्त को पहचानना कठिन है ।

सभी महात्मा व्यक्तव्य में एकसमान नहीं हो सकते । प्रत्येक की प्रकृति स्थान, काल पर आधार रखती है। पर इससे एक में शक्ति कम और दूसरे में अधिक ऐसा नहीं गिना जाता —— समय और स्थान की माँग अनुसार, आवश्यकता अनुसार उसका व्यवहार या व्यक्त होना होता है ।

जीवदशावाले और मुक्त के बीच अंतर क्या हो सकता है ? **जीवदशावाला अर्थात् संसारी जीव अपनी प्रकृति का दास होता है, तब मुक्त प्रकृति का उसका स्वामी होता है । प्रकृति द्वारा वह व्यक्त होता है । जैसे नदी को बहने के लिए पाट चाहिए उस अनुसार, किन्तु वह उससे (प्रकृति से) पर रहता होता है । यह बुनियादी अंतर ।**

तथापि वह शुद्ध चेतन की तुलना में नहीं आ सकता । चेतन को प्रारब्ध नहीं होता, तब मुक्त का थोड़ाबहुत भी होता है, पर जली डोर के बट जैसा —— दिखने में बट दिखाता है पर हाथ में लेते ही खत्म —— इस तरह मुक्त के बारे में है। चेतन के गुणधर्म मुक्त में अवतरित

होते हैं । पर चेतन जितना अनंत शक्तिशाली, अंतर्यामी सचराचर में भरा उतना मुक्त नहीं हो सकता ! सागर और गागर में सागर का पानी — — इन दो की समझ पर से चेतन और चेतन-निष्ठ अथवा मुक्त के बीच का अंतर समझ सकते हैं । सागर के पानी और गागर में सागर के पानी का गुणधर्म एकसमान होने पर भी विस्तार, गहराई वगैरह की दृष्टि से दोनों के बीच गहरा अंतर है ।

यदि ईश्वर को तुम हिलाओ तो हिलेगा और चलेगा । वैसे ही मुक्तों को भी तुम निमित्त दोगे तो वे हिलेंगे और चलेंगे । नहीं तो जैसा चलता होता है वैसे वह चलने देते हैं । इस विषय में अधिक समझ देते हुए श्रीमोटा ने एक उदाहरण दिया —

''सूरत के आश्रम में एक भाई और बहन सत्संग करने आते । दोनों सुशिक्षित और आगे बढ़े हुए, उच्च परिवार के । एक इलेक्ट्रिक इंजीनियर और बहन बी. एड. हुई । वे लोग मेरी सलाह लेने आये कि ''हम शादी करें ?'' श्रीमोटा ने कहा, 'करो तुम्हें करना हो तो ।'' उन्हें मातापिता की भी मंजूरी मिली । आश्रम में शादी हुई, पर दो-तीन साल बाद दोनों के बीच ऐसा कट्टर बैर हुआ कि अलग रहने लगे । तो किसी ने पूछा कि, ''**मोटा,** आपने शादी करवा दी थी तो भी उनके बीच क्यों न बना और उनका संसार बिगड़ा ।'' ''तो भाई मैं क्या करूँ ? ऐसा हो तो मेरे मुख पर कालिख पोतो ।'' ''जब कोई टकराता हो, भिड़ता हो, तब भी उन्हें रास्ता न बतलाओ ?'' ''क्यों बतलाएँ ? हाँ, यह कब होगा ? जब ऐसे मुक्त के साथ वे हिलमिलकर एकरस हो गये हो और उसे लोग निमित्त देते हो, तब वह कुछ करना हो तो करे । बाकी नहीं !''

ऐसी मुक्तात्मा का कोई आग्रह नहीं होता । सभी के साथ एकरूप हो सकते हैं —— पापी और पुण्यशाली के साथ भी । उसे किसी में भी राग या आसक्ति नहीं होती । वह सत् और असत् दोनों में व्यवहार करता है ।

ऐसी अनुभवी आत्माएँ चार प्रकार की होती है - जड़वत्, पिशाचवत्, बालवत् और हंसवत् । (१) काष्ठ की तरह पडा़ रहे, वह जड़वत् (२) कुछ भी माँगे नहीं या करे नहीं वह पिशाचवत् भी हो, पर बहुत अल्प देखने को मिले । वैसी आत्मा नग्न घूमे, बिभत्स बोले, मारे भी सही, कानून-विधि तोड़े भी सही, तब भी वह मुक्त ! (३) बालवत् बालक की तरह व्यवहार करे, यह माँगे, वह माँगे, हँसे, रोये । श्रीमोटा कहते, ''मुझे बहुत बार कुछ कुछ भाव आ जाते हैं । पर मेरे गुरुमहाराज ने चेतावनी दी कि, देखना कोई पागलपन करना नहीं ! दुनिया खराब है । समझेगी नहीं और तुम मुश्किल में पड़ जाओगे ! इससे मैं भावों को दबा देता हूँ । फिर मेरा धर्म रहा गृहस्थ का । समाज के बीच रहना । इसलिए क्या हो ? तुम मुझे कोई रखोगे नहीं यदि बालकपना करूँ तो ! पर ऐसा बालक जैसा मुक्तात्मा होता है, अनुभवी होता है ।

और हंसवत् नीरक्षीरन्याय जो कर सकता हो अर्थात् ज्ञानी । यह भी अनुभवी हो जैसे कि शंकराचार्य । इस तरह चार प्रकार के मुक्तात्मा के विषय में श्रीमोटा अनेक बार समझाते हैं ।

चेतना में निष्ठा पाये ऐसी आत्माओं को हम संसारी कैसे पहचान सकते हैं ? इसलिए **हमेशा सीख दी जाती है कि, ''गुरु करे वैसा न करो, पर कहे वैसा करो और उसे पहचानने की खटपट में न पड़ो ।''**

श्रीमोटा फिर कहते होते हैं कि, '' ऐसी आत्मा भी पहचान सकते हैं, क्यों न पहचाने ? यदि दीर्घकाल पर्यंत, प्रेमभक्तिपूर्वक, सद्भावभरा उसका परिचय विकसित किया हो तो वह समझ सकते हैं ।''

• • •

७. राम झरोखे में बैठकर*

राम झरोखे बैठकर सब का मुजरा लेत,
जिसकी जितनी चाकरी, इतना तनखा देत ।

यहाँ तुलसीदास श्रीराम को न्याय तौलनेवाले के स्थान पर बिठाते हैं । जिसकी जितनी चाकरी उतना ही वेतन देने की बात करते हैं —

* 'आश्रम की अटारी से' पुस्तक से ।

कमज्यादा नहीं । ''जैसी जिसकी करनी वैसी उसकी भरनी'' ''बोओ वैसा पाओ'' आदि कहावतों के अनुसार उल्लेख करते हैं । जैसा दोगे वैसा पाओगे और मुक्त के साथ के संपर्क में हम इस अनुसार अनुभव करते हैं ।

लोग कहते हैं कि मुक्त सभी को एकसमान ढंग से क्यों नहीं चाहते ? किसी को प्यार से बुलाते हैं, तो किसी का सत्कार करते हैं तो फिर किसी की अवगणना भी करते हैं । ऐसे भेदभाव क्यों ? ऐसी प्रश्नावली लगभग कितनों के मन में उठती होती है और उलझन में पड़ जाते । मुक्त को एक सामान्य व्यक्ति गिनने उसका मन प्रेरित करता है ।

मुक्त के हृदय में सभी के लिए एकसमान और एक जैसा करुणा का भाव बहता होता है । किसी के प्रति उसे नकारात्मक वृत्ति नहीं उठेगी, परन्तु व्यक्तव्य में तो अवश्य सामान्य दृष्टि से अंतर लगेगा । "Human in front, divine in back." बाह्यरूप से सामान्य व्यक्ति अवश्य लगेगा, परन्तु उसके पीछे की भूमिका पर स्थिर रहकर हमेशा अलिप्त रहे । *''जिसकी जितनी चाकरी इतना तनखा देत ।''* अनुसार वे व्यवहार करते हैं । जैसा हमारा भाव उस अनुसार का उसका प्रत्याघाती व्यक्तव्य अनुभव करेंगे । ऐसे तो वह है आघात-प्रत्याघात से बिलकुल पर फिर भी साथ-साथ आघात-प्रत्याघात नियम का आचरण करनेवाला फिर भी वह एकसाथ सब कुछ है यह उसकी विशेषता ।

• • •

८. सिर पर पेटी रखकर

श्रीमोटा में नम्रता अत्यधिक थी और उन्हें जरा भी बड़प्पन का ख्याल न था । उसका एक प्रसंग उनके मित्र श्री हेमंतभाई नीलकंठ ने नोट किया है, उसे उनके ही शब्दों में यहाँ लिखा है—

‘‘किसी काम के लिए मुझे बाहरगाँव जाना था और पूज्य श्रीमोटा मुझे छोडने मेरे साथ साबरमती के छोटे स्टेशन पर आये थे । उस छोटे स्टेशन पर पहुँचने से पहले हमें कितनी ही रेलवे लाइन पार करनी होती हैं । एक स्थान पर बड़ी (Broad Guage) गाड़ी के गुड्ज का सामान चढाने-उतारने प्लेटफोर्म जैसा किया है, उस पर चढ़कर और उतरकर जाना पडता है । पूज्य श्रीमोटा ने सिर पर तौलिये का इंडुवा बनाकर मेरी ट्रंक रखी थी । मेरे पास तो सामान था ही नहीं या न के समान । वह प्लेफोर्म पर चढ़-उतरकर आगे गये तब भी मुझे भान न रहा । पूज्य श्रीमोटा मेरी पेटी सिर पर रखकर पीछे आ रहे हैं । उनको वह प्लेटफोर्म चढ़ते-उतरते कठिनाई पड़ेगी इसलिए मैं तो आगे ही आगे जरा शीघ्रता से चलूँ और मेरी भूल का भान होता है, वहाँ फिर मुड़कर देखता हूँ तो पूज्य श्रीमोटा ‘‘नाभि से श्वास निकालकर’’ —– यानी कि जोर करके सिर पर पेटी के साथ ही प्लेटफोर्म की धार पर एक पैर और नीचे जमीन पर एक पैर रखके - धारवाले पर भार देकर पेटी के साथ ही चढ़ जाते हैं । और उस प्लेटफोर्म पर उतरने में उनकी मदद करूँ उससे पहले तो उतर भी जाते हैं । ऐसा श्रीमोटा करते हैं पर मुझे आवाज नहीं देते कि हेमन्तभाई जरा मदद करो और पेटी तो फिर मेरी ही है ! फिर मुझे पछतावा ऐसा हुआ कि उस जगह से निकलना होता वह प्रसंग अनेक बार याद आता रहा ।’’

• • •

९. परमहंस का लक्षण

सन् १९४७ में श्रीमोटा को ट्रिची से अहमदाबाद जाने का हुआ था । तब उनका वेश अवधूत से मिलता कैसा था उसका वर्णन श्री नंदुभाई ने किया है । वही यहाँ रख रहे हैं —

उधडे शरीर पर मात्र लुंगी की तरह मद्रासी ढंग की खादी की धोती लपेटकर ट्रिची से मद्रास सेकंड क्लास में और मद्रास चेन्नाई से प्लेन

में मुंबई और मुंबई से अहमदाबाद सेकंड क्लास में आये थे – सन् १९४७ में और फिर डॉक्टर ने शरीर की खुजली के लिए सफेद पाउडर सिर और शरीर पर लगाने को कहा था उसे लगाया था, इसलिए मानो भभूत लगाये बाबा जैसे दिखते । दाढ़ी–मूछ भी बढ़ी थी ।

उस समय एरोप्लेन में आये । ठीक बाबा ही लगे । जोर से चंदुभाई को आवाज लगाई और छलांग मारकर सभी के सामने भेंटे । 'एर' में मुसाफिरी करनेवाला 'एलाईट' – सुप्रतिष्ठित संमान्य स्त्रीपुरुष वर्ग होता । उनके बीच ऐसा एक बाबा बैठे और उतरते समय भी ऐसा 'सीन' करे । इसलिए उन्हें लेने आनेवाले भी कोई पहचानवाले हो इससे वह भी शरमाय ।

इस समय तो उन्होंने कहा था कि, **'स्वराज्य मिलने के बाद तो विमान में टिकट मिली यानी कि कैसे भी पोषाकवाले को मान देने की आदत प्रवासी और विमान के नौकरों को डालनी चाहिए । सचमुच कोई भी बाबा कल तो विमान में बैठेगा ही ।**

सन् १९४२–'४३–'४४ में आश्रम में भी, दूसरी जगह भी रेशमी कपड़े पहनते । उसका क्या कारण ? किसी को कहते, ''खुजली बहुत हुई है, वह सहन नहीं होती ।'' किसी को कहते, ''शौक हुआ है ।'' शायद आश्रमवासिओं की इसकी घिन निकल जाय उस उद्देश्य से कोई निमित्त कारण मिलते किया हो । कारण जो कारण दे वे फिर हकीकत से सच होते हैं । पहले में 'चमड़ी का दर्द' और डॉक्टर ने पाउडर दिया वह क्या प्लेन में मुसाफिरी करने की आये इससे समाज के डर से न लगाये ? ऐसी दलील कर सकते हैं उचित ढंग से ।

• • •

• बीने हुए मोती •

१. स्पर्श

सत्पुरुष के स्पर्श से कैसी भी **जीव**दशावाला व्यक्ति किस तरह पार लग जाता है, उसकी एक हकीकत श्रीमोटा ने कही थी –

मैं जब पहलेपहल मेरे गुरुमहाराज के पास गया, तब मुझे उनके बाह्य व्यवहार, वेश, भाषा आदि से ऊब होती । वहाँ से घर लौटने के लिए बिस्तर बांध दिया, क्योंकि वेश्री सांईखेड़ा गाँव में लगभग दिगम्बर अवस्था में रहते थे । चौबीस घंटे धूनी धधकती रखते । मैं नया नया शिष्य बना था और इस क्षेत्र में बहुत कच्चा । इससे ऐसे महात्माओं की पहचान के बारे में तथा उनके प्रति हमारा कैसा व्यवहार होना चाहिए, उसका मुझे ख्याल न था । इसलिए उनको छोड़कर चले जाने का मैंने निर्णय किया, परन्तु जाने से पहले 'चलो, पैरों में पड़ते जाऊँ' ऐसा विचार आते ही उनके पास गया ।

मुझे देखकर वे बोलने लगे कि, 'जिस व्यक्ति का कोई अनुभवी चेतनिष्ठ महात्मा के साथ हृदय का संबंध हो गया हो तो उसका उद्धार हो जाता है ।' ऐसा सुनकर मुझे विचार आया कि, गुरुमहाराज अपना महत्त्व बतलाने के लिए ऐसा बोल रहे हैं ! और तुरन्त ही वे मुझ पर निशाना साधकर बोले, ''अबे, यहाँ से लगभग पन्द्रह मील दूर अमुक गाँव आया है । (गाँव का नाम वे बोले थे) वहाँ जा । वहाँ एक व्यक्ति मरणासन्न है और वह कैसा कैसा बोलता है उसे सुन । यह सब देख-सोचकर वापिस आ !'' मेरे अप्रकट विचार को पकड़कर उत्तर दिया । इससे मैं प्रभावित हो गया और उनके बताये अनुसार उस मरणासन्न व्यक्ति को देखने गया । जाकर देखता हूँ तो वह व्यक्ति भी सचमुच मृत्यु निकट था और बेहोशी की हालत में अपने कुकर्म याद करता जाय । लस्टम-पस्टम खराब बोलता जाय, परन्तु थोड़ी देर बाद उसके आवाज और व्यक्तव्य में अंतर आया । हमारे गुरुमहाराज को उसने याद किया और प्रार्थना की कि, ''हे धूनीवाले दादा ! हे गुरुमहाराज ! मैं कैसा पापी हूँ । तब भी प्रभुकृपा से मुझे आपका सत्संग हुआ और आपने मुझे प्रेम से अपने हृदय के साथ बांध लिया यह मेरा कितना अहोभाग्य ! अब मेरा उद्धार करो ! आपके बिना मेरा कोई नहीं । मैं आपकी शरण में आया हूँ ।'' ऐसा बोलकर उसने शांति से मानो गुरुमहाराज का हाथ उसके सिर पर हो ऐसे

संतोष और आराम से देहत्याग किया । यह देखकर मुझे गुरुमहाराज के बोल पर भरोसा हो गया और मनोमन प्रेम से उनको नमन किया ।

फिर उस गाँव में जाँच की तो पता चला कि मरनेवाला बहुत दुराचारी था । पर अच्छे नसीब से उसे धूनीवाले केशवानंद महाराज का सत्संग हो गया था और अंतिम क्षण उसकी सद्गति हो गई ।

तब मुझे इतिहास की बात याद आ गई । सुरदास और बिल्वमंगल जैसे व्यक्ति कम दुराचारी थे ? तथापि सत्संगरूपी पारसमणि के स्पर्श से वे महान भक्त बन गये थे न ?

• • •

२. मरजिया निर्धार

मरजिया निर्धार कैसा होता है इसका ख्याल देते एक प्रसंग श्रीमोटा ने दिया है —

पालनपुर के पास बालाराम करके एक बहुत प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर जगह है, वहाँ एक बार मेरा रहना हुआ था । अलबत्ता, साधना के अभ्यास के लिए ही । मेरे यहाँ एक ब्राह्मणभाई रोज महादेव की पूजा किया करते । वे मात्र धनप्राप्ति के लिए ही इस स्थान पर महादेवजी की उपासना करने आये थे । उन्होंने तो ऐसा मरजिया निर्धार किया था कि, ''या तो भगवान मुझे धन दे, या तो मैं यहीं ही कमलपूजा करूँगा ।'' कमलपूजा अर्थात् क्या उसे समझाने का मैंने उनसे कहा, ''महादेवजी धन की प्राप्ति न कराये तो उनके लिंग पर अपने हाथ से ही एक झटके से अपना सिर बलि चढ़ाकर महादेवजी पर चढ़ाना उसका नाम कमलपूजा ।''

मुझे तब भी इतना अधिक लग आया कि, ''इस व्यक्ति का कैसा दृढ़ संकल्प हैं ! हमें भी साधना में भाव लाने के लिए ऐसा मरजिया निश्चय आना चाहिए और मुझे सीखाने के लिए भगवान ने कृपा करके ऐसे दर्शन करवाये, इससे मेरी साधना में वेग भी आया था ।

• • •

३. विनम्रता

हरिजन सेवक संघ का मुख्य कार्यालय साबरमती आश्रम में हुआ, तब उसके मुख्य कार्यकर्ता के रूप में परीक्षितलाल मजमुदार और श्रीमोटा थे । दोनों सहमंत्री थे, परन्तु श्रीमोटा का वेश, व्यवहार, भाषा दूसरों को 'अनगढ़', 'गँवार', 'मजदूर' जैसे लगते । फिर, वे दूसरों का कोई भी छोटे से छोटा काम भी बिना संकोच करते । उनके पागल जैसे दिखावे के कारण बहुत से उनकी मजाक उडाते ।

एक बार श्रीमोटा के शरीर का जन्मदिन था, तब आश्रम के एक निवासी स्व. नरहरिभाई परीख के बेटे श्री मोहनभाई परीख को ऐसा हुआ कि, ''श्री चूनीभाई को कुछ भेंट देनी चाहिए ।'' इससे वे उनके पास पहुँचकर नीचे से चूटकी भर धूल लेकर बोले,''लो, यह भेंट !'' और श्रीमोटा ने तुरन्त ही हाथ रख उसका स्वीकार किया और फाक गये ! मोहनभाई को पता नहीं कि श्री चूनीभाई (श्रीमोटा) इस तरह धूल को फाक जायेंगे और इससे वे झेंप गये, पर श्रीमोटा ने बात को तुरन्त ही हलकी बना दी !

• • •

४. सत्पुरुष

श्रीमोटा अपने अंत तक रहे श्री नंदुभाई शाह के वहाँ बहुत समय तक उनको साधनाक्षेत्र में मार्गदर्शन देने रहे थे । तब श्री नंदुभाई की पत्नी कांताबहन को इक्कीस दिन के रतजगा करके रात और दिन नामस्मरण करने का प्रयोग करने की सलाह दी और श्री कांताबहन ने उसका प्रारंभ भी किया । रोज का सारा काम तो करने का ही । दोपहर में कुछ आराम करना और सारी रात जागते रहकर अंधेरे कमरे में चक्कर लगाते लगाते जोर से, धीरे से 'हरिःॐ' का जाप करने का । श्रीमोटा और दूसरे कोई सभ्य वहाँ न सोये रहे । यद्यपि श्रीमोटा कांताबहन को नामस्मरण में साथ देते रहते – जाग्रत रहकर, मौन पालकर या इस तरह सूक्ष्मरूप से ।

एक रात वह बहन हरि:ॐ रटते–रटते चक्कर लगा रही थी, रात का समय ठीक ठीक बीत गया था । सर्वत्र शांति छायी हुई थी । श्रीमोटा एक ओर लेटे थे । वे निद्राधीन हो वैसे उनकी नाक बजने की आवाज आने लगी । इससे वह बहन को हुआ कि, ''श्रीमोटा सो गये हैं । लाओ जरा नीचे बैठकर थोड़ा आराम कर लूँ ।'' जैसे वे नीचे बैठे कि श्रीमोटा की मृदु आवाज आयी, ''कांता, जारी रखो बा ।''

''क्यों आप तो सो गये थे और कहाँ से जगे ?'' कांताबहन ने आश्चर्य से पूछा ।

''अरे कांता ! तुम्हें जागते रखकर मैं सो जाऊँगा ?'' श्रीमोटा के प्रेम और वात्सल्यपूर्ण वचन से वह बहन स्फूर्ति में आ गयी और नामस्मरण जारी रखा । इस तरह उन्होंने वह अनुष्ठान पूरा किया ।

''पर'' कांताबहन कहती हैं, ''मेरी अपनी शक्ति के कारण यदि मैं इतने अधिक दिन तक जाग सकी होती, तो तो जीवन का पलटा कभी का हो गया होता, परन्तु वैसा तो नहीं हुआ । यह तो पूज्य श्रीमोटा की चेतनाशक्ति के कारण वैसा हुआ था ।''

• • •

५. खुमारी

सन् १९२२–'२३ के दौरान नडियाद में एक अमेरिकन मिशनरी पादरी रहते थे । उनके साथ श्रीमोटा का सत्संग होता था । पादरी को गुजराती भाषा आती और हिन्दू धर्म के बारे में पढ़ा था और मन में उस विषय में कुछ गड़बड़ इसलिए वह कहे कि, ''आपके धर्म में अनेक देव–देवियाँ और अगम्य ऐसी विधियाँ, जब कि ख्रिस्ती धर्म में एक ही जिसस और बाईबल ।'' श्रीमोटा ने उनको समझाते हुए कहा कि, ''हिन्दू धर्म भी एक ही ईश्वर को मानता है । वह निराकार और साकार दोनों है। अलग–अलग प्रकृति और भाववाले अलग–अलग स्त्रीपुरुषों और देशकाल अनुसार जैसा रुचिकर लगा वैसे महात्माओं ने ईश्वर को अलग–अलग नाम और रूप दियें और उसे प्राप्त करने के विविध मार्ग बतलाए ।''

तब पादरी ने पूछा, ''ऐसा प्रमाणित हो कोई पुस्तक या आधार बतलाओगे ?'' श्रीमोटा ने पूरी रात बैठकर १०८ श्लोकवाला सुंदर काव्य लिखा, ''ईश्वर कैसा है ?'' ''इश्वर सचराचर में व्याप्त है ।'' ''ईश्वर सत और असत दोनों में बसा है ।'' आदि समझाते हुए भाववाही वर्णन किया था और दूसरी सुबह उसे लेकर उन्होंने पादरी महाशय को बतलाया । लेखक का नाम दर्शाया नहीं । उसे पढ़कर पादरी खुश हो गये और हिन्दू धर्म के ईश्वर विषयक उत्तम व्याख्या की कदर करने लगे । यह काव्य सन् १९२३ में '**तुज चरणे**' नाम से प्रकाशित हुआ और आज तक उसकी लगभग १४,६०० प्रतियाँ बिकी हैं । सत्य और धर्म के लिए खुमारी का यह एक उदाहरण है ।

• • •

६. नंगजडित सोने का मुकुट

एक बार मैंने कहा, ''**मोटा,** दूसरे सभी भले कहे, **मोटा** को यह रोग हुआ है और यह दूसरा हुआ है और यह तीसरा, पर मैं तो मानता ही नहीं कि आपको रोग हुआ है । यह सब दिखाने पर्याप्त ही !''

''अरे ! भाई ! कोई इसे समझाओ कि मुझे क्या हुआ है ?'' ऐसा पूज्य श्रीमोटा ने दूसरों को कहा ।

पर फिर एक बार बोला गया, ''**मोटा** ! आप यह सब ढोंग करते हो ।'' **मोटा** गुस्सा न हुए पर वह वाक्य पकड़ लिया । ''तू एक मुकुट बनवा और उस पर '**ढोंगी संत**' ऐसा लिखवा कि जिससे मुझ से सभी चेते और समझे कि यह तो ऐसा व्यक्ति है – ढोंगी है ।'' ऐसा बार-बार कहा करे ! मुझे तो पछतावा होने लगा कि, ''यह मैं क्या बोल गया ! बड़ी भूल हो गई । अब यह बात छोड़ दो ।'' ऐसा बहुत बार कहा, पर उन्होंने तो भारपूर्वक कहा कि, ''लिखकर लाओ सिर पर लगाऊँ ।'' मैंने कहा कि, '' टोपी पर लिखवाकर लाऊँ ।'' तब उन्होंने कहा कि, ''ऐसा सस्ता विज्ञापन संभव नहीं । यदि सिर पर लगाना ही है तो सच्चे सोने का मुकुट बनवाकर ला और उस पर यह संत ढोंगी है, ऐसा लिखवा ।''

अंत में मैंने यह बात स्वीकार करके सोने का पत्तरा कराया वह करवाया ही । तब ऐसा हुआ कि, अब तो **मोटा** कहते ही हैं तब बिना संकोच से ठीक आँखों को सुंदर दिखे इस तरह यह शब्द लिखाने इससे यह मुकुट करवाया । और फिर उस पर तुरन्त ही नजर जाय ऐसे बड़े अक्षर पत्तरे पर खुदवाये **'ढोंगी संत'** । यह है सोने के मुकुट का प्रसंग ।

लोग मेरे बारे में क्या सोचेंगे उसका विचार, उसकी चिंता हुई न थी ऐसा तो नहीं है, उसे भी अंत में छोड़ दिया ।

इस लेख को पाठक यथार्थ रूप से समझेंगे और उस भाव से यह मुकुट की हकीकत का स्वीकार करे ऐसी मेरी अंतर की आशा है ।*

• • •

७. हृदय–परिवर्तन

हरि:ॐ आश्रम के प्रणेता श्रीमोटा के पास एक लाल आँखोंवाला, गुस्से से काँपता कोई पीछड़ी जाति का भाई आया । वह उनके पास बार–बार आता । वह पैरों में पड़कर बोलने लगा, ''**मोटा**, आज मेरी पत्नी को मारे बिना नहीं रहूँगा । उसका मुझे अब काम नहीं ।''

''क्या हुआ भाई ? बात तो करो ।'' श्रीमोटा ने बहुत शांति और प्रेम से पूछा ।

''क्या बात करूँ, **मोटा** ! शरम की बात है ! उसके राई जितने टुकड़े कर डाल दे तो भी पाप न लगेगा, उसने मेरा संसार बिगाड़ दिया !''

''भले, मार डालना, पर एक बात पूछुँ वह कहेगा ?''

''हाँ, पूछो ।''

''तुम्हारे बच्चे हैं ।''

''हाँ जी ।''

''कितने हैं ?''

''चार''

---

* श्रीमोटा के एक उत्सव में 'ढोंगी संत' लिखा हुआ सोने का मुकुट बनवाकर पहनानेवाले स्वजनमित्र श्री दिलीप मणियार का निवेदन ।

''तेरी घरवाली तुझे खाना बनाकर खिलाती है ?''

''हाँ, खिलाती है । इससे क्या हुआ ?''

''तुम्हारे बच्चों को ठीक से सँभालती है ?''

''वह तो सँभालेगी ही न **मोटा** । इसमें क्या बड़ी बात है ?''

''तो देखो, तुम्हारे इतने बच्चे हैं, तुम्हें और तुम्हारे बच्चों को वह खाना खिलाती है, घर सँभालती है, फिर दूसरा क्या चाहिए ?'' श्रीमोटा ने प्रेम से कहा ।

''पर **मोटा** वह मुझे वफादार न रहे यह कैसे सहन हो ?'' अब उसका गुस्सा थोड़ा कम हो गया था ।

''तुम्हारी बात सच है, भाई ।'' श्रीमोटा ने वह विचार करता हो जाय इसके लिए बहुत बलपूर्वक कहने लगे, ''पर शांति से सोच । खराब न लगाओ तो तुम्हें एक बात पूछुँ ?''

''पूछो **मोटा**, खुशी से ।''

''सच कहना भाई, तुमने आज तक कभी खराब काम नहीं किये हो ? तन, मन या वाणी से कोई गलत कर्म नहीं किये हो ?''

''हाँ, प्रभु किये हैं ।'' नरम आवाज से उसने कहा ।

''तब भी तेरी पत्नी ने तुझे कुछ नहीं कहा और माफ किया था, सही न ?''

''हाँ'' वह भाई अब शरमाने जैसे लगने लगे ।

''तो अब तू उसे माफ कर दे, इससे भगवान सभी को माफ कर देंगे ।'' श्रीमोटा ने हृदय छूनेवाली अपील की ।

वह भाई बोले बिना नीची नजर से बैठे रहा । कुछ देर में उसकी आँख में से आँसू गिरने लगे । श्रीमोटा ने उसे रोने दिया । शांत होने के बाद उन्होंने उस भाई को सेब के टुकड़े देते हुए कहा कि, ''एक टुकड़ा तेरी पत्नी को देना और एक तू खाना । **मोटा** ने दिया प्रसाद है ऐसा तेरी घरवाली से कहना और दोनों साथ में खाना और तेरी पत्नी की भूल तूने माफ करी दी है, यह बात उसे कहने की आवश्यकता नहीं है । जाओ, भगवान का नाम लो !'' कहने की आवश्यकता नहीं कि गुस्से से लालपीला

होकर आया आदमी नरम होकर आँखें पोंछता श्रीमोटा के पैरों में पड़कर चला गया । श्रीमोटा ने उसकी पीठ थपथपाकर प्रेम जतलाया ।

• • •

८. योगीजन

अपने गुरुमहाराज पूज्य धूनीवाले दादा की अगम्य रीत का उदाहरण देते हुए उन्होंने एक बार नीचे की बात कही थी —

मेरे गुरुमहाराज ने मुझे एक बार एक आदमी रास्ते से जा रहा था, उसे बताकर कहा कि, ''उस व्यक्ति को पत्थर मार... मार... मार... सा... को (कितनी अधिक गालियाँ) लहू-लुहान हो जाय इसतरह मार ।''

गुरु का आदेश कैसे तोड़े ? इससे उस जानेवाले को मैंने पत्थर मारा भगवान का नाम लेकर । मैं क्या करूँ ? मैंने तो आदेश का पालन किया ।

फिर वह व्यक्ति आकर मुझे पूछे, ''अबे, पत्थर क्यों मारा ?'' मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था ?''

मैंने कहा, ''देखो मेरी इच्छा से नहीं मारा, वहाँ वे गुरुमहाराज बैठे हैं न, उन्होंने तुम्हें पत्थर मारने को कहा । इसलिए मैंने आपको पत्थर मारा ।''

वह भाई गुरुमहाराज के पास गया और पृच्छा की, तब गुरुजी ने उसे ऐसा आड़े हाथों लिया कि न पूछो वात और वह कैसे खराब काम करने जा रहा था वह कहकर सुनाया । बात सत्य थी । इसलिए वह क्या बोले ? शरमा गया और महाराज के पैरों पड़कर रोकर पश्चात्ताप किया.... इस तरह गुरुमहाराज ने उसे विघ्न काम करते रोका ।

योगीजनों के काम करने का ढंग और बातें अनेकबार सरलता से समझ सके ऐसी नहीं होती ।

• • •

९. प्रेम

पूज्य श्रीमोटा एक बार सूरत शहर की गलियों में पैदल जा रहे थे, तब कोई मकान के छज्जे पर से झूठन गिरी और श्रीमोटा के पूरे

शरीर पर गिरी । श्रीमोटा जरा भी चीढ़े बिना जिस छज्जे से झूठन गिरी थी, उस छज्जे पर पहुँच गये और उनकी विशिष्ट नम्रता अनुसार झूठा गिरानेवाली बहन को दंडवत् प्रणाम करते हुए कहा, ''यह तुमने प्रेम का छंटकाव करके मेरी झूठे के प्रति घिन दूर कर दी ।''

वह बहन तो यह दृश्य देखकर अवाक रह गई । झूठन से लिप्त हो गये की ओर से क्रोध और गाली कुदरती रूप से मिलती है, उसके बदले प्रेम और नम्रता के दर्शन उसने किये । इससे उसकी आँखों से आँसू आ गये और श्रीमोटा से माफी माँगी तथा उसने अपना निर्धार जाहिर किया कि, ''अब से इस तरह झूठा नहीं फेंकूँगी ।''

• • •

१०. सेवक

एक बार श्रीमोटा अपने साधनाकाल के दौरान जबलपुर गये थे, तब उनके पासे पैसे कम हो गये । इससे वे एक व्यापारी गृहस्थ के यहाँ नौकर के रूप में काम करने लगे । उनका वेश एक तो ऐसा था और अपना हीर किसी को ऐसे ही न जानने दे ।

घर का काम करते-करते वे सेठ के लड़के को पढ़ाने भी लगे । उनकी वह शक्ति देखकर व्यापारी खुश हो गया और हमेशा के लिए अपने पास रहकर वे शिक्षक रूप में काम करे ऐसी दरख़ास्त प्रस्तुत की । तब श्रीमोटा ने उन्हें सच्चा परिचय दिया और गुजरात हरिजन सेवक संघ के वे सेवक हैं और उनका कर्तव्य वहाँ पर रहना है, आदि परिस्थिति से अवगत करवाया और ऊपर से हरिजन सेवक संघ को कुछ मदद करने की उन्होंने बिनती की । इससे वह व्यापारी खुश हुआ और बहुत समय तक प्रत्येक महिने संघ को पाँच रूपये की मदद देते रहे ।

• • •

११. श्रद्धा

एक दिन एक बहन ने श्रीमोटा को पूछा, ''एक बहन है । वह एक मट्ठाधीश को भोग लगाये बिना खाती नहीं, उन्हें स्मरण किये बिना नहीं खाती, ऐसी श्रद्धा अच्छी या गलत ?''

श्रीमोटा ने उत्तर दिया, ''गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु, यह कोई कपोल कल्पित नहीं है । ऐसी श्रद्धा उसके सच्चे स्वरूप में हो, तब शिष्य का विकास शीघ्र होता है । आप ने जिस प्रकार की श्रद्धा कही —— भोग लगाकर खाना आदि —— यह अंधश्रद्धा है, क्योंकि उस श्रद्धा के पीछे हमें कैसा होना है, उसका भान सतत और जागृत बहुत सारा तो नहीं होता । फलस्वरूप यह होता है कि श्रद्धालु व्यक्ति जिस पर इतनी सारी श्रद्धा रखता है, उसके जैसा होता है । इससे गुरु की सारी वासनाएँ, इच्छाएँ, कमियाँ —— अच्छी-खराब सभी —— यह सब उसमें आता है ।''

इससे उस बहन ने सहमती दी, ''हाँ, इससे उन आचार्यश्री की पूजा करने से और उनके बहुत स्पष्ट दिखते दोषों के आगे आँख आड़े कान करने से, उस बहन में क्षुद्र चोरी करने की आदत है । सब्जीवाली थोड़ी यहाँ-वहाँ हो तो यहाँ-वहाँ देखकर उसकी टोकरी में से थोड़ा शाक ले लेने की ऐसी आदत उसे है ।''

''ठीक है ।'' श्रीमोटा ने कहा, ''इससे प्रश्न यह होता है कि तो साधक को क्या करना ? किस तरह जाने कि उसे सच्चा गुरु मिला है ?'' उसका उत्तर यह है - ''यदि साधक उत्कट और सच्ची जिज्ञासावाला होगा तो अपने आप उसे सुझेगा कि मैंने यह गुरु तो किये पर मुझ से इससे होना चाहिए वैसा विकास नहीं हो रहा, मुझ में शुद्ध सात्त्विक आनंद नहीं आ रहा, नहीं मेरे चित्त में शुद्धि होती, यदि ऐसी पहले से उसे चाहना होगी और उसी कारण से उसने गुरु किये होंगे – नहीं कि अन्य को देखकर अथवा शास्त्र या रूढ़ि मानकर —— तो वह साधक ऐसी श्रद्धा कुछ समय तक रखेगा, पर फिर उसे सत्य सूझेगा ही सूझेगा... स्वयं की अवनति हो रही है । इसके पास रहने से और इसका मानने से, ऐसी उसे प्रतीति होते वह उसे प्रणाम करके बिदा होगा...'' इस पर से अंधश्रद्धा और अतिश्रद्धा या सच्ची श्रद्धा में कितना भेद है यह समझ आता है ।

• • •

• श्रीमोटा की वर्तनलीला •

१. जादू

'मेरे धर्मपरायण मातापिता के घर में आठ संतानों में मेरा अंतिम और चौथे पुत्र के रूप में जन्म हुआ ! मेरे पिताजी स्वामीनारायण पंथ के थे और माता वैष्णव... पढ़ाई में चौथी कक्षा के आगे न बढ़ पाया । तूफान के लिए नामी ऐसे शहर में मैं बड़ा होता रहा वैसे-वैसे तूफानी तत्त्वों का संचार मेरे में भी प्रवेश करता रहा । इससे मेरे सगेसंबंधिओं ने मुझे जामनगर काम-धंधा के लिए भेज दिया । तब मैं १७ वर्ष का हुआ था... मुझे मशीनरी के कामकाज में रस पड़ता था और स्वतंत्ररूप से काम करता हो गया । धीरे-धीरे उस काम में कमायी अच्छी होने लगी, वैसे-वैसे कुसंग भी बढ़ने लगा । बीडी, सिगरेट और शराब की लत बढ़ती गई । उसके साथ मांसाहारी भी हो गया, इससे बहुत संताप हुआ । शराब और मांसाहार के अति सेवन से मेरे ज्ञानतंतुओं पर उलटी असर हो गई और अन्य बीमारियाँ ने भी घर कर लिया । इन सभी से शरीर में इतनी अधिक कमजोरी बढ़ गई कि अनेक बार शरीर काँप उठता और एक साथ अनेक चेकों पर हस्ताक्षर करने हो तो वह काम नहीं हो पाता था । इसमें से छूटने के लिए बहुत इच्छा होने पर भी व्यसन की पकड़ मजबूत थी । मैं लाचार हो गया ।

स्वाश्रय से आगे बढ़े गुजरात के एक धनाढ्य व्यापारी ने अपनी जिंदगी की किताब खोलकर उपरोक्त बतलाया, बहुत समय बाद उनका एक कर्मयोगी महात्मा के पास जाने का हुआ । साधुमहाराज उस भाई से धंधा-व्यवहार की बात पूछे, कुटुंब-कबीले की तबियत के बारे में पूछे और इस तरह उसके जीवन में रस लेते । इससे व्यापारी का भाव साधु के प्रति जागने लगा । साधु तो उसे मित्र माने और मित्र के जैसा ही व्यवहार रखे, मानो दोनों दोस्त हो गये !

एक बार वह भाई शराब के नशे में अपनी कार स्वयं चलाकर स्वजन के साथ जा रहा था, तब अकस्मात हुआ, पर कुटुंबजनों को कुछ लगा नहीं । स्वयं को लगा । बिस्तर में कुछ दिन रहना पड़ा । ऐसी स्थिति

में एक बार उन साधुमहाराज के 'दर्शन' भी हुए । उनकी कृपा से स्वयं बच गया ऐसा उसे लगने लगा ।

साधुमहाराज एक दिन बिस्तर में पड़े 'मित्र' की खबर निकालने आये । साधु ने पूछा, ''भाई, कैसे हो ?''

''प्रभु ! बिस्तर में पड़े रहने से शराब पीने की अच्छी सुविधा रहती है !'' बहुत खुलकर उसने सही बात कह दी, क्योंकि महात्मा ने उसके साथ गुरु-शिष्य के संबंध के बदले मैत्री का संबंध बनाया था । इस इकरार से खुश होकर बहुत समझ और प्रेमभाव से महात्मा ने पूछा, ''तो अब शराब कब छोड़ोगे ?''

''यह तो हो ऐसा लगता नहीं, पर आप कुछ करो तो हो ।'' दो हाथ जोड़कर व्यापारी ने दीन भाव से कहा ।

साधु ने बिदाई लेने से पहले कोई दवा की गोलियाँ उस भाई को देते हुए कहा कि, ''यह खाना । एक भाई वह बनाता है । उसके पास से मुझे भी मिली है । इसके सेवन से शराब के प्रति कुभाव जागेगा ।''

व्यापारी खुश हो गया और वह लेने लगा । धीरे-धीरे उसे सचमुच शराब के प्रति जुगुप्सा होने लगी । वह मन में सोचने लगा कि, ''यह तो अद्‌भुत है । यदि ऐसी गोलिओं से ही सचमुच ऐसी असर होती हो तो उसका उपयोग सारी दुनिया क्यों न करे ? फिर शराबबंदी के कानून की आवश्यकता ही न रहे ।''... उसे हँसना आया - अपनेआप पर !... सचमुच यह गोलियों की करामात है कि उस साधुमहाराज की शक्ति ?... अरे **जीव** ! यह जीत किसकी ?... उसे प्रकाश हुआ और दौड़ा साधुमहाराज के पास और दंड की तरह उनके चरणों में पड़ा । वे साधु हरिःॐ आश्रम के श्रीमोटा ।

तब से उसका जीवन उनके चरणों में समर्पित हो गया है और सत्संगीरूपी सुधा के पान से और हरिःॐ आश्रम में मौनएकांत के अनुष्ठान से अपने शेष जीवन को वह शुद्ध कर रहा है । हरिःॐ आश्रम के पूज्य श्रीमोटा का यह 'मैत्री का जादू' है ऐसा वह गा रहा है ।

(स्वामीश्री कृष्णानंद कृत 'पर्ल्स एन्ड पेबल्स' में से साभार)

• • •

२. हनुमान छलांग

श्रीमोटा को एक बार दक्षिण में एक डॉक्टर के यहाँ अपनी सँभाल कराने के लिए जाते ठीक ठीक समय तक राह देखनी पड़ी। इससे उन्होंने तुरन्त ही डॉक्टर की केबिन में घूसकर विरोध किया कि, ''I do not believe in waiting like this. – इसतरह राह देखा करने में मैं मानता नहीं।'' इसप्रकार, उन्हें प्रत्येक कर्म में शीघ्रता प्रिय है। आवश्यकता पड़ने पर वे अपार धीरज भी रख सकते हैं। बाकी चलने में, काम करने में, पढ़ने में, लिखने में आदि कर्मों में आपश्री समय के साथ दौड़ने में मानते हैं और दौड़ते भी हैं। यदि किसी कार में लंबी दूरी पर जाना हो तो संभव उतनी शीघ्रता से जाने में उन्हें और आनंद आता होता है। गुजरात विद्युत बोर्ड के सलाहकार सभ्य श्री पी. टी. पटेल ने इस बारे में साक्षी दी है। एक दिन श्री पी. टी. पटेल, उनकी धर्मपत्नी और मधुरीबहन खरे को लेकर श्रीमोटा गलतेश्वर गये। उस दिन १९५८ की साल का रामनवमी का था। श्रीमोटा कहे की, 'रामनवमी के लिए हनुमान छलाँग का दिन है, इससे हम गलतेश्वर जाकर एक दिन रहें।'' और वे सभी कार में गये। श्री पी. टी. पटेल कार चला रहे थे। उनके पास में श्रीमोटा थे।

श्रीमोटा उनको पूछते, ''यह कार कंपनीवालों ने स्पीडोमीटर १४० का बनाया है, तो इतनी गति से कार चला सकते हैं सही ?''

श्री पटेलभाई ने मना किया, पर तब भी श्रीमोटा ने उन्हें उतनी ही गति से कार चलाने का आग्रह किया और उन्होंने कार चलाई। कार १०० –११० – १२० – १३० कहाँ तक जाता है इसका उन्हें पता ही नहीं ! अधिक में वे कहते हैं, ''उस समय मधुरीबहन का भजन चल रहा था। कार जमीन से डेढ़ फूट ऊपर चलती हो वैसा लगा ! पूज्य श्रीमोटा मेरी पीठ थपथपा रहे थे ! सबसे अद्‌भुत बात तो यह कि मुझे इस दिन श्रीराम के दर्शन हुए थे !'' और रामनवमी श्रीमोटा के लिए हनुमान छलाँग का दिन था, क्योंकि उस दिन उन्हें निर्गुण का साक्षात्कार हुआ था।

• • •

३. पतितपावनी गंगामाँ जैसे

श्रीमोटा कीचड़ में पड़े **जीव** को बाहर निकालने को कैसे प्रेमभरे कदम उठाते होते हैं, उसका एक खूब रसप्रद और रोमांचक किस्सा देखने को मिलता है । एक युवान भाई एक प्रेमत्रिकोण में फँस गया था और अंत तक उसे सभी ओर से निराशा मिली । वे श्रीमोटा की सेवा करते, मौन में प्रत्येक वर्ष बैठते और श्रीमोटा उस पर माता जैसी प्रेमभरी नजर रखते और ऊष्मा देते । साधारण रूप से ऐसे **जीवों** के प्रति समाज घृणा करता हो, तब ऐसे **जीव** को ऊष्मा और प्रेम की कितनी सारी आवश्यकता होती है, वह ऐसी चेतना में निष्ठा पाये शरीरधारी आत्माएँ ही समझती हैं । और वे ही उस **जीव** का जीवन मुरझा न जाय, वह देखने के लिए बहुत आतुर होते हैं और अलग-अलग तरहसे वे उनके (चेतननिष्ठ के) प्रति मोड़ने का प्रयत्न करते रहते हैं । जैसे रामकृष्ण परमहंसदेव ने गिरीश घोष के जीवन में, गिरीश के अपमान को सहन करके भी कैसे आश्चर्यजनक ढंग से रस लिया था वैसे श्रीमोटा ने इस **जीव** में रस लिया है ।

इससे आपश्री उस भाई की कक्षा में जाकर उसे जिसमें, निर्दोष घटनाओं और व्यवसायों में रस हो, उसमें रस रखते । उसे वैसी प्रवृत्तिओं में निर्दोष प्रोत्साहन देते । इसप्रकार उसके जीवन में गहरा रस लेते हैं वैसा उसे अनुभव लेने दे । इससे, उस भाई को अपने जीवन में रस जागा और जीवन जीने जैसा है वैसा उसे स्फुरित हुआ । मनुष्य दोष से भरा है । कोई पूर्ण नहीं । दोष होना सहज है, पर उसमें से उपराम होकर ऊर्ध्वरूप में प्रकट होना वह बड़ी बात है । दोष होना और फिर उसे कबूल करना यह बड़ी बात है । और वैसे दोष में से उबरने के लिए संघर्ष करना यह बहुत बड़ी बात है । इस भाई ने संघर्ष कर करके उबरने का प्रयास श्रीमोटा के प्रयत्न से किया । समाज दोषित व्यक्ति का तिरस्कार करके उसे ऊपर उठाने की दिशा उसके लिए बंद कर देता है, तब ऐसी मुक्तात्माएँ दोषितों को भी आश्रय में लेकर ऊँचाई, ऊर्ध्व में प्रकट होने का मौका पूरा देते हैं । पतितपावनी गंगामाँ जैसे मुक्तात्माएँ होती हैं ।

कैसा भी कचरा गंगामैया में डाला जाता है पर महानद गंगामाता में मिलते ही वह विशुद्ध हो जाता है वैसा इस भाई का होने लगा । सीधी सीख देने के बदले उसे चाहने में वे सार्थकता अनुभव करते हैं । प्रथम चाहकर उसका प्रेम संपादन करना और फिर उसे आवश्यकता पड़ने पर टोकना । इस तरह वह जीवनविकास के मार्ग पर पनपता है । ऐसी है ऐसी मुक्तात्माओं की विशेषता ।

• • •

४. जय जलाराम

श्रीमोटा सन् १९६७ के जून महीने में वीरपुर जलाराम बापा के स्थान पर गये थे । उन्होंने अपना अनुभव नीचे के अनुसार वर्णन किया था —

श्री गिरधरबापा हमारे आश्रम में दो बार पधारे थे, इससे हुआ कि यहाँ (जूनागढ) मैं आया हूँ तो उन्हें मिलता जाऊँ । इससे हम वहाँ गये । दोपहर में पहुँचे पर पहरेदार हमें श्री गिरधरबापा के पास जाने न दे । वह कहे कि अभी उन्हें मिलने की सख़्त मनाई है, मिलने का यह समय नहीं है । मैंने कहा कि, ''मेरा नाम देना कहना कि हरिःॐ आश्रम के श्रीमोटा आये हैं ।'' पर वह समझे नहीं, माने नहीं । इससे इन्द्रवदन शेरदलाल को कहा कि, ''चढ़ जा छज्जे पर !'' वह ऊपर गया । पर उसके पीछे दो पहरेदार पड़े और उसे पकड़कर नीचे उतारा । इससे मैंने पहरेदार को कहा कि, ''तुझे गिरधरबापा डाँटे तो जा, मैं जवाबदार, पर तुझे डाँटेंगे ही नहीं उल्टे खुश होंगे ।'' तब वह ऊपर गया ! फिर हमें ऊपर बुलाया । नयी कालीन और चादर बिछाकर मुझे बिठाया । फिर भोजन के लिए कहा । इससे शाम के पाँच बजे खाना खाया और पेटी में जितने रूपये आये थे वे सभी मेरे आगे रख दिये । पर मैंने ना कहा – ''इतने अधिक नहीं ले सकता ।'' पर उनके अति आग्रह के वश होकर स्वीकार किया । ग्यारह सौ रुपये थे !

• • •

५. पैसों की सगाई ?

एक उत्साही युवक व्यापारीभाई श्रीमोटा के पास पहली बार ही उनके आश्रम में गये और मीठी मीठी बानी में बहुत बहुत बात की, ''**मोटा** ! हमें मिट्टी की मूर्ति जैसा बना दो ।''

''भाई, पहले हमें मिट्टी जैसा बनना पड़ेगा ।' — श्रीमोटा ने कहा । फिर उस भाई ने अपने पैसों का पाकीट निकालकर उसमें से पाँच हजार की रकम श्रीमोटा के चरणों में रखी । तब आपश्री कहे, ''देख भाई, हमारी यह पहली मुलाकात है । पैसों के साथ संबंध नहीं होता, लोग क्या कहेंगे ? **मोटा** पैसों के सगे हैं ।''

इसप्रकार, बहुत मीठी बातें हुई । युवक के दिल की कुछ सच्चाई का उन्हें भरोसा हुआ । इसलिए उन्होंने आश्रम का एक हजार की रकम का चेक उस भाई को देते हुए कहा, ''लो, यह रखना अपनी पीढ़ी में ।''

फिर तो ऐसा गाढ प्रेम उस भाई को श्रीमोटा के साथ हुआ कि वह उनके चरणों में आँख बंदकर धन रखता । उनके लिए खर्च करने पर भी सामने न देखता । अन्य विषय में भी ऐसा । जहाँ एक रुपया देना चाहिए वहाँ ग्यारह दे दे । श्रीमोटा ने एक बार उनहें 'नवलशा हीरजी' से संबोधित किया ।

दिन, महीने और वर्ष बीतते वे जितना कमाते हैं, उसमें से कुछ हिस्सा आश्रम को देते हैं । श्रीमोटा बहुत बार वैसा करने पर उन पर मनाई भी करते ।

• • •

६. श्रेष्ठ कला

एक बार हस्तरेखाशास्त्र के एक रसिक के साथ बातबात में अपना बायाँ हाथ बतलाते हुए कहा, ''देख इसमें त्रिशूल है ।'' एक जन कहे, ''**मोटा** ! आपके नसीब में हाथीघोड़े का सुख है ।'' तब वे हँसकर कहे, ''अरे क्या कहा ! गधे का भी वाहन नहीं है !'' (सभी हँस पड़े ।)

उस हस्तरेखा के रसिक भाई ने श्रीमोटा के साथ कुछ संबंध के दौरान श्रीमोटा के हाथ की छाप के लिए विनती की । तो उन्होंने तुरन्त ही हाथ लंबा किया और फिर खूब आतुरतापूर्वक कहे कि, ''इसमें क्या आता है उसे बतलाना भाई । जाने तो सही, कैसा नसीब है !'' उस भाई ने उत्साह में आकर भविष्यकथन लिख भी दिया । पर श्रीमोटा ने तो उसकी बात निकाली ही नहीं और अपने छापवाले कागज पर हस्ताक्षर करते हुए उन्होंने लिखा –

''सर्व कलाओं में जीवनविकास की कला श्रेष्ठ है ।''

व्यक्तियों के दिल जीतने की श्रीमोटा की ऐसी कला है ।

• • •

७. खूबी

अहमदाबाद के एक नामी पुस्तकविक्रेता* सन् १९४७ में श्री नंदुभाई के साथ के व्यवहार को लेकर साबरमती के आश्रम में गये थे । तब श्रीमोटा वहाँ बिराजे । यह भाई चाय के प्रेमी । इससे आश्रम में चाय मिलेगी की नहीं उसके विचार में थे । श्रीमोटा ने उनसे कहा, ''आओ, यहाँ चाय मिलेगी । मैं भी चाय पीता हूँ ।'' पर उन्हें श्रीमोटा के बारे में कोई जानकारी नहीं थी ।

वे दूसरी बार श्री नंदुभाई को मिलने गये, तब श्री नंदुभाई मौन में थे – साबरमती आश्रम में ही । इसलिए श्रीमोटा उन्हें छोड़ने वाडज से भी आगे तक गये थे और वह भी खुले पैरों ! पर उनके बारे में उस भाई को कुछ समझ में न आया था ।

फिर तो सन् १९४८ में उस भाई की शादी श्रीमोटा की उपस्थिति में हुई । पंडितजी ने कहा, ''शनि-मंगल है, जप करवाने पड़ेंगे और इतनी रकम होगी ।'' श्रीमोटा ने कहा, ''जप हम कर लेंगे ।''

ऐसा करने से श्रीमोटा के साथ उनको स्वजन का संबंध हो गया । उस भाई को सिनेमा का शौक । इसलिए एक बार श्रीमोटा उनके

* स्व. श्री चीमनलाल महाजन

साथ सिनेमा देखने भी गये थे। अंत में उनके सत्संग से सिनेमा देखना बंद हो गया। यह भाई प्रत्येक वर्ष ३-४ सप्ताह मौन-एकांत में बिताते हैं।

• • •

८. बालप्रेम

श्रीमोटा मुंबई में सहकारनिवास में एक बार थे। बाहर जाकर रात को देर से आये थे और थक गये थे। इससे घर में जाने से पहले यजमान को कह रखा था, ''मैं तुरन्त ही सो जाऊँगा, हों।'' परन्तु सोने की तैयारी करते थे, इतने में एक स्वजनभाई, आकर श्रीमोटा को कहे, ''**मोटा,** कुछ बालक आपके पैरों में पड़ने को आ रहे हैं।''

''आने दो।'' उन्होंने सहमति दी।

लगभग पचासेक छोटेबड़े बालक लाईन में आने लगे। बालक पैरों में पड़े और वेश्री किसी के सिर हाथ रखते, किसी की पीठ थपथपाते, तो किसी की छाती पर हाथ रखकर खबर पूछते, ''क्या पढ़ते हो ?''

''तीसरी, पाँचवी, नौंवी, दसवीं...''

''किसमें फैल होते हो ?''

''गणित, अंग्रेजी, गुजराती...'

''मास्तर रखते हो ?''

''हाँजी - नाजी....'

''कितना वेतन देते हो ?''

''चालीस, पचास...''

''छ मासिक में पास हुए थे ?''

''नाजी - हाँजी...''

''बा को काम में मदद करते हो ?'(कोई 'ना' कहते शरमा जाता।)

''फिल्म देखने जाते हो ?''... ''हाँ... हाँ'' उन्होंने स्मित किया।

''कसरत करते हो ?''... ''ना... ना।'' फिर स्मित किया।

''बा मारती है ?''.... ''हाँ... ना।'

''बा नास्ता करके देती है ?''... ''हाँजी... नाजी।''

‘‘बा को मेरे पास ले आना, कहना कि ऊपर **मोटा** बुलाते हैं । प्रसाद देना है... जाओ अब पढ़ना, परीक्षा का एक महीना बाकी है ।''

फिर दूसरे भक्तों के सामने देखकर वेश्री कहे, ‘‘नब्बे प्रतिशत बालक गणित में कच्चे हैं ।'' एक शरीर से कमजोर लगती बाला को देखकर कहे, ‘‘इस लड़की के पिता को कहना कि उसकी दवा करे, इसका शरीर ठीक नहीं ।''

अन्य स्थान पर वेश्री एक बाला के पिताश्री को कहे, ‘‘यह तुम्हारी बेटी की आँखे पीली और फिक्की है । उसकी दवा करते हो ? चश्मा निकाल दो न दिखता हो तो ! ऐसा कैसे चलेगा ? हमारे लोगों की ऐसी विचित्र रीत है ! बच्चों का कोई ध्यान ही नहीं रखता ?''

• • •

९. मानसचिकित्सक

एक भाई शिरडीवाले सांईबाबा के भक्त थे । उनकी कृपा से स्वयं श्रीमोटा के संपर्क में आ सके और उनके स्वजन बन सके ऐसा उनका मानना था । उनका बेटा भी एक बार सात दिन के लिए मौन में बैठा था और सत्संगी था । समयानुसार वह पूज्य श्रीसत्यसांईबाबा के साथ जुड़ा । उस युवक की बा भी पूज्य श्रीमोटा और सांईबाबा के लिए भाव रखती हैं । इससे, इस कुटुंब के सभ्य भी एकदूसरों की भावनाओं को ज्ञानभक्तिपूर्वक मान देते हैं और एकदूसरे की श्रद्धा को तोड़ने का कोई न करे उस पर श्रीमोटा खास ध्यान देते और एकाश्रय का महत्त्व समझाने को एसा कहते, ‘‘भाई, **मोटा** के पास जाये या बापजी रंग अवधूत महाराज के पास जाये और उनके पैरों पड़े तो उन्हें सांईबाबा मानकर पैरों पड़े ।' लड़के के पिता को आपश्री ऐसी सलाह देते कि, ‘‘तुम्हें अपने बेटे के आगे श्रीसत्यसांईबाबा की ही बातें करनी । भाई, चेतन तो सर्वत्र एक ही विलस रहा है, तब भी हमारे जैसे **जीव** स्थूल से ही अधिक आकर्षित होते हैं । इसलिए जिस तिस को उसकी आस्था, श्रद्धा बढ़े उस अनुसार बातें करनी ।''

एक बार श्रीमोटा उस भाई के यहाँ प्रसाद लेने पधारे । केवल खीचडी-शाक की प्रसादी उन्होंने माँगी और बहुत प्रेम से ली । फिर बिदा लेने से पहले उस बहन को बतलाया, ''बहन, यह घर सांईबाबा का है ।'' ऐसे सहजभाव से मधुर प्रेम के साथ और गंभीर मुख-मुद्रा से आपश्री ऐसा बोले ! ऐसा बोलने का क्या कारण होगा वह तो वे जाने ! पर यह सुनकर कुटुंब के सभ्यों को कितना हर्ष हुआ होगा यह कहने की आवश्यकता है ? **श्रीमोटा एक विशेषज्ञ मानसचिकित्सक हैं, करुणा भरपूर माता है और इसतरह वे यथास्थान व्यवहार करते हैं । यह उनकी अनोखी कला है !**

• • •

१०. रास्ते में पंक्चर पड़े ?

एक बार एक सरकारी अधिकारी श्रीमोटा को मिलने आये थे । वे निश्चित समय से लेट थे । आने के साथ मजाक में बोले, ''**मोटा,** आपको मिलने आ रहा था और रास्ते में मेरी गाड़ी में पंक्चर पड़ा । आपके पास आने पर पंक्चर पड़े यह तो कैसा !!''

श्रीमोटा ने खिलखिलाकर हँसते हुए कहा, ''साहब, इस मार्ग पर जाये तो अनेक बार अनेक प्रकार के पंक्चर पड़ा ही करते हैं, पर पंक्चर को महत्त्व न दें !''

• • •

११. लिया हुआ वापिस नहीं देते

श्रीमोटा एक भाई के यहाँ मुंबई में पहली बार पधारे । उनका पूजन-अर्चन होने के बाद उस घर की बहन ने दक्षिणा में लाल पतले कागज में और ऊपर रुमाल से बांधी पुड़िया अर्पण किया, ''क्या है बहन ?'' कहकर पुड़िया उन्होंने खोलकर देखा । उसमें से एक गीनी निकली । ''कहाँ है तुम्हारी सेवापूजा ?'' ऐसा पूछते ही आपश्री खड़े हो गये और पूजामंदिर में वह गिनी उन्होंने रख दी । अक्षत् और पुष्प से उसकी पूजा

की । दो हाथ जोड़कर अपना सिर झुकाने के बाद उन्होंने सूचन किया कि इसकी रोज इसतरह पूजा करके प्रार्थना करना और ऐसा बोलना ——

''जो लक्ष्मी सुख नित्य वैभव और ऐश्वर्य दे पूर्णदा,
वह लक्ष्मी प्रकाशित करे जीवन को, यह लक्ष रहे सदा ।''

श्रीमोटा वहाँ से बिदा ले रहे थे, तब उस भाई ने उनको छोटी रकम भेंट रूप देने लगे । यह देखकर आपश्री बोले, ''क्यों दुबारा फिर से ?'' तब वह भाई कहे, ''आपने तो कुछ स्वीकार्य नहीं किया । वह दक्षिणा वापिस रख दी ।'' इसलिए श्रीमोटा खिलखिलाकर हँसते हुए बोले, ''अरे ! भाई ! हम लिया वापिस नहीं देते !''

• • •

१२. फूलहार

मुंबई में एक भाई के यहाँ आपश्री पहली बार पधारे, इसलिए उन्होंने अपने घर को फूलहारों से अच्छी तरह सजाया था । श्रीमोटा यह देख रहे थे । फिर दूसरी बार वहाँ आये तब भी ऐसा बड़ा खर्च फूलहार के पीछे किया दिखा । वह भाई श्रीमोटा के निकट आ गये थे । इससे उन्होंने बहुत प्रेम से उस भाई को कहा, ''**भाई, फूलों के पीछे क्यों इतना सारा खर्च ? अब से ऐसा नहीं करना ।'' इसका अर्थ यह नहीं कि उन्हें फूलों की सुगंध या उसका सौन्दर्य पसंद नहीं कि वह आनंद नहीं उठाते, पर खाली बिनउपयोगी खर्च उन्हें पसंद नहीं । उनकी उपयोग की दृष्टि बहुत उच्च होती है, इसलिए फूलों के पीछे के खर्च को वे प्रोत्साहन नहीं देते । इससे ही उसके संदर्भ में आपश्री ऐसा भी कहते होते हैं कि, ''इसके बदले हमें दो पैसे दो तो हमारा थोड़ा खर्च निकले ।'' उनके उत्सवों में भी फूलहार के बदले सूत की आंटी अर्पण करने की विनती की जाती है और वैसे प्राप्त सूत में से फिर खादी तैयार की जाती है ।***

* श्रीमोटा की इस बात का आदर वर्तमान में कोई स्वजन-भक्त नहीं करते हैं ।

१३. मिर्च

श्रीमोटा को तीखा और चाट बहुत पसंद है । एक समय खाते-खाते बात निकली, ''**मोटा,** सभी संतों को तीखा पसंद होगा ? कहते हैं कि, उन्हें देश-देश का पानी पीना है इसलिए तीखाश से बाधा न होगी ! स्वामी विवेकानंद को भी अतिशय तीखा चाहिए था, इसलिए अमेरिका में भी मसाला के पडीके मद्रास से भेजे जाते और अपने मोटा अंगरखा की जेब में वह रखते !'' श्रीमोटा ने कहा, ''नहीं, ऐसा नहीं । मेरा बचपन बहुत गरीबी में बीता था, इसलिए लाल मिर्च में तेल मिलाकर शाक की जगह खाते । तब से मिर्च की आदत पड़ी और प्रमाण अनुसार मिर्च पाचनशक्ति के लिए अच्छी और आवश्यक है ।''

• • •

१४. प्रेमशस्त्र

एक हकीकत की बात यह है कि श्रीमोटा के प्रेम करने की अनोखी कला से शराबी और व्यसनी भी सीधे किसी भी प्रकार के उपदेश बिना 'रास्ते' पर आ गये देखे हैं । उनका उस विषय का बड़े से बड़ा शास्त्र और शस्त्र – प्रेम है । ऐसे कितने ही व्यक्ति श्रीमोटा के ऐसे 'जादू' से फिर ऐसे चकाचौंध हो जाते हैं कि वे उन्हें अपनी कार भेंट देने को तैयार होते है, परन्तु आपश्री इसतरह कार लेकर बंध नहीं जाते । बहुत आग्रह और भाव देखे तो बाहर आने-जाने को उस उस स्वजनों की कार मँगाते ।

• • •

१५. रामनवमी

उनके रामनवमी के उत्सव में एक स्वजन से जाने का न हुआ । वह श्रीमोटा को कहे कि, ''इस समय उत्सव में नहीं आया जायेगा । यहाँ (मुंबई) में फंड का काम चल रहा है इससे ।'' तब आपश्री ने कहा, ''**यहाँ भी रामनवमी है । जो मेरा जहाँ-जहाँ काम करे, वहाँ-वहाँ**

रामनवमी समझना । लोग खाली-खाली पैरों में पड़ने आते हैं । उनको मैं मना ही कर देता हूँ कि बेकार में पैर पड़ने न आना ।''

एक भाई कहे, ''**मोटा,** रामनवमी को मेरे मंदिर में आपका फोटो रखना है । तब आप तो यहाँ नहीं होंगे, तब भी मानसिक रूप से आमंत्रण दूँगा पधारने का !'' **श्रीमोटा ने कहा, ''मुझे जहाँ याद करो, वहाँ मैं उपस्थित हूँ ।''**

एक बार रामनवमी के उत्सव दौरान श्रीमोटा व्याख्यान दे रहे थे, तब वाक्यप्रयोग में 'प्रकाश' शब्द आया । जिसके संदर्भ में आपश्री बहुत गंभीरता से, स्निग्धता और सहजता से अपने एक स्वजन को उद्देशकर बोले, ''भाई, प्रकाश दिखता है ?'' यह सुनकर उनका इस नाम का पुत्र खड़ा होकर श्रीमोटा के पास आने लगा । उसे ऐसा कि स्वयं को श्रीमोटा बुलाते होंगे । 'प्रकाश' शब्द पर ऐसे श्लेष किया था, उसके साथ ही स्वजन को अपनी आँख खोलने का भी संकेत था । आपश्री किसी को सीधी सीख भाव से ही देते हैं । प्रसंग मिलने पर दे !

सन् १९६५ में डभाण गाँव में रामनवमी का उत्सव हुआ, तब एक स्वजन की मातुश्री मुंबई से पहली बार श्रीमोटा के दर्शन करने आयी । उनको देखकर श्रीमोटा एकदम खड़े हो गये और आँसू के साथ वृद्ध माँ का हाथ पकड़कर बोल उठे, ''मेरे सिर पर हाथ रख, मेरी माँ नहीं है ।'' इसप्रकार प्रथम दर्शन में ही माँ को भीगो दिया । उत्सव पूरा होने के बाद वे मातुश्री बिदा लेने श्रीमोटा के पास आयी । तब आपश्रीने कहा, ''माँ, मुझे दत्तक ले लो । मुझ पर भाव रखना ।'' और वे बा को गले लगे बेटे की तरह । भाव की ऐसी रेलमछेल करने की उनकी कैसी कला !

• • •

१६. हृदयप्रवेश

डभाण गाँव के एक बड़े व्यापारी और दूसरे एक मित्र के साथ श्रीमोटा के पास आने का पहली बार हुआ । श्रीमोटा के दिखावे पर से और बोली पर से उस भाई को हुआ की क्यों लोग ऐसे व्यक्ति के पैरों

पड़ते होंगे ?! कुछ पता न चला । तीन वर्ष बीत गये । उसके बाद दूसरी एक बार उनको श्रीमोटा के पास नडियाद आश्रम में आना हुआ । घर की कार इसलिए बारबार आते । श्रीमोटा उनके व्यापार और इतर प्रवृत्तिओं की ही बात करते । प्रेम से वार्तालाप करते । इतर कोई उपदेश नहीं । 'धीरे धीरे व्यापारी गृहस्थ को श्रीमोटा की लगन लगने लगी । उनके घर के सभी व्यक्ति श्रीमोटा के पास आने लगे । घर की साहबी बहुत-बहुत तब भी आश्रम का छोटे से छोटा काम भी वे करने लगे । वर्षों बीतते वे श्रीमोटा के स्वजन हो गये हैं और आश्रम की प्रवृत्तिओ में सक्रिय रस लेते हैं ।

एक बहन श्रीमोटा का साबरमती आश्रम में दर्शन करने के लिए गयी, तब अन्य व्यक्ति भी थे । बातें चल रही थी । उस दौरान उस बहन के मन में एक जन के विषय में अन्यथा भाव के विचार चल रहे थे । श्रीमोटा ने उनको पकड़ लेते हुए कहा, ''बहन ! हमें ऐसे विचार नहीं करने चाहिए । आपके लिए वह शोभास्पद नहीं ।'' बहन चमक गयी ।

वही बहन एक बार सूरत से वडोदरा जा रही थी, उसी ट्रेन में श्रीमोटा और भीखुभाई नवसारी जा रहे थे । सभी एक ही ट्रेन में पर एकदूसरे को देख न पाये, इतने दूर-दूर के डिब्बे में बैठे थे । इस बहन ने गाड़ी की बाहर गर्दन निकालकर मनोमन चाहा, ''**मोटा**, एक बार दर्शन दो !'' थोड़ी ही मिनट में वे एकदम दौड़ते आये और पूछा, ''मुझे क्यों बुला रही थी ?'' ''दर्शन के लिए !''

• • •

१७. संवाद

दंपती में से एक ही जन श्रीमोटा को चाहता हो और उसे लेकर घर में टंटा होता हो तो आपश्री ऐसी कला करते हैं कि दोनों को उनके प्रति धीरे-धीरे राग हो और दोनों का सुख अंत में बढ़े । एक दंपती के पति श्रीमोटा के भक्त । मौन में बैठने जाय, पर पत्नी को वह पसंद नहीं, इससे झगड़ा हो । इससे श्रीमोटा ने भाई को वैसा करने से मना करा,

तब भी वह भाई तो सभी दूसरा काम करे उतना भाववाला। उनके उत्सवों में भी उत्साह से हिस्सा ले। धीरे-धीरे पत्नी का भाव बदला और पति फिर से मौन में जाते शुरू हो गये हैं।

भाववाले भक्त और भक्त में अधिक भक्ति जगाने को आपश्री कहते, ''मेरे साथ विवाह कर।''

किसी का नाम हो, 'कंचनलाल', 'धीरजलाल', 'प्रकाशवीर', 'हसमुख' आदि, किन्तु हकीकत में उसमें इससे उल्टे गुण हो, तो आपश्री कहते, ''भाई, नाम बदलना पड़ेगा! इतने रहे पर तुम्हें कभी हँसते नहीं देखा।'' ऐसा हसमुखराय को कहते!

कोई ठीक से ध्यान देकर अभ्यास न करता हो तो – ''भाई, ध्यान देकर पढ़ना। नहीं तो मेरे जैसा मुंडन कराना पड़ेगा।'' सिर पर का अपना साफा ऊँचा करके कहते।

कोई अन्यथा प्रवृत्ति या ऐसी भाववृत्तिवाला हो तो कहते, ''कैसा चल रहा है? देखना भाई : मेरी इज्जत न जाय।''

सगेसंबंधी जीवित में वे चूहे-बिल्ली की तरह लड़ते होते हैं और उनमें से एकाद जन की मृत्यु होते ही दोनों श्रीमोटा के आगे जाकर रोने लगे। तब आपश्री कहे, ''जीवित में तो बहुत उसे परेशान किया। अब क्यों बेसलीकापन करते हो? जा, जाकर उसके लिए प्रार्थना किया कर।''

गुजरात राज्य के एक निवृत्त उच्च कक्षा के अमलदार श्रीमोटा के स्मरण याद करते कहे, ''पूज्य श्रीमोटा जब मेरे घर पधारे, तब मेरे पुत्र के सामने देखा और उनकी आँखों में आँसू आ गये। पूरा वातावरण भावमय हो गया। उस अवस्था में उन्होंने मेरे पुत्र को कहा, ''तू तो मेरा छोटा भाई है!'' ऐसे आत्मीय भावों की श्रीमोटा ने झड़ी की। तब से श्रीमोटा ऐसी प्रक्रिया मेरे में कर रहे हैं कि, 'हरिःॐ' का जाप हुआ ही करता है। भाव का उद्दीपन हुआ करता है। मुझे उनकी योजनाएँ, उनका कार्य इतना सारा पसंद है कि मैं अपनी मर्यादाओं में रहकर उनको

साथ दे सकता हूँ। एक व्यापक प्रेमसागर में से मानो लहर आया ही करती हो ऐसा लगता है। उनकी ऐसी लाक्षणिक रीत है।''

कोई स्वजन परीक्षा में बारबार फैल हो रहा हो तो उसे बहुत उत्साह देते और प्रयास न छोड़ने को कहते। परीक्षा प्रारंभ होने से पहले तुरन्त अपने को परीक्षा की तारीख लिखकर बताने का वे कहते, जिससे उनको उसकी याद रहे और लिखकर बतलानेवाले को प्रेरणा रहा करे।

अपनों के प्रति नवों का भाव जागे इसके लिए उनकी सारी संसारी कथा, सगेसंबंधी, धंधा, व्यापार, पढ़ाई-लिखाई वगैरह संबंध से पूछा करते। कोई बार भोजन का अपनेआप आमंत्रण भी ले लेते।

• • •

१८. प्रोत्साहन

किसी भाविक बहन को श्रीमोटा के पधारने के समय बहुत व्यक्तियों का भोजन बनाते हुए घबराहट हो रही हो, 'नर्वस' हो जाती हो, इसलिए सभी तरह से उन पर भाव होने पर भी 'प्रसाद' लेने बुला न सके। तो दो-तीन वर्ष में स्वयं ही उसे कहे कि, ''तुम्हारे यहाँ खीचडी खाने आऊँगा। दूसरा कुछ न बनाना। केवल खीचडी और शाक।'' और अक्षरशः वही करने का हो। फिर भोजन करने से आधे घण्टे पहले ही जाय और अंदर प्रवेश करते ही पूछते, 'ओ... बहन, क्या बनाया है ?... हो गया... शाबाश... लाओ शाक चाखकर देखूँ।'' चखकर कहे, ''अच्छा हुआ है हाँ, ठीक।'' और दूसरी बहन को कहे, ''देखो ऐसा ही बनाना।'' ऐसा कहे इससे उन्हें भोजन में बुलाने का किसको उत्साह न चढ़े ? और यह सब का उद्देश्य क्या ? प्रेममूर्ति को वे-वे भक्त प्रकृति उसका दिव्यप्रेम —— चेतनभाव अर्पित करना ही, जिससे उसके स्वभाव का रूपान्तर हो।

कोई निकट का भाई प्रकृतिवश हो जाय तो उसे अचानक चिल्लाकर सुनाते, ''संसार के सामने क्या देखा करता है ?'' स्थूल को कब तक पकड़ के रखोगे ? कभी भी संसार को छोड़ना तो पड़ेगा ही न ?''

• • •

१९. आत्मीयता

उनके उत्सव के दौरान स्वजन के घर में से केवल माता-पिता आये हो — घर पर लड़के-लड़की को रखकर — तब आपश्री कहते, ''फलाणा या फलाणी को क्यों नहीं लाये ? उसे **मोटा** पर इतना भाव होने पर भी आज नहीं लाये ? यह मुझे पसंद नहीं हंअ...।

• • •

२०. विनोद

छोटे बच्चे मातापिता के साथ आये हो तो आपश्री बच्चे को पहले बुलाते और बड़ी बहन को पूछते, ''माँ का हाथ बँटाती हो ?'' छोटे भाई को पूछते, ''बड़ी बहन को परेशान तो नहीं करते न ? माँ नास्ता रोज करके देती है ? ना करके देती हो तो रोज माँगना !'' एक बार मेरी माँ ने पूड़ा बनाया तो कहूँ, ''माँ, यह तो फीका है ।'' दूसरी बार खाकर कहूँ, ''यह तो बहुत मोटा है ।'' और इसतरह सात बार अलग-अलग पूड़े करके खाये थे !

• • •

२१. सही दक्षिणा

कोई मातापिता अपने बेटे को पर्याप्त प्यार न करते हो वैसे में कोई उन्हें दक्षिणा दे तो कहते,''उसको प्यार करना - वही मेरी दक्षिणा ।''

• • •

२२. भगवान के मार्ग जाने में नियमितता

पूज्य श्रीमोटा एक लोकसंत थे । 'समाज को मुझे बैठा करना है ।' ऐसी उनकी घोषणा थी और इसके लिए उन्होंने समाज के पास से लाखों रुपये प्राप्त कर फिर से समाज के चरणों में रख दिये । समाज के पास से पैसे पाने के लिए ही वे अपने उत्सव मनाने देते । **भादो वद**

नोंध : प्रसंग नं. २२ से ३८ स्व. श्री इन्दुभाई देसाई द्वारा आलेखित और श्री रजनीभाई बर्मावाला द्वारा संपादित करने में आये हैं ।

चौथ उनका जन्मदिन, वसंतपंचमी उनका दीक्षा दिन और रामनवमी उनका साक्षात्कार दिन । इसप्रकार, तीन उत्सव उनके भक्त मनाते ।

ऐसा ही एक उत्सव राजकोट में था । उस उत्सव के प्रमुखस्थान पर अखिल भारतीय कोंग्रेस के निवृत्त प्रमुख श्री ढेबरभाई थे । उत्सव का समय सुबह आठ बजे जाहिर हुआ था । आठ बजे । परन्तु श्री ढेबरभाई आये नहीं । पूज्य श्रीमोटा अपने जाहिर किये कार्यक्रमों को घड़ी के काँटे पर करने का आग्रह रखते । इससे उन्होंने तो ठीक आठ बजे समारंभ की शुरूआत करवा दी । कितनों ने श्री ढेबरभाई आये वहाँ तक राह देखने को कहा, परन्तु पूज्य श्रीमोटा समय पर कार्यक्रम शुरू कर देने की सूचना दी और कहा, ''हम किसी की राह देखकर बैठे रहे यह योग्य नहीं ।''

लगभग साढ़े आठ बजे श्री ढेबरभाई आये । मंच पर श्रीमोटा के पास ही उनकी कुरसी थी । उनके साथ कोई विचारों की लेन-देन हुई । श्रोतागण में बैठे हम सभी ने यह देखा, परन्तु क्या बात हुई यह दूर से किस तरह सुनाई दे ?

पूज्य श्रीमोटा का प्रवचन हुआ तब ही यह समझ में आया । **मोटा** ने तो अपने जाहिर प्रवचन में ढेबरभाई के देर से आने के बारे में जोरदार टीका की । ढेबरभाई को जाहिर में प्रश्न पूछा, ''क्या गांधीबापू ने हमें यह सीखाया है ?''

इस बात पर आगे बोलते उन्होंने अपना दृष्टिबिन्दु रखते हुए साधक के लिए जीवन में नियमितता कितनी आवश्यक है यह समझाया । उन्होंने बतलाया —

''पूज्य गांधीबापू ने हमें गरीबों की सेवा करने के लिए गरीबों की जीवनपद्धति पर जीने को कहा है । हम उनके जैसे जीवनरीति से जीये तो ही उनका हमारे साथ तादात्म्य जन्मे । यदि हम अपनी जीवनपद्धति उच्च रखे तो तादात्म्य नहीं हो सकता । वैसे मैं कहता हूँ कि यदि तुम्हें भगवान के मार्ग पर जाना हो तो उसके साथ संपूर्ण तादात्म्य बनाना होगा । भगवान की बड़े से बड़ी कृति यह कुदरत । उसे देखो । समय पर सूर्योदय

और सूर्यास्त होता है। चन्द्र का क्षय और वृद्धि अतिशय नियमितता से होती है। समय-समय पर ऋतु बदलती है। कैसा सब नियमित चलता है ! तो यदि आपको भगवान के मार्ग पर जाना होगा तो भगवान ने पैदा की यह कुदरत के साथ तादात्म्य बनाना होगा। और वह तब ही जन्मेगा कि जब तुम कुदरत के चक्र जैसी नियमितता रखो।''

समग्र श्रोतागण स्तब्ध रह गये। श्री ढेबरभाई जैसे व्यक्ति की ऐसे जाहिर में फटकार और वह भी उनकी उपस्थिति में ! क्या होगा ? ढेबरभाई को खराब तो नहीं लगेगा ?

परन्तु सभी के आश्चर्य के बीच ढेबरभाई ने बड़ी खेलदिली जतलायी। अपने प्रमुख के भाषण में पूज्य श्रीमोटा की टीका का स्वीकार कर माफी माँगी, परन्तु स्पष्टीकरण देते बतलाया, ''मेरे पैरों में संधिवायु है। मेरी तबियत ठीक नहीं रहती। इसलिए सुबह जल्दी तैयार नहीं हो पाता।''

बीच में ही रोककर श्रीमोटा ने कहा, ''ऐसा हो तो साहब, प्रमुखपद स्वीकार करने से पहले ही मना कर देना था और स्वीकार करो तो नियमितता होनी चाहिए।''

श्री ढेबरभाई ने अपनी भूल का तुरन्त स्वीकार किया।

इस प्रसंग की एक टेढी असर यह हुई कि श्री ढेबरभाई ने पूज्य श्रीमोटा के पास अपनी जो कुछ उलझन होगी उसके मार्गदर्शन के लिए खास समय निकालने को बिनती की। दोपहर के बाद उनकी खास बैठक में उनकी सारी चर्चाविचारणा हुई भी सही।

ऐसी होती है संतों की निर्भयता।

• • •

२३. किसी का भी संकोच नहीं

पूज्य श्रीमोटा श्रीसांईबाबा के आदेश से कराची शहर में नग्नावस्था में घूमे यह प्रसंग तो सभी को पता है, परन्तु ऐसे अन्य कितने प्रसंग नामी नहीं हैं।

हरिजन सेवक संघ में पूज्य श्रीमोटा के उच्च अधिकारी और बाद की जिंदगी में **मोटा** के शिष्य बने श्री हेमंतभाई नीलकंठ के प्रति पूज्य श्रीमोटा को बहुत प्यार । एक बार हेमंतभाई नवसारी हरिजन आश्रम में थे । पूज्य मोटा को उनकी तीव्र याद आयी, दिल में खूब उमंग पैदा हुई । उन्हें मिलने की छटपटाहट पैदा हुई । और जिस स्थिति में थे, उसी स्थिति में चल निकले । उन्होंने मात्र नाड़ेवाली एक चड्डी पहनी थी । शरीर बिलकुल उघड़ा । पैरों में कोई चप्पल नहीं । और **मोटा** तो अहमदाबाद से ट्रेन में चढ़ बैठे और आ पहुँचे नवसारी ! वे जिस वेश में आये उसे देखकर नवसारी में सभी आश्चर्यचकित हो गये ।

पूज्य श्रीमोटा को साक्षात्कार होने के बाद उन्होंने हरिजन सेवक संघ में से त्यागपत्र दिया । निमित्त स्वरूप जो लोग उनके संपर्क में आये और आध्यात्मिक मार्गदर्शन स्वीकारने लगे, उनको वैसा मार्गदर्शन देते । पहले थे श्री हेमंतकुमार नीलकंठ और दूसरे थे श्री नंदुभाई । उनको मार्गदर्शन देने उनके घर पर भी रहते । श्री नंदुभाई की त्रिची और कुंभकोणम् में सोनेचाँदी और हीरा के व्यापार की पीढ़ी । **मोटा** वहाँ भी जाते । उनके कुटुंब में रहते । श्री नंदुभाई के भागीदार स्व. श्री गोपालदास मामा । दोनों की भागीदारी की एन. गोपालदास एण्ड कंपनी चलती । ('एन' नंदुभाई का अंग्रेजी प्रथम अक्षर) गोपालदास मामा के बड़े पुत्र श्री हसमुखभाई कुंभकोणम् की पीढ़ी सँभालते । पूज्य **मोटा** की उन पर खूब अमीदृष्टि । कुंभकोणम् में **मोटा** ने सन् १९५० में आश्रम भी बनाया ।

एक बार **मोटा** ने श्री हसमुखभाई के साथ सुबह साढ़े आठ बजे कार में बाहर जाने का कार्यक्रम बनाया । **मोटा** उनकी राह देख रहे थे । हसमुखभाई किसी विशेष काम में रुक गये थे । इसलिए आश्रम पर समय से न जा पाये । **मोटा** तो सामने ही कार मिलेगी ऐसा मानकर कुंभकोणम् के आश्रम में से निकल पड़े । पर कैसे ? लगभग अर्धनग्न दशा में । और जो कुछ शरीर पर पहना था वह भी चित्रविचित्र ! सिर पर गांधी टोपी, कमर में एकमात्र लंगोट और पैर में चप्पल ! चलते–

चलते भर बजार में डेढ़ मील जितना रास्ते में से होकर उसी वेश में ही वे तो पीढ़ी पर आये ! ऐसी थी उनकी बेफिकराई ! सचमुच संतों को कोई विधिनिषेध नहीं होते। ऐसा करे या ऐसा न करे ऐसा कोई पैमाना उनको लागू नहीं हो सकता ।

• • •

२४. कोई काम निम्न नहीं

सूरत हरि:ॐ आश्रम के पास में कुरुक्षेत्र का महादेव का मंदिर आया हुआ है। वहाँ एक बार महारुद्र यज्ञ हुआ था। यह बात सन् १९६१ की है। सात दिन में दस हजार रुपए जितना खर्च हुआ था। पच्चीस ब्राह्मण एक साथ बुलंद आवाज से लाउड स्पीकर में वेद की ऋचाओं का गान कर रहे थे। वातावरण दिव्य था। सैंकड़ों लोग रोज देखने आते ।

उस यज्ञ के प्रारंभ के दिन ब्राह्मणों ने पूज्य श्रीमोटा को सम्मानीय स्थान देकर पूजा की । यजमान दंपती ने पूज्य श्रीमोटा को तिलककर माला पहनाई । पूरे यज्ञ के अधिष्ठाता देव मानो पूज्य श्रीमोटा हो ऐसा वातावरण था । यह दृश्य विरल था ।

एक तरह से यह एक अनोखी घटना थी । सारे ब्राह्मण समाज के बीच आकर ऐसे ब्राह्मणेत्तर व्यक्ति को ऐसा सम्मान दे ऐसा प्रसंग अकल्पनीय था । हजारों वर्ष से ब्राह्मण न हो ऐसों को यह स्थान नहीं ही दिया जा सकता ऐसा सनातनी ब्राह्मण मानते आये हैं। पूज्य श्रीमोटा जाति से भावसार। इससे वे कारीगरों की जाति के माने जाते। तब भी उन्होंने किये साक्षात्कार से ब्राह्मणों ने उनका ऐसा अद्वितीय स्थान दिया हो ऐसा संभव सही। ब्रह्मज्ञानी को कोई कुछ भी बाधा नहीं होती ऐसा भी स्वीकार किया जाता है ।

ऐसा सम्मान होने पर भी एक दिन ढाई घण्टे के लिए पूज्य श्रीमोटा ने जो काम स्वीकार किया यह तो दूसरे छोर का था ।

आश्रम के द्वार पर इस उत्सव के दौरान पानी की एक बड़ी परब शुरू की। यहाँ पानी पिलाने के लिए पूज्य श्रीमोटा बैठे थे। पांडवों के

राजसूय यज्ञ में श्रीकृष्ण ने जूठी पत्तल उठाने का काम किया, वह प्रसंग उनको देखकर अनेक के मन में ताजा हुआ होगा । सिर पर साफा, शरीर उघड़ा और कमर पर मद्रासी लुंगी । केवल अकेले बैठे थे । पानी देते और आवाज देते जाय ''मुझे कोई छूना नहीं । यहाँ पाई पैसे रखो । मेरा वेतन कैसे निकलेगा ?''

इसप्रकार, **मोटा** ने अपना अनोखा व्यक्तित्व प्रकट किया । आश्रम के द्वार पर पानी पीनेवाले में स्वाभाविक ही आश्रम देखने की जिज्ञासा भी जागे । इससे वे लोग अंदर आये और सभी जगह घूमते । ''इस आश्रम के महाराज कौन ?'' ऐसे सभी खोजे भी सही । पानी पीते समय उनको कहाँ से ख्याल हो कि आश्रम के जो अधिष्ठाता देव के दर्शन करना वे चाहते हैं, वही उन्हें पानी दे रहे हैं ! उन्होंने मात्र अपनी स्थूल प्यास छिपायी, परन्तु कोई महान ठाठमाठवाले वैराग्य और संन्यस्त से देदीप्यमान ऐसे गादीपति मठाधिकारी महाराज के दर्शन करने की सूक्ष्म तृषा वे छिपा नहीं सके ।

पूज्य श्रीमोटा को किसी का छोटापन न था । किसी का संकोच नहीं । क्षोभ भी नहीं । सच्चे ऊर्ध्व प्रकार की लोकोत्तरता उनमें थी ।

• • •

२५. श्रीमोटा की रूढिभंजकता

संतों के बाह्यव्यवहार से हम उनका मूल्यांकन नहीं कर सकते । ऐसा ही **मोटा** के विषय में भी सही । कोई व्यक्ति उद्‌घाटन कराने, विवाह कराने, जनोई कराने, खातमुहूर्त निकालने के लिए पूज्य श्रीमोटा को आमंत्रण दे तब **मोटा** आमंत्रण देनेवाले भाई का रुख देखकर मुहूर्त खोजने पंचांग आदि लेकर बैठ जाते ।

पर आंतरिक रूप से वे कैसे रूढिभंजक थे, उसका एक सुंदर प्रसंग है । **मोटा** के स्नेहीजन की एक पुत्री के विवाह निश्चित हुए । बुजुर्गो की इच्छा पूज्य श्रीमोटा के हाथ विवाहविधि करवानी थी । सब कुछ निश्चित हो गया । आमंत्रण भी दे दिये । सभी ही पूर्वतैयारी हो चूकी थी ।

विवाह के एकाद – दो दिन पहले विवाह करनेवाली कन्या आश्रम में आयी । पूज्य श्रीमोटा के साथ वह बात करने आयी थी । वह कुछ उलझन में थी । उसने पूज्य श्रीमोटा को कहा, ''**मोटा**, हम ने तो परसों विवाह का सब निश्चित कर दिया है । और मैं तो आज मासिकधर्म में हूँ । तो क्या होगा ?''

''क्यों बहन ! तुम्हे इतनी सारी चिंता होती है ?'' पूज्य श्रीमोटा ने पूछा ।

उस बहन ने उत्तर दिया, ''**मोटा**, मैं तो कोई इन सभी में बहुत मानती नहीं, परन्तु आप जैसे संतपुरुष के हाथ से इस स्थिति में विवाह करवाने में कोई दोष तो नहीं लगेगा ?''

पूज्य श्रीमोटा ने पूछा, ''तुम्हें कोई आपत्ति है ? मुझे कोई आपत्ति नहीं । पर यदि तुम्हें आपत्ति हो तो हम विवाह मौकूफ रखे ।''

उस बहन के मन पर से मानो भार उतर गया हो ऐसे सहसा ही बोल ऊठी, ''**मोटा**, आपको आपत्ति न हो तो मुझे तो कोई आपत्ति नहीं ।'' पूज्य श्रीमोटा ने अधिक में कहा, ''तुम्हें किसी से कहना नहीं । हम दो ही जानते हैं !''

निश्चित दिन और समय में ही विवाह हुए । उस दिन वह मासिकधर्म में थी । ऐसी थी **मोटा** की रूढिभंजकता ।

• • •

२६. सद्‌गुरु का क्रोध तो कृपाप्रसादी

एक बार स्व. श्री कांटावाला साहब के घर दोपहर के बाद सत्संग शुरू हुआ । उस दिन पूज्य मोटा की तबियत ठीक न थी । दम खूब चढ़ा था । पर जब शारीरिक वेदना बढ़े तब–तब वे सत्संग करते या भजन लिखते । साधना के तीन अलग–अलग मार्ग के विषय में बात चली । बीच–बीच में गीता के कितने सारे श्लोक और उसके अर्थघटन की भी बात चली । डेढ़ घण्टे तक सत्संग चला ।

इस सत्संग में पूज्य मोटा अपने आवाज की खूब ऊँची पिच पर से गर्जना कर करके बोलते थे । खूब ही रंग में थे । इसलिए डेढ़ घण्टे

तक जब कुछ बोलते बंद हुए तब मुझे प्रश्न पूछने का मन हुआ । यह मन होने का कारण तो गीता के कितने ही श्लोकों का **मोटा** ने जो अर्थघटन किया वह खूब ही मौलिक और अनोखा था । इससे दूसरे एक श्लोक के विषय में उनका अर्थघटन जानने की इच्छा जागी ।

मैं प्रश्न ऐसे पूछना चाहता था, ''**मोटा**, स्वधर्म में श्रेय है और परधर्म भयावह —— ऐसा गीता में कहा है । उस बारे में प्राचीन भाष्यकार स्वधर्म अर्थात् चतुर्वर्ण का धर्म ऐसा कुछ अर्थ करते हैं । आधुनिक युनिवर्सिटी से शिक्षा पाये विद्वान उसे व्यक्ति के अपने व्यवसाय के साथ जोड़ते हैं । तो आपकी दृष्टि से स्वधर्म अर्थात् क्या ?''

ऐसा प्रश्न मन में बिठाकर मैं बोलने जा रहा था । अभी तो शुरू ही किया, वहाँ पूज्य श्रीमोटा की क्रोधाग्नि ज्वालामुखी की तरह धधक उठी ।

''मूर्ख है । प्रोफेसर हुआ है । गधा । भान नहीं ? यह मरने पड़ा हूँ । बोला नहीं जाता । तब पूछ–पूछ करता है । आपको मेरे शरीर की कहाँ पड़ी है ? अक्ल होनी चाहिए ?'' ऐसे तो दूसरे कितने शब्द निकले होंगे, परन्तु यह सभी याद नहीं रहे, क्योंकि एकदम हमले से मन बहरा हो गया था ।

चालीस से पचास व्यक्तियों के बीच ऐसे टूट पड़ना, यह कोई छोटी–सी बात न थी । पर कौन जाने मुझे अंदर से 'सद्‌गुरु हो वह तो ऐसा व्यवहार करे भी सही । हमें खराब नहीं लगाना है ।'' ऐसा कुछ लगा । इससे मैंने तो दो हाथ जोड़कर धीरे से नम्र आवाज से कहा, ''**मोटा,** मेरी भूल हुई, माफ करो ।''

उपस्थित रहे सभी में सन्नाटा छा गया । सभी अवाक हो गये । वातावरण स्तब्ध हो गया ।

पाँच, दस मिनिट के बाद सूरत से छापराभाठा गाँव से आये ऐसे पूज्य श्रीमोटा के एक स्वजन खड़े हुए । उन्होंने **मोटा** से अनुमति ली । **मोटा** ने आनंद से उन्हें बिदा किया । उनके पीछे एक बहन खड़ी हुई । वह उस भाई के मित्र की पत्नी थी । यजमान पत्नी भी सही ।

उन्होंने **मोटा** को नमस्कार करके कहा । ''इन्दुभाई, आना ।'' **मोटा** यह सब देखा करे । मैं उनकी बिलकुल पास के पाट के पास बैठा था । इससे झुककर मेरे कान के पास मुख रखकर खूब धीरे से **मोटा** ने मुझे पूछा, ''वह बहन तुम्हें कहाँ से पहचानती है ?'' मैंने कहा, ''मेरे दूर की संबंधी है !''

बैठे सभी देखते रहे । उनके मन में प्रश्न उठा होगा ''अभी तो इस भाई का अपमान करके उसकी दुर्दशा कर डाली । और अब पाँच ही मिनट में निजी बात करने लग गये ?'' बाहर निकलने के बाद कितनों ने ऐसे उद्‌गार व्यक्त भी किये थे ।

पूज्य **मोटा** के ऐसे व्यवहार से सचमुच मेरे दिल को **मोटा** के प्रति बूरा लगा न था, परन्तु दिल को एक गहरी चोट लगी थी । इसके कारण उस दिन रात को बाहर खुल्ले में सो रहा था, तब बारह बजे जाग गया । मैं उठा । घर की चाबी अपने तकिये के नीचे ही हमेशा रखता । इससे वह लेकर घर खोला और मेरी हररोज की उपासना की जगह पर बैठा ।

दिल में हुई झनझनाहट को नामस्मरण में मोड़ने का प्रयत्न किया । पूज्य **मोटा** की मूर्ति के प्रति अनिमेष आँखों से देखते-देखते दिल में से आत्मनिवेदन हुआ ''प्रभु, आपने जो कुछ किया है, यह योग्य ही है । मेरे अंदर रहे कोई तत्त्व को ठीक करने के लिए आपने इसतरह किया होगा । मेरी कसौटी करने के लिए भी किया हो । आपने जो कुछ किया है, मुझे उससे कोई शिकायत नहीं । परन्तु प्रभु, इतना तो आपके चरणों में निवेदन है कि आपके शरीर को त्रास देने का मेरा कोई इरादा न था । आपको सहज भी दुःख देने का मन में स्वप्न में भी न था । मुझे माफ करना । प्रभु, आपके शरण में हूँ । मारना या तारना यह आपके हाथ की बात है ।''

इसप्रकार का निवेदन डेढ़ दो घण्टे तक बारबार किया । दिल की गहराई में से जन्मे आत्मनिवेदन के द्वारा कुछ हल्कापन अनुभव किया, साढ़े तीन बजे तैयार होकर मेरे नियमानुसार चार बजे मेरी पत्नी के साथ **मोटा** के पास उपस्थित हुआ ।

मैं सद्‌गत श्री कांटावाला के घर की सीढ़ियाँ चढ़ता था । इतने में **मोटा** की आवाज आयी, ''आओ, भाई आओ !'' मेरी पत्नी प्रथम पैरों पड़ी और फिर मैं पैरों में पड़कर नीचे बैठा । मुझे एक बात का बहुत आश्चर्य हुआ । हमारे प्रवेशद्वार की ओर पूज्य **मोटा** का सिर था । विरुद्ध दिशा के सामने के दिशा में उनके पैर थे । **मोटा** हमें देख सके ऐसा न था । उस समय लाईट बंद थी । तो **मोटा** ने हमें आते हुए कैसे देखा ? मैं बैठा की तुरन्त **मोटा** बोले, ''बोल भाई, कल शाम को तू क्या पूछता था ?'' यह प्रश्न करते ही मुझे मन में सहसा हुआ कि, ''अवश्य **मोटा** ने मेरा आत्मनिवेदन सुना ।''

फिर तो मैंने पहले के दिन पूछने के सोचे हुए प्रश्न का उत्तर उन्होंने दिया । उत्तर से मेरे मन का समाधान हुआ । ''**स्वधर्म अर्थात् आत्मा का धर्म और परधर्म अर्थात् प्रकृति का धर्म ।** मनुष्य अपनी प्रकृति के जोरदार रुखों से व्यवहार करे, तब हमेशा दुःखी होता है । परन्तु प्रकृति के करणों को मठारकर उन्हें ऊर्ध्वगामी बनाकर संसारव्यवहार में व्यवहार करे तो उसे दुःखी होने का न हो, क्योंकि यह आत्मा का धर्म है ।''

• • •

२७. शब्दार्थ की अनुभूति

हम सभी भाषा का उपयोग अतिशय शिथिलता से करते हैं । शब्द का अर्थ सचमुच हमारे जीवन में साकार हुआ है कि नहीं उसकी थोड़ी भी चिंता किये बिना सोचे समझे उसका प्रयोग करते हैं । संतों का ऐसा नहीं । जीवन की अनुभूति के साथ कुछ भी संबंध न हो, ऐसे शब्दप्रयोग वे भाग्य से ही करते हैं ।

पूज्य श्रीमोटा में भी यह लाक्षणिकता दृष्टिगोचर होती । एक लब्ध-प्रतिष्ठित साहित्यकार उनको मिलने आये । गुजरात साहित्य परिषद के साथ वे घनिष्ठ रूप से जुड़े थे । पूज्य श्रीमोटा ने साहित्य परिषद को एक-दो दान दिये थे । उस दान की रकम उसके मूलभूत उद्देश्य के लिए यथार्थरूप से उपयोगी हो, इसके लिए **मोटा** अतिशय ध्यानपूर्वक मनोयोग रखते ।

कभी-कभार साहित्य परिषद के पास से जानकारी मँगवाते । इस साहित्यकार मित्र को ये कुछ अखरता ।

बातबात में उन्होंने पूज्य श्रीमोटा से कहा, ''**मोटा**, आपको तो दान देकर निःस्पृहता रखनी चाहिए।'' **मोटा** ने कहा, ''साहब, 'निःस्पृहता' शब्द आपके क्षेत्र का नहीं है। आप तो अकारण शब्दप्रयोग करो। आपने निःस्पृहता रखी है सही ? उसे बनाये बिना आप दूसरों से किस तरह से कह सकते हो ? आपके साहित्य के क्षेत्र में हम कोई चंचुप्रवेश करते हैं ? तो आपको आध्यात्मिक क्षेत्र में चंचुप्रवेश करने का अधिकार किस तरह मिले ? 'निःस्पृहता' यह आध्यात्मिक क्षेत्र का विषय है — हमारा विषय है। यह हमारा है कि नहीं वह देखना हम पर ही छोड़े ।''

ऐसे सनसनाते उत्तर से वे साहित्यकार मित्र मौन हो गये। उन्हें उस बात की गहरी प्रतीति हुई हो ऐसा लगा।

इसप्रकार, संतों को हम अनेकबार हमारे ही नियम अनुसार मापते हैं। उनके व्यवहार का कानून और हमारा कानून अलग है, इस बात का ख्याल हमें नहीं रहता।

• • •

२८. भगवान के लिए रुदन क्यों नहीं ?

पूज्य श्रीमोटा का जहाँ-जहाँ पधारना होता, वहाँ-वहाँ सुबहशाम सत्संग चलता ही रहता। श्रीमोटा को अपना अहमदाबाद कॉर्पोरेशन के कमिशनर और बाद में गुजरात राज्य के चीफ इन्जीनियर और पद की दृष्टि से नायब सचिव तथा हाउसिंग बोर्ड के चेरमेन सद्गत श्री के. एम. कांटावाला साहब के यहाँ ऐसे अनेक प्रसंग अनेक बार पैदा होते ।

मोटा के साथ बहुत वर्षों से संबंध में ऐसा एक डॉक्टर का परिवार भी दर्शन के लिए बार-बार आता। डॉक्टर का छोटा पुत्र एम. बी. बी. एस. के अंतिम वर्ष में था। उस दौरान हलके प्रकार की मानसिक बीमारी का वह भोग बना। परीक्षा की तैयार न कर सके। किनारे आयी नौका डूबे ऐसी परिस्थिति पैदा हुई थी। इससे, डॉक्टर साहब का पूरा परिवार

चिंतित रहता । बारबार मानसिक बीमारी का भोग बने पुत्र को लेकर समग्र परिवार पूज्य मोटा के पास आता ।

पूज्य श्रीमोटा की कला भी अनोखी है । उस लड़के के पास ही ब्लडप्रेशर मपाते, उसके पास इन्जेक्षन लेते । उसकी छोटी बहन को कहे, ''भाई को खूब प्यार करना । उसे प्रेम देना । आपके प्रेम से ही वह अच्छा होगा ।''

डॉक्टर को सहज सख़्त होकर कहते, ''तुम बारबार लड़के को टोक-टोक करते हो, इसलिए ही ऐसा हुआ है । उसे टोकना बंद कर दो । उसे प्यार करो । अपने विचारों का दबाव भी उस पर न करो ।''

ऐसे ही एक प्रसंग में डॉक्टर साहब का परिवार आया । बहुत देश-विदेश की बात हुई । उस परिवार के सदस्यों ने एक के बाद एक बिदाई ली । एक मात्र लड़के की माँ पीछे रही । **मोटा** के पैर पड़ते हुए वह फूट-फूटकर रो पड़ी । पुत्र का क्या होगा, इसकी चिंता उन्हें सताती थी ।

पूज्य **मोटा** उसे हिंमत देते हुए बोले, ''तुम शक्ति स्वरूप हो । शक्तिशाली हो । हिंमत रखो । तुम ही उसे अच्छा कर सकोगी ।''

इस शब्दों से इस बहन को दिलासा प्राप्त हुआ और कुछ स्वस्थ होकर गई ।

मैं दूर बैठा था । इस बहन के जाने के बाद पूज्यश्री ने उंगुली के संकेत से मुझे पास बुलाया और बोले, ''लोग इतना भगवान के लिए रोते हो तो !''

इस शब्द में पूज्य श्रीमोटा के दिल का दर्द व्यक्त हुआ था । पूज्य श्रीमोटा की इस बारे में जागृत सभानता से मैं उन्हें मनोमन वंदन करता रहा ।

• • •

२९. अध्यापक के पास रसोई करवाई

एक बार अहमदाबाद में पधारना हुआ । तब अनेक स्वजन बैठे थे । उस समय एक स्वजन समान अध्यापक की पत्नी को **मोटा** ने पूछा, ''प्रोफेसर कोई बार रसोई करते हैं ?''

शिक्षिका बहन ने मना किया । **मोटा** बोले, ''तो क्या हमने कोई गुलामी लिख दी है ? तुम नौकरी करती हो तो वह भी भले ही रविवार को रसोई करे !''

वे प्रोफेसर आश्रम के किसी काम में पूज्य नंदुभाई को मदद करते थे । वहाँ दूर बैठे बैठे सुने । उस दिन शनिवार था । दूसरे दिन रविवार को सत्संग चलता था । **मोटा** ने अध्यापक की शिक्षिका पत्नी से पूछा, ''आज उसने रसोई की थी ?''

''नहीं, **मोटा** ! उन्हें तो आज कॉलेज में सुबह के खास वर्ग थे ।'' वह बहन बोली ।

मोटा सभी के हास्य की लहर के बीच बोल उठे, ''ऐसे ही सभी पति अपनी पत्नी को उल्लू बनाते हैं !''

अध्यापकभाई ने जब यह सुना तब उसके मन में हुआ, ''**मोटा** कोई मजाक करते नहीं लगते । वे सचमुच कुछ गंभीर ढंग से सूचित करते हैं ।'' क्यों ऐसा सूचित करते हैं, यह उनको समझ में नहीं आया । पर उनको **मोटा** जो कुछ कहे वह करने के लिए भक्तिभाव से उमंग सही ।

मोटा ने उस बहन को सूचना दी, ''इस रविवार को वह कैसी रसोई बनाता है, उसे मुझे पत्र लिखकर बतलाना ।''

दूसरे रविवार को प्रोफेसर साहब ने तो गंभीरता से पूज्य श्रीमोटा के सूचन का अमल करने का प्रारंभ किया ।

ऐसे थोड़ी हररोज के जीवन आवश्यक पर्याप्त रसोई बनाना तो अध्यापक को आता था, परन्तु उन्हें कोई मिष्टान्न बनाने की आदत नहीं । तब भी उन्होंने तो पूरनपूरी बनाने का निर्णय किया । जीवन में पहली बार !

अपनी पत्नी को कहा, ''तुम्हें रसोई के अंदर आना नहीं हैं । मुझे समझ न आये तो मैं पूछूँगा ।''

उन्होंने पूरनपूरी, कढी, फीकी दाल, भात और शाक बनाया । सभी ने उमंग से खाया । अध्यापक को पता न चले इस तरह उनकी पत्नी ने

सारा वर्णन पूज्य श्रीमोटा को लिखा । उस रविवार **मोटा** अहमदाबाद में न थे ।

थोड़े दिन बाद फिर से अहमदाबाद में **मोटा** को आना हुआ ।

दोपहर के समय सत्संग शुरू हुआ । अध्यापक मित्र की पत्नी को **मोटा** पूछा, ''क्यों ? कैसी पूरनपूरी बनायी थी प्रोफेसर ने ?''

''बहुत अच्छी !''

'बहुत अच्छी यानी कैसी ?'' **मोटा** ने पूछा । उत्तर मिला, ''**मोटा**, पूरन अधिक और ऊपर आटा की खूब ही पतली न दिखे ऐसी परत !''

सभी के खिलखिलाहट हास्य के बीच **मोटा** ने कहा, ''असली कहावत है कि वर का बखान कौन करे ? तो वर की माँ ! अब नये जमाने की कहावत बनेगी । वर का बखान कौन करे ? तो वर की पत्नी !''

फिर **मोटा** कहे, 'मैं कैसे जानूँ कि कैसी पूरनपूरी बनाते हैं ? मेरे लिए एक बार बनाकर लाये तब सही ।'

एक बार मणिनगर में श्री सी. डी. शाह साहब के जन्मदिन पर पूज्य श्रीमोटा का पधारना हुआ । उस दिन रविवार था । इसलिए अध्यापक मित्र ने अपने हाथ से पूरनपूरी तैयार की और पूज्य **मोटा** के लिए छः पूरनपूरी ले गये । भोजन के टेबल पर स्वयं एक लेकर **मोटा** ने सभी को एक-एक बाँट डाली ।

दोपहर में सत्संग शुरू हुआ । **मोटा** ने सभी को संबोधन करके कहा, ''भाईओं, रविवार को प्रोफेसर रसोई बनाते हैं । जाना !'' फिर अध्यापक की पत्नी को संबोधन करके कहा, ''भले न वह ऊँचानीचा होता ! पता तो चले कि किसी को रास्ते से भोजन के लिए ले आये वह ! पत्नी की क्या हालत होती है उसका भान तो हो !''

इसप्रकार, आठ दस महीने चला । फिर एक दिन अध्यापक मित्र को कहे, ''अब अपने साथ रखकर अपनी बेटी को सीखाना । पराये घर भेजनी है न ।''

ऐसी थी स्वजनों के हृदय में प्रवेश करने की **मोटा** की अनोखी रीत । संत कैसा लतीफा करते हैं, उसका यह एक उत्तम उदाहरण है ।

संतों के व्यवहार को कौन समझ पाया है ?

• • •

३०. सूक्ष्मभरी स्निग्धता

अहमदाबाद में स्वजन के यहाँ पूज्य श्रीमोटा का पधारना हुआ । उस दिन कोई भाई पूज्य मोटा को 'ॐ नमः शिवाय' लिखे लम्बे बड़े पोस्टर दे गया । पूज्य मोटा अपने पास कुछ संग्रह कर न रखते । वे उपभोग में न मानते, उपयोग में मानते । प्रत्येक वस्तु का उपयोग कर लेना । पाई पाई का उपयोग कर लेना ऐसा उनका सतत भाव ।

मोटा तो वे पोस्टर चार चार आने में बेचने लगे । बहुतों ने लिये । ऐसे में यजमान के एक वकील मित्र आये । उन्हें संत और भक्ति में बहुत अनुराग ।

मोटा का जहाँ-जहाँ पधारना होता, वहाँ-वहाँ उनके आगे एक टेबल पर बड़ी थाली रखी ही हो । सभी पैरों पड़े और पूज्य श्रीमोटा के चरण में कुछ भी रखना हो, उसे थाली में रखे ।

वे वकील मित्र पूज्य **मोटा** के पैरों पड़े और थाली में ग्यारह रुपये रखे । **मोटा** ने उन्हें 'ॐ नमः शिवाय' लिखा पोस्टर दिया । उन्होंने तो लिया और मेरे परिचित होने से मेरे कंधे पर हाथ रखके मेरे पीछे बैठने जा रहे थे, वहाँ तो **मोटा** बोल उठे, ''चार आने दो ।'' वकील मित्र कहे, ''किसके ?'' तो कहा, ''इस पोस्टर के ।'' वकील ने उत्तर दिया, ''**मोटा**, थाली में ग्यारह रुपये तो रखे ।'' **मोटा** ने कहा, ''यह तो पैरों पड़ने के हैं । उस समय थोड़े ही पता था कि यह पोस्टर मिलनेवाला है ? वह भले रखे । इसके अलग से चार आने दे !''

ऐसी सूक्ष्मतापूर्ण स्निग्धता और विक्रयकुशलता देखकर उपस्थित सभी खिलखिलाकर हँस पड़े । उस वकील मित्र को चार आने देने पड़े । वह लिए तभी **मोटा** शांत हुए ।

ऐसी थी पूज्य मोटा की हेतुसभानता ।

• • •

३१. वर्तमानपत्र बिना चले

अहमदाबाद के एक कलाकार के घर पूज्य श्रीमोटा को जाने का हुआ । शहर से बहुत दूर एक गाँव की सीमा के तालाब के उस पार खेतों में उनका स्टुडियो और मकान । पूज्य मोटा आये । सभी जगह घूमकर स्टुडियो देखा । खूब एकांत स्थान उनको बहुत अच्छा लगा । उन्होंने खूब संतोष व्यक्त किया* । आराम करते-करते उनको अचानक एक विचार आया । कलाकारभाई को बुलाया और पूछा, ''आप अखबार पढ़ने के लिए क्या करते हो ? इतने दूर आपको अखबार कैसे मिलेगा ? डाक में मँगवाते हो ?''

उस कलाकार मित्र ने उत्तर दिया, ''**मोटा**, मैं वर्तमानपत्र पढ़ता ही नहीं । मुझे उसकी कोई आवश्यकता नहीं लगती ।''

इससे, **मोटा** ने एकदम जोर से श्री नंदुभाई को बुलाया, ''नंदुभाई, नंदुभाई ! देखो, मैं कहता न था कि वर्तमानपत्र पढ़े बिना चले !''

नंदुभाई अन्यत्र स्टुडियों का निरीक्षण कर रहे थे । वे निकट आये । इसलिए **मोटा** ने उन्हें उपरोक्त कहा ।

जगत के पदार्थों और घटनाओं में ही यदि हमारा मन रमा करे तो वह मन इन्द्रिय अनुभव से आगे बढ़कर दिव्यता की ओर नहीं जाता । ऐसा होने में उसे अवरोध-पैदा होता है । इसलिए ही आध्यात्मिक मार्ग पर जानेवाले को वर्तमानपत्र बहुत पढ़ना नहीं ऐसा कुछ स्वीकार हुआ है ।

• • •

३२. चमत्कार या कृपादृष्टि

पूज्य **मोटा** ने अपने स्वजनों के कितने ही बालकों के नाम 'हरि' रखा था । ऐसे पाँच-छः लड़के हैं, जिनका नाम 'हरि' है । मेरे मन में ऐसी एक समझ सही कि पूज्य **मोटा** को पूर्वजन्म में जिसके साथ कोई

* श्री कांतिभाई पटेल, शिल्पकार चांदलोडिया, अहमदाबाद ।

घनिष्ठ निमित्त होगा, उनका नाम उन्होंने 'हरि' रखा होना चाहिए ।

मोटा की सेवा में रहते एक दंपती के पुत्र का नाम भी हरि । उसके संदर्भ में यह बात है ।

गुजरात राज्य के औद्योगिक विभाग के ओफिस सुप्रिन्टेन्डन्ट श्री सोनी साहब के घर शाहपुर दरवाजा के बाहर सर्वोदयनगर में पूज्य श्रीमोटा का पधारना हुआ । आज तो सोनी साहब का परिवार पूज्य **मोटा** के स्वजन परिवार के लिए परिचित । पर जिस प्रसंग की बात लिखता हूँ, उन दिनों में स्वजनों में से बहुतों को उनका परिचय नहीं था । उस दिन दोपहर के बाद पूज्य **मोटा** के पास कोई मिलनेवाला नहीं आनेवाला था । उस दिन मैं और मेरी पत्नी वहाँ चले गये ।

पूज्य मोटा तकिया लगाकर भजन लिखा करे । सेवा में रही बहन* आयी । **मोटा** उन्हें बुलाकर कहे, 'देख, तेरे हरि पर भजन लिख रहा हूँ ।'

वह बहन कहे, ''ऐसा हो ? मेरा हरि वह कोई भगवान है कि आप उसके लिए भजन लिखो ?''

मोटा ने कहा, ''माँ जशोदा को थोड़े ही पता था कि उनका कृष्ण भगवान था ? माँ के मन तो अपना बालक ।''

बहन ने उत्तर दिया, ''**मोटा**, मेरा हरि तो इतना तूफानी है कि मुझे तो उसने परेशान कर दिया है । वह फिर क्या भगवान होगा ?''

मोटा कहे, ''तू नहीं मानेगी ?'' वह बहन कहे, ''मुझे कोई चमत्कार बताओ तो मैं जानूँ ।''

ऐसा बोलते तो वह बोली पर **मोटा** की आँख में आँसू आ गये । मैं सामने बैठा आश्चर्यचकित होकर देखता रहा । भावाश्रु के साथ **मोटा** बोले, ''क्या मैंने आपको मानवातीत शक्ति के दर्शन नहीं करवाये ?''

ऐसा कहकर **मोटा** फिर से भजन लिखने लगे । इसलिए मैं उठकर रसोई में गया । वहाँ वह बहन, मेरी पत्नी और मैं ऐसे तीन जन बैठे । मैंने कानोकान सुना था सही पर स्वयं भरोसा करने के लिए पूछा, ''आपको **मोटा** ने क्या मानवातीत शक्ति के दर्शन करवाये थे ?''

---

* श्रीमती जयश्रीबहन शेरदलाल ।

तब उन्होंने **मोटा** की स्वयं अद्‌भुत ढंग से अनुभव की एक कृपादृष्टि की बात की । उनकी प्रथम प्रसूति के समय ('हरि' के जन्म के समय) उन्हें किसी भी प्रकार की प्रसूति की पीड़ा न हुई थी । इतना ही नहीं, पर उस समय पूज्य **मोटा** डभाण थे । वहाँ उन्होंने स्वयं उस पीड़ा को भोगा था ।

कैसी कैसी अद्‌भुत कृपादृष्टि संतों की होती है ! उसके कोई नियम या कारण खोजने जाये तो न मिले ।

• • •

३३. श्रद्धा का बल

संस्कृत में एक बड़े विद्वान प्राध्यापक (अनुपराम भट्ट) । वेद, उपनिषद, गीता और अन्य बहुत सारे शास्त्रों के वचन उन्हें कंठस्थ । नम्र भी बहुत । सज्जन और संस्कारी पुरुष । ऋजु भी बहुत ही ।

पूज्य श्रीमोटा भाग्य से ही शास्त्रों के आधार पर किसी के साथ सत्संग करते । खाली-खाली शास्त्रों की कोरी-कोरी समझ के आधार पर होते वितंडावाद की ओर उन्हें बड़ी अप्रियता थी । तब भी इस अध्यापक के साथ खूब खिलखिलकर सत्संग करे । इस प्राध्यापक को भी संतों में बड़ी दिलचस्पी और संतों की कृपादृष्टि पर बहुत ही श्रद्धा ।

एक बार पूज्य श्रीमोटा उनके घर पधारे । सुबह पूज्य श्रीमोटा के आगमन के बाद आरती आदि करके पूजा की । फिर परिवार के सदस्यों का एक के बाद एक पहचान कराने का शुरू किया ।

प्रत्येक का परिचय देते हुए प्राध्यापक साहब ने उन प्रत्येक को सहन करने पड़ते किसी शारीरिक दर्द या दुःख के विषय में भी निर्देश किया । इस विषय में कोई बाकी न रहा । इससे, **मोटा** कुछ अकुलाते हो ऐसे बोल उठे, ''साहब, मैंने तो कोई होस्पिटल खोली है कि मुझे यह सब कह रहे हो ? प्रत्येक को किसी अच्छे डॉक्टर को बताओ ।''

इसप्रकार, बात वहाँ अटकी । शाम चार बजे अचानक पूज्य श्रीमोटा को क्या स्फुरित हुआ वह समझ नहीं आया और अचानक

प्राध्यापक साहब को जोर से आवाज देकर बुलाया और पूछा, ''सुबह तुम में से किसी को हिस्टीरिया आता है, ऐसा कुछ कहते थे ?'' सभी में से मात्र एक हिस्टीरियावाले को **मोटा** ने पकड़ा ।

प्राध्यापक ने उत्तर दिया, ''**मोटा**, मेरे सबसे छोटे जमाई के लिए कहता था । उन्हें बहुत समय से मूर्छा का रोग है ।''

''ऐसा ? तो उनको बुलाओ न !'' **मोटा** ने कहा । तुरन्त उस भाई को बुलाने में आया । उस भाई के साथ बात करते-करते **मोटा** ने कहा, ''मैं कहूँगा वह होगा तुम से ?'' उस भाई ने हाँ कही । **मोटा** ने कहा, ''अभी के अभी तू जा और तेरा एक फोटो खिंचकर मैं छः बजे निकलूँ उससे पहले मुझे दे जा ।'' और दूसरा नामस्मरण वगैरह की सूचना दी ।

सामान्य रूप से ऐसी जो कोई कुछ समस्या हल करने का निमित्त पूज्य मोटा को खड़ा हो तब वैसे व्यक्तिओं की तस्वीर अपने तकिये के नीचे रखकर *मोटा* हमेशा सोते ।

प्राध्यापक के जमाई ने अपनी तस्वीर पूज्य श्रीमोटा को दी । पूज्य **मोटा** के बताये अनुसार सुबह नियमित उठकर उसने नामस्मरण करना शुरू किया । अपने स्वजनों के द्वारा पूज्य श्रीमोटा कभी-कभी उनकी खबरअंतर भी निकालते । इस तरह लम्बे समय चला ।

इसप्रकार, डेढ़ वर्ष बीत गया । आश्चर्य कहो तो आश्चर्य और चमत्कार कहो तो चमत्कार । डेढ़ वर्ष तक मूर्छा का एक भी हमला उनको न आया । पहले प्रत्येक सप्ताह पन्द्रह दिन सख्त हमला होता । साइकिल पर से भी गिर जाते । ऐसे, यह सब बंद हुआ देखकर सगेसंबंधी खूब खुश हो गये । उनकी श्रद्धा ने पूज्य मोटा के प्रति वृद्धि प्राप्त की ।

अचानक एक दिन प्राध्यापक बुजुर्ग मित्र ने मेरे आगे खूब विषादमय चेहरे से चिंता व्यक्त की कि उनके जमाई को डेढ़ वर्ष बाद फिर से हमला शुरू हुआ है ।

मैंने स्वयं बड़ी उलझन अनुभव की । क्यों ऐसा हुआ होगा ? खूब चर्चाविचारणा और उलटी जाँच से अंत में जानने को मिला कि अभी-

अभी उनके मन में किसी ने ऐसा ठसाया कि, ''तुम्हें अपने पूर्वजों का भूतप्रेत लगा है । इसलिए सिद्धपुर में जाकर श्राद्ध कराके ब्राह्मणों को ब्रह्मभोजन करवाओं तो उसमें से कुछ मुक्ति मिलेगी ।''

एक दिन अहमदाबाद के सेन्ट झेवियर्स हाईस्कूल के पास में रहते एक इन्जीनियर साहब के जन्मदिन के दिन पूज्य श्रीमोटा का पधारना उनके यहाँ हुआ । मैं सुबह चार बजे अपनी पत्नी के साथ पूज्य श्रीमोटा के सम्मुख हमेशा की तरह उपस्थित हो गया । हम बिलकुल अकेले ही थे । एकाद दूसरी व्यक्ति भी हो । पूज्य मोटा ने मुझे प्राध्यापक मित्र की खबर पूछी । मैंने मौका ले लिया और कहा, ''**मोटा** अभी वे थोड़े उद्विग्न रहते हैं । उनके वे जमाई जिसकी तस्वीर आपने मँगवाई थी, उनको डेढ़ वर्ष बाद फिर मिरगी का हमला शुरू हुआ है । इसके लिए दुःखी रहते हैं ।''

पूज्य **मोटा** सहसा ही बोल उठे, ''मैं क्या करूँ, भाई ? तुम ही कहो । एक संगीतकार सुंदर शास्त्रीय रागरागिणी गाता हो पर उसे हुंकार करनेवाला कोई श्रोताजन न हो तो वह कितने घण्टे गाएँगा ? एक घण्टे, दो घण्टे, चार घण्टे फिर तो बंद करेगा ही न ? मेरे भेजे आंदोलन वापस आये । जो कुछ उस भाई को करने का कहा था वह कुछ करे नहीं । सब यद्वातद्वा चला करे फिर मैं क्या करूँ ?''

इस प्रसंग पर से संतों की कृपा का अनुभव करना हो तो हम में भी वैसे प्रकार की स्वीकारात्मक भूमिका तैयार हुई होनी चाहिए, इस बात की मुझे प्रतीति हुई ।

• • •

३४. परस्पर विरोधी विधान

अहमदाबाद के हम तीन अध्यापक पूज्य श्रीमोटा के आध्यात्मिक साहित्य में अच्छा रस लेते । प्रो. श्री. रमेश भट्ट को एक दिन पूज्य श्रीमोटा की ओर से संदेश मिला, इस रविवार को तीनों जन आश्रम में सत्संग करने आओ । प्रश्न तैयार करके ले आना ।

प्रो. रमेश भट्ट ने श्री अनुपराम भट्ट को संदेश भेजा। श्री भट्ट साहब ने मुझे कहा। शुक्रवार का वह दिन था। बुधवार को तो मैं पूज्य श्रीमोटा के दर्शन के लिए नडियाद आश्रम जाकर आया था। उस दिन मैंने प्रत्यक्ष देखा था कि **मोटा** की तबीयत बहुत ही खराब थी। शरीर में पानी का भराव water logging रहता। गले पर और शरीर के अन्य भाग पर सोजा रहता। बोल भी न सके।

विविध-विषयों पर सत्संग हुआ। सत्संग के दौरान पूज्य श्रीमोटा ऐसा भी बोले, ''मैंने आपको संदेश भेजा कि नडियाद आश्रम में आओ। प्रश्न निकालकर आना। मुझे ऐसा कि मेरा गला बंद हो जाय, उससे पहले जी भरकर सत्संग कर लूँ। पूज्य श्रीमोटा के यह बोल हमारी टेप में भी आये हैं।

हम तो सत्संग करके अहमदाबाद पहुँचे। दूसरे दिन सुबह पूज्य मोटा के निकट के ऐसे स्वजन आश्रम में आये। उस समय **मोटा** जो बोले उसे सुनकर मुक्त पुरुष के वर्तनव्यवहार की जिसे थोड़ी बहुत भी समझ न हो वह तो बहुत द्विधा का अनुभव करेगा।

वे स्वजन आये तब **मोटा** के थूंक में खून जाता था। गले में सूजन थी। इसे देखकर एक वकील स्वजन ने पूछा, ''ऐसा क्यों ?'' तब **मोटा** बोले, ''देखो न वे प्रोफेसर ! बिना काम के भूत जैसे ! बेकार बेकार के प्रश्न निकालकर मेरा गला दुःखा दिया।''

मोटा के इस उद्‌गार के कारण उस स्वजन के मन में अध्यापक ने गलत किया, **मोटा** को परेशान किया, उनके शरीर का ध्यान न रखा, अर्थहीन चर्चा खड़ी की, ऐसे ऐसे भाव जन्मे। इतना ही नहीं, पर अहमदाबाद में जब मैं उनमें से एक स्वजन को दूसरे या तीसरे दिन मिला, तब खूब ही गंभीरता से, हमारे प्रति चीढ़ से कुछ कड़क शब्दों में वह बोले भी सही, ''तुम्हें कुछ भान है कि नहीं ? **मोटा** के ऐसे शरीर में तुम उनके साथ चर्चा करने गये ?''

मैं बोला ही नहीं, परन्तु अकेले पड़ने पर उनकी पत्नी को कहा, ''हमें तो **मोटा** ने बुलाया था, इसलिए गये थे। तुम्हे भरोसा न हो तो मैं टेप सुनाऊँ।''

यह मेरी प्रस्तुति उस बहन ने धीरे से अपने पति को की। वे कोई **मोटा** के खूब निकट। इसलिए **मोटा** के रहस्यमय व्यवहार की सूझ उन्हें सही। इससे, वे कुछ सोच में पड़ गये कि कुछ रहस्य है।

आठेक दिन बाद दूसरे एक बुजुर्ग मित्र मिले। उन्होंने भी उस प्रसंग को याद करके मुझे खूब उलटा-सीधा सुनाया।

मैंने नम्रतापूर्वक उनसे कहा, 'क्या साहब, **मोटा** के शरीर के सुखाकारी का इजारा एकमात्र आप सभी को ही है ? क्या हम अध्यापक इतने अधिक मूर्ख है कि उस विषय में विचार भी न करें ? परन्तु हम तो **मोटा** के संदेश से गये थे। और यह बात **मोटा** सत्संग में बोले भी है। आप कहो तो मैं टेप सुनाने के लिए तैयार हूँ।

"तो फिर **मोटा** हमारे समक्ष ऐसा क्यों बोले ?" सहसा ही साहब ने प्रश्न किया।

मैंने उत्तर दिया, "मुझे सूझे ऐसा खुलासा करूँ। आप **मोटा** के गुरु की प्रणाली तो जानते ही हो। आसपास एकत्रित हुए व्यक्तिओं के मन में जो विचार आये, वह श्रीकेशवानंदजी महाराज (धूनीवाले दादा) बोला करते। शायद आश्रम में उपस्थित रहे व्यक्तिओं के मन में प्रोफेसर के विषय में ऐसा विचार आया हो और उस अनुसार शायद **मोटा** बोले हो ऐसा नहीं हो सकता ?

वे साहब सोच में पड़ गये। ऐसे हैं संतपुरुष के अगम व्यवहार।

• • •

३५. जीवनमुक्ति से विदेहमुक्ति तक की अवधि

हम जिसे संत कहते हैं, उसके लिए आत्मसाक्षात्कारी, मुक्त अनुभवी, ब्रह्मनिष्ठ ऐसे विविध शब्दप्रयोग होते हैं। ऐसे पुरुष में तीन लक्षण जन्म लेते हैं। आनंद, सामर्थ्य (शक्ति) और ज्ञान। उनमें आनंद सदाकाल रहता है। जब कि सामर्थ्य और ज्ञान का उपयोग निमित्त बनने पर वे करते हैं।

यहाँ हम मात्र ज्ञान के पहलू का प्रसंग लें। उपनिषदों में भी कहा है कि जो एक को जानता है, वह अनेक को जानता है। अर्थात् जिसने आत्मा को पहचान लिया उसने सब कुछ जान लिया।

एक बार हम तीनों ही अध्यापकों को पूज्य श्रीमोटा ने अपनी अस्वस्थता के बावजूद नडियाद आश्रम में सत्संग के लिए निमंत्रण दिया ।

विविध विषयों पर बात चली । उसमें से एक प्रश्न श्री अनुपराम भट्ट ने पूछा, ''**मोटा**, संतों के लिए जीवनमुक्त होने के पश्चात् विदेहमुक्ति तक जीने का किस कर्मों के अनुसार होता है ?''

मोटा ने उत्तर दिया, ''निमित्त स्वरूप उसे मिले जीवों के आधार पर ।''

भट्टजी को यह प्रतीतिजनक नहीं लगा । पूज्य मोटा यह जान गये । **मोटा** ने पूछा, ''शास्त्र क्या कहते हैं ?'' भट्टजी ने उत्तर दिया, ''प्रारब्धकर्म के आधार पर ।''

मोटा ने पूछा, ''जीवनमुक्त स्थानातीत और कालातीत सही न !'' यानी कि जिसे जीवन में ही आत्मसाक्षात्कार हुआ वह काल या स्थान के बंधन में नहीं है । एक साथ अनेक स्थान पर वे दिखे ऐसा हो । भूत, वर्तमान और भविष्य में भी वह विहार कर सकता है ।

भट्टजी ने तुरन्त हाँ कहा । **मोटा** ने कहा, ''तो फिर प्रारब्ध तो स्थान और काल में रहा है । इसलिए उस मुक्त को प्रारब्धकर्म हो ही कहाँ से ? उसके प्रारब्धकर्म तो दग्धबीज हो गये हैं ।''

मैंने कहा, ''**मोटा**, मैं भी एम. ए. में तत्त्वज्ञान के विषय में वेदांत में सीखा था कि जीवनमुक्ति और विदेहमुक्ति के बीच की अवधि प्रारब्धकर्म के आधार पर है ।''

मोटा ने कहा, ''भाई, मेरे गुरुमहाराज का आदेश है कि जब शास्त्र में एक बात कही हो और अनुभव में दूसरी बात आती हो तो उन दोनों के बीच कहीं समन्वय होना चाहिए ।'' इतना बोलकर **मोटा** ने कहा, ''मुझे अभी स्फुट होता है कि वह जो कुछ जीता है, वह अपने प्रारब्ध कर्म के आधार पर नहीं, पर उसके साथ निमित्तरूप से जुड़े जीवों के प्रारब्ध कर्म के आधार पर ।''

तथापि भट्ट साहब को अभी यह प्रतीतिजनक लगता हो ऐसा न लगा ।

पूज्य **मोटा** का स्नान करने का समय होते वे स्नानघर में न्हाने के लिए गये ।

इस दौरान भट्ट साहब के हाथ में श्रीशंकराचार्य कृत 'विवेकचूडामणि' का ग्रंथ था । उन्होंने मात्र कुतूहल के लिए उसे खोला । जिस पृष्ट पर दृष्टि टिकी उस पर ही पूज्य मोटा के कथन को भार देता श्लोक भट्ट साहब ने पढ़ा और हर्ष से रोमांचित हो उठे ।

पूज्य **मोटा** कोई शास्त्र न पढ़े थे । तब भी उनके उत्तर कैसे शास्त्रोक्त थे, उसका यह एक अनोखा उदाहरण है । इसे ही संतों की सर्वज्ञता कहते होगे न !

• • •

३६. प्रेम से भिगोया और बदला

अहमदाबाद के एक पटेल गृहस्थ* । बड़े व्यापारी । छोटे-छोटे उद्योग भी सही । स्वबल से आगे आये थे । स्वयं पटेल होने पर भी जैन स्त्री के साथ विवाह किया था । उनकी पत्नी** को जैनधर्म के प्रति ठीक-ठीक अनुराग भी सही ।

पूज्य **मोटा** के एक स्वजन इस पटेल गृहस्थ के मित्र और पड़ोसी । उनके संपर्क के कारण उन्हें पूज्य श्रीमोटा को अपने यहाँ पधारे उसकी इच्छा हुई । वह अमल में आई भी सही, परन्तु घर में वह बहन को नापसंद । उनका विरोध भी सही ।

दर्शनार्थ आनेवाले स्वजनों को व्यवस्थापकों की ओर से सूचनाएँ मिल गई थी । ''भाई, सँभालकर चलना । इस घर में गृहिणी जैन है और उनको श्रीमोटा का विरोध है ।''

अधूरे में पूरा श्रीमोटा उनके घर सुबह छः बजे पधारनेवाले थे, उसके बदले नरोड़ा में उनके शरीर को असुख रहने से एक दिन पहले शाम को ही आ पहुँचे । श्रीमोटा की तबीयत अधिक बिगड़ी और डॉक्टर को बुलाना पड़ा । ऑक्सिजन लेना पड़ा । ऐसी सब धमाल होती रही ।

परन्तु **मोटा** की चाहने की एक अपनी कला है । सामनेवाले के दिल में किस तरह प्रवेश करना इसकी कोई अजब सूझ उनकी सही ।

* श्री जयंतीभाई पटेल (मार्बलवाले) ** श्रीमती इन्दुबहन

मोटा को सोने के लिए उनके कमरे में ले गये । वहाँ यजमान का छोटा बालक सो रहा था । उसे ले जाने के लिए दो-चार जन ने प्रयत्न किया ।

पूज्य **मोटा** ने स्पष्ट मना करते कहा, ''भले सोया । उस छोटे बालक की नींद में खलल मत करो ।' वह रूम एरकन्डिशनवाला था । इसलिए माँ की इच्छा भी सही कि बालक उसमें सोया रहे तो अच्छा । पूज्य **मोटा** का सूचन तो उनको तो 'पसंद था और वैद्य ने कहा' जैसा हुआ । स्वयं असुविधा उठाकर भी बालक को सोने दे वह महाराज उनके दिल में बस गये !

दूसरे दिन प्रातःकाल से अनेक बातें शुरू हुई । बहन पास में बैठी थी । उन्होंने भी बात में हामी भरी । **मोटा** ने उनकी बात सुनी और उनको कहा, ''बहन, तुम्हें नवकार मंत्र पढ़ा करने ।' और यह बात बहन को अपने जैन संस्कार के कारण पसंद आई ।

दोपहर के बाद पूज्य **मोटा** ने मुझे बुलाया और कहा कि, ''भाई, यह साहब को चिठ्ठी लिख की दोपहर में आये । हम सत्संग करें । भगवान की बात हो तो मेरे शरीर की वेदना सह्य हो ।''

दोपहर दो-ढाई बजे भट्ट साहब आये । हमने प्रश्न पूछे । **मोटा** उत्तर देते जाय । सत्संग पूरा होनेवाला था । इससे बहन ने भी अपना प्रश्न रखा । **मोटा** उनको खूब पसंद करते हो, इस तरह उनकी बहुत सारी शंकाओं का समाधान किया ।

सत्संग पूरा हुआ । **मोटा** ने यजमान पत्नी का हृदय किस क्षण जीत लिया यह न समझ आया । उनमें आया यह हृदयपरिवर्तन उनको भी आश्चर्यचकित कर गया । उनके पतिने क्रिकेट की भाषा में मार्मिक रूप से पत्नी का नाम देकर कहा, ''... की विकेट गिर गई ।'' आसपास खड़े सभी हँस पड़े ।

आज भी उस बहन को जब-जब मिलने का होता है, तब **मोटा** जैसे संतों का हम यथार्थ लाभ न उठा सके ऐसा अफसोस उनसे व्यक्त हो जाता है ।

• • •

३७. हाथ पकड़ा उसे न छोड़ते

अहमदाबाद के एक युवक भाई । सन् १९४६ से पूज्य श्रीमोटा के साथ उनका संबंध था ।

एक बार साबरमती आश्रम की मीरांकुटीर के पास श्री नंदुभाई के मकान के झुले पर श्रीमोटा बैठे थे । निर्भयता लाने की बात चल रही थी । उन्होंने कहा, ''ठंडियों की कड़कती ठंड हो, अंधेरी रात हो, तब भी श्मशान में यह **जीव** रहता था । तुम्हारा सामर्थ्य नहीं । एक थोड़े से अंधेरे में भी डरते हो और अकेले जाने की हिंमत नहीं करते...'' आदि आदि **मोटा** बोले ।

वह युवक मित्र स्वयं प्रयोगशील । कुछ कर दिखाना ऐसी तमन्ना भी सही । उन्होंने श्मशान में सोने जाने का निश्चय किया । वह तो पहुँचे दूधेश्वर के श्मशान में । घोर अंधेरी रात, निःशब्द रात । वहाँ रेत के एक ढेर पर बैठकर पूरी रात उन्होंने जप किया । कहीं डर का अनुभव न हुआ ।

जल्दी प्रातःकाल आश्रम में पहुँच गये । **मोटा** को प्रणाम किया । **मोटा** ने पूछा, ''अभी कहाँ से ?'' उन्होंने अपने प्रयोग की बात शुरू से अंत तक की । **मोटा** बोले, ''पूछे बिना फिर ऐसा पागल साहस न करना ।'' **मोटा** की इच्छा इतनी कि यदि ऐसे कोई प्रयोग करे तो उन्हें बतला कर करे ।

परन्तु इस प्रसंग से पूज्य **मोटा** ने उनको श्मशान में सोने की छूट दी । लम्बे समय तक उन्होंने यह किया । मानो उन्होंने नियम ही कर लिया । और यह नियम अच्छी तरह पालन भी होता था ।

एक बार बारिस का मौसम था । बार-बार बारिस हुआ करती । उनको बुखार जैसा लगने लगा, परन्तु गोली लेकर पूरा दिन निकाला ।

रात के आठ बजे । श्मशान जाने का याद आया । शरीर बुखार से तप रहा था । दूसरी ओर नियम टूट जाने की दहशत खड़ी हुई । चला

भी न जाय । चक्कर आये । तब भी श्मशान जाने का दृढ़ता से निश्चित किया और रोज की जगह पर जाके सोये ।

उस दिन एक नया अनुभव उनको हुआ । यद्यपि उनको दोपहर से बुखार चढ़ा था, तब से ही मन में था कि आज कुछ नया होगा । पूरी रात श्मशान में रहे । उस दौरान चारेक बार बारिस हुई । उनके ओढ़ने का गिला हो गया । उन्होंने दो-चार बार निचोड़ा भी सही, परन्तु उनके आश्चर्य के बीच उन्होंने देखा कि वे स्वयं और उनके कपड़े बिलकुल कोरे थे । उन्होंने घर जाकर छोटी बहन को बताया कि, ''देख, भगवान अपने भक्त की कैसे सँभाल रखते हैं ! नियम का पालन किया तो यह अनुभव देखने को मिला ।''

फिर तो बुखार उतर गया । अपनी नौकरी पर भी गये । उन्होंने पूज्य मोटा को अपना यह अनुभव बतलाया । तब से मोटा ने उन्हें तार करके श्मशान में सोने जाने का बंद करवाया ।

पूज्य **मोटा** की अद्‌भुत चेतनाशक्ति का उन्हें ऐसा अपूर्व अनुभव हुआ । पूज्य **मोटा** बाद में अहमदाबाद आये तब कहा, ''उस दिन मुझे बहुत खिंचाव रहा । पर तुझे कैसे कहूँ कि तुम श्मशान में सोने न जाओ ? न गया होता तो चल जाता । पर गये वह भी योग्य ही हुआ । **इस** मार्ग में मरणासन्न निश्चय करने की बेला, कभी कभार आती है, तब यह अनुभव का ज्ञान, उसकी स्मृति उस समय नये उत्साह, साहस और हिंमत देगी ।''

• • •

३८. संकल्प करवा के देहमुक्ति दिलवाई

पूज्य श्रीमोटा के देहत्याग की बात सभी को पता है । उन्होंने स्वेच्छा से अपनी मृत्यु ठेली थी । अंत में नडियाद आश्रम में पहले से पत्र लिखकर अपनी इच्छा अनुसार फाजलपुर (मही नदी के किनारे, जि. वडोदरा) में देह का त्याग किया !

इसप्रकार, कितने ही संत इच्छामृत्यु को लेते हैं, यह हकीकत भारतीय परम्परा ने स्वीकारी है, परन्तु संत अन्य की इच्छानुसार उनको

निर्धारित देहत्याग कराये ऐसे किस्से बहुत कम जानने–सुनने में आये हैं । ऐसा एक किस्सा यहाँ प्रस्तुत करता हूँ ।

नडियाद के एक खानदान पटेल कुटुम्ब की यह बात है । पूज्य श्रीमोटा ने सत्संग के दौरान स्वमुख से कही है । उस कुटुंब में प्रमुख माँ थी । **मोटा** भी उनके साथ खूब ही प्रेमभाव से मिलते । नडियाद से बाहर जाना हो तो माँ की पैरवंदना करके जाते ।

माँ में भी असल खानदान का खमीर । खूब ही जाज्वल्यमान धीरगंभीर प्रकृति के । समग्र कुटुंब पर उनका एकचक्री राज । उन्हें पूछे बिना कोई कुछ न करता । बाहर लाखों कमाते बेटे भी माँ का खूब मान रखते ।

एक बार पूज्य **मोटा** बाहरगाँव से आये । हमेशा के रिवाज अनुसार माँ को मिलकर आश्रम जाना था । माँ को मिले । माँ ने कहा, ''**मोटा**, अब तो भगवान उठा ले तो अच्छा ।'' **मोटा** हँसे ।

बाहर आते–आते **मोटा** ने माँ के बड़े पुत्र को कहा, ''माँ सचमुच जाना चाहती है कि फिर खाली–खाली बोला करती है ?''

पुत्र ने अंदर जाकर माँ को **मोटा** ने जो बोला था वह कहा । माँ ने उत्तर दिया कि, ''सचमुच, मुझे अब इस संसार में कोई रस नहीं है । श्रीभगवान के धाम में पहुँचूँ यही मात्र एक इच्छा है ।''

यह सुनकर **मोटा** ने हीरा मँगाया । और हीरे द्वारा माँ के सिर पर एक आकृति करते हो ऐसा किया । फिर माँ को कहा, ''माँ, संकल्प करो कि आनेवाली नवरात्री में जाना है कि माघ महीने में ?'' माँ ने संकल्प किया । और संकल्प अनुसार माँ बैकुंठवासी हुई ।

बुद्धि में न उतरें, तर्क न हो ऐसी यह बात सुनकर सभी स्तब्ध हो जाय पर इसमें चमत्कार निरूपण का प्रयास नहीं है । चमत्कार से दरिद्रता नहीं मिटती ऐसा **मोटा** पुकार–पुकार कर कहते । फिर, चमत्कार पर आधार रखती प्रजा पुरुषार्थ में पंगु बने, इसलिए पूज्य मोटा चमत्कार को बिलकुल प्राधान्य न देते थे ।

॥ हरिःॐ ॥

॥ हरिःॐ ॥

खंड - ५
श्रीमोटा के कार्य

॥ हरिःॐ ॥

क्राँति प्रेरित करे वही सच्चा धर्म ।

– मोटा

• हरि:ॐ आश्रमों •

श्रीमोटा ने सन् १९२२ से सन् १९३९ तक हरिजन सेवक संघ को ईश्वरप्राप्ति का साधन बनाया। साध्य की प्राप्ति के बाद स्थूलरूप से संघ को ''राम-राम'' किया। अपनी माँ की सहमती लेकर वे आमंत्रण देते स्नेहियों के यहाँ रहते। स्वजनों को साधना के बारे में प्रत्यक्ष मार्गदर्शन देते। सन् १९४१ में आपश्री ट्रिची गये थे। वहाँ उन्हें श्री नंदलाल* भोगीलाल शाह से मुलाकात हुई। श्री नंदुभाई कुंभकोणम् में जेवर का व्यापार करते एक जानीमानी पीढ़ी (एन. गोपालदास एन्ड कंपनी) के हिस्सेदार थे और अभी उसके सुषुप्त हिस्सेदार के रूप में हैं।

श्री नंदुभाई और उनके मामा श्री गोपालदास मेहता तथा अन्य भाइयों ने इकठ्ठा मिलकर श्रीमोटा को सन् १९४८ के वर्ष में कुंभकोणम् में एक आश्रम स्थापित करने के लिए अठासी हजार रूपए नगद और तीस हजार के मकान की व्यवस्था कर दी थी। पर ''वह लेकर मैं क्या बदला दूँगा ?'' ऐसे विचार से श्रीमोटा ने सारी रकम लौटाकर कहा कि, ''गुरु महाराज का आदेश नहीं है।'' दो वर्ष बाद कावेरी नदी के किनारे प्रथम ''हरि:ॐ आश्रम'' की स्थापना हुई। **उससे पहले मौनएकांत की साधनापद्धति का श्रीगणेश साबरमती आश्रम से प्रारंभ कर दिया था। सन् १९४६ के जून से १९५० तक अहमदाबाद के हरिजन आश्रम में विनोबाजी की कुटीर मीरांकुटिर में एक परदा रखकर साधक मौन लेता। उसमें भोजन, शौच, पेशाब, पानी आदि की देखभाल श्रीमोटा स्वयं करते।** उसके बाद ता. २८-५-१९५५ के रोज नडियाद में आश्रम स्थापित किया। सन् १९५४ में सूरत जिला के रांदेर से डेढ़ मील दूर जहाँगीरपुरा में कुरुक्षेत्र के श्मशान में तापी नदी के घाट पर के एक मंदिर के कमरे में परदा रखकर श्री भीखुभाई हरिभाई पटेल को ५१ दिन का मौन दिया था। सन् १९५६

---

* श्री नंदलाल उर्फ़ श्री नंदुभाई की मुलाकात श्रीमोटा के साथ श्री हेमतभाई नीलकंठ ने सितम्बर १९३९ के बाद कराई। दि. ९-२-१९४० को श्री नंदुभाई को श्रीमोटा ने दीक्षा दी। 'जीवन सार्थकतानी केडीए' (उत्तरार्ध) पुस्तक से पृ. ४०४) रजनीभाई बर्मावाला

में वहाँ आश्रम का पक्का मकान बनवाया । इसके अलावा, अहमदाबाद के नजदीक नरोडा* और पंजाब में फिरोजपुर* में व्यक्तिगत मालिकी की जगह पर श्रीमोटा की प्रेरणा अनुसार 'मौनएकांत'' मंदिरों में साधना का कार्य चल रहा है ।

उपरोक्त तीन मुख्य आश्रम अनुक्रमानुसार कावेरी, शेढी और तापी नदी के किनारे आये हैं, जो सहेतुक हैं । पहले के समय में ऐसे आश्रम नदी के किनारे ही बसाये जाते, क्योंकि एक तो पानी की सुविधा रहे । फिर, दूसरा जलतत्त्व विचारों के उग्र तरंगों को फीके करता है । आश्रम बस्ती से दूर एकांत में होते हैं, क्योंकि लोगों के विचारों के टेढ़ेमेढ़े आंदोलन साधक को बाधक न हो । बस्ती में चेतन के आंदोलन हमें सरलता से नहीं मिलेंगे, इसलिए श्रीमोटा ने आश्रम शहर से बहुत दूर स्थापित किये हैं ।

• • •

१. कुंभकोणम् आश्रम

कुंभकोणम् का आश्रम जिस स्थान पर है, वहाँ पुराने समय के एक महात्मा की समाधि है और उनकी चेतना (कोन्श्यसनेस) का श्रीमोटा को अनुभव हुआ था । उन्होंने उस संबंध में विशेष बतलाया था कि जब कुंभकोणम् और उसके आसपास राजाओं के राज्य थे, उस समय की बात है । आश्रम की जगह पर एक साधु-महात्मा आकर रहे थे । वे योगी पुरुष थे । उस स्थान पर तांजोर के राजा चिदंबरम् से वापिस लौटटे आये । उन्हें अचानक पेट में दर्द दो आया और मिटे नहीं । किसी ने कहा कि, ''उन साधु-महाराज को बताये ।'' इसलिए राजा ने उनको बुला लाने का आदेश किया । साधु ने कहा कि, ''गरज हो तो यहाँ आये ।'' और राजा साधु के पास गये । साधु ने अपना दाहिना पैर लंबा करके कहा कि, ''पैर धोकर उसका पानी पी जाओ, मिट जायेगा ।'' और उस अनुसार करने से राजा का दर्द मिट गया । समय बीतने पर उस महात्मा ने वहाँ

* वर्तमान में ये दोनों जगह मौनमंदिरों बंद हो गये है ।

ही समाधि ली और आज विद्यमान है। उसी स्थान पर 'हरि:ॐ आश्रम' स्थापित हुआ है।

हरि:ॐ आश्रम की शुरूआत करने से पहले वहाँ के अमुक अधिकारिओं ने बहुत अड़चन और बाधा खड़ी की, क्योंकि लोग अंधेरे कमरे में बंद रहे, वह तंदुरस्ती की दृष्टि से हितकर नहीं, ऐसा उनको लगता था। अंत में वे झुक गये और समय एवं अनुभव ने साबित कर बताया कि अंधेरे कमरे में मौन रहनेवालों की किसी की भी तबीयत पर कोई खराब असर नहीं पहुँची है। इस आश्रम में एक केनेडियन युवक रोबिन ३८८ दिन तक सतत बिलकुल बाहर निकले बिना बैठा था और पूर्ण आरोग्य के साथ वह बाहर आया था।

• • •

२. कुंभकोणम् आश्रम विषयक 'हिन्दू' दैनिक

कावेरी नदी के तट पर श्रीमोटा ने कुंभकोणम् में आश्रम बनाया। इतना ही नहीं, पर कावेरी नदी के घाट की मरम्मत के लिए सन् १९६३ पहले दान भी दिये हैं। उसका मूल्यांकन मद्रास (चेन्नाई) के नामी दैनिक 'हिन्दू' के ता. ५-३-१९६३ के अंक में किया था। कावेरी नदी अपनी रमणीयता, पवित्रता के कारण तीर्थक्षेत्र के रूप से कुंभकोणम् कितना नामी बना है तथा वहाँ पर कैसी सुंदर प्रवृत्तियाँ चल रही है, उसकी इस समाचारपत्र में विस्तृत जानकारी दी है। इस छोटे शहर के आगे से जाती कावेरी नदी पर आये आठ घाटों का वर्णन करने में आया था। वहाँ साधु आते हैं। अमुक आध्यात्मिक और इतर प्रवृत्तियाँ चलती हैं। कलामय मंदिर कैसे प्रेक्षणीय हैं, आदि का वर्णन करके उस समाचारपत्र 'हिन्दू' ने बतलाया है कि ''कावेरी के उत्तर दिशा के किनारे पर वर्तमान में एक आधुनिक आश्रम बस्ती से बिलकुल अलग अस्तित्व में आया है। उसकी स्थापना एक गुजराती साधु ने की है। यह एक सुंदर बगीचे के बीच बिलकुल शांत, एकांत जगह में आया है। यह साधु गुजरात से आकर प्रत्येक वर्ष एक-दो महीना बिताते हैं। यहाँ की गुजराती बस्ती उस संत को बहुत भक्तिभाव और आदरप्रेम की दृष्टि से देखती है। उसी साधु

ने कुछ समय पर बारह वर्ष तक उस घाट को अच्छी स्थिति में रखने के लिए दस हजार का दान स्थानिक नगरपालिका को दिया है। पहले के समय में राजामहाराजा ऐसे नदीघाट बँधवाते और अच्छी स्थिति में रखते, पर आज कोई उसका ध्यान नहीं रखते। ये घाट, मंडपों आदि की जो सुंदरता दिखती है, वे पुराणकाल के राजाओं और उनके प्रधानों के आभारी है। आज दानवीरों का ध्यान दूसरी प्रवृत्तिओं पर पड़ा है। जब कि नदी पर के ये घाट और उसके सुंदर मंडप जर्जरित हालत में पड़े हैं, तब एक गुजराती महात्मा का यह कदम समयोचित और प्रशंसनीय है।'

• • •

३. नडियाद आश्रम के विषय में भविष्यवाणी

नडियाद में शेढी नदी पर जिस जगह पर आश्रम बनाया है, वहाँ पहले कबीरपंथी साधु बसते थे और उनके उपयोग में आया एक चबूतरा आज भी वहाँ मौजूद है। उस चबूतरे पर मौन में रहा हुआ साधक आराम कर सकता है। जिसका उल्लेख किया वह कबीरपंथी पूज्य पहेलदासजी महाराज वहाँ रहते और उन्होंने छोटा आश्रम किया था। उन्होंने अपने देहविलय के पहले भविष्यवाणी की थी। उसका मूल लेखा वडोदरा के श्री विष्णुप्रसाद ईश्वरलाल पंड्या ने अपनी पन्द्रह वर्ष की उम्र में किया था। ता. ३०-९-१९४५ के रोज नोट किया। वह नोट हरिःॐ आश्रम को सौंपी थी। वह नोट नीचे अनुसार है —

''इस जगह पर कोई तपस्वी होगा। दस वर्ष तक इस जगह में कोई नहीं रहेगा, उसके बाद यहाँ रमणीय जगह होगी। यहाँ रहेगा उसे किसी दिन किसी के पास माँगने नहीं जाना पड़ेगा। श्रीगुरु बालकदास की भीतर के कमरे की गद्दी कोई भविष्य में तोड़े नहीं और इस जगह पर भजनभाव करनेवाले दुःखी नहीं होंगे।''

सन् १९२२ या सन् १९२३ में श्रीबालयोगी महाराज श्रीमोटा को साधना के लिए इस जगह पर ले आये और एक रात वहाँ वृक्ष पर

बिठाकर नामस्मरण करवाया था। तब उन्होंने भी ऐसी भविष्यवाणी करते हुए कहा था कि, ''इस जगह पर तेरा आश्रम होगा।'' श्रीमोटा तो यह बात भूल गये थे, पर सन् १९५४ में एक बार उन्हें इस जगह पर आना हुआ और रात रुके तब गुरुमहाराज की भविष्यवाणी याद आयी। इसलिए वे दूसरी सुबह नडियाद की भारत भुवन हिन्दु होटल के मालिक श्री कुबेरदास भावसार के पास उनकी होटल में चाय पीने गये। वे उनके शरीर की ज्ञाति के थे। आश्रम बनाने के लिए उनको बात की और पन्द्रह–बीस हजार की आवश्यकता होगी ऐसा बतलाया। वह रकम उन्हें मिल गई और बारह महीने में तो लौटा भी दी। सर सी. वी. मेहता ने भी प्रथम ही पन्द्रह हजार रुपए दिए थे।

• • •

४. सूरत आश्रम को गुप्त मदद

सन् १९५५ में श्रीमोटा को ट्रिची जाते सूरत आना हुआ, तब कामचलाउ मौन रखने का काम शुरू हो गया था। सूरत के आश्रम की जगह मिली वह तो ईश्वर की अनहद कृपा का प्रत्यक्ष चिह्न है, ऐसा श्रीमोटा कहते हैं। क्योंकि वह जमीन अलभ्य जैसी थी। उस जगह मूल एक जैन भाई की थी। उसने विक्रय के लिए सूरत के कलेक्टर को भी 'ना' कह दी थी। अंत में चोर्यासी तालुका के एक मामलतदार श्रीमोटा के सत्संगी थे। उनकी मदद से जमीन प्राप्त हुई*, पर जमीन का दाम तब प्रति बीघा १५०० से १६०० रुपयों तक का था। श्रीमोटा ऐसी बड़ी किंमत चूकाने के लिए तैयार न थे। दो बीघा जमीन रुपए ३७५ से ४०० तक में मिले तो ही लेनी ऐसी उनकी तैयारी थी। अंत में उतनी रकम में वह जमीन मिल गई। जिसमें पहले दो कमरे और बरामदेवाली जगह है। सर सी. वी. मेहता ने इस आश्रम के लिए भी दो से तीन हजार रुपए का चंदा दिया होगा।

---

* हरिःॐ आश्रम सूरत की जमीन प्राप्त करने में स्व. श्री वैकुंठभाई शास्त्री जो उस समय के कोंग्रेस के राजकीय नेता थे। उनकी सहाय स्व. श्री भीखुकाका (जो बाद में सूरत आश्रम के प्रथम वहीवटी ट्रस्टी थे)ने अपनी निजी पहचान से ली थी। श्री भीखुकाका खुद कोंग्रेस के बड़े नेता थे। रजनीभाई बर्मावाला

यह जगह उनको इसलिए पसंद आयी कि वह रांदेर गाँव से डेढ़ मील दूर बिलकुल एकांत में थी। पास ही श्मशान और महादेव का मंदिर था। वह स्थान कुरुक्षेत्र के रूप में पवित्र गिनाता और फिर तापी पास में से ही बहती है। ऐसी यह कुदरती रमणीय जगह है।

आश्रम को बनाने के लिए सिमेंट चाहिए पर उसकी बहुत कमी थी। बाजार में 'ब्लेक' में से ऊँचे दाम से दूसरे खरीदते पर श्रीमोटा ऐसी खरीदी को मंजूरी न देते। जब काम रुकने की तैयारी में हो कि तब कहीं से आ पड़े !

उस समय सूरत जिला लोकल बोर्ड के एक प्रमुख साहब थे, वह और श्रीमोटा बिलकुल एक-दूसरे को पहचानते न थे, पर वे परस्पर नाम से जाने इतना ही। एक बार आपश्री और श्री भीखुभाई पटेल बात करने के लिए उनकी ऑफिस गए पर मुलाकात हुई नहीं। क्योंकि प्रमुख साहब बाहर गये थे, परन्तु श्रीमोटा कहे कि अब राह देखने की आवश्यकता नहीं है। सिमेंट तो मिल ही जायेगी और हुआ भी वैसा ही। उनके द्वारा छूटक-छूटक होकर ३०० से ३५० थैलियाँ उधार मिली थी। एक समय तो एक शिक्षा संस्था में सिमेंट अधिक होने पर भी वे आश्रम को दे सके ऐसी स्थिति में न थे, तब भी उन प्रमुख साहब ने स्वयं उस संस्था के पास से उधार लेकर आश्रम को दी।

ता. २३-४-१९५६ के दिन जहाँगीरपुरा, सूरत आश्रम में कुंभ रखने की विधि पुष्पाबहन दलाल और चंपाबहन नाम की विधवा बहनों के हाथ से की गई। जब समाज विधवा बहनों को ऐसे कार्यों के लिए अशुभ मानता है, तब श्रीमोटा ने उन बहनों के हाथ से सबसे पहले कुंभ रखवाया और गौरव दिया ! उनकी कार्यपद्धति की सविशेषता का यह उदाहरण है।

सन् १९६१* में नडियाद और सूरत के आश्रम सरकारी राह पर — चेरिटेबल ट्रस्ट के एक्ट के अंदर नोंध करायी, उसमें श्रीमोटा का नाम ट्रस्टी के रूप में कहीं नहीं है।

• • •

---

* सन् १९६२ में।

५. फिरोजपुर का मौनमंदिर

उत्तर भारत के पंजाब में पाकिस्तान की सरहद पर आये हुए फिरोजपुर में सन् १९६५ के वर्ष से चलते एक मौनमंदिर का उल्लेख करना बिलकुल योग्य लगता है। उसके मालिक हैं – अंग्रेजी के एक प्रो. श्यामसुंदर गुप्ता। वे अनेक वर्षों से नडियाद में मौनएकांत की साधना करने जाते थे। उनको हिमालय चले जाने की इच्छा थी, पर सद्गत श्री गुरुदयाल मल्लिकजी की सूचनानुसार वे श्रीमोटा के पास आ पहुँचे। सन् १९६४ में २१ दिन के मौन के दौरान उनके अंतर में से ऐसा विचार स्फुरित हुआ कि, ''फिरोजपुर में ही ऐसी साधना के लिए मौनएकांत मंदिर की स्थापना कर।'' **और उस विचार को श्रीमोटा ने समर्थन दिया। और बतलाया कि, ''प्रेमभरा दिल यदि आप 'मोटा' को दोगे तो आप उनकी उपस्थिति अनुभव कर सकोगे। कभी भी आपको मौनमंदिर की कार्य व्यवस्था के संबंध मे किसी भी प्रकार की कठिनाई लगे, तब आप 'मोटा' को कुछ भी लिखकर जानकारी मत देना, परन्तु ऐसे समय आप मौन के खंड में जाकर और शांत होकर 'मोटा' को प्रार्थना करनी। आपको आपकी उलझनों में से मुक्ति मिल जायेगी।''**

इस तरह फिरोजपुर में 'हरिःॐ मौनमंदिर' की स्थापना हुई। अधिक संख्या में परदेशी और इतर साधक उसका लाभ ले रहे हैं।* उन्होंने मौनमंदिर में श्रीमोटा की प्रेरक सूक्ष्म उपस्थिति और गूढ़ शक्ति अनुभव की है।

• • •

६. प्रतिदिन का कार्यक्रम

आश्रम का प्रतिदिन का कार्यक्रम ऐसा है – सुबह देर से देर चार बजे सभी को उठ जाने का। पाँच बजे तक मौन में बैठे साधक को

---

* वर्तमान में यह मौनमंदिर बंद हो गया है।

चाय–कॉफी, स्नान के लिए गरम पानी, धूप के लिए धूपदानी में देवता, गले की गरमाहट के लिए गरारे करने के लिए गरम पानी तांबे के लोटे में पहुँचाया जाता है। उस गरम पानी में नमक डालकर गरारे करने के। मौनरूम में कचरा साधक स्वयं साफ करेगा। **पांचेक बजते ही मौन में रहे साधक को नहा–धोकर अपने उपयोग किये कपड़े तथा आश्रम के – बिस्तर पर की चादर, तकिये का कवर, आरामकुरसी, चौकी और पाटा पर की गद्दी पर का कपड़ा – इतना रोज–रोज एक लिस्ट के साथ धोने के लिए रख देने का।** सात बजते ही पूरे आश्रम की सफाई हो जाती। बगीचे में से पुष्प प्लेट में रखकर मौनरूम में भेजे जाते और सुबह दस बजने पर भोजन के बाद दोपहर दो बजे चाय कॉफी और शाम के पाँच बजे रात का भोजन।

सूरत आश्रम में मंगलवार (अभी रविवार) सुबह छः बजे और नडियाद आश्रम में रविवार सुबह छः बजे मौन में से निकलनेवाले और उसमें बैठने जानेवाले साधकों को इकट्ठा बिठाकर प्रार्थना करते हैं।

मौन लेनेवाले के संबंध में मुख्य रूप से **श्रीमोटा एक बात का पुनःउच्चारण किया ही करते हैं कि इसप्रकार की साधना से जीव को कोई एकदम भगवान नहीं मिलनेवाले हैं। पर उसमें चेतना के संस्कार पड़ने से जीव को शिव होने की संभावना पैदा होती है, क्योंकि ये संस्कार समय आने पर वर्तमान में उदय हुए बिना नहीं रहेंगे। रागद्वेष जितने फीके करने की ओर साधक प्रयत्नशील और जाग्रत होगा, उतनी अधिक तीव्रता से प्रगति होगी और बारबार ऐसे मौनएकांत के अनुष्ठान के फलस्वरूप रागद्वेष मिटते हैं, ऐसा अनेकों का अनुभव है।**

• • •

७. श्रीमोटा और आश्रम

श्रीमोटा की व्यक्तिगत आवश्यकता बहुत कम है। पहनावा बिलकुल सादा। स्वजनों की ओर से जो मिले वह पहने, पर जो परिधान

करते वह बिलकुल स्वच्छ हो । वैसी ही स्वच्छता और सादाई उनके आश्रमों के प्रतिदिन के संचालन में देखने को मिलती है । यदि आपश्री आश्रम में हो या प्रवास में, रात गुजारनी हो तो उनकी मद्रासी खादी की लुंगी एक कपड़े जैसी और शायद थिगलीवाली देखने को मिलेगी । किन्तु समारंभो में जाना हो तो 'गृहस्थी' को शोभे वैसे और सामने के पक्ष की शोभा में अभिवृद्धि हो वैसे शुभ-स्वच्छ साड़ी की लाल, भूरी या हरी आकर्षक किनारीवाली मद्रासी खादी की लुंगी । सिर पर ऐसा ही सुंदर साफा और कंधे पर मद्रासी ढंग का खेस । दूसरा कुछ नहीं । पसीना पोछने के लिए रुमाल चाहिए तो हरे या लाल दोरे से भरा ॐ की छापवाला एक खादी का टुकड़ा कमर के पास लुंगी पर खोंसकर रखते ।

आश्रम के खानेपीने में कभी तेल-घी की बड़ी तई नहीं चढ़ती । भाखरी*, (तेल के मोयनवाली)-शाक, दाल-भात के बिगाड़ की संभावना ही नहीं और सद्भाग्य से उनके सेवकों में व्यवस्थापक और रसोइया भी सेवाभावी मिले हैं । रसोई करनेवाले आश्रम के ट्रस्टी* भी हो ! **खुराक की चीजें - चीनी, तेल, दाल, गुड, गेहूँ, चावल, दियासलाई से लेकर झाडू तक की सारी आवश्यक चीजें प्रभुकृपा से प्रशंसकों और भक्तों की ओर से मिला करती हैं । उच्च प्रकार के चावल भेंट में मिलते हो तो आश्रम के उपयोग में नहीं लेते, इसलिए उसे बेच डालते और बिक्री के पैसे दान की प्रवृत्ति में उपयोग करते और भोजन के लिए मोटे चावल का उपयोग करते ।** ज्ञातिजाति के भेद बिना नौकर-चाकर, व्यवस्थापक आदि एक पंक्ति में साथ बैठकर भोजन करे । श्रीमोटा भोजन के समय आश्रम में होते और उन्हें खाना न हो तो भी रसोईघर में आकर बैठते और सभी को प्रेम से खिलाते । भोजन से पहले **ॐ सह नाववतु** - की प्रार्थना होती । श्रीमोटा भोजन के दौरान सभी की खबरअंतर पूछते । हलकी मजाक करते और आनंदभरे वातावरण में सभी को भोजन करवाते । श्रीमोटा आश्रम में हो और बाहर किसी के

---

* गेहूँ के आटे की एक प्रकाट की सख्त रोटी ।

* हरि:ॐ आश्रम, सूरत में ट्रस्टी श्री झीनाकाका तथा ट्रस्टी श्री रजनीभाई ने वर्षों तक रसोई बनाई हैं ।

यहाँ उनको भोजन का आमंत्रण हो तो बहुत बार वे प्रबंध करते कि आश्रम और मौन के सभी भाईबहनों के लिए निमंत्रक की ओर से रोज के भोजन के समय भोजन भेजने में आता । ऐसी श्रीमोटा की वात्सल्यभावना है ।

और उत्सवों के दौरान अथवा अन्य प्रसंगों में आपश्री हमेशा पुष्पमाला के बदले सूत की आँटी अधिक पसंद करते हैं, क्योंकि उसमें से आश्रम के उपयोगी कपड़े बन सकते हैं । इसका अर्थ यह नहीं कि वे पुष्पसौंदर्य और उसकी सुगंध की कदर नहीं करते, पर मात्र बिगाड़ की विरुद्ध में हैं । 'उपयोगिता' – उनकी तात्त्विक दृष्टि है । ऐसे तो जहाँगीरपुरा, सूरत के आश्रम में गुलाब और मोगरे के पौधे हैं ।

• • •

८. घूमता फिरता कार्यालय

श्रीमोटा के अंतेवासी श्री नंदुभाई नडियाद और सूरत दोनों आश्रमों के पत्रव्यवहार स्वयं इतर कामों के बीच करते रहते हैं । उनका काम तनतोड़ होता है । श्रीमोटा की जाहिर प्रवृत्तियाँ बढ़ने पर सरकारी, अर्धसरकारी संस्थाओं, ज्ञात-अज्ञात व्यक्तियों, उनके स्वजन और प्रशंसकों के साथ पत्रव्यवहार बहुत बड़ी संख्या में बढ़ गया है, **तथापि सादा पहोंच-पत्र छापा नहीं पर हस्तलिखित भेजने की प्रथा जारी रखी हैं, क्योंकि ऐसे लिखे पत्र में हृदय के भाव रहे होते हैं और एकएक पत्र का उत्तर तुरन्त ही बिना विलम्ब जाना ही चाहिए ऐसा श्रीमोटा का आग्रह भी है । आपश्री आती-जाती सभी डाक को सतर्कता से देखते हैं और प्रत्युत्तर के विषय में आवश्यक सूचनाएँ देते हैं ।**

फिर, श्रीमोटा ३० दिन में से १५ दिन प्रवास में ही निकालते हैं। इससे उनके साथ निजी सहायक, खजानची, मंत्री, मुख्य व्यवस्थापक वगैरह का कार्य श्री नंदुभाई करते हैं । इससे उनका काम तो सुबह के तीन बजे से शुरू हो । वह रात को बहुत बार प्रवास के दौरान १०-११ बजे तक चलता रहता । इन सभी कार्य के अलावा, श्रीमोटा के पुस्तकों का प्रकाशन कार्य जारी ही रहता है । उसका भी उन्हें ध्यान रखना होता है । इस तरह प्रवास में भी यह घूमता फिरता कार्यालय भी होता है ।

इसके अलावा श्रीमोटा 'गृहस्थ' कर्मयोगी के वेश में अपने स्वजनों के साथ व्यवहारोचित संबंध भी सँभालते हैं। सभी साधु-संत भेंट-सौगात लेकर बैठे नहीं रहते। श्रीमोटा अपने 'स्वजनों' को कुछ न कुछ स्वजन के भाव अनुसार प्रतिभाव स्थूल रूप से भी व्यक्त करते हैं। इससे वे संत होने पर भी कितनों को अपने मातापिता से भी अधिक ऐसे करुणा से भरे लगते, यह एक हकीकत है। इसप्रकार, आपश्री लेनदेन की प्रथा स्थूल रूप से भी सँभालकर रखते हैं। यह एक आदर्श गृहस्थ का दृष्टांत रखते हैं। और फिर सूक्ष्मरूप से भक्त की योग्यता, अभिगम और स्वीकारशक्ति अनुसार उनकी चेतना कैसी अदृश्यरूप से कार्य करती है, यह तो व्यक्तिगत अनुभव की बात है और ऐसा अनुभव बहुतों को होता है। उनका यह पहलू बहुत अनोखा और प्रेरक है।

ऐसी स्थूल लेनदेन और उसके हिसाब की सूक्ष्म से सूक्ष्म विवरण तथा उत्सवों के दौरान भेंट मिली और पुनः विक्रय वह भेंट वस्तुओं का **हिसाब कार्यालय रखता है और आज का काम कल पर स्थगित रखना तो श्रीमोटा कभी जानते ही नहीं। जब ऐसे हिसाब और इतर काम उसी दिन ही न निपटे तो उसी दिन की देर रात तक काम चलता रहता है। इसका कारण श्रीमोटा का अनुशासन, सूक्ष्मता और व्यवस्था है।**

• • •

९. व्यवस्थापक

सूरत आश्रम के व्यवस्थापक श्री भीखुभाई हरिभाई पटेल* पहले दूध के व्यापारी कतारगाम के निवासी और देशभक्त। उन्होंने जेलवास भी किया था। श्रीमोटा के प्रति भाव जागते सन् १९५४ से उनके साथ

* सन् १९६८ से श्री भीखुभाई का शारीरिक स्वास्थ्य बिगडते पूज्य श्रीमोटा की अपील से श्री रजनीभाई बर्मावाला सन् १९६९ के ओक्टोबर लगभग से समर्पित होकर हरिःॐ आश्रम सूरत में रहने लगे और मौनार्थिओं की तथा कार्यालय की व्यवस्था की जिम्मेदारी पूज्य श्रीमोटा ने उनको सौंपी और सितम्बर १९७१ में श्रीमोटा ने उनकी ट्रस्टी के रूप में नियुक्ति कराई थी। तब से अब तक (२७-१०-२०२१) वे ट्रस्टी के रूप में सेवा दे रहे हैं।

जुड़े और सूरत आश्रम का भार अपने सिर ले लिया। उनके पास जो कुछ बचत थी, वह सब श्रीमोटा को अर्पण कर दी अर्थात् आश्रम को। जन्म से और धंधे से किसान, इसलिए श्रीमोटा की प्रेरणा से और उनकी अपनी और झीणाभाई की मेहनत से सूरत का आश्रम फलफूल की बाड़ी से लदा रहता है।

और इस आश्रम की रसोई सँभालनेवाले श्री झीणाभाई। उनको नीरा की एक सोसायटी में काम करते-करते श्रीमोटा का ऐसा दिव्य दर्शन लगा कि वे उनके भक्त-सेवक बनकर रहे। मूल में उन्होंने भी श्रीमोटा के साथ जुड़ने से पहले मौन लिया था। नडियाद आश्रम के संचालन की जिम्मेदारी में सहायक होकर श्री मणिभाई पटेल* भी श्रीमोटा के प्रति अनोखे ढंग से आकर्षित होकर सेवा दे रहे हैं। नडियाद आश्रम के रसोई का कामकाज श्री मणिभाई की धर्मपत्नी सौ. शांताबहन* सँभालती हैं।

• • •

१०. 'मोटा'

किसी को सहज ही प्रश्न होगा कि चूनीभाई भगत 'मोटा' के रूप में संबोधन किस तरह पाया? आपश्री सन् १९४० से १९४६ तक दक्षिण भारत का आनेजाने के दौरान श्री नंदुभाई के घर दक्षिण के ट्रिची तथा कुंभकोणम् में रहते और गुरु के अलावा, घर के बुजुर्ग की तरह सभी के प्रतिप्रेम तथा मान दर्शाते। श्री नंदुभाई के मामा के बेटे श्री हसमुखभाई मेहता का सूचन उन्हें 'मोटाभाई' (बड़ेभाई) कहने का था, पर साबरमती आश्रम में परीक्षितभाई मजमुदार को सभी मोटाभाई कहते**। इसलिए

---

* वर्तमान में स्वर्गस्थ

** श्रीमोटा श्री नंदुभाई को मिले उसके पहले से ही श्रीमोटा को 'मोटा' कहकर संबोधन करना साबरमती आश्रम में शुरूआत हो गई थी। साबरमती आश्रम में श्री परीक्षितभाई को भी मोटाभाई कहते और श्री चूनीभाई भगत (श्रीमोटा) को भी मोटाभाई कहते। इससे श्री चूनीभाई भगत (श्रीमोटा)ने कहा था कि मुझे छोटा नाम पसंद है। मुझे 'मोटा' कहो और परीक्षितभाई को मोटाभाई कहो जिससे व्यवहार में गड़बड़ न हो। (मौन एकांत की पगडंडी पर, प्रथम संस्करण, पृ. २७-२८) रजनीभाई वर्मावाला

श्रीमोटा ने कहा कि 'मोटाभाई' दो जन को कहना ठीक नहीं है, इसलिए उनको 'मोटा' के रूप में संबोधन करना प्रारंभ हुआ ।

• • •

११. श्रीमोटा की निष्किंचनता

श्रीमोटा ने अपने निवास के लिए कभी विशेष पसंदगी नहीं की है या आर्थिक रूप से स्वतंत्र रहे ऐसा भाव कभी नहीं रखा । जब सन् १९४६ में श्री नंदुभाई को सोलह घण्टे की 'ट्रान्स' आयी, उस समय उन्होंने अपनी सारी रु. दो लाख से अधिक कीमत की थी, वह जायदाद कानूनी रूप से श्रीमोटा के नाम पर रखने का आग्रह किया, पर उन्होंने (श्रीमोटा ने) बहुत बहुत चतुराई से इस प्रसंग को टाल दिया । यदि श्रीमोटा में थोड़ी भी लोभवृत्ति होती तो वह रकम उन्हें मिल गई होती । उसी अनुसार उनके मित्र श्री हेमन्तकुमार नीलकंठ ने अपना सभी उनके नाम पर करने का आग्रह किया, पर उन्होंने उसका भी अस्वीकार किया था ।

कुंभकोणम् में उनके लिए अलग कमरा बनवाया । नडियाद और सूरत में भी वैसा ही था । सूरत आश्रम के प्रथम व्यवस्थापक ट्रस्टी श्री भीखुभाई पटेल ने अपनी लगभग सारी जायदाद आश्रम को समर्पित की है और उनकी पत्नी श्रीमती विद्याबहन रु. ७०००/– अपनी मृत्यु के समय श्रीमोटा को भेंट देती गई थी । यद्यपि उन्होंने वह रकम ली नहीं और ऐसे के ऐसे पड़ी रही, इसलिए भीखुभाई ने उस रकम में से श्रीमोटा के लिए एक कमरा पक्का बनवाने का निश्चिय किया । श्रीमोटा की स्पष्ट ना थी, तथापि उन्होंने निश्चय अनुसार काम शुरू किया । इसलिए श्रीमोटा ने उसका स्वीकार किया । यद्यपि सत्य बात यह है कि कमरे के नीचे तहखाना भी बनाने का सोचा था, जिससे उसका उपयोग मौनएकांत खंड के लिए हो । ऊपर का कमरा भी जब श्रीमोटा सूरत में हो, तब उपयोग करे ऐसा निश्चित हुआ । जब श्रीमोटा आश्रम में उपस्थित न हो, तब उस कमरे का भी मौनएकांत खंड के रूप में उपयोग किया जाता था ।*

• • •

* श्रीमोटा के देहत्याग के बाद अब वह कमरा मौनमंदिर के रूप में स्थायीरूप से उपयोग में आता है ।

१२. ईश्वरदत्त धन-संपत्ति

श्रीमोटा कानूनन आश्रमों की धन-संपत्ति पर कोई हक दावा नहीं रखते । उनकी सलाह अनुसार सारा संचालन होता है । वे चाहे वैसा वे कर सकते हैं । तथापि **आश्रम का पैसा या धन-संपत्ति जो ईश्वरदत्त है, उसका दुरुपयोग न हो, अपने लिए भी कोई खर्च न हो, अपने सगेसंबंधी को भी आश्रम में भोजन कराते या रख नहीं सकते । ऐसी मर्यादाएँ, अंकुश बहुत सावधानीपूर्वक वे आचरण करते हैं ।** उनके शरीर को करोडरज्जु के मनके टूट जाने के कारण लगभग सारा वक्त सोये रहना पड़ता है । इससे पीठ और करवट कैसा शिकता होगा उसकी कल्पना कर सकते हैं । एक बार इस विषय में बात निकलते आपश्री ने कहा कि, 'डॉक्टर कोलनवॉटर, पाउडर वगैरह लगाने को कहते हैं पर उसका खर्च हम कैसे उठा सकते हैं ?' उनके शरीर के भाई, विधवा भाभी, भतीजे वगैरह जीवित हैं । मध्यम वर्ग के भी न गिने जाय ऐसी गरीब स्थिति होने पर भी उनको आश्रम की कोई वस्तु नहीं दी जा सकती । मुफ्त में न दिया जाय ऐसा कठिन नियम आपश्री पालन करके बतलाते हैं ।

• • •

१३. दक्षिणा लेने की शर्त पर

श्रीमोटा भाषण, व्याख्यान के बहुत विरोधी हैं । बारबार उन्हें कहते सुना है कि यह भाषण का युग है । यदि कुछ वर्ष भाषण बंद हो जाय तो बहुत अच्छा । भाषणों से लोग सुधर जायेंगे ऐसा मैं नहीं मानता । आपश्री बहुत हुआ तो—अपने अर्थ के उद्देश्य से—कोई वार्तालाप जैसा रखे तो छूट देते । पर स्वयं के स्वजनों को वैसी कोई योजना करने के लिए सख्त मनाई थी, क्योंकि वह प्रचार में खप जाता ऐसा उनका मत है । यदि कोई उनको आमंत्रण दे—समूहमिलन या वार्तालाप के लिए—तो उसका उनको कोई अवरोध नहीं होता और वह भी कोई खाली हाथ वापिस आने के लिए नहीं, पर उनकी समाजोपयोगी योजनाओं को

पुष्ट करने के लिए भेंट लेने ! भोजन के लिए बुलाओ तो भी दक्षिणा अर्पण करना चाहिए । 'भैया, दुनिया में कुछ भी मुफ्त में नहीं मिलता । तो **इस** मार्ग की शिक्षा और साधुसंतों का पधारना कोई मुफ्त में मिलेगा ?' श्रीमोटा यह सब माँगते हैं, वह कोई मंदिर बनवाने या अपनी प्रतिष्ठा में बढ़ावा करने या आश्रमों का विस्तार करने के लिए जरा भी नहीं माँगते । समाज के पास से लेकर समाज को विशिष्ट रूप से उपयोगी हो पड़े, उस तरह समाज के चरणों में वे रख देते हैं ।

• • •

१४. वाणी में कंजूसाई

जैसे उन्होंने साधना गुप्त ढंग से की, उसी तरह आश्रम का संचालन भी अप्रसिद्ध रखा । आध्यात्मिक साधना का मार्ग तो पठन से अधिक तो अभ्यास (प्रेक्टिस) का, मुहावरा का, सतत नियमित उत्कट प्रेमभक्तिज्ञानपूर्वक उसमें लगे रहने का मार्ग है । यह बात कितने भी बड़े व्यक्ति को भी वे जाहिर में कह सकते हैं । सूरत में एक बार गीता-ज्ञानयज्ञ का प्रारंभ करने उसके आयोजक श्रीमोटा को प्रमुख स्थान पर पधारने के लिए अति आग्रह करके ले गये । तब प्रमुख स्थान पर से उन्होंने कहा कि, 'गीता आचरण करने का शास्त्र है । केवल उसके पारायण करने से कुछ भी नहीं मिलेगा । उसमें बताये अनुसार चलना पड़ेगा । इसके लिए अभ्यास की-साधना की आदत डालनी चाहिए ।'

इसका अर्थ यह नहीं कि वे पठन के बिलकुल विरोधी हैं । **वे इतना ही बताना चाहते हैं कि केवल पढ़ने से कुछ नहीं होगा । इससे बहुत हुआ तो बुद्धि में संस्कार आये पर हृदय के नहीं । पाकशास्त्र सीखनेवाले को करछा हाथ में लेकर प्रयोग करने चाहिए । वह उनका बोध है । बाकी आचार विना का पठन और श्रवण हमें बहुत दूर तक नहीं ले जा पायेगा । उनके आश्रम में पुस्तकालय भी नहीं, इसलिए उनके आश्रमों में कोई व्याख्यान, ज्ञानसत्र या पूजापाठ नहीं होते** । उन्होंने तो केवल 'प्रयोग करने' एकदम 'प्रयोगशाला' में घूस जाने

का रास्ता बतलाया है, क्योंकि उन्होंने वह अनुभव किया है । इसलिए ही उन्होंने लिखा है कि, 'वचन में तो दरिद्रता ही शोभित होती है । वाणी में—बोलने में ज्ञानपूर्वक कंजूस बनने का है और नामस्मरण में जितनी वाणी खर्च हो उतना उत्तम है ।'

• • •

• 'मौनएकांत' मंदिरों •

१. 'मौनएकांत' का श्रीगणेश

इस जीवन में रहकर साधना करनी हो तो अच्छा ऐसा एकांत मिले और सभी सुविधा मिल जाये ऐसी एक योजना श्रीमोटा के दिमाग में जीवन्त निश्चितरूप से हो चुकी थी । पर ऐसा साधन उन्हें कहीं मिल न रहा था । वे गुजरात हरिजन सेवक संघ में से मुक्त हुए थे और साबरमती हरिजन आश्रम में श्री नंदलालभाई के यहाँ रहते थे । तब वहीं पर श्री नंदुभाई के आवास निकट 'विनोबा-मीरां' कुटिर रूप में पहचाना जाता एक कमरा था । एक कंतान के परदे से उसके दो भाग करते । एक भाग के अंदर कोई साधक को बैठने की व्यवस्था थी और दूसरे भाग में मलमूत्र कर सके इस प्रकार की व्यवस्था उन्होंने की थी । इसतरह मौनएकांत की साधना करने की रीत शुरू हुई थी ।

श्रीमोटा ऐसा भी मानते थे कि किसी को कुछ मुफ्त में नहीं देना, इसलिए जो कोई इस साधना के लिए आते उसका मूल्य जो कुछ मिलता, वह हरिजन आश्रम की हिसाबवही में श्री नंदुभाई जमा करवा देते । दो बार भोजन, चाय-कॉफी अपने घर से देते ।

उनका एक दूसरा तरीका है कि सब समय पर होना चाहिए और कुदरत के साथ समय का ताल मिलाना, लय मिलाना यह हमारे लिए बहुत महत्त्वपूर्ण बात है । इस कुदरत के अंदर भी काल की एक लयबद्धता है । इसकी जानकारी बहुत कम व्यक्तियों को है । काल के इस लय और ताल के साथ हम भी लय और ताल मिलाने का यदि करें तो इससे हमारे जीवन में एक ऐसे प्रकार की

सरलता, सुगमता, व्यवस्था और सुमेलता आती है और उसमें से एक लय आती है । और इस लय में भी कितने अधिक प्रकार है, जिसकी हम जैसे सामान्य मनुष्य को कुछ सूझ-बूझ ही नहीं होती, पर जो इस साधना के भाव में गहरे उतरे हैं, उन लोगों को इस लय का भान है । वह लय भले अलग-अलग स्थिति में अलग प्रकार का रहा करे पर उस लय में एकरस होने का और उसके साथ अपने लय को मिलाने का जो समझे हैं, उनके लिए चेतन में रस लाना, विकसित करना बहुत सुलभ हो जाता है । ऐसी स्पष्ट समझ के कारण श्रीमोटा कोई भी समय सँभालने का करते हैं । अभी भी करते हैं और साधना में बैठे भाई-बहनों को आश्रम में समय पर चाय-कॉफी, भोजन आदि सब मिला करे, यह तब से उनके मन में नक्काशी हो गई योजनाबद्ध हकीकत थी । साबरमती आश्रम में जो मौन लेने आते वहाँ भी इसी तरह ही साधना करवाते ।

• • •

२. मौनएकांत मंदिर

मेरे गुरुमहाराज ने मुझे कहा कि, 'तुमने देशसेवा बहुत की । अब मानव में गुणभाव विकसित करनेवाली सेवा कर ।' वे मुझे डंडा देना चाहते थे, तब मैंने कहा कि, 'मैं तो संसार में रहनेवाला, इससे डंडा का उपयोग कर लोगों को सच्चे मार्ग पर नहीं ला पाऊँगा । प्रेम से ही उनको वैसे रास्ते ला सकता हूँ ।' गुरुमहाराज ने वह मान्य रखा और साधना के लिए **यह** मार्ग मुझे बतलाया । फिर मैंने उनको कहा कि, 'लोगों के पास ले लेकर उनको मैं क्या दूँगा ?' तब उन्होंने उत्तर दिया कि, 'रोट के लिए चिंता न करना । तुमने प्रजा की सेवा बहुत की है, इससे रोट यह तुम्हारा पेन्शन है, ऐसा समझना और लोगों के पास से लेकर तुम्हारे सिर पर उनका चढा ऋण नहीं रहने दूँगा ।' इसलिए मौनमंदिर स्थापित करने का विचार आया ।

मौनमंदिर का समय मेरे मन तो 'यह जीव' के साथ उन उन जीवों को जुड़े रहने की क्रिया है । यदि वैसा न हुआ होता तो तुम

में से कोई भी मेरे साथ रह नहीं सकता...प्रत्येक जीव का मौनएकांत का काल मेरे मन तो एक बहुत महँगा अमूल्य काल है ।'

उपरोक्त शब्दों में श्रीमोटा ने मौनएकांत मंदिर की स्थापना के पीछे का उद्देश्य और उसकी विशेषता के बारे में बतलाया है ।

मौनएकांत की साधना के लिए जिज्ञासु को पहले से नाम लिखवाना पड़ता है । क्योंकि श्रीमोटा के मार्गदर्शन में उनकी इस अनोखी कार्यशैली से साधना करना चाहनेवालों ठीक ठीक संख्या में होते हैं । जब उस सूची में जिज्ञासु की बारी आती है, तब वह साधक कम से कम सात दिन एक अंधेरे* कमरे में बिलकुल एकांत में बिताने के लिए प्रवेश करता है । निश्चित किये दिन की अवधि पूरी हो नहीं, वहाँ तक साधक उस कमरे से बिलकुल बाहर नहीं आते । स्नान, शौच आदि क्रियाओं के लिए उस कमरे का वह अकेला ही उपयोग कर सके इस तरह खास व्यवस्था की है । इससे उसके लिए भी वह बाहर नहीं आता । भोजन की थाली भी आगे की दीवार में आरपार सूराख कर दीवार की दोनों तरफ खिडकी रखकर इस तरह की योजना की है, कि लेनेवाले या देनेवाले एकदूसरे को देख न सके ।

ऐसी साधना में मनुष्य को अपना मूल्यांकन सही रीत से करना आता है । उसके अर्ध जाग्रत और अजाग्रत मानस में गहरे पड़े हुए आमनेसामने की दिशा के प्रवाहों और उसकी प्रकृति तथा स्वभाव की जीवन में पहली बार कोई स्पष्ट झाँकी उसे होती है । अभी तक सोकर पड़े रहे उसके मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम् के अंतर के करणों में भारी उथलपुथल मचाते हैं । जैसे यमुना की धरा में सो रहे कालीनाग को श्रीबालकृष्ण ने जगाया था वैसे । पर इसमें नोंधपात्र और खास ध्यान खिंचे ऐसी हकीकत यह है कि ऐसी अंतर में होती अति भारी मेहनत

---

* प्रारंभ में कमरे में लाईट नहीं रखी जाती थी । टोर्च से साधक को चला लेना पड़ता, क्योंकि अंधेरा एकाग्रता का पोषक है, परन्तु अब कमरे में विद्युत है, जिसका उपयोग हो उतना कम करने की सलाह है । दूसरा अंदर बैठनेवालों को बाहर की आवाज थोड़ी बहुत आती होती है, इससे श्रीमोटा की इच्छा इस कमरे को बिलकुल आवाजमुक्त रखने की है ।

के दौरान भी उसका जोर से जप जारी रहता है। उसमें नहीं तो भंग पड़ता उस अंतर में धमसान अवरोध से या नहीं पड़ता सतत जोर से १५-१६ घण्टे रोज दिनों के दिन तक बोला करने में होता शारीरिक श्रम से, उसकी आवाज, छाती, सिर—संक्षेप में जोर से उच्चारण होने में जिस-जिस अंग का घिसाव हो, उस सभी में से किसी को भी ऐसा श्रम नहीं पड़ता कि जोर से होता जप रुक जाय, वह तो अपनेआप जारी रहता है।

ऐसे लंबे काल का और इतनी एकाग्रता से हुआ जपयज्ञ साधक का सत्त्व-जीवकोष—'आधार' पर ऐसा गहरा संस्कार डालता हैं कि मानो शिलालेख। इसलिए वे लंबे समय के परिणाम से मिट नहीं जाते। इससे जब उसका काल पकता है, तब वे संस्कार उदयवर्तमान होकर साधक को सहायरूप होकर, उसे अनिवार्य रूप से आध्यात्मिक पथ पर आगे ले जाते हैं, साथ ही उसकी गति में अति वेग देते हैं। यों प्रभुमय जीवन जन्माने तथा विकसित करने के लिए यह साधनाशैली, पद्धति की दृष्टि से एवं परिणाम की सफलता तथा तत्कालता की दृष्टि से मौलिक और अपूर्व है।

अद्‌भुत आध्यात्मिक अनुभव जैसे कि दिव्यदर्शन *(विझन्स)*, दिव्य ध्वनि का श्रवण, प्रकाश के दर्शन, भविष्य में होनेवाले प्रसंगों की आगाही के चित्र, आश्रम के अधिष्ठाता श्रीमोटा शरीर से उपस्थित न होने पर भी उनकी सूक्ष्म प्रत्यक्ष उपस्थिति के अनुभव आदि अलग-अलग प्रकार के अनुभव इस मौनएकांत जपयज्ञ में बैठनेवालों में से अमुक जीवों को होते हैं। ऐसे अनुभव के अलावा कुछ भी आधिदैविक, आध्यात्मिक अनुभव हो, उसके संस्कार पड़ने की दृष्टि से मूल्यांकन सही किन्तु सबसे उत्तम से उत्तम तो यही है कि इससे हमारे राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर तथा अहंकार आदि फीके हो, वह जीवनविकास का उत्तम माप और श्रेयार्थी उसे ही विशेष महत्त्व दिया करे ऐसा श्रीमोटा स्पष्ट रूप से बतलाते हैं।

अमुक को फिर अपने भूतकाल के प्रसंग, विचार, भावनाओं के आघातों मूर्त स्वरूप लेकर सिनेमा की रील हम देखते हो वैसे उनके आगे

प्रत्यक्ष होते हैं । ये दृश्य भी इतने अधिक तादृश्यरूप से स्पष्ट और जीवंत दिखते हैं कि मौन लेनेवाला जीव यह सब देखकर स्तब्ध हो जाता है । उसमें पश्चात्ताप का पुनित झरना बहता है और फिर से वैसा व्यवहार न करने तथा जीवननैया के बहाव की दिशा ही बदल डालने की प्रेरणा एकांत और मौन में हुए दिव्यदर्शन द्वारा साधक प्राप्त करता है ।

मौनमंदिरों का अस्तित्व जीवनविकास के उद्देश्य के लिए ही अर्थात् श्रीभगवान के अनुभव तथा भगवानमय जीवन के लिए ही है । जिस जीव को जीवन विषयक मनन, चिंतन और निदिध्यासन करने का और वह जीवन में प्रत्यक्ष आकार ले वैसे मंथन में रहने का दिल हो, अपने जीवन के बारे में गहरा पृथक्करण करके स्वयं को खोजने की जिसे तमन्ना हो, उसके लिए यह स्थान है । खाली-खाली पड़े रहने के लिए यह स्थान नहीं है । मकान खाली रहे उसमें कोई बाधा नहीं, पर *जीव* यदि खाली पड़े रहे तो श्रीमोटा को बहुत अधिक बाधा है ।

सर्व धर्म और सर्व जाति के नरनारी यहाँ प्रभुभजन के लिए मौनमंदिर में रह सकते हैं और अपना इष्ट साधन कर सकते हैं ।

मौनमंदिर में साधना के अंत में ऐच्छिक निवेदन लिख देने की वृत्ति होती है । वहाँ साधक ने इतना समय कैसे बिताया, कैसे अनुभव हुए, कैसा लगा वगैरह प्रामाणिकता से लिखने कहा जाता है । जिसे पढ़कर दूसरों को मार्गदर्शन और प्रेरणा मिले ।

• • •

३. लाक्षणिक अनुभव*

हरिः ॐ आश्रमों—मौनमंदिरों की स्थापना का विचार अमल में आया उसके पहले की यह घटना है । सन् १९४६ में एक साधक ने २१ दिन का मौन लिया । मौन अनुष्ठान में १४ दिन के बाद उस भाई को बवासीर की पीड़ा हुई । उन्होंने एनिमा लेने की सम्मति माँगी पर पूज्य

* यह अनुभव श्री नंदुभाई का है ।

श्रीमोटा ने ऐसा करने की संमति न दी और न रास आये तो मौनएकांत में से निकल जाने का विकल्प बताया । उस भाई को यह बात न रुचि । उन्होंने उसी दिन से भोजन न लेने का संकल्प किया, जिससे बवासीर की पीड़ा व्यग्र न कर सके । इससे मौनएंकांत का अंतिम सप्ताह केवल पानी लेकर ही उपवास में बीता ।

मौनपूर्णाहुति की शाम वह भाई बाहर निकले और रात के ग्यारह बजे तक बाहर खुल्ले में सोये रहे । रात के बारह बजे सात दिन के उपवास के बाद शाक और मूँग का पानी लिया । दूसरे दिन दुनिया के कामकाज में वे लगे । फिर श्रीमोटा के साथ कुछ बात करने लगे । तब हवा की सरसराहट हो रही हो ऐसा लग रहा था । यह बात उन्होंने श्रीमोटा को बतलायी । उस भाई को गले की तकलीफ पहले से सही, वह लंबे समय तक न बोल पाते । उनके लिए 'दो मील चले जैसी थकान हो, इससे अधिक थकान एक घण्टे बोलने पर' लगे ।

अब, अगले सात दिन के उपवास, पहली रात की मात्र दो ही घण्टे की नींद, ऐसा होने पर भी इस दिन की रात को उनमें किसी दिव्यशक्ति का संचार हुआ हो, उन्होंने रात के दस बजे हिन्दी में और अंग्रेजी में बोलना प्रारंभ किया । उनका यह बोलना बहुत ही उच्च हो पर भी मधुर आवाज के साथ होता था । उन्होंने अपने स्वभाव, वृत्ति, भावों का पृथक्करण वेग से हिन्दी बोली में करे रखा । हिन्दी में बोलने का उन्हें लेश भी अभ्यास न होने पर भी ऐसा हुआ यह भारी आश्चर्य है । स्वयं को ऐसा हुआ कि इतनी साधना करने के बाद भी गुरु की चाकरी और प्रेम पाने पर भी, कुछ भी समर्पण हुआ नहीं और नहीं हो पा रहा । इससे, अपना सर्व समर्पण करना चाहिए ।

उनकी पत्नी और दूसरे स्नेही लोगों ने इस भाई की इस तरह की बात सुनकर और उनकी वाणी में एवं आवाज में हुए परिवर्तन को देखकर बहुत आश्चर्य हुआ । इस भाई को मानसिक अस्थिरता तो नहीं होगी ऐसी दहशत भी हुई । इससे चिंतित भी हुए । स्वयं जो कुछ सतत बोले जा रहे थे, तथापि स्वयं लेश भी बेहोश नहीं ऐसा भरोसा कराने घर तथा

दुकान की सूक्ष्म से सूक्ष्म बात बतलायी। अपने स्वभाव और अपनी पत्नी के स्वभाव का पृथक्करण करती यह हिन्दी-अंग्रेजीवाणी का प्रवाह सुबह तक चलता रहा। रातभर ऐसे ही बोले जा रहे थे। तब पड़ोसिओं को इससे खलल पहुँचेगा ऐसा बताने पर भी अत्यन्त जुस्से से, किन्तु भावपूर्वक इस तरह का वाणीप्रवाह चलता ही रहा। बीच में पानी पीने की भी आवश्यकता न लगी।

यह भाई जब मौनखंड में थे, तब बाहर की ओर एक नाजुक पर विलक्षण घटना हो गई थी। पड़ोस में रहते एक व्यक्ति के यहाँ रहता जेकी नाम का एक कुत्ता पागल हुआ है ऐसा वहम हुआ। यह कुत्ता श्रीमोटा के पास आता। बहुत बार उसे धमकाकर निकाल डाले तब भी जमीन चाटता वह आता। उस कुत्ते को उस सज्जन ने बंदूक से जान से मार दिया। श्रीमोटा ने कुत्ते का अग्निसंस्कार किया और उसके अस्थि नदी में विसर्जन किये। यह सत्य उस भाई ने जाना।

इस जेकी की वफादारी के आगे अपनी जात को तृणवत् गिनने लगे। उसके समर्पण और अंतिम काल में हुए उसके उद्धार से अपनी गुरुभक्ति में रही स्वयं की कमी उन्हें कण की तरह सालने लगी। उन्होंने जो-जो जोश में बोलना जारी रखा, उसमें उन्होंने अपना निर्णय जाहिर किया कि अपनी सारी जायदाद श्रीमोटा को अर्पण कर दूँगा। उस विषय में जो चारपाँच हजार का स्टेम्प का खर्च हो, उसका विचार भी न करना। यह काम पूरा करने रजिस्ट्रार, वकील और डॉक्टर को बुलाने को उन्होंने अपने संबंधिओं को कहा। श्रीमोटा इस समय उपस्थित थे, इससे उन्होंने कहा, 'अभी रहने दो।' पर उस भाई ने स्पष्ट कहा कि, 'यह पल ही समर्पण की पल है, नहीं तो कल या इसके बाद की पल इस तरह समर्पण करने तैयार न भी हो।' और जहाँ तक अपना यह समर्पण संकल्प पार न हो, तब तक पानी भी न पीने का संकल्प उन्होंने जाहिर किया।

यह कहने के साथ पृथक्करण किया करती वाणी तो बहती ही रही। स्वयं जो कुछ बोल रहे हैं, वह स्वयं सुनते हैं, समझते हैं और पूरी सभानता

से बोलते हैं ऐसा उसी पर तटस्थता से अनुभव हो रहा था। मन के दोनों स्तर अलग पड़े हो ऐसा लगता था।

वकील, डॉक्टर और रजिस्ट्रार की राह देखनी थी। दोपहर के दो बजे भी पूज्य श्रीमोटा ने पहले से बुलाने जानेवाले व्यक्ति को समझाया था, इससे उसने आकर कहा कि, 'आज रविवार होने से रजिस्ट्रार बाहर-गाँव गया है, इसलिए अब कल ही कोर्ट में रजिस्ट्रेशन हो सकेगा। आज संभव नहीं।'

वे भाई जो संपत्ति अर्पण करनेवाले थे, उसकी कीमत उस समय भी बहुत ही थी। पूज्य श्रीमोटा उस भाई के समर्पणभाव को जान गये थे, तथापि व्यवहारिक प्रत्यक्ष दिखता उनका सूक्ष्म विवेक बहुत सारी बातों को बतला देता है।

यह घटना कितने तत्त्वों को प्रकाशित करती है –

(१) साधक की आचारशुद्धि जितने प्रमाण में होती जाती है, उतने प्रमाण में दिव्य अनुभवों की संभावना बढ़ती जाती है। साधक स्वयं ऐसे पलों में प्रभु का 'यंत्र' हो ऐसा व्यवहार करता है।

(२) ऐसा होने से मुक्तात्मा का व्यवहार जान सके ऐसा नहीं होता, क्योंकि मुक्तात्मा संसारी रूप में व्यवहार नहीं करते, क्योंकि उनके आधार में वह दिव्यतत्त्व हमेशा सक्रिय ही होता है।

पूज्य श्रीमोटा की चेतनाशक्ति के गूढ़ दिव्यकार्य के साथ-साथ उनका विलक्षण ताटस्थ्य इस घटना में दर्शनीय बना है।

फिर, श्रीमोटा ने चाहा होता तो वह सारी जायदाद अपने नाम कर ली होती, पर उन्होंने Sex, Power and Wealth–यह प्राकृत जीवन के मुख्य प्रश्नों को हल किया होने से धन की मालिकी का मोह न था। उन्होंने तो उस भाई को उस समय ऐसा भी समझाया कि, 'इस तरह अपना सारा धन दे देने से भी आपकी धन की आसक्ति नहीं जायेगी। **अभी इस क्षण भले विरक्ति जागी हो, पर मूल में से तो *'परंदृष्ट्वा'*– ही वह जायें। इसलिए ऐसे स्थूल का मात्र समर्पण करने से आधार का समर्पण नहीं हो सकता। यह तो चित्त की शुद्धि हुए बाद और**

अहम् पिघलाने के बाद ही संभव होगा । इसलिए स्थूल का उपयोग ज्ञानपूर्वक समझ-समझ कर *उसे* पाने हेतु करो । एक छटके में सिर काट देने के स्थान पर टुकड़े टुकड़े धीरे-धीरे अपनी जात को करवत द्वारा चीरने दो और वह काम कठिन है, तब भी यह करने जैसा है ।'

• • •

४. पाथेय उपलब्ध करवाते मंदिर

श्री विष्णकुमार दवे ने साधकों के निवेदन के आधार पर लिखे एक लेख में लिखा है—

इन 'मौनमंदिरों' में सन् १९७० तक ४५०० जितने व्यक्तिओं ने मौनउपासना की है । मौनउपासना का समय उपासक की शक्ति पर आधारित होता है । कुंभकोणम् और सूरत आश्रमों में मिलकर एक तेईस वर्ष के केनेडियन भाई श्री रोबिन ने सवा वर्ष की मौनउपासना की है । उपासक बहुत बड़ा जीवनपाथेय लेकर बाहर निकलता होता है ।

'मौनमंदिर अर्थात् एटम युग की प्रयोगशाला' ऐसा आधुनिक युग के अनुरूप भी एक उपासक ने वर्णन किया है ।

मनादिकरण की प्रत्येक प्रवृत्ति फीकी हो और स्वभाव-प्रकृति में अंतर होता जाय इसके लिए यह मौनएकांत मंदिर नामस्मरण के लिए उत्तम स्थान है । उसमें मेरे आंतरिक रोगों का निदान हुआ और प्रेमपूर्वक देखभाल की गई ।

एक साहित्य उपासक इस मौनमंदिर का असर बतलाते लिखते हैं कि 'कालिदास के शब्दों में कहूँ तो *शान्तमिदमाश्रमपदम्*' ऐसी मन पर असर हुई ।

'फिर, मन का कचरा हरिस्मरण से बाहर निकलता है ।' ऐसा इकरार कर हरि के साथ एकरस भूमिका बांध देता है ।

और 'मौन और नामस्मरण के अभ्यास से मन के सामने संग्राम करने की ताकत बढ़ेगी' ऐसा दूसरा उपासक कहता है ।

यहाँ पूज्य श्रीमोटा (सूक्ष्म रूप से) उपस्थित होने के कारण कमरे में—कोठरी में बंद होने की सजा नहीं होती पर खूब आनंद होता है । इसीसे एक उपासक बहन बोल उठती है कि, 'श्रीमोटा ! मेरी माँ ! ऐसा मैं हृदय से चाहती, क्योंकि ऐसा प्रेम माँ और प्रभु के सिवा कोई नहीं दे सकता ।'

पूज्य श्रीमोटा ने मानव के आध्यात्मिक विकास के लिए आयोजित किये मौनमंदिर 'मौन और एकांत द्वारा साधना करने का मौका चाहते साधकों के लिए सत्य तीर्थस्थान है ।'

इसीसे एक उपासक बतलाता है कि, 'आध्यात्मिक पथ के राही को थोड़ा पाथेय मिल गया है । वह घटते अधिक पाथेय के लिए यहाँ आकर द्वार खटखटायेगा ।'

• • •

५. नामस्मरण का प्रयोगात्मक प्रमाण

(केनेडियन युवक रोबिन का पूज्य श्रीमोटा पर का पत्र)

- **श्री रोबिन का अल्प परिचय**

यह पत्र लिखनेवाले भाई का नाम श्री रोबिन है । वह ऐसे तो मूल केनेडा का परन्तु संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में रहता । अभी (१९७० में) उसके शरीर की उम्र लगभग पच्चीस की होगी । जवानी में अमेरिका के युवानों में फैली आदतों में फँस गया था । (एल. एस. डी., गांजा, भांग, चरस आदि 'नारकोटिक ड्रग्स' में फँसा था ।) ऐसे में अमेरिका में किसी के पास हमारे यहाँ बोली जाती धुन उसने सुनी और वैसी वह धुन बोलने लगा । अमेरिका में जो सभी योग के आश्रम थे, वहाँ वह घूमा, परन्तु उसे वहाँ पूरा संतोष न मिला । इसलिए योगभक्ति के मूल धाम भारत आने निकला । पास में पैसे न थे । इसलिए जहाँ-तहाँ मेहनत, मजदूरी करते-करते अंत में भारत आया और भारत में पंजाब के फिरोजपुर शहर में वह आया । वहाँ एक मौनीबाबा (श्री राज के. मौनी) को मिला । वहाँ फिरोजपुर में एक भाई सूरत-नडियाद आश्रम के जैसा हरि:ॐ मौनमंदिर चलाते हैं, वह जगह उन्होंने बतलायी । वहाँ से वह

खोजता–खोजता सूरत आ पहुँचा । सन् १९६८ में ९८ दिन हरि:ॐ आश्रम, सूरत में एक–सा मौनएकांत में बैठा । उसे तो ज्ञान हो, वहाँ तक लंबे समय तक मौनएकांत में बैठना था, इसलिए दक्षिण भारत में कुंभकोणम् हरि:ॐ आश्रम में उसको भेजा । वहाँ एक–सा वह ३८८ दिन (लगभग १३ महीने) मौनएकांत में रहा ।

उसने हमारे शास्त्र या ऐसा दूसरा कुछ भी पढ़ा नहीं था । मात्र 'हरि:ॐ' के जप ही किया करे । इसमें से इस भाई को अंतर की–हृदय की समझ अंतर में अंतर से ही खुल गई । मात्र नामस्मरण के प्रयोग से अंदर का भी नया स्वरूप कैसा प्रकट होता है, उसका यह भाई रोबिन इसका प्रयोगात्मक प्रमाण हैं ।

हरि:ॐ

रोबिन आर्मस्ट्रोंग
१६०, ह्युरोन स्ट्रीट, APP–३८
टोरेन्टो, ओन्टेरीओ (केनेडा)

प्यारे **मोटा,**

आपको मैं खूब प्यार करता हूँ । मुझे किसी बात का डर नहीं, क्योंकि सब कुछ प्रभु की इच्छानुसार ठीक ही हो रहा है ।

कुदरत में कुछ भी नित्य नहीं रहता । जो पूर्ण है, वह शून्य है, जो शून्य होता है, वह पूर्ण बनता है ।

जहाँ घोर अंधेरी रात जैसा अंधकार होता है, वहाँ दिन जैसा प्रकाश चमचमाता है । जो रिक्त (शून्य) है, वह पूर्ण बनता है । जो भरा पड़ा है, वह खाली होता है ।

शेष मात्र 'ॐ' ही रहता है ।

मोटा, हरि:ॐ आश्रमों को आपके मार्गदर्शन की जरूरत थी, इसलिए ही आपका जीवन सर्वभाव से प्रभुमय बना ।

प्रभु के चरण में जीवन समर्पण करना यही मात्र उद्देश है । मैं अपना जीवन प्रभु को समर्पित करता हूँ ।

यहाँ उत्तर अमेरिका में अनेक लोगों ने, आधुनिक जगत ने सृर्जन किये यंत्र और कारखानों में आत्मचैतन्य को खोया है। अनेक लोग गंदी आबोहवावाले शहर के अंधकार में जीवन बिताते हैं। अनेक लोग तो इन्द्रियों के विषयों का आनंद उठाते विलासी जीवन के आत्यंतिक असंयम में डूब गये हैं। अनेक लोग भौतिक समृद्धि में गले तक डूबे रहा करते हैं। न्यूयोर्क जैसे शहर में बसते लोगों ने तो गाँव भी नहीं देखे हैं। अभी तक अनेक लोग ऐसा सोचते हैं कि दूध फेक्टरी में ही तैयार होता है और बोटल में से ही निकलता है। प्राकृतिक सौंदर्यवाले अनेक विस्तार होने पर भी एक चोरस मील जितना प्राकृतिक सौंदर्य का प्रदेश अनेक लोगों ने देखे नहीं है।

पूर्व के लोग तथा दुनियाभर के लोग पश्चिम के शिक्षित, सुघड और प्रगतिशील लोगों की प्रशंसा करते हैं, पर वे तो कठिन आपातकालीन वक्त से भयभीत हुए हैं।

गरीबी, शहरों की घनी बस्ती, बेकारी, भूखमरी—हाँ, यंत्र अनेक काम करते हैं। लोगों को स्वयं करने जैसे काम कम होते हैं, इससे युनाइटेड स्टेट्स में उन्हें युद्ध में भेजना पड़ता है।

अनेक लोक ईश्वर में मानते हैं, कितने नहीं भी मानते। जबकि अनेक लोगों को ईश्वर के विषय में विचार करने का समय तक नहीं होता।

अधिकतर लोग इस अमेरिकन स्वप्न (!) अथवा तो वास्तविकता की तीव्र अरुचि में राचते हैं। व्यक्ति निरपेक्ष यंत्र मनुष्यों की भावनाओं और विचारशक्ति को लपेट ले रहे हैं।

'मानवजीवन का उद्देश्य क्या ?' यह प्रश्न तो भ्रमणा और भय का भंडार बन जाता है। बहुत ही कम लोग अपने जीवन का कोई स्पष्ट उद्देश हो तो उसे जानते हैं।

कुछ लोग प्रभु से प्रेरित होते हैं। फिर यह ईश्वर का कोई भी नाम हो सकता है। मेरे लिए 'ॐ' यह ईश्वर है।

जीवनदेव के इन संतानों ने, अमेरिका के इन लोगों ने मुझे बुलाया है । इन लोगों के आर्द्रताभरे आर्तनाद ने मुझे मेरी मौनसाधना में से बाहर आने के लिए प्रेरित किया है ।

मैंने उनके इस चित्कार, आर्तनाद को कावेरी नदी के नीर में सुना है । ये आवाजें मुझे वायु की सरसराहट की तरह सुनाई दी ।

आपकी भारतभूमि देवों की और संतों की भूमि है । वहाँ मैंने दिव्यशक्ति का अनुभव किया । मेरे देशबंधुओं का जो दारिद्र्य मेरे हृदय में रुदन प्रेरित होता था वैसा दारिद्र्य मैंने भारत में कहीं नहीं देखा । यानी कि अमेरिका के लोग आध्यात्मिक अभीप्सा के अभाव से जितना त्रस्त और दुःखी हैं ऐसे भारत के निवासी नहीं हैं ।

आधुनिक जगत में ये अमेरिकन संतानें उनके पूर्वजों के द्वारा सर्जित भुलभुलैया में रुक गये हैं । अमुक तो हिप्पिओं की तरह आतंकवादी हो गये हैं और अमुक तो फिर (जीवन का उद्देश्य और भगवान की खोज में) एल. एस. डी. आदि जैसे मादक औषध के सेवन से भगोड़े हो गये हैं । बहुत सारे तो उनमें से अधिकतर लोग भौतिकता और इन्द्रिय सुख की लालसा से नष्ट हो गये हैं । विनाश के मार्ग में ले जाते नशे के इस कमनसीब मार्ग से कोई ही उबर सके हैं । प्रभु की कृपा से उनके ही हेतु को पार करने के लिए जिसे प्रेरणा हुई है, ऐसे ही कुछ भाग्यशाली इस तूफान में से उबर जाते हैं ।

सभी प्रभु के संतान हैं। ये सबसे अधिक गंदे हिप्पिओं तक। जो अनिष्टों के बीच जिस प्रकार की समर्पणयुक्त करुणा और प्रेम का संस्पर्श भारत में मैंने अनुभव किया है, वही विशिष्ट प्रकार का प्रेम और करुणा प्रत्येक के अंतर में गहराई तक पहुँचेंगे और इस जगत को सर्वनाश में से उबारेंगे।

लोग स्वयं जो माने उस प्रभु के स्वरूप में—फिर 'ॐ' हो या फिर प्रभु का अन्य कोई भी स्वरूप हो—पर अपने आपको खोजे, इसके लिए मैं बहुत ही परिश्रम करता हूँ । हालाँकि, ईश्वर सर्वत्र एक ही हैं । इससे कोई किसी भी एक ईश्वर को माने, इसमें कोई अंतर नहीं पड़ता, क्योंकि यह सभी एक है ।

अंधकारग्रस्त भूमिका में प्रभु के लिए प्रेम यही मात्र प्रकाश है ।

मोटा, आपके भक्त 'हरि:ॐ' का जप करने के लिए मौनमंदिरों का उपयोग करना बंद कर दे ऐसी दहशत—चिंता मुझे रहा करती है । उनको शायद ऐसा लगे कि यह रोबिन इतने अधिक लंबे समय तक मौनएकांत में रहा, इसलिए ऐसा अस्थिर, चंचल, पागल जैसा हो गया है ! ऐसा हो तो फिर मौनएकांत में जाने का साहस कौन करेगा ?

जीवन को समझने के लिए और प्रभु का अंश बनने के लिए जो सबसे अधिक पवित्र और शीघ्र मार्ग है, उसमें से एक मार्ग इस प्रकार का मौनएकांत है । यह मेरी स्पष्ट मान्यता है । मौनमंदिर इस जगत पर की एक पवित्र शाला है । वहाँ गुरु के किसी भी प्रकार के आग्रह-पूर्वग्रहों से मुक्त एवं किसी भी प्रकार की काल्पनिक मान्यताओं से मुक्त शिक्षण प्राप्त होता है ।

सत्य, शांति और प्रभु के लिए की सच्ची प्रेम की तीव्र अभीप्सा—लगन का मौनमंदिर में अपूर्व मौका प्राप्त होता है । इसलिए ही हरि:ॐ आश्रम चालू रखने चाहिए । मौनएकांत की साधना में से बाहर निकलने के बाद जीवन के लिए, जीवन का हेतु तक का भी—आशा का प्रकाशकिरण लाधता है । जहाँ तक अंतरतर सक्रियरूप से अंतर में व्यक्त न हो, वहाँ एक प्रत्येक **जीव** के अंतर में साधनापथ का मार्गदर्शन अपने आप ही स्फुट होता रहता है ।

हरि:ॐ आश्रम चालू रहने चाहिए । जिसे जीवन में पुरुषार्थ करके अध्यात्ममार्ग में मथने की हिंमत और श्रद्धा है, उन सभी के लिए यह मौनएकांत मंदिर भविष्य में खुल्ले रहे ऐसी मैं आशा रखता हूँ । इससे कितने अपने अंतर में बसे प्रभु की वास्तविकता की खोज करने का 'सिंहहृदय' रखते शूद्रों के लिए भी संभावना रहे ।* इससे उनके जीवन में एक अनोखी आशा का तेज-स्फुलिंग, दिव्य हेतुपूर्ण भक्तिभरा जीवन

---

* श्री रोबिन को जानकारी नहीं कि इन मौनमंदिरों समस्त ज्ञाति और जाति तथा स्त्रिओं और पुरुषों के लिए जीवन की साधना के लिए खुल्ले ही हैं । इतना ही नहीं, पर मुसलमान, ख्रिस्ती, हरिजन, पारसी और अन्य कितने धर्मपंथ के जिज्ञासुओं ने इन मौनएकांत मंदिरों का लाभ उठाया है ।

और प्रभु का प्रेमप्रकाश जगत के चरण में रखने को शक्तिमान बन सके ।

प्रेमभरा मेरा यह निवेदन मैं प्रभु के बल पर ही आपके समक्ष रखता हूँ ।

सप्रेम प्रणाम,
नारायण
(रोबिन)

● **श्री हेमंतकुमार नीलकंठ ने १९४७ में की नोंध -**

'पूज्य श्रीमोटा ने सतत जाप करने का इस समय पहली बार कहा था, पर तीसरे दिन लगा कि हद हो गई । **मोटा** को कह दूँ कि सतत जाप २८ दिन तक तो क्या कल तक भी नहीं रहा जायेगा । गला बिलकुल बैठ गया था, रात को जागना और वायु और दोपहर में सोना तो शुरू हो ही गया था और दूसरी अनेक कठिनाई हुई, पर पूज्य श्रीमोटा ने हमेशा की तरह साथ दिया था ।'

श्रीमोटा ने उनको लिखा कि, 'चार दिन बाकी रहे हैं । बस एक ध्यान से मस्त होकर बोला करो ! प्रभुकृपा से बीच में ही टूट पड़ने की दहशत टल जाय तो आनंद हो । तुम्हारी गेस ने तो मेरे प्राण लेने ही बाकी रखे हैं और शरीर में खुजली हुई है । तोबा ! मुझे तो तुम ने साबरमती और बनारस में मैं था उसकी पुनरावृत्ति यहाँ हुई हैं, उससे भी विशेष । एक तरफ शरीर में अत्यन्त जलन, दूसरी ओर खुजली, तीसरा गैस सख्त, चौथा पेट में दर्द, पाँचवा बीच में कितने ही दिन चार चार बार दस्त होने । फिर, दो कंधो में सख्त वायु होना । तीनेक दिन आँख में अंधेरा रहा करा । ऐसा चलते चलते रोज हेरफेर तो करना रहा ही ।'

श्रीमोटा ने एक बार लिखा कि, 'हम तो (मौन में बैठनेवालों का) भंगी का काम करते हैं !' यह कितना सचोट है, यह अंदर मौन में बैठनेवाले जान सकते हैं ।

मौनएकांत में अनेक लोग घण्टों तक जाप किया करते हैं—जोर से या धीरे से—उसका यश श्रीमोटा को देते श्री हेमंतकुमार लिखते हैं कि, 'हमारे मौन दौरान और बाद में भी हमारी साधना में जो कुछ थोड़ी प्रगति

होती होगी उसमें हमारी मेहनत का योगदान १० प्रतिशत होगा (और मेरी नजर में तो यह भी 'हमारी' नहीं होती ।) मुख्य सब पूज्य श्रीमोटा ही करते हैं ।'

• • •

६. अहम् की प्रतीति

श्री रमणभाई अमीन (एलेम्बिक, वडोदरा) लिखते हैं कि—

विचार, पहले जितना अब परेशान नहीं करते । उद्‌भवित होते हैं पर फिर शांत हो जाते हैं । **मोटा** में एकाग्रता भी अच्छे समय तक रह सकती है ।

पहले मुझे स्वप्न याद नहीं रहते थे । अब जब ऊठता हूँ, तब अथवा नींद में भी स्वप्न के बारे में एक प्रकार की जागृति रहती है और स्वप्न में मेरा व्यवहार कैसा रहता है, उसका साक्षीभाव कोई कोई समय रहता है । स्वप्न में अहम् का भी कितनी बार ख्याल रहता है और फिर अपने आपको सुधारने का विचार आता है ।

• • •

७. लगन

लेफ्टनन्ट कर्नल श्री बलवंतभाई लिखते हैं कि—

प्रार्थना किसकी ? परमेश्वर की ? ईश्वर बाहर कोई स्थान पर बसते हैं कि हमारे हृदय में ही बिराजते हैं ? ऐसे प्रश्न जिन्हें सतत सताते हो और उसकी खोज में पड़ने की जिन में अभिलाषा जन्मी हो, उनके लिए 'मौनमंदिर' अनुपम स्थान है ।

मौनमंदिर में अविरत साधना के लिए संपूर्ण अनुकूलता, अद्वितीय वातावरण और चैतन्यरूप प्रेरणा है । वहाँ जाकर रहनेवालों को ही उसका सुखास्वाद समझ कर अनुभव कर सके ।

सतत प्रभुस्मरण के साथ आध्यात्मिक पठन और चिंतन में दिन और सप्ताह कहाँ बीत जाते हैं उसका भान नहीं रहता । अभी कल ही

सुबह आये और आनेवाले कल यह छोड़कर जाना पड़ेगा ऐसा लगता है । (पाँच सप्ताह के बाद भी) उसमें आनंद है ।

अनुभव का क्या कहूँ ? यह लगन लगे यह क्या मामूली अनुभव है ?

• • •

८. प्रचंड सूर्य

श्री हेमंतकुमार मिस्त्री (माजी कलेक्टर-खेड़ा) लिखते हैं–

जोगीया ! चांद के जैसी सौम्य और शीतल तेरी प्रतिभा से आकर्षित होकर नजदिक आया तब पता चला कि यथार्थ स्वरूप तो तू हमारे हृदय में बहती स्मृतियाँरूपी खुल्ली गटरों की बदबू दूर कर उसे सूखा देनेवाले प्रचंड सूर्य हो ।

• • •

९. क्लेश हरनेवाले

श्री धीरुभाई मोदी (आर. आर. सेठ की कंपनी, मुंबई शाखा के मेनेजर) लिखते हैं–

मेरे छोटे परिवार में भारी अशांति । मेरी पत्नी और माँ के बीच बहुत झगड़े होते । माँ ने मौन में जाने का निश्चय किया । मौन में से आने के पश्चात् मुझे कहा करे कि मुझे तुम से बात करनी है । आराम से करे तो अच्छा ।

जब प्रसंग आया तब साठ वर्ष पूरे कर चुकी मेरी माँ पाँच वर्ष के छोटे बच्चे के तरह मेरी गोद में सो कर फूट फूट कर रोये । 'मैंने अपने एक के एक बेटे और बहु को बहुत दु:ख दिये । इतने वर्ष जरा भी चैन से न रहने दिया । मैंने भयंकर गुन्हा किया है ।'

प्रकृति बदलना असंभव हो, पर पूज्य श्रीमोटा की कृपा से वह भी संभव हो, उसका मुझे भरोसा हुआ । जबकि अनुभव से मुझे समझ में आया कि इसके लिए भक्ति और मौन का सतत संपर्क जरूरी है ।

• • •

१०. मेरे जीवन के श्रेष्ठ दिन

श्री गोपालजी डाह्याभाई देसाई, माजी धारासभ्य, एम. ए., एल. एल. बी. और पब्लिक रेवन्यु सर्विस कमिशन के सभ्य अक्तूबर १९७० में सात दिन हरिःॐ आश्रम, सूरत के मौनएकांत कमरे में किस तरह बिताये उसका विस्तार से निवेदन करते हुए बतलाते हैं कि, मौन में बैठते सोचा कि यदि अखंड नामस्मरण न कर सके तो पुस्तकें पढ़कर समय पूरा कर सकते हैं। इस विचार से हिंमत रख के आया, परन्तु प्रभुइच्छा कोई अलग होने से चश्मे की दंडी टूट गई और इसप्रकार पढ़कर चलाने का आधार टूट गया।

अनेक पुस्तकों का पठन, संत-महंतों के दर्शन, समागम आदि से ७२ वर्ष की उम्र में जो प्राप्त करने शक्तिमान न हुआ, वह ये सात दिन के मौन में प्राप्त करने भाग्यशाली हुआ। इस जीव को कृतकृत्य करने के बदले, पूज्यश्री का हमेशा का ऋणी बना हूँ। यहाँ वहाँ दो-ढ़ाई वर्ष तक भटकने के बाद एकाएक अंतःस्फुरणा या प्रेरणा हुई कि, 'जा, जाकर हरिःॐ आश्रम में एक सप्ताह बैठ आ।'

मैंने कभी जीवनभर में करताल के साथ भजन गाये न थे। वैसे ही प्रभाती या भजन गाये न थे। न कभी नाचा या कूदा नहीं, परन्तु इस सप्ताह में बहुत तान में आ मस्त हो नग्न अवस्था में नाचा हूँ, कूदा हूँ। यह क्यों हुआ इस विषय में कुछ समझ नहीं आया। वैसे ही इसके अलावा, पूज्यश्री के स्थूल स्वरूप का सूक्ष्मरूप दर्शन यदाकदा होते रहते। मौनकमरे में तो आँख बंद करूँ कि तुरन्त ही निर्विचार स्थिति प्राप्त होती, आनंद मस्ती में और झिलमिलाते प्रकाशमय स्थिति में कितना समय बीत जाता उसका पता तक न चलता। यह सात दिन मेरे जीवन के श्रेष्ठ दिन के रूप में मानूँ तो यह अतिशयोक्ति न होगी।

• • •

११. पत्थर का चबूतरा हिलता है

भाई रमाकान्त पी. जोशी ने (B. Sc., L. S. G. D. S.S.Dip. वेल्युएशन ओफिसर, ओक्ट्रोय अहमदाबाद म्युनिसिपल कोर्पोरेशन) चार-

चार सप्ताह से भी अधिक समय का मौन उन्होंने लिये हैं । और अब भी लेते हैं । एक बार वे नडियाद आश्रम में मौन के लिए जाते समय उन्होंने श्रीमोटा के सामने मौन में उनकी स्थूल उपस्थिति के दर्शनार्थ इच्छा व्यक्त की । तब श्रीमोटा अपने कुंभकोणम् आश्रम पर जा रहे थे । श्रीमोटा ने बतलाया कि, 'मेरी स्थूल नहीं पर सूक्ष्म उपस्थिति का अनुभव तुझे होगा ।' मौन में जाने के पश्चात् हुए अनुभव के विषय में वे ऐसा बतलाते हैं–

एक रात चबूतरा (कबीरपंथी साधु उपयोग करते वह) पर सो रहा था । तब अचानक मेरे सिरवाला चबूतरे का भाग ऊँचानीचा होते लगा । इससे मुझे लगा कि भूकंप को लेकर वह हिला होगा । पर नहीं, दीवार पर के कपड़े और अन्य वस्तुएँ यथास्थान पर ठीक थी । इससे वापिस सो गया । कुछ देर बाद पैर की ओर चबूतरे का भाग ऊँचानीचे होते अनुभव किया और फिर पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण ऐसे सभी ओर से बारी-बारी चबूतरा हिलता, ऊँचानीचा होते लगा । क्यों ऐसा हुआ होगा उसकी कल्पना करते-करते अचानक पूज्य श्रीमोटा का कथन याद आया कि, 'मेरी सूक्ष्म उपस्थिति का अनुभव तुझे होगा ।' इससे लगा कि सचमुच पूज्य श्रीमोटा की चेतना यह काम कर रही है । ज्ञानेश्वर महाराज ने चबूतरा चलाया था वह बात याद आयी । जड़ में प्राण डाले जा सकते हैं । चेतन क्या नहीं कर सकता, उसकी यह प्रतीति हुई और मनोमन पूज्यश्री को नमस्कार किया । प्रकाश में उस चबूतरे की बाद में जाँच करते लगा कि उस स्थान पर तीराल पड़ी थी ।

• • •

१२. अंधकार का आनंद

एक भाई को इस मौनमंदिर का अंधकार कोई अजब ही आनंद देता है । ध्यान और भजन में खूब ही आनंद आता है । अगरबत्ती का प्रकाश भी उस आनंद में विघ्नरूप लगता है । प्रकाश की अपेक्षा इस घोर अंधकार में कितना आनंद है, वह यहाँ

का साधक ही अनुभव कर सकता है और घर के आप्तजन से भी अधिक प्यार और देखभाल (सावधानीपूर्वक) समय से साधक की दैनिक आवश्यकताएँ पूरी की जाती हैं और वह भी प्रभु का स्वरूप समझकर ।

यहाँ (मौन में) जो है, वह कहीं नहीं ऐसा लगा, और अधिक में जिंदगी की एक नवीन किताब यहाँ खूली । जिसके पन्ने पन्ने पर मुझे नयी प्रेरणा मिली है । जिंदगी जीने के लिए एक नवीन ध्येय प्राप्त हुआ है ।

• • •

१३. अदृश्य आवाज

सूरत के एक भाई को आध्यात्मिक लाभ क्या हुआ समझ नहीं आता, पर भौतिक लाभ जरूर हुए हैं ऐसा बतलाते हैं । वे कहते हैं कि, खाने की कला तो मैं मानो यहाँ ही सीखा । इतने संतोष से खा सकते हैं, तंदुरस्ती भी अच्छी तरह रख सकते हैं, यह यहाँ ही हुआ है । और अनुभव कैसे हुए ? करताल की आवाज दो-तीन दिन के सिवा रोज रात के ८-३० से २-३० तक आयी है । एक बार बोलना बंद हो गया था, तब बाहर से ही आवाज आई, 'अबे, जागता है या सो रहा है ?' एक रात स्वप्न में घिरा, तब एकदम मेरे नाम की आवाज आयी और तुरन्त जोर से स्मरण शुरू हुआ । उसी दिन पहली रात को दरवाजे में से हल्के नीले प्रकाश का पुंज मानो मेरे सामने आया ।

• • •

१४. चारों कोने में *मोटा*

डभोली* के एक हरिजनभाई ने सूरत आश्रम में निवेदन में लिखा है कि, यह सब पढ़कर कोई मुझे पागल मान लेगा । इसलिए आप **मोटा** को बतलाना । शनिवार १० बजे जीमकर में मैं झूले के चारों ओर जप स्मरण करता-करता घूम रहा था, तो **मोटा** आकर एक कोने में खड़े थे । मैं पास गया तो वहाँ कोई मिले नहीं । मैंने अपने मन में विचार

---

* सूरत का एक उपनगर

किया कि मुझे मृगजल जैसा लगता है । **मोटा** कौन जाने किस गाँव में होगे और यहाँ कहाँ से ? मैं स्मरण जारी रखता था और फिर से देखा तो **मोटा** ने धोती पहनी थी, मुकुट बाँधा था और कोने में खड़े थे । मैं दौड़कर उनके चरण में नमस्कार करने गया कि दूसरे कोने में । दौड़कर दूसरे कोने में जाऊँ तो तीसरे कोने में । तीसरे कोने में जाऊँ तो चौथे कोने में । उस अनुसार **मोटा** ने मुझे चरण में नमस्कार करने नहीं दिया पर दर्शन दिये । सोमवार सुबह भी मुझे दर्शन दिये ।

• • •

१५. काव्य की स्फुरणा

अनेक में सुषुप्त शक्तियाँ पड़ी होती है, पर उसे कोई स्पर्श करनेवाला मिल जाये तो वह जाग उठे । ऐसी घटना एक ग्रेज्युएट हुए और दूसरी पाँच कक्षा तक पहुँची बहनों के प्रसंग में हुआ । दोनों ने मौनमंदिर में बैठना शुरू किया । उसके बाद उन्होंने सुंदर भजन लिखे । उसमें से एक बहन ने प्राचीन राग और शास्त्रीय तर्ज पर दो पुस्तकें जितने भजन लिखे हैं, जो प्रकाशित हुए हैं । इससे पहले उन्होंने कभी ऐसा लिखा न था ।

• • •

१६. नंदनवन समान

एक भाई सन् १९६६ के दौरान मौन में बैठे । तब उन्हें 'हर्नीआ' की तकलीफ थी । मौन में कैसे हुआ उस संबंध में वे ऐसा लिखते हैं— मुझ से सीधा टट्टार घर में तो भाग्य से ही बैठा जा सकता है । जब कि चौकी पर सात दिन कोई भी तकलीफ के बिना घण्टों के घण्टों तक प्रभुभजन में बैठ सका, यह मेरी दृष्टि से एक प्रकार का चमत्कार ही लगता है । और वे सात दिन मेरे तो बहुत ही आनंद में गये हैं और बहुत ही शांति अनुभव की है ।

• • •

१७. जीर्ण ज्वर गया

एक बहन लिखती है—दो वर्ष से ज्वर का रोग मुझे लागू पड़ा था । दवा, आराम, हवाफेर की असर न होती थी । नामस्मरण से कोई भी रोग नाबूद होता है, उस सत्य के आधार पर मैंने यह मौका (मौन में बैठने का) ले लिया और मेरा जीर्ण ज्वर दो दिन में चला गया । यह सत्य मेरे लिए कोई मामूली बात नहीं है । फिर, चौथे दिन गेस का सख्त हमला और छाती में घबराहट होने लगी । जोर से नामस्मरण करने लगी और पूज्य श्रीमोटा को प्रार्थना करने लगी । तुरन्त ही सब शांत हो गया ।

• • •

१८. मन में शांति

दूसरी एक बहन मौन में प्रार्थना करती कि मुझे अनुभव न करवाना । मैं डर के मारे बाहर दौड़ आऊँगी । इससे मुझे अनुभव तो खास हुए नहीं, पर **उन**की कृपा से मन में खूब ही शांति मिली । तीसरे दिन से विचार बंद हो गये । प्रति वर्ष प्रभुकृपा से एकांतवास में बैठना हो । घर में प्रयत्न करें, तब भी इतने अच्छे जप नहीं होते । सुबह बैठे-बैठे एक बार सो गई । मानो तुरन्त ही कोई हमें जगाता हो, बुलाता हो, और फिर जप शूरू हुए ! पूज्य श्रीमोटा का सांनिध्य खूब ही लगता था !

• • •

१९. इतना मीरां भी नाची न हो !

एक सुशिक्षित संस्कारी भावनावाली बहन गाते-गाते खो जाती, 'मस्त' हो जाती । ऐसा उच्च कक्षावाला वातावरण अनुभव किया, परन्तु वह शांति, ध्यान, स्वस्थता सही अर्थ में दैनिक जीवन में बन जाय यह बहुत महत्त्व का लगा । इसी बहन को आश्रम के बगीचे में से मोगरे देखकर कैसा भाव उभरता है ! मानो त्याग, स्वच्छता और सादाई का

मूर्त स्वरूप ! और कार्यकर्ताओं के साथ 'हरि:ॐ' की भाषा का उपयोग वगैरह सब सचमुच मन को और वातावरण को सत्यम्, शिवम् और सुंदरम् भर देता था । वह बहन ऐसे नाचती कि हमें शंका होती कि शायद मीरां भी इतनी मस्ती से नहीं ही नाची होगी । तन्मय होकर इतने भजन नहीं गाये होंगे और आश्चर्य तो यह कि कभी भी राग में, ताल में गा न सकनेवाली यहाँ राग और लयबद्ध किस तरह गा सकती है ?

• • •

२०. स्वीस सन्नारी का अनुभव

ता. १९-६-१९६९ के निवेदन में एलिजाबेथ स्टेडलर नाम की स्वीस बहन ऐसा बतलाती है—

अंत में मन की शांति मिल सकी । मैं भारत में अनेक आश्रमों में रह आयी हूँ, पर मुझे कहीं गहरे ध्यान का अनुभव न मिला था, क्योंकि वहाँ सभी तरह की अड़चन होती थी । 'हरि:ॐ' का जाप आंतरिक शांति और प्रकाश प्राप्त करने के लिए बहुत मददरूप होता है । अब मुझे समझ में आता है कि पूज्य श्री सत्यसांईबाबा ने मुझे क्यों यहाँ भेजा ! मुझे भरोसा है कि गुरुजी **मोटा** कि जिन्हें मैं पहचानती नहीं, तब भी उन्होंने मुझे मदद की है ।

• • •

२१. अमेरिकन प्रोफेसर का अनुभव

युनाईटेड स्टेट्स ऑफ अमेरिका के वतनी तथा हावर्ड युनिवर्सिटी के मानसशास्त्र के निवृत्त प्रोफेसर डॉ. रिचार्ड एलपर्ट उर्फ बाबा रामदास ता. ३-४-१९७१ के पत्र में अपने एक सप्ताह के मौनमंदिर के अनुभव अंकित करते लिखते हैं कि—मौनमंदिर में प्रवेश कर जिस क्षण से मैं रास आया, तब से ही पूरे खंड के भर रहे अनोखे आंदोलन मुझे स्पर्श करने लगे । इस बंद कमरे में ऐसे आंदोलन मेरे समग्र अंग को और मेरी आंतरिक क्रिया को स्पर्श कर रहे थे ।

पहले ही दिन मैं जप करता था, वहाँ ही मेरी शारीरिक चेतना में से मैं बाहर निकल गया और मेरे सिद्ध गुरु के समक्ष मैं बैठ गया । उन्होंने अपना सिर झुकाया और तीन गहरे श्वास लिये । इससे मेरा शरीर मानो कि दिव्य शक्ति से भर गया । धीरे-धीरे मैं स्थूल चेतना में आता गया वैसे-वैसे मानवीय भावनाएँ, आनंद और अभीप्सा के मिश्र भाव जागे ।

दूसरे दिनों के दौरान मेरे में रही आसक्ति के असुरों का दर्शन हुआ और उसके सामने मुझे संग्राम खेलना ही रहा ऐसी दृढ़ता आयी ।

मेरे रोज के डेढ़ घण्टे के वांचन में पूज्य श्रीमोटा के 'To The Mind', 'At Thy Lotus Feet' और 'Life's Struggle' पुस्तकों ने धारणा रखने में खूब सहायता की है ।

• • •

२२. डेनिअल का निवेदन

केलिफोर्निया (U. S. A.) के वतनी डेनिअल गोलमेन ता. २७-३-१९७१ के निवेदन में लिखता है कि–

मैं जीवनविकासक मेरी साधना के लिए कुछ समय एकांत में बिताऊँ ऐसी इच्छा वर्षों से थी । वह यहाँ हरि:ॐ आश्रम-सूरत में पूरी हुई ।

मौनखंड में मैंने प्रवेश किया कि तुरन्त ही मेरे में छिपे हुए भय और अन्य अजाग्रत मन में पड़ी हुई विचारसृष्टि एकदम मेरे नजर समक्ष खड़े हुए । जो आंतरिक संघर्ष और मंथन मैं टालता था, वह मेरे लिए यहाँ अनिवार्य हुए । पर आश्रम के इस कमरे की शांत और प्रेमपूर्ण भूमिका में मैं अपने भय को शांत कर सकता और विचारसृष्टि को एकाग्र कर सकता ।

• • •

२३. अन्य अनुभवों का सारांश

एक सरकारी अधिकारी प्रथम बार मौन में बैठे । अच्छा लगा । दूसरी बार बैठते रिश्वत लेने की वृत्ति और कृति के लिए खूब पश्चात्ताप

हुआ और ऐसी आँच लगी कि बाहर आकर उन्होंने श्रीमोटा की सलाह माँगी कि क्या करूँ ? श्रीमोटा ने सलाह दी कि रिश्वत की रकम बिननामी रूप में सरकार को वापिस देनी और उन्होंने वैसा किया ।

बहुतों को बाहर हल्का बुखार आता हो, वह अंदर मिट गया था और दूसरों के अंदर जाने के बाद २१ दिन तक बुखार रहा और बाहर आने के बाद मिट गया था ।

बहुतों को खूब ही पेशाब और जुलाब होते तथा मौनखंड में से बाहर आने पर बिना दवा के बंद हो जाते अथवा तीन दिन के मौन दौरान नियमित आहार लेनेवाले एक भाई बिलकुल पानी, चाय या कॉफी पीये नहीं । भर ग्रीष्म था तब भी ।

अनेक मौन में बेठने के बाद वजन में बढ़ जाते और दूसरे घट जाते । विषय और किसी को कामवासना के हमले अति तीव्रतावाले आते, जबकि दूसरों को इससे उल्टा अनुभव होता ।

एक शिक्षकभाई को प्रभु की प्रार्थना करते कैसा उत्तर मिला उसका वे उदाहरण देते हैं । वे मौन में बैठे उसी दिन अमुक परीक्षा के उत्तरपत्रों का बंडल पाठशाला को नहीं मिला उस मतलब का पत्र मिला और वडोदरा मिल जाने को बतलाया । भाई बहुत द्विधा में पड़ गये । मौन बिगड़े और बदनाम हो । पूज्य श्रीमोटा को 'लाभ रहे वैसा करने' गिड़गिड़ाकर प्रार्थना की । दूसरे दिन फिर एक्स्प्रेस डिलिवरी से पत्र आया । उसमें उत्तरवही मिल गयी थी, वैसा बतलाया था । भाई की खुशाली का पार न रहा । इसे वे चमत्कार बतलाते हैं ।

एक शिक्षित युवा बहुत बड़े महात्माओं के आश्रमों में घूम आने के बाद मौन में २१ दिन बैठने के बाद कहते हैं कि, मेरी कमियों और वृत्तिओं को मैं ठीक से पहचान सका हूँ ।

एक बहन का ऐसा अनुभव है कि जोर से नामस्मरण करने से गले को थोड़ी तकलीफ हुई, किन्तु फिर अपनेआप अच्छा हो गया । फिर आँख और सिर दुखने लगे, पर गुरुदेव और 'हरिःॐ' के जाप करने से सारा दर्द चला गया ।

एक भाई को अनंत शांति लगी। किसी भी प्रकार की शीघ्रता या धमाल नहीं। अंतर्मुखता सरलता से होती है। आत्मनिरीक्षण करने का पर्याप्त अवकाश मिलता है और साथ ही साथ जपयज्ञ का विरल व्यापार अविरत चला ही करता है। इसका कारण क्या ? **प्रकट पुरुष की दिव्य चेतना इस स्थान पर काम कर रही है, पर हम उस जीतेजागते समर्थ पुरुष को पहचान नहीं सकते।**

आयुर्वेदिक कॉलेज के एक प्रोफेसर अपनी डॉक्टरी भाषा में बतलाते हैं कि, मौनमंदिर में अंधकार-प्रकाशमय की अजब दुनिया बसी है। मेरी प्रयोगशाला रूप उसका मैंने उपयोग किया हैं। अपने आपको– जंतु को यहाँ मैंने तपाया है, छानबीन की है और जरूरत पड़ने पर चीरफाड़ भी की है। जंतु भी मैं स्वयं और उसे जाँचनेवाला वैज्ञानिक भी मैं ही। इस नयी प्रकार का जंतुशास्त्र-बेक्टीरिओलोजी है। पर यह सीखने जैसा है। बहुत समय तक चले उतना पाथेय यहाँ से मैं बांधकर ले जा रहा हूँ।

एक वयोवृद्ध भाई को अपनी जीवनकिताब के पन्ने खोलने का भी मन हो जाता है। निवेदन करते हैं भी सही। प्रकाश से मैल धुलता हो ऐसा अनुभव होता है। अनेक महापुरुषों के दर्शन हुए। पूज्य श्रीमोटा की छबी में, गजेन्द्रमोक्ष का स्तवन करने का सूचन हुआ। इस तीर्थभूमि को धर्मक्षेत्र, कर्मक्षेत्र और अब कुरुक्षेत्र ही मानता हूँ।

अनेक लोगों को पूज्य श्रीमोटा के साक्षात् दर्शन होते हैं। अनेकों को अंधेरे में नीले प्रकाश का पुंज नजर आता है। दोपहर में सोते हो, तब आवाज देकर नामस्मरण करने उठाये। पूज्य श्रीमोटा की छबी के अंदर अलग-अलग महात्माओं और देव-देविओं के दर्शन होते हैं।

संत को सही तरह प्रेम से लगे रहने से संसार की पहेली भी हल होती जाती है, ऐसा एक उपासकभाई का कहना है। उनके परिवार में एकता, शांति और सुमेल श्रीमोटा जैसे गुरुमहाराज के प्रताप से व्याप्त

हुए ऐसा बतलाते हैं । उसी भाई को श्रीमोटा के सत्संग से पूज्य श्री अरविंद के 'लाइफ डिवाईन' का गुजराती रूपान्तर पढ़ने में रस आया और समझ सके ।

८२ वर्ष के वृद्धा (सूरत आश्रम के व्यवस्थापक ट्रस्टी श्री भीखुभाई के मातुश्री) यदाकदा मौन में बैठती हैं, १४ दिन, २१ दिन । उनको दिन में सोने से रोकने मानो कोई पैर में काटता हो, 'सोना नहीं' ऐसा कहकर जगाता । २१ दिन तक थकान न लगे । रात में भी 'माँ, माँ' कहकर श्रीमोटा की आवाज सुनाई देती, इससे उन्हें खूब शांति और आनंद रहता ।

एक उपासकभाई पालने में सोते दूध पीते बालक जितने ही निश्चिंत हो जाते हैं । पेट में दुखता हो या सिर दुखता हो तो जोर से जप करने से सब इस भाई का मिट गया ।

मौन में कितनों को तेजरेखा सामने आती लगती है । अमुक इससे लाईट कर देते हैं । अमुक सिर ओढ़ लेते हैं तो अमुक टोर्च का उपयोग करते हैं । **एक भाई ने वैसी तेजरेखा के सामने टोर्च का प्रकाश फेंका । श्रीमोटा ने उस भाई को बतलाया कि टोर्च के उपयोग से अपनी ओर आती शक्ति तुम ने खो दी थी । यदि वह शक्ति शरीर में प्रवेश करती तो आध्यात्मिक शक्ति में बढ़ोत्तरी होती ।**

एक बहन को ऐसा रस कि वह एक बार अपने पाँच महीने के बेटे को लेकर १४ दिन के लिए मौन में बैठी और फिर तीन महीने बाद फिर से उस बेटे के साथ मौन में बैठी । बहन को विचार हो रहा था कि बेटा को अप्रैल महीने की गरमी को लेकर रास आयेगा कि क्यों, पर कोई तकलीफ हुई नहीं और बहुत शांति तथा आनंद में मौन का मज़ा चखा ।

एक दूसरी सुशिक्षित बहन को मन के अधिकतर संशयों का खुलासा पूज्य श्रीमोटा की पुस्तक 'जीवनसोपान' में से मिला । अधिक विशेष में लिखते हैं कि **पहले दिन जप करते-करते हँसना आये । कहाँ सत्युग का तप और कहाँ हमारी बादशाही साधना ! मकान**

तो मानो पेरिस की डीलक्स होटल, एटेच्ड बाथ और झूला तो अमेरिका की प्रेसिडेन्ट की पत्नी के लिए न बनाया हो ! भगवान की कृपा है न !

• • •

• प्रार्थना •

१. मौनएकांत मंदिर का साधक

श्रीमोटा की चेतना मौनएकांत मंदिर के साधक की परोक्ष रूप में सँभाल तो लेती ही है । इतना ही नहीं, पर साधक का आंतरिक मंथन के समय उसे यदि श्रीमोटा का प्रत्यक्ष मार्गदर्शन जरूरी हो तो यह भी यदि श्रीमोटा आश्रम में उपस्थित हो तो भेज देते ।

श्रीमोटा के साधनामय तथा ज्ञानमय जीवन का एक प्रबल साधन प्रार्थना है । यदि कोई साधक या जिज्ञासु अंतर के निश्चित प्रकार के भाव को शब्दबद्ध करके प्रार्थना करना चाहता हो और यदि श्रीमोटा के पास माँग करे तो वे लिख भी देते हैं सही ।

इस तरह यदि साधक निमित्त पूरा करे तो श्रीमोटा साधक के प्राकृतिक भाव और उसके चित्त के संस्कारों को ऊर्ध्व करने के लिए प्रार्थना लिख देते हैं । ऐसी अनेक प्रार्थनाएँ श्रीमोटा ने लिख के दी है । उन सभी प्रार्थनाओं का उद्देश्य तो अंतर में भावना दृढ़ करना तथा ईश्वर के साथ आंतरिक संबंध स्थापित करना होता है, ऐसा श्रीमोटा कहते हैं ।

जीवन के सर्वांगी विकास के लिए ही प्रार्थनाएँ आपश्री ने मौनएकांत में बैठे साधकों के लिए लिखी थी । आरती के गेय लय में रचित एक प्रार्थना विशेष है ।

• • •

२. नित्य कर्म करते-करते...

संसार के सकल प्राप्त कर्म करते-करते जीवन के उद्देश्य के प्रति की सभानता जीवंत रहा करे इसके लिए प्रार्थना एक उत्तम साधन है । इससे,

माँग होने पर श्रीमोटा ने कितने ही जिज्ञासुओं को ऐसी प्रार्थनाएँ लिख के दी है ।

सोते-जागते, खाते-पीते, घूमते-फिरते, कसरत करते या काम करते, दवा पीते या शौचादि कर्म करते, अंतर में किस प्रकार की ऊर्ध्वभावना विकसित करनी उस विषय की प्रार्थनाएँ श्रीमोटा ने लिखकर दी हैं । इस प्रकार की प्रार्थनाओं में अपने आपको सँवारकर जागृत रख सके ऐसी भावना भी है । इसके अलावा, सभी कर्म करते समय श्रीप्रभु के साथ दिल का अनुसंधान रह सके ऐसी भावना व्यक्त होती है । श्रीमोटा का कर्मसिद्धांत नोंधपात्र है । **आपश्री कहते हैं कि कर्म अनिवार्य है, पर कर्म का महत्त्व नहीं, पर उस कर्म को करते समय हम किस प्रकार का भाव धारण करते हैं, वह महत्त्व का है । कर्म प्रत्यक्ष रूप से बहुत ही तुच्छ हो सकता है, तब भी उसका आचरण करते समय अंतर में रही भावना अधिक महत्त्व की है । इससे नदी में स्नान करते या प्रणाम करते कैसी भावना रखनी यह भी ऐसी प्रार्थनाओं में व्यक्त हुआ है*** ।

• • •

३. उत्सव प्रार्थना

जैसे व्यक्गित जीवन में दैनिक कर्मों के पीछे भी भावना रखने की जागृति विकसित करनी है, वैसे कितने ही सामाजिक-धार्मिक त्यौहारों के उत्सव मनाना भी जीवनविषयक हेतु के प्रति सभानता से जागृतिपूर्वक मनाना है । श्रीमोटा ने ऐसे उत्सव प्रसंग में किस प्रकार का भाव धारण करना और उस कार्य को करते समय किस प्रकार की भावना रखनी इसकी समझ पद्य में दी है । इस समझ के साथ-साथ श्रीप्रभु की प्रार्थना भी हो इसप्रकार की ये रचनाएँ हैं ।

लक्ष्मीपूजन, बहीपूजन एवं ज्ञानपंचमी के उत्सव के समय की प्रार्थनाएँ आपश्री ने अनुष्टुप छंद में रची हैं । ऊर्ध्व जीवन के लिए की

* इस प्रकार की प्रार्थनाएँ श्रीमोटा रचित 'गुणविमर्श' पुस्तक में संपादित हुई हैं ।

अभीप्सा जागृत करने श्रीमोटा ने प्रार्थना के साधन को सर्वगम्य और सर्वलभ्य बना दिया है ।

अधिकतर धार्मिक विधि के समय यज्ञकुंड में आहुति देने की प्रार्थना भी हैं ।

• • •

४. संस्कारविधान

हिन्दू व्यवहार जीवन में अमुक संस्कारविधियाँ प्रचलित हैं । उन सभी संस्कारविधि के पीछे उनके सर्जकों की भावात्मक दृष्टि बहुत ही ऊर्ध्व थी । **श्रीमोटा का कार्य सर्व कोई कर्मों को गुण और भाव की दिशा में मोड़कर मानवजीवन को—मानवसमाज को जागृत करना है ।** इससे कोई भी स्वजन ऐसे किसी भी प्रकार के विधि-विधान के लिए श्रीमोटा को निमंत्रण दे तो उस समग्र विधि की भावना को श्रीमोटा प्रकट करके गुण-विकासक प्रार्थना का भाव व्यक्त करते । इससे उस समग्र विधिकार्य के पीछे का हार्द उस कर्म करनेवाले व्यक्ति के अंतर में प्रकट सके ।

बालक के जन्म के बाद उसके बाल उतारने या उसे स्कूल में बिठाना यह क्रिया भी कैसी भावात्मक है, यह उनकी रचित प्रार्थनाओं में है ।

यज्ञोपवीत धारण करने की विधि मात्र ब्राह्मणों तक ही मर्यादित मानी जाती है, परन्तु श्रीमोटा ने यह समग्र विधि उद्‌बोधन और प्रार्थनारूप से लिखी है । उसमें मातापिता यज्ञोपवित धारण करते बालक को उद्‌बोधन करते हैं । बटुक यज्ञोपवीत धारण करने से पहले प्रतिज्ञा करे और फिर यज्ञोपवीत धारण करवानेवाले पुरोहित के आशीर्वचन हो—इस प्रक्रिया में श्रीमोटा ऊर्ध्व जीवन के लिए की आवश्यकता और संकल्प को स्पष्ट करते हैं ।

श्रीमोटा की दृष्टि से यह यज्ञोपवीत धारण करना यह जन्म से ही ब्राह्मण हो उतने ही जीव के लिए मर्यादित नहीं है । पर जिनमें

ऊर्ध्व जीवन के लिए तमन्ना की थोड़ी भी भूमिका हो, ऐसे सभी व्यक्ति को भी यज्ञोपवीत धारण करवाते हैं । उनके आश्रमों में आपश्री ने अनेक बटुकों को यज्ञोपवीत संस्कार दिया है और उन बटुकों में सभी ब्राह्मण के बालक न थे ।

श्रीमोटा की दृष्टि से यज्ञोपवीत तो,

(अनुष्टुप)

'सूत का डोर वह ना, वह तो प्रतीक तत्त्व का,
तीन के जुड़ाव से ही यह संकलित हुआ विश्व है,
प्रेरित होने भाव उसका और होने मुक्त सभी से हैं ।'

• • •

५. विवाहविधि

श्रीमोटा पुरोहितपद पर बैठकर विवाहविधि भी करवाते हैं । उसके लिए उन्होंने गुजराती पद्य में उस विधि के पीछे की भावना आलेखित की है ।

उसमें उन्होंने मंडपमुहूर्त, ग्रहशांति, सप्तपदी वगैरह क्रियाओं को भावनात्मक प्रार्थना का रूप दिया है । कन्यादान देते समय में कन्या के मातापिता को धारण करने की भावना, वरकन्या को सप्तपदी लेते समय उन्हें करने की प्रतिज्ञा एवं जीवनभर आचरण करने के लिए 'जीवनव्रत' अनुष्टुप छंद में गाना होता है । श्रीमोटा रचित यह 'विवाहभावना' का विवाहविधि के प्रसंग में उपस्थित रहे हर किसी को सामूहिक गान करना होता है । फलस्वरूप विवाहविधि प्रसंग में एक प्रकार का भावनात्मक वातावरण सर्जित होता है ।

इस प्रकार के विधिविधान का सर्जन और उस विधि करने का कार्य श्रीमोटा की हमारे जनसमाज को एक मौलिक देन है । ये विविध विधिविधान मुद्रण स्वरूप में आश्रम के पास सुरक्षित होते हैं ।

• • •

६. खातमुहूर्त - वास्तुपूजन - गृहप्रवेश

श्रीमोटा ने खातमुहूर्त तथा वास्तुपूजन की विधि भी करवायी है । इस निमित्त से आपश्री ने वे प्रार्थनाएँ रची हैं । उसमें उस-उस क्रिया के पीछे का हेतु और हार्द व्यक्त किये हैं । गृहप्रवेश करते समय की प्रार्थना में रहनेवाला जीव कृतज्ञता का भाव अनुभव कर जीवन में नम्र हो एवं उस निवास को अपने ऊर्ध्वजीवन की साधना का एक स्थान बनाये ऐसी भावना व्यक्त हुई है ।

• • •

७. मरणोत्तर क्रिया

श्रीमोटा ऐसा मानते हैं कि कोई भी कर्म रूढियुक्त या यद्वातद्वा न होना चाहिए । आपश्री ने एक बार कहा था कि, 'मृत्यु के बाद मरनेवाले के नाम से होते दान से गत **जीव** को कोई लाभ नहीं पर उस **जीव** के जाने के बाद तेरह दिन के दौरान मरनेवाले की स्मृति को सतेज रखकर प्रार्थना हो तो अच्छा, क्योंकि उस **जीव** की कोन्श्यसनेस तेरह दिन तक उस वातावरण में रहती है । बाकी, परम्परा के रूप में या देखादेखी से या व्यवहार के लिए किया दान या प्रत्यक्ष सत्कर्म उस जीव को या हमें कुछ भी विकासक लाभदायी नहीं ।' बारहवीं-तेरहवीं की विधि के बारे में आपश्री ने कहा है कि, 'ऐसी विधि जीव स्वयं भावनात्मक दृष्टि, वृत्ति और भाव से ज्ञानयुक्त प्रार्थनाभाव से करनी चाहिए । ब्राह्मण या विद्वान के पास करवाने से खास कोई अर्थ नहीं । सही में तो बारह दिन तक अखंड नामस्मरण करना चाहिए, तो **जीव** को शांति मिले सही ।'

श्रीमोटा ने अपनी माँ की मरणोत्तर विधि कोई भी कर्मकांडी ब्राह्मण के आश्रय बिना ही की थी । मरणोत्तर विधि के पीछे का रहस्य गूढ़ है, तब भी उसका भावात्मक तात्पर्य है । अभी तक कोई ऐसा निमित्त खड़ा नहीं हुआ । इसलिए इस विषय में कोई विधि प्रार्थना आपश्री ने लिखी नहीं है ।

पर स्नेही-स्वजन के मृत्यु पश्चात् सतत प्रार्थना हो, उसके लिए आपश्री ने प्रार्थना लिखी है ।

श्रीमोटा का यह विधि-विधान उनके व्यापक कार्य का एक महत्त्वपूर्ण भाग है । उसका मूल्यांकन उसके पीछे रही भावना द्वारा हो सकता है ।

• • •

• प्रवचन और प्रश्नोत्तरी •

श्रीमोटा सामान्य रूप से प्रवचन नहीं करते । हरि:ॐ आश्रम की स्थापना के बाद मौनमंदिर के साधकों रविवार को जब एकत्र होते, तब सभी साधकों को वे संबोधन करते । मौनएकांत मंदिर में से बाहर आये और मौनएकांत में प्रवेश करते साधक *'हरि को भजते कभी किसी की लाज जाते नहीं जानी रे...'* यह भजन गाते । फिर श्रीमोटा दो शब्द कहते, पर अब आपश्री वहाँ प्रवचन करते नहीं हैं ।

जब से गुणभाव विकासक योजनाएँ की उसके लिए बड़ी रकम का दान देने की आपश्री ने प्रसिद्धि की, तब से आपश्री अपने स्वजनों के पास से उसके लिए रकम माँगने लगे । वह रकम एकसाथ मिल जाय, इसके लिए आपश्री ने अपने उत्सव मनाने की संमति दी । फलस्वरूप एक वर्ष में चार उत्सव मनाये ऐसी व्यवस्था की है ।

(१) भादो कृष्णपक्ष चतुर्थी : श्रीमोटा का जन्मदिन

(२) वसंतपंचमी : श्रीमोटा का दीक्षादिन

(३) रामनवमी : श्रीमोटा का साक्षात्कारदिन सामान्य के जनसमूह रूप में

(४) गुरूपूर्णिमा*

गुरूपूर्णिमा का उत्सव प्रत्येक वर्ष ट्रिचीनापल्ली (दक्षिण भारत) में एन. गोपालदास की पीढ़ी में मनाया जाता । उस उत्सव में मद्रास (चेन्नाई) में रहते अमुक स्वजन, कुंभकोणम् में बसते श्री हसमुखभाई मेहता का परिवार तथा पोंडिचेरी श्रीअरविंद आश्रम में रहते और श्रीमोटा के परिचय में आये मित्र भाग लेते हैं ।

---

* श्रीमोटा गुरूपूर्णिमा दक्षिण भारत में एक ही कुटुम्ब में व्यक्तिगत रूप से मनाते थे ।

उपर्युक्त क्रमांक १ से ३ के उत्सव के लिए कोई भी स्वजन या स्वजन–समूह यजमान बनकर उत्सव मनाता है। उसमें हरिः ॐ आश्रम तथा श्रीमोटा के संपर्क में आये सभी किसी को निमंत्रण भेजा जाता है । इन उत्सवों का प्रारंभ श्री मधुरीबहन खरे के भजनों से होता है । उसके बाद श्रीमोटा स्वजनों को संबोधन कर प्रवचन करते । श्रीमोटा का यह उद्‌बोधन स्वजनों का बाह्यांतर 'खबर' लेनेवाला हो रहता है । फिर श्रीमोटा स्वजनों के पास से दान की माँग करते हैं ।

उसके बाद स्वजन यथाशक्ति भेंट श्रीमोटा के चरण में रखते हैं । श्रीमोटा को सोने के आभूषण भी अर्पण होते हैं । उन आभूषणों को बेचकर श्रीमोटा रुपए प्राप्त कर लेते हैं । फूलमाला के बदले सूत की आंटी अर्पण होती है । उसमें से खादी बनती है ।

सभी स्वजनों को यजमान की ओर से भोजन दिया जाता है। श्रीमोटा ने समय के अनुसार भोजन में बहुत ही सादगी रखी है । मात्र खीचडी, कढी और सब्जी ही परोस दी जाय ऐसी प्रथा आपश्री ने रखी है ।

श्रीमोटा शाम को 'प्रश्नोत्तरी' के कार्यक्रम में प्रश्नों के उत्तर देते हैं और अल्पाहार के बाद विसर्जन होता है ।

श्रीमोटा इन उत्सवों के दौरान जो प्रवचन करते हैं तथा प्रश्नों के जो उत्तर देते हैं, यह भी उनके जीवनकार्य का एक जाहिर अंश है । प्रश्नोत्तरी का कार्यक्रम आपश्री ने पीछे से बंद करवा दिया । श्रीमोटा किसी भी प्रकार की कौतुकपोषक चर्चा को प्रोत्साहन नहीं देते । जिज्ञासु की अभीप्सा का तत्त्व ही प्रोत्साहित किया जाता है । इससे, आपश्री के पास कोई जिज्ञासु प्रश्न लेकर जाय तो उसे प्रेम से उत्तर देते हैं । उस समय आपश्री का शरीर कितना भी वेदनाग्रस्त हो, तब भी ऐसा सत्संग खूब दर्शनीय हो रहता है ।

इसके अलावा, श्रीमोटा दक्षिणा पाने की शर्त पर उद्‌घाटन करने या किसी सभा का प्रमुखस्थान लेने का स्वीकार करते हैं । इस प्रसंग में भी श्रोताओं के पास से दक्षिणा में यथाशक्ति लेने का नहीं चूकते ।

• • •

• पत्रों •

सन् १९३९ से श्रीमोटा ने श्री हेमंतकुमार नीलकंठ को तथा श्री नंदुभाई शाह को जीवनविकास की साधना विषयक व्यावहारिक मार्गदर्शन देते अनेक पत्र लिखे थे । इसके अलावा, अन्य जिज्ञासु साधकों को आध्यात्मिक जीवन विकसित करने पत्र लिखे थे । उन पत्रों में से अनेक पत्र संपादित होकर अनेक पुस्तकों में संग्रहित हैं, फिर भी अनेक पत्र अप्रकट हैं ।

इसके अलावा, श्रीमोटा ने सांसारिक तथा सामाजिक पहेली में उलझे व्यक्तिओं को पत्र द्वारा मार्गदर्शन दिया है । पति-पत्नी के बीच किसी कारण से विखवाद हुआ हो, तब श्रीमोटा ने दोनों के बीच समाधान करवा के दिया है । दोनों को एकदूसरे के प्रति कैसा दृष्टिकोण अपनाना है, उसे प्रेमपूर्वक समझाकर उन दोनों को स्नेहमय जीवन के मार्ग में प्रेरित किया है । एक प्रणयत्रिकोण की परिस्थिति में तीनों व्यक्तिओं को संयम और उदारता की भावना से किस तरह जीना सीखे, उसका मार्गदर्शन दिया है । इसके अलावा, सगर्भावस्था में स्त्रिओं को किस तरह व्यवहार करना, छोटे बालक को किस तरह पालना, (उदाहरण रूप स्तनपान कराते तथा बालक का मैला साफ करते किस प्रकार की भावना रखनी) बड़े हो रहे बालक में उदारता, सहिष्णुता, हिंमत, प्रेम आदि गुण किस तरह विकसित हो और यौवन प्रवेश से पहले किशोरावस्था में जो भयस्थान खड़े हो, उसका स्पष्ट शब्दों में निरूपण किया है तथा निराकरण दर्शाये हैं ।

श्रीमोटा के पत्र प्रत्येक कक्षा की व्यक्तिओं को लिखे हुए हैं । आपश्री के पत्रों में से मार्गदर्शन पानेवाले विद्वान, पंडित, स्त्रियाँ तथा बालक भी हैं । श्रीमोटा का यह व्यक्तिगत संपर्क का कार्य बहुत ही नियमित और सतत होता ही रहा है ।

'शब्द की शक्ति' की सूक्ष्म चर्चा तथा छः मासिक परीक्षा में फैल होनेवाले बालक निराश न होकर कैसे उद्यमशील बने उसका मार्गदर्शन श्रीमोटा के इस प्रकार के पत्रों में से मिलता है ।

इस प्रकार के श्रीमोटा के पत्र विपुल प्रमाण में हैं, जिसमें से अधिकतर अभी अप्रकट हैं ।

• • •

• गुणभाव विकासक योजनाएँ •

श्रीमोटा ने हरि:ॐ आश्रम द्वारा गुणभाव विकासक योजनाएँ प्रस्तुत की । विशाल जनसमाज को स्पर्श करके एक अरूढ़ शैली के कार्य का आरंभ किया । 'मुझे समाज को बैठा करना है'—ऐसे विलक्षण अंतर आदेश से आपश्री का यह कार्य परिणित हुआ है ।

हरि:ॐ आश्रम नडियाद के पास बहती शेढी नदी में डॉक्टरी अभ्यास करते दो युवकों को तैरना न आने से डूब गये । इससे, श्रीमोटा को नडियाद में स्नानागार बनाने की प्रेरणा हुई । नडियाद नगरपालिका को आपश्री ने पचपन हजार रुपये स्नानागर के लिए दिये । सन् १९६९ में यह स्नानागार खुला रखा ।

उन्होंने देखा कि देश का यौवनधन व्यर्थ जा रहा है । तब युवकों में साहस, हिंमत, पराक्रम, खमीर, सहिष्णुता जैसे गुण विकसित हो और वे गुण ऊर्ध्वभाव से जीवन को उन्नत बनाये ऐसी प्रवृत्तिओं का आपश्री ने आरंभ किया ।

• • •

१. धन का सदुपयोग

श्रीमोटा ने कभी भी धनसंचय की स्पृहा नहीं रखी । सन् १९४० में एक भाई ने श्रीमोटा को एक हजार रुपए भेंट दिये । वह रकम आपश्री ने राहतफंड में दे दी थी । स्वयं के पुस्तकों का प्रकाशन विक्रय में से प्राप्त एक लाख से अधिक रुपए आपश्री ने समाजकल्याण की प्रवृत्ति में समर्पित किये ।

प्रजा में त्याग की भावना आये और समाज के प्रति ऋण की सभानता सक्रिय हो, इसके लिए आपश्री ने अपने स्वजनों तथा प्रशंसकों के पास से धन लेकर समाज के चरणों में रखने लगे ।

जनकल्याण की विविध प्रवृत्तिओं के लिए श्रीमोटा का धन एकत्रित करने का तरीका लाक्षणिक है । जो कोई स्वजन श्रीमोटा को अपने यहाँ आमंत्रण दे तो उसे दक्षिणा रूप कुछ रकम देनी पड़े और अपने स्नेहिओं के पास से लाकर भी देनी पड़े । श्रीमोटा को कोई कुछ भी काम के लिए निमंत्रण दे तो उसे आपश्री के कार्य के लिए फंड देना होता, श्रीमोटा की इस प्रकार की दान योजनाओं का आरंभ होने के बाद नय-नये ढंग से आपश्री को धन मिल जाता है । सन् १९७० में भरुच जिले के शंकर-४ कपास के उत्पादकों की ओर से आमोद गाँव में श्रीमोटा को पच्चीस हजार रुपए अर्पण किए गए । श्रीमोटा ने उस रकम के ब्याज में से जो किसान धान, जुआर, कपास, गेहूँ प्रति एकर सबसे अधिक उत्पन्न करे उसे सुवर्णचंद्रक देने के लिए वापिस दिये । किसानों का फंड किसानों को ही प्रोत्साहित करने समर्पित किया ।

आपश्री स्वयं को भेंट मिली चीजवस्तुओं का जाहिर विक्रय करके रुपए एकत्रित करते हैं । खातमुहूर्त के समय प्राप्त हुए चाँदी के तालाचाबी तथा औजार का नीलाम किया और २२६०/- रुपये प्राप्त किये । स्वयं को प्राप्त सोने के आभूषण बेचकर भी उस रकम को जनकल्याण की योजना में दे देते हैं ।

• • •

२. गुण की कदर

श्रीमोटा व्यक्ति में प्रकट होते सत्त्वगुण की कदर करते उस गुण के प्रति प्रजा का ध्यान दिलवाते हैं ।

विख्यात सागर तैराक बेरिस्टर श्री मिहिर सेन को सर्वप्रथम एक सौ एक का कदर-पारितोषिक श्रीमोटा ने हरि:ॐ आश्रम की ओर से दिया । श्री मिहिर सेन ने परदेश में जाकर अलग-अलग समुद्र तैरने की योजना निकाली, तब उनकी साहसिक वृत्ति की कदर हेतु २५०० रुपए की भेंट तार से भिजवायी थी । श्री मिहिर सेनने यह रकम लेने की अनिच्छा बतलायी, पर श्रीमोटा के प्रेमाग्रह के वश होकर उन्होंने यह रकम स्वीकार ली थी ।

श्री नंदुभाई पर के ता. १९-१०-१९६६ के एक पत्र में श्री मिहिर सेन ने लिखा है-

'मुसाफिरी के कारण तैयारी के लिए और तैरने के प्रयास के कारण आपको मैं बहुत बार लिख नहीं पाता । आपने मेरे परिणाम के विषय में तो जाना ही होगा । गुरुदेव के आशीर्वाद और प्रार्थनाओं के बदले मेरा हार्दिक आभार दर्शाना जी ।'

सन् १९६८ में जब भाडभूत से भरुच तक की नर्मदा नदी में योजित अखिल भारत तैराक स्पर्धा के विजेताओं को श्री मिहिर सेन ने इनाम दिये, तब उन्होंने श्रीमोटा की प्रेरणा का उल्लेख करके कहा कि, 'श्रीमोटा संपूर्ण व्यक्ति हैं । वे इस प्रसंग में उपस्थित नहीं है, तथापि प्रतिद्वन्द्वी युवानों को आशीर्वाद देते हो ऐसा मुझे लगता है । मुझे अपने प्रत्येक साहसों में पूज्य श्रीमोटा की प्रेरणा, अदृश्य मार्गदर्शन और सहायता मिला करी है । कोई अदृश्य शक्ति मुझे सहायता करती हो, ऐसा मुझे हमेशा अनुभव होता है ।'

सन् १९६९ में ध्रांगध्रा से हलवद जाती रात की गाड़ी में अमुक हमलाखोरों ने स्त्रिओं के डब्बे में प्रवेशकर स्त्रिओं पर हमला किया । उसमें प्रवास करते जूनागढ म्युनिसिपल कोर्पोरेशन के प्रमुख श्रीमती हेमाबहन आचार्य ने उन हमलावरों का बहादुरीपूर्वक सामना किया और स्वयं घायल होने पर भी जंजीर खिंचकर गाड़ी रोकी थी । श्रीमोटा ने अहमदाबाद की अलग-अलग अट्ठाईस महिला संस्थाओं के उपक्रम में आयोजित एक समारंभ में श्रीमती आचार्य को सुवर्णचन्द्रक एनायत किया था । इसी समारंभ में अहमदाबाद में घरकाम करती जतनबहन नाम की एक रबारी बहन को, चोर को पकड़वाकर हिंमत दिखलाने के बदले एक सौ एक रुपये इनाम रूप दिये थे ।

ऊंझा में रास्ता साफ करनेवाली एक महिला को २५०० रुपये की नोटो का बांधा हुआ बंडल मिला । उसने उसके मालिक को वापिस दिया । अखबार में यह समाचार पढ़कर श्रीमोटा ने ५० रुपए प्रामाणिकता की कदररूप भेज दिये थे ।

व्यक्तिओं में सक्रिय होते साहस, हिंमत, पराक्रम, प्रमाणिकता आदि गुणों की श्रीमोटा सतत कदर करते ही रहते हैं ।

श्रीमोटा ने दानयोजना द्वारा अपनी योजनाएँ फैलाई हैं । अब तो यह गुणभाव विकासक योजनाएँ अखिल भारतीय कक्षा तक फैली हैं । **श्रीमोटा ने पारितोषिक एनायत करने की जो योजना की है, उसमें उस क्षेत्र में विशिष्ट योगदान अर्पण करनेवाले व्यक्ति का नाम उस पारितोषिक के साथ जोड़कर उनकी उस क्षेत्र की सेवा की कदर की है । उदाहरण रूप श्रीअरविंद, भगिनी निवेदिता, सर सी. वी. रामन, डॉ. भाभा, आचार्य आनंदशंकर ध्रुव, श्री ठक्करबापा, श्री अंबुभाई पुराणी, श्री रविशंकर महाराज, पंडित रविशंकर वगैरह ।**

• • •

३. सद्प्रवृत्ति के प्रथम प्रेरक और प्रोत्साहक

श्रीमोटा गुण और शक्ति की सार्वजनिक कदर की प्रवृत्ति आरंभ करनेवाले सर्वप्रथम सतपुरुष हैं ।

श्रीमोटा ने दान के प्रवाह की एक नूतन, मौलिक तथा रचनात्मक दिशा प्रजा को दिखाई हैं । गुजरात और देशभर में समुद्र तैराक स्पर्धा के आयोजन का काम आपश्री की प्रवृत्ति के आभारी है । ज्ञानगंगोत्री, किशोरभारती, बालभारती, साहित्य संदर्भकोश, व्याकरण तथा व्युत्पत्तिशास्त्र तथा सर्वज्ञानसंग्रह (एन्साइक्लोपीडिया) के प्रकाशन की प्रवृत्ति का प्रारंभ आपश्री की दान योजना से ही हुआ है । ललित और इतर ललिकलाओं तथा विज्ञान, हकीमी, कृषिक्षेत्र की तमाम शाखाओं में संशोधन को प्रेरणा और प्रोत्साहन देनेवाले भी श्रीमोटा की प्रवृत्ति सर्वप्रथम है ।

आपश्री ने अपनी योजनाओं के द्वारा पूरे देश के जनसमुदाय के कल्याण हेतु विराट कदम लिया है । तथापि श्रामोटा कहते हैं कि, 'यह काम तो तिल के करोड के भाग जितना है ।'

• • •

४. अन्य कार्य

ऐसी अपूर्व योजना के अलावा, प्याऊ, चिड़ियों को दाना, वृक्षों का पालन, संवर्धन और रक्षण, नदी के घाटों की सँभाल तथा संरक्षण जैसे कार्य भी श्रीमोटा की योजना द्वारा होता है ।

• • •

५. अद्वितीय कार्यपद्धति

श्रीमोटा यह सब समाजोत्थान की प्रवृत्ति के लिए जो दान करते हैं, उनकी पद्धति लाक्षणिक हैं ।

हरि:ॐ आश्रमों की व्यवस्था या निर्वाह खर्च के लिए एक पैसा भी इस दान में से नहीं लिया जाता । आवश्यकता की चीजवस्तुओं का प्रत्यक्ष दान द्वारा ही आश्रम का निर्वाह होता है ।

श्रीमोटा सर्वप्रथम दान की रकम को जाहिर करते हैं और उसके बाद उस रकम को एकत्र करने समाज-स्वजनों को प्रेरित करते हैं ।

प्रजा के पास से मिला धन वैसा ही रहे और उसके ब्याज में से प्रवृत्तियाँ चले ऐसी शर्तयुक्त योजनाएँ होती हैं और इन प्रवृत्तिओं का प्रबंधन खर्च भी इस तरह दी रकम के ब्याज से नहीं होता ।

मानवसमाज के कार्य करने की पद्धति की मर्यादा को स्वीकार करे तब भी धन का संपूर्ण सदुपयोग ही हो ऐसा दृष्टिबिन्दु इस योजनाओं के पीछे लगता है ।

• • •

६. रोगग्रस्त शरीर की अपूर्व चर्या

लाखों रुपयों की दानयोजना के लिए धन एकत्रित करने के उद्देश्य से श्रीमोटा शुभेच्छकों का निमंत्रण स्वीकार करते हैं। श्रीमोटा फंड इकट्ठा करने के लिए कभी घूमते नहीं हैं। श्रीमोटा की प्रवृत्ति से प्रेरित हो जो कोई आपश्री को निमंत्रण देता है, वे उनके यहाँ जाते हैं ।

श्रीमोटा का शरीर सन् १९६० से अलग-अलग प्रकार के बड़े पीड़ाकारी रोग का भोग बन रहा है । उनके सिर में रोग के कारण सतत शूल हुआ ही करता है । आँखों में मुँहासे हैं । गरदन से कमर तक के विस्तार में अमुक मनके खिसक गये हैं, इससे बैठे रहने से बहुत ही पीडाकारक होता है । बिस्तर में रहने के कारण नितंब पर जलन होती है । प्रोस्टेट ग्लेन्ड का दर्द तथा अर्श और मस्सा की पीड़ा भी बहुत है । डायाबिटीस, टी. बी., दम (अस्थमा) और अभी अंतिम शरीर में बढ़ गया पानी—ये सब रोग होने पर भी श्रीमोटा कार में सोये-सोये बहुत ही लंबे प्रवास करते हैं । सख्त ठंडी हो या आग बरसाती धूप हो या मुसलाधार बरसात बरसता हो, तब भी श्रीमोटा की चर्या नियमित चलती है ।

श्रीमोटा तो मात्र एक ही बात करते हैं, 'मुझे समाज को बैठा करना है ।' **श्रीमोटा के मन 'समाज' यह 'भगवान' का पर्याय है । ईश्वर की गुणशक्ति यदि प्रजा में न जागे तो धर्म टिक ही नहीं सकता ।** इससे श्रीमोटा कहते हैं, 'सब कोई समाज के प्रति का धर्म चूके हैं । धर्माचार्यों और साधुओं ने समाज को सत्य बात कही नहीं है । उसकी समाज पर खराब असर हुई है । मात्र आशीर्वाद से काम हो जाने की भावना से समाज लूला हो गया है ।'

'आज भले लोग क्रांति की बात करे, पर अभी समाज सुधरे ऐसा नहीं । भविष्य में बड़ी अंधाधूंधी आयेगी, ऐसा वातावरण लगता है, पर अंधाधूंधी के बाद भारत का विकास अवश्य होगा । क्योंकि आज भी उच्च विचार के तरंग चलते हैं, पर रेडियो की तरह उसे पकड़नेवाला कौन है ? इन तरंगो को पकड़ने के लिए हमें ईश्वराभिमुख होना चाहिए, पर जब समाज जागेगा, तब ही यह कार्य होगा ।'

• • •

• आँख बंद हो तब •

श्रीमोटा ने अंतिम कितने वर्षों से लोकसंग्रह की प्रवृत्ति को आकार दिया है । वे प्रवृत्ति करनेवाले और प्रेरित करनेवाले होने पर भी प्रत्यक्ष

रूप से तो 'हरि:ॐ आश्रम' का ही नाम जाहिर होता है। इसलिए उनके शरीर के अंत पश्चात् उसे महत्त्व देने में लोग न प्रेरित हो इसके लिए उन्होंने अपना निम्नानुसार मंतव्य बतला दिया है—

'**मोटा** के शरीर की हस्ती न हो, तब **मोटा** के स्मरण में—**यह** शरीर के साथ जुड़े सभी मित्रों-प्रशंसको को **यह** शरीर गिरे कि तुरन्त कुछ न कुछ रकम प्रेमभाव से भेज देने का लिखें। इस तरह जो रकम मिले, वह सभी '**मोटा** स्मारक फंड खाता' शुरू करके उस खाते में जमा करनी। उस रकम का प्रबंध श्री नंदलाल भोगीलाल शाह करेंगे। उस विषयक प्रस्ताव ट्रस्टीमंडल कर ले सकते हैं।'

फिर मेरी ऐसी भी सलाह है कि हरि:ॐ आश्रम में या कहीं भी ईंट-चूने में, तुलसी क्यारी में, बावले-पुतले में या इस तरह कुछ भी स्थूल स्मारक न करें। उसमें धन का व्यय ना करें। पर जो रकम उपरोक्त खाते में इकट्ठी हुई हो, उसका कोई अच्छा रचनात्मक कार्य करना रखें। सच्चा स्मारक करना ही हो तो समाज में गुण और भाव आये ऐसा करे, वह सच्चा स्मारक है।

और यह शरीर पड़े कि तुरन्त ही उसका या शरीर की आँखों का उपयोग कोई डॉक्टरी काम सीखने या कोई उपकारक कामों में हो सकता हो तो यह शरीर का उपयोग उस तरह हो वैसा करे। शरीर को जलाने में आये तो यह शरीर की अस्थि को तुरन्त अति निकट जो नदी हो उसमें विसर्जित करें। अनेक दूर के स्थान या माने जाते पवित्र धामों में उसे ले जाने का विचार भी न करें।

• • •

• पूज्य श्रीमोटा का अपूर्व देहत्याग •

पूज्य श्रीमोटा ने समाजोत्थान के कार्य के लिए अत्यन्त पीडाकारक रोगों के साथ सन् १९६२ से १९७५ तक अविरत श्रम लिया। आपश्री को करोडरज्जु तथा गरदन के मनके के घिसाव का तीव्रतम दुखने का दर्द, सिर और आँख में रोग के कारण सिर में सतत शूल, एसीडीटी,

प्रोस्टेट ग्लेन्ड, अर्श और मस्से, आँखों में मुँहासे, रक्त का कम-ज्यादा दबाव, चमडी की एलर्जी के साथ खुजली, शरीर में पानी के भराव के अलावा, बहुत आक्रमणकारक वर्षों पुराना दम वगैरह रोग थे । दम के कारण अंतिम समय में तो ऑक्सीजन गेस सतत साथ में रखना पड़ता था । इसमें से एकाद भी रोग सामान्य जन को हो तो बिस्तर ही पकड़ ले । जबकि पूज्य श्रीमोटा तो व्हीलचेर में घूमते-फिरते रहकर कार और रेलवे में सेंकडों मील का प्रवास भी करते । ऐसी अस्वस्थ तबीयत में भी सुबह से शाम तक स्वजनों के घर अपनी लोककल्याण की योजनाएँ पूर्ण करने को पधारते थे ।

ऐसी प्रवृत्ति बहुत जोर से चलती थी, वहीं सन् १९७५ की रामनवमी के दिन अहमदाबाद के टाऊन होल के उत्सव में उन्होंने जाहिर किया, 'अब मुझे कोई उत्सव मनाने देना नहीं है । मैं अब अहमदाबाद आनेवाला नहीं । अब कोई मुझे मिलने के लिए आश्रम नहीं आना ।' ऐसे स्वयं पैसे माँगना तो बंद किया, परन्तु अन्य स्वजन भी जो इकट्ठा करते थे, उसे बंद करवाया । यह थी उनके निःसंगता के पहलू को व्यक्त करने की शुरूआत । स्वयं सकल प्रवृत्तिओं को वापिस ले लिया । **आश्रम के मुलाकातिओं को भी सुबह ६ से ९ के सिवा न मिलते थे ।** जब उनको लगा कि अब उनका शरीर 'लोककल्याण के काम में' आ सके ऐसा नहीं, तब शरीर का 'आनंदपूर्वक' त्याग करने का निश्चय किया, परन्तु निश्चित देहत्याग पहले का कुछ पूर्व इतिहास जानना रसप्रद है ।

सामान्य रूप से एकाद अपवाद के सिवा पूज्यश्री वर्षों से गुरुपूर्णिमा के समय दक्षिण भारत में कुंभकोणम् आश्रम में रहते । वहाँ के स्वजन गुरूपूर्णिमा वहीं त्रिची या कुंभकोणम् में उनकी उपस्थिति में मनाते, परन्तु १९७६ के ११ जुलाई मास की गुरुपूर्णिमा पर पूज्यश्री ने कुंभकोणम् जाना बंद किया । बहुत लम्बे समय के बाद गुरुपूर्णिमा के दिन पूज्यश्री सूरत आश्रम में हो ऐसा प्रसंग आया । **उन्होंने तो गुरुपूर्णिमा के दिन किसी अज्ञात स्थान जाने का सोच रखा था । इससे, गुरुपूर्णिमा पर आने को उत्सुक ऐसे अनेक मुंबई-अहमदाबाद के स्वजनों को**

उन्होंने ना कहलवाया कि, 'आना नहीं । मैं नहीं मिल सकूँगा ।' परन्तु सूरत के स्वजनों ने पूज्यश्री को विनती की, 'गुरुपूर्णिमा के शुभ दिन अनेक वर्षों बाद आप यहाँ हो तो आप उस दिन आश्रम में ही रहो तो अच्छा ।' पूज्यश्री ने अपने समाजोत्थान के कार्य के लिए अच्छी ऐसी रकम मिलती हो तो स्वयं सुबह के ७.३० बजे तक रुकने की संमति दी । सूरत के स्वजनों ने बावन हजार रुपए उनके चरणों में रखने का प्रस्ताव रखा । धन इकट्ठा होने लगा । धीरे-धीरे लक्ष्यांक बदलता गया और ७७ हजार का हुआ । गुरुपूर्णिमा के दिन तक ६७ हजार एकत्रित हुए, परन्तु गुरुपूर्णिमा की सुबह की प्रार्थना के बाद एक स्वजन ने खड़े होकर १० हजार देने का जाहिर कर लक्ष्यांक के ऊपर रकम चली गयी । बाद में वही निमित्त में आये धन की रकम जुड़कर अंक ८५ हजार का हुआ ।

उस दिन दि. १०-७-१९७६ की रात्रि में मुसलाधार बारिस हुई । सूरत शहर का सारा ही वाहनव्यवहार बंद हो गया था । अहमदाबाद से आनेवाले भक्तों ने सूरत स्टेशन पर दि. ११-७-१९७६ सुबह डेढ़ बजे उतरते ही विज्ञापन सुना कि, 'अब इसके बाद की अहमदाबाद से आती ट्रेन बंद है, क्योंकि कोसंबा स्टेशन पर पानी भर गया है ।' पूरा सूरत स्टेशन फूटपाथवासिओं और झोपड़ेवासिओं के आश्रयस्थान रूप भरचक भरा था । सूरत शहर में भी दूर-दूर तक पानी भरा था । रात को रिक्षा बंद थी । सूरत से रांदेर तक के रास्ते में अनेक मोटरगाड़ियाँ फँसी थीं । ऐसी परिस्थिति में भी ढ़ाई सौ-तीन सौ व्यक्ति गुरुपूर्णिमा ता. ११-७-१९७६ के दिन सुबह को ६ बजे सूरत आश्रम में पूज्यश्री के दर्शन और गुरुवंदना के लिए उपस्थित थे । प्रार्थना हुई । गुरुवंदना के लिए सभी लाईन में खड़े थे । कितने ही सोच रहे थे कि ऐसे मुसलाधार बरसात में पूज्यश्री का जाना अब बंद रहेगा, परन्तु साढ़े सात बजते ही पूज्यश्री कार में बैठते देखा तो सभी आश्चर्यचकित हो गये । बहुत कम को पता था कि कार ठंडी न हो जाय इसके लिए उन्होंने कार की मशीन चालू रखके गर्म कर रखी थी । उन्होंने तो निश्चित समय में आश्रम छोड़ा । सन् १९७६ ता.

११ जुलाई का वह गुरुपूर्णिमा का दिन । उनकी इच्छा विद्यानगर श्री रामभाई और डॉ. कांताबहन के वहाँ जाकर उसी रात देह त्यागने की थी । 'हम आयेंगे' इसका मतलब भी श्री रामभाई को शायद कहके भी रखा था, परन्तु 'तुम कान्ता को कहना नहीं' ऐसी भी सूचना दी थी । श्री रामभाई ने उस आदेश का यथार्थ पालन किया था । उनके घर पर देह त्यागना है, इस विषय का संकेत तो राम को भी नहीं किया था । पूज्यश्री और श्री नंदुभाई, दो ही जन वह जानते थे ।

सूरत आश्रम से निकलने के बाद वडोदरा के रास्ते कोसंबा का पुल टूटा होने से उन्हें वापिस लौटना पड़ा । वापस लौटते कडोदरा के बदले भूल से वराछा रोड़ पर आ गये । वराछा रोड और सूरत के बीच नाले से आगे एक गली से होकर शहर में प्रवेश करते हुए कीचड़वाले पानी से भरे खेत में कार फँस गई । श्री नंदुभाई की घूमती ऑफिस का कितना ही साहित्य कार में पानी भरने से भीगकर बिगड़ गया । आसपास की सोसायटी के कितने ही लोगों ने पूज्य श्रीमोटा को पहचान लिया और फँसी कार को बाहर निकालने की विनती करने पर भी, उन्होंने मदद करने की तत्परता नहीं बतलायी, क्योंकि अति गहराई में गुरुपूर्णिमा के दिन अनायास आये **मोटा** को अपने घर पधारने की इच्छा उनकी रही थी । उस मछुआरे ने पैर धोये बिना नाव में बैठाने श्रीराम को मना किया था, जिससे पैर धोने का मौका मिले । कुछ वैसा ही यह प्रसंग था, परन्तु दृढ़ निश्चय के साथ पूज्यश्री तो कार में ही सोये रहे । 'अब कोई दाल गलने-वाली नहीं' ऐसा सोचकर फिर सभी ने मदद की और कार खिंच निकाली । अंत में चार घण्टे बाद सूरत आश्रम में दोपहर के १२ बजे वापिस आये । सूरत आश्रम के प्रमुख श्री हसमुखभाई रेशमवाला को पूज्यश्री ने कहकर रखा था कि वडोदरा से यदि कोई पहली ट्रक आये, तो रोड़ खुलने की जानकारी हमें तुरन्त करना । ऐसी खबर मिलने से दूसरे दिन ता. १२ जुलाई को सुबह छ बजे सूरत आश्रम से निकले । वडोदरा पहुँचने से पहले दस बारह मील पहले का गाँव पोर के आगे पानी भरा होने से वहाँ कुछ समय रुकना पड़ा । वडोदरा के पास आये, तब विश्वामित्री के ऊपर का

वाहनव्यवहार बंद होने से पूज्यश्री ने अपने वडोदरा के स्थायी यजमान श्री जयरामभाई देसाई के यहाँ प्रतापनगर कार लिवाई । वहाँ तीनेक घण्टे आराम करके निकले । पर वडोदरा शहर में से अभी पानी घटा न था । पुलिस किसी भी वाहन को आगे न जाने देती थी, परन्तु वडोदरा के पूर्व मेयर श्री ललितभाई ने **मोटा** को कार में देखा और आगे जाने देने की व्यवस्था की, परन्तु छाणी के आगे खूब पानी भरा होने से रास्ता बंद होने से पूज्यश्री ने कार अपने स्वजन एलेम्बिकवाले श्री रमणभाई अमीन के यहाँ लिवाई । श्री रमणभाई अमीन के यहाँ आधे घण्टे रुककर उनके पुत्र श्री चिरायुभाई को रास्ता बतलाने पाईलट कार के रूप में आगे रखा और पीछे के रिफाईनरीवाले रास्ते फर्टिलाईजर के पास हाईवे पर निकले । पहले दिन श्री रामभाई को आने को कहा था, इसलिए विद्यानगर से डॉ. कान्ताबहन तथा श्री रामभाई को आश्रम में सेवा में रखने साथ लेकर शाम के सात बजे नडियाद आश्रम में आये । सूरत से सुबह के छ बजे निकले शाम के सात बजे नडियाद आश्रम में पहुँचने से पूरे दिन के प्रवास का अत्यधिक श्रम पूज्यश्री को अनुभव करना पड़ा और बाद के दो-तीन दिन तक उनकी सुखाकारी को वह बाधक हुआ ।

ऐसी नादुरस्त तबीयत होने पर भी ता. १३-१४-१५ जुलाई को तो पूज्य श्रीमोटा ने आश्रम में नियमित आनेवाले स्वजनों को मिलने भी दिया । ता. १६ जुलाई को प्रोस्टेट का दर्द अधिक उग्र हुआ । ३६ घण्टे तक पेशाब न हुआ । इससे पूज्यश्री की 'ना' होने पर भी डॉ. कान्ताबहन स्वयं डॉक्टर होने से अपना उत्तरदायित्व समझकर नडियाद के प्रख्यात युरोलोजिस्ट डॉ. वीरेन्द्रभाई देसाई को बुलाने का निश्चित किया । काम कठिन था । उस दिन शेढी नदी में बहुत बाढ़ थी । मुख्य रास्ते का जोड़ते आश्रम के रास्ते पर भी सिर तक का पानी था । अंत में आश्रम के पीछे के रास्ते पर घुटनों तक पानी में कीचड़ रौंदते बहुत देर बाद कान्ताबहन मुख्य रास्ते पर पहुँची । वहाँ से प्रभुकृपा से आश्रम के प्रतिदिन के मुलाकाती स्वजन श्री विष्णुभाई की कार में डॉ. वीरेन्द्रभाई के पास पहुँचे । डॉ. वीरेन्द्रभाई ने तो यदि रस्सी के साथ लकड़ी बाँधकर आश्रम की ओर

से मुख्य रास्ते पर फेंकने में आये तो उस लकड़ी को पकड़ के रस्सी खिंचकर तैरते तैरते आने की भी तत्परता बतलायी । यद्यपि ऐसा करने की जरूरत नहीं पड़ी । पीछे के रास्ते घुटने तक का कीचड़, कीचड़ और पानी में डॉ. वीरेन्द्रभाई आश्रम में आये । उन्होंने केथेटर रखा और कुछ पेशाब करवाया । दूसरे दिन ता. १८ को भी डॉ. वीरेन्द्रभाई आये । वहाँ तक केथेटर द्वारा ढाई-तीन लिटर जितना पेशाब एकत्रित हुआ था । उसके बाद पूज्यश्री हल्के हुए । उनके शरीर पर की सुजन कम हो गई ।

१९ जुलाई को पूज्यश्री ने आश्रम का लेटरपेड माँगा और श्री नंदुभाई को बुलाया और उनकी उपस्थिति में सुबह साढ़े दस बजे एक पत्र लिखकर अपने चश्माघर में रखा । ता. २०-२१ की सुबह आश्रम में आनेवाले सभी को १०-१० मिनिट मिलने की छूट दी । ता. २१ की शाम पूज्य श्रीमोटा ने नडियाद आश्रम में पहियावाली कुरसी में अपने को घुमाने के लिए राजुभाई को कहा । आश्रम की वनस्पति की मानो आखरी विदाई लेते हो इसप्रकार प्रत्येक वनस्पति को दो हाथ जोड़कर प्रणाम किया, परन्तु राजुभाई के ध्यान में यह न आया । न तो उन्हें कुछ सांकेतिक लगा । पूज्य श्रीमोटा ने घूमते घूमते सूचना दी कि यह नहाने का टब जिसका है, उसे तुम पहुँचा देना । तब राजुभाई ने कहा, '**मोटा** ! हम वापिस आयेंगे तब चाहिएगा न ?' तब बात को मोड़कर पूज्यश्री ने उत्तर दिया, 'तब वापिस मँगा लेंगे ।'

ता. २२ जुलाई के समयपत्रक अनुसार फाजलपुर जाना था । सुबह दो-ढ़ाई बजे से **मोटा** डॉ. कान्ताबहन को उठाने लगे । स्वयं हड़बड़ी करके तैयार हो गये और दूसरे सभी को शीघ्रता करवाके पाँच बजे निकले । उस समय मुसलाधार बारिस हो रही थी । इसलिए चारों कोने चार जन तिरपाल रखकर उनको कार में बिठाया । पूज्यश्री तो अपनी मर्सीडीज गाड़ी में थे । साथ ही श्री रामभाई और श्री नंदुभाई थे । डॉ. कान्ताबहन और राजुभाई कान्ताबहन की फीयाट कार में थे । कान्ताबहन की कार पाईलट कार के रूप में आगे जा रही थी । रोड़ पर जैसे चढ़े कि आश्रम की तमाम लाईट बंद हो गई । ग्रीड में से सीधी मिली लाईन होने से

ऐसा बंद हो जाना संभव न था । इससे आश्रमवासिओं को कुछ अघटित के संकेत मिले । महागुजरात होस्पिटल के आगे और कॉलेज रोड़ पर पानी होने के कारण संतराम-विठ्ठल कन्या विद्यालय के रास्ते जो फाटक आता है, वहाँ से बाहर जाते हाईवे पर निकले । अनेक जगहों पर बहुत पानी था । डॉ. कान्ताबहन की फीयाट कार उस पानी में से किस तरह सहीसलामत निकली उसका आश्चर्य अभी तक कान्ताबहन अनुभव करती हैं । फाजलपुर पहुँचने के बाद श्री नंदुभाई की कार में पूज्य श्रीमोटा ने देह छोड़ने के विषय में श्री रमणभाई की संमति जाकर तुरन्त ही माँग लेने को कहा । फाजलपुर श्री रमणभाई तथा श्रीमती धीरजबहन सुबह छ बजे स्वागत के लिए उपस्थित थे । श्री नंदुभाई ने रमणभाई को बात की । 'आप संमति दो तो पूज्यश्री को यहाँ देहत्याग करना है । आपकी संमति न हो तो फिर सूरत आश्रम में जाकर देह छोड़ेगे ।' श्री रमणभाई ने कहा, 'यह घर पूज्यश्री का है । उनकी जैसी इच्छा हो वैसे ।' उस समय श्री रमणभाई को ख्याल नहीं कि आज ही छोड़ेगे । हमेशा की तरह उस दिन पूज्यश्री सभी के साथ भोजन करने नहीं बैठे । कांताबहन को कुछ बना लाने को कहा । डॉ. कान्ताबहन सुरण उबालकर ले आयी । वह उन्होंने ज्यों-त्यों एकाद कौर खाया होगा ।

आठेक बजे पूज्यश्री ने श्री नंदुभाई को अपनी गले की माला और हाथ की घड़ी देकर निश्चित कर दिया कि आज देह छोड़ना है । श्री नंदुभाई ने पेश किया, 'आज ऐसी बरसात की बौछार है तो चिता वगैरह जलने में कठिनाई होगी । मही नदी में भी अधिक बाढ़ है । दो-तीन दिन रुक जाओ तो ?' पूज्यश्री ने दृढ़ आवाज से उत्तर दिया, 'अग्नि-संस्कार न हो पाये तो देह को नदी में बहा देना । मैंने निश्चय कर लिया है ।' 'This is not a matter of discussion.'

सुबह ११ बजे उन्होंने दूसरे तीनेक पत्र लिखे । उसमें एक में इस अनुसार लिखा, 'गुरुमहाराज जीवित प्राणी है ऐसा नहीं । यह तो उनको या हमें उपयोग पड़े मनुष्य जैसे होकर हमारी समक्ष होकर जो तो हमारा हल कर देते हैं ।' दूसरे कागज में उन्होंने अपने को मदद करनेवालों का

आभार माना । 'भगवान उनका यशकल्याण करे' ऐसी प्रार्थना की है और तीसरे में स्वयं जो पुस्तकें लिखी उसके पीछे की अपनी भावना और पद्धति को डोलनशैली में प्रस्तुत की है ।

उसी दिन ही योगानुयोग श्री रमणभाई के उस फार्म के दरवाजे के लिए संगमरमर की तख्ती 'हरिस्मृति' आयी और उस द्वार के स्तंभ पर लगवाई । दोपहर तीन बजे हमेशा आते थे, उस अनुसार श्री रमणभाई के परिवार के सभ्य, बालक वगैरह पूज्यश्री को मिलने आये । उन सभी को प्रेम से मिले सही पर जल्दबाजी करवा के उन सभी की विदाई करवायी । शाम चार बजे उन्होंने अपने को बरामदे में से अंदर कमरे में लिवाया । फिर श्रीनंदुभाई को अकेले बुलाकर सातेक मिनट बात की । **उस समय श्री नंदुभाई ने अंदर से कोई साहजिक प्रेरणा द्वारा पूज्य श्रीमोटा को कहा, 'मैं आपके देहत्याग के बाद आश्रमों में ही रहूँगा और आश्रमों को सँभालूँगा ।'** पूज्यश्री ने आँखों द्वारा संतोष प्रकट किया । यह एक सूचक प्रसंग है, क्योंकि नंदुभाई पूज्यश्री को अनेक बार कहते, 'My loyalty is primarily towards you, and secondarily towards the Ashrams as I do not identify myself with the Ashrams.' उस समय पूज्यश्री यह बात सुन लेते । नंदुभाई ने तो पहले से सोच भी रखा था कि पूज्यश्री के देह की हस्ती के बाद एक-दो वर्ष में इन आश्रमों का समग्र कारोबार व्यवस्थित करके कुंभकोणम् आश्रम में हमेशा के लिए रहने के लिए चला जाऊँ । इस बात के संदर्भ में पूज्यश्री के साथ अंतिम मिलन में यह धन्य पल में नंदुभाई का निर्णय किस तरह बदला और अचानक कैसे व्यक्त हुआ इसका सभान ख्याल नंदुभाई को बिलकुल नहीं आया । बिलकुल साहजिक रूप से हो गया । उसमें पूज्यश्री की कोई समझ में न आ सके ऐसी लीला क्यों न हो ।

नंदुभाई ने बात पूरी करने के बाद अन्य पाँचों जनों को अंदर बुलाया । पूज्यश्री ने सूचना दी, 'आपको अंदर बैठना है तो अंदर बैठो, बाहर बैठना हो तो बाहर बैठो । अगर अंदर बैठना हो तो भगवान का

स्मरण करना । अब मुझे कोई बुलाना नहीं और कोई छूना नहीं । इस केथेटर को मेरे शरीर पर से दूर नहीं करना । यह मेरी जीवनसंगिनी है ।' छः हों जनों ने पूज्यश्री के रूम में बैठना पसंद किया । कमरा बंद किया और सभी ने अपने अपने ढंग से 'हरि:ॐ' का जप शुरू किया । रात के लगभग बारह बजे सहजता से नंदुभाई के मन में स्फुरित हुआ कि **मोटा** शायद डेढ़ बजे प्राण छोड़ेंगे, क्योंकि पूज्य श्रीअरविंद ने भी शुक्रवार की रात्रि डेढ़ बजे देह छोड़ा था । रात के साढ़े बारह बजे डॉ. कान्ताबहन ने पूज्य श्रीमोटा की नाड़ी की धड़कन गिनी । तीस से पैंतीस थी । सवा बजे श्री रमणभाई ने सहज शरीर का स्पंदन होते देखा । एक पच्चीस पर देह छूट गया । शरीर पर कोई उग्र चिह्न न दिखा । भीष्म पितामह की इच्छामृत्यु की बात पढ़ी थी, किन्तु रोगों की बाणशय्या पर लेटे पूज्य श्रीमोटा की इच्छामृत्यु का प्रसंग अपनी हस्ती में हुआ, यह एक अनोखी घटना है ।

श्री रमणभाई और फार्म मेनेजर श्री छगनभाई सुबह चार बजे जा कर चिता की जगह निश्चित कर आये थे । पानी की सतह के पास जगह निश्चित की थी ।

नंदुभाई प्रेस के लिए संदेश आदि लिखने में लग गये । अंतिम क्रिया करने में पूज्यश्री के आदेश को मान देना था । ता. १९-७-७६ नडियाद आश्रम में लिखे पत्र में यह आदेश था । वह एक वसीयतनामा जैसा है और लाक्षणिक ढंग से लिखा गया है ।

जिस किसी को इस विषय में लागू होता है उनके लिए—

मैं चूनीलाल आशाराम भगत उर्फ **मोटा**, निवासी हरि:ॐ आश्रम, नडियाद, इसलिए बतलाता हूँ कि मेरी राजीखुशी से मैं अपनेआप मेरे जड़ देह को छोड़ना चाहता हूँ । यह देह अत्यधिक रोगों से घिरा है और अब लोककल्याण के काम में आये ऐसा नहीं है । रोग मिटने की भी आशा नहीं है । इसलिए आनंदपूर्वक शरीर छोड़ना उत्तम है और उसके लिए योग्य पल लगे तब मैं ऐसा कर लूँगा ।

मेरे शरीर का अग्निसंस्कार एकांत में शांत जगह पर मृत्युस्थल की बिलकुल निकट करना और वह भी आप छः जने* की उपस्थिति में ही करना । बहुतों को इकट्ठा न करे, ऐसा मैं मेरे सेवकों को फरमाता हूँ । मेरी अस्थि को भी नदी में संपूर्ण प्रवाहित कर दे ।

मेरे नाम का ईंट-चूने का कोई स्मारक करे नहीं । मेरी मृत्यु निमित्त जो कुछ धन इकट्ठा हो, उसका उपयोग गाँवो में शाला के कमरे बंधवाने में करे ।

—चूनीलाल आशाराम भगत उर्फ **मोटा**

ता. १९-७-१९७६

मही नदी के पश्चिम तट के कगार पर श्री रमणभाई का बंगला और उसके आगे का बगीचा आया है, वहाँ से उतरने की एक पगडंडी थी । किसी दिव्य संकेतानुसार दो-तीन महीने पहले ही डेढ़ फूट की वह संकड़ी पगडंडी तीन फूट चौड़ी की । दो आदमी साथ में सरलता से जा सके ऐसा रास्ता श्री रमणभाई अमीन ने बनवाया था । इसलिए फार्म के कंपाउंड के बाहर गये बिना ही सीधे नदी तट उतर सके ऐसा था । मृत्युस्थान के बिलकुल निकट अग्नि-संस्कार करने का पूज्यश्री के आदेश का इस तरह सहजता से सुलभ ढंग से पालन हुआ । सोने की एल्युमिनियम की वजन में हल्की चारपाई में पूज्यश्री के देह को नीचे ले जाया गया । मही नदी का पानी शीध्रता से बढ़ता होने से मूल निश्चित की जगह को बदलकर थोड़े ऊपर के भाग में चिता बनाई गई । देह को नीचे ले जाते समय न तो कोई अगरबत्ती जलाई गई थी, न तो चंदन की लकड़ी रखी गयी थी । गंगाजल का भी छिटकाव नहीं किया गया था । कोई केमेरा न था । प्रणालिकागत विचारों को कैसी तिलांजलि । गतानुगतिक विधि का कैसा त्याग ! सूक्ष्म को महत्त्व स्थूल को नहीं । यह बात इससे स्पष्ट होती है ।

---

* ये छः जन - (१) श्री नंदुभाई, (२) श्री रमणभाई अमीन, (३) श्रीमती धीरजबहन अमीन, (४) श्री रामभाई पटेल, (५) डॉ. कान्ताबहन पटेल और (६) श्री राजेन्द्रभाई उर्फ राजुभाई पटेल ।

चिता पर देह सुलाते हुए श्री रामभाई बोल उठे, '**मोटा** तो नागाबाबा के जमात के हैं। इस वस्त्र की भी क्या आवश्यकता !' इसलिए देह पर रहा एकमात्र वस्त्र भी ले लिया। श्री रमणभाई के हाथों अग्निदाह दिया गया। दो घण्टे में तो देह पंचभूत में मिल गया। उसके अंतिम अवशेष अस्थि और राख को फार्म मेनेजर श्री छगनभाई और श्री राजुभाई ने मही नदी के पानी से डोल भर-भरके उलीचकर पूज्यश्री के आदेश अनुसार मही नदी में इकट्ठा किया। दोनों बहनों ने स्त्रीसहज ऋजुता से सिसकी ली, तब अन्य व्यक्ति कुछ गंभीर हो गये। नहीं तो मृत्यु और जन्म दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू उन्होंने गिन लिये थे।

ता. २३ जुलाई, सुबह ९.४५ बजे फाजलपुर में सभी ने खाना खाया। श्री रमणभाई और श्रीमती धीरजबहन वडोदरा गये। श्री नंदुभाई अकेले आश्रम आये। थोड़ी देर में बात बहती हुई और आश्रम में लोकप्रवाह बहने लगा।

पूज्यश्री के यह देहविलय के बाद उनके अंतिम आदेश को मान देकर जो कुछ रकम उनकी मृत्यु निमित्त इकट्ठी हुई वह बिलकुल छोटे गाँव की प्राथमिक शाला के कमरे बनवाने में ही खर्चने का निर्णय हरि:ॐ आश्रम ने किया। प्रारंभ में तो ऐसा सोचा था कि १२-१३ दिन में जो कुछ आये वह इस तरह बाँट देंगे, परन्तु श्री इन्द्रवदन शेरदलाल को स्वयंस्फुरित प्रेरणा हुई कि पूज्य श्रीमोटा की इच्छा आयोजनपूर्वक पार करे। अहमदाबाद के हरि:ॐ सत्संग मंडल के स्वजनों ने श्री इन्द्रवदन शेरदलाल की उस प्रेरणा को मूर्तस्वरूप देने उनके तथा श्री लक्ष्मीकांत अमीन के मार्गदर्शन में आयोजनपूर्वक एक विशिष्ट आंदोलन किया और बहुत सारी रकम एकत्रित की। उसमें से जो प्रेरणा स्फुलिंग जन्मे उसके कारण आणंद में, खेडा जिले के एक-दो गाँवों में, वडोदरा, सूरत और मुंबई वगैरह स्थानों पर स्वजनों ने यह काम उठा लिया। यह प्रवृत्ति आठेक महीना खूब वेग से चली। योजनापूर्वक रकम एकत्रित करने का काम वर्तमान में बंद है, परन्तु अपनेआप दान का प्रवाह तो अभी तक निरन्तर आश्रम में बहा ही करता है। कितनी बार तो आश्रम के साथ

किसी भी प्रकार का परिचय न हो, ऐसी व्यक्तिओं की ओर से बड़ी बड़ी रकम के दान मिलते जाते हैं । उसके फलस्वरूप समग्र गुजरात में कच्छ से लेकर वलसाड तक और उत्तर गुजरात के सभी जिल्लें को व्याप्त करते १८५ तालुकों में से १८३ तालुकों को आज तक दी रकम दो करोड़ के ऊपर है । यह एक विस्मयकारक अनोखी घटना हुई है । तब पूज्यश्री के अनेक बार उच्चारित शब्द कर्णपट पर गुंजते हुए सुनाई देते हैं । 'देखना न ! मेरा शरीर जाने के बाद आश्रम के द्वार पर पैसों का ढेर हो जायेगा ।' कितना यथार्थ भविष्यकथन !

—पूज्य श्रीमोटा–जीवनवृत्तांत (साक्षात्कार के पश्चात्–एक संक्षेप)
आलेखन (पृ. नं. ८०१ से ८१२) श्री इन्दुकुमार देसाई
(जीवनदर्शन आ. ८, पृ. ४७६, ४७८ से ४८९)

पूज्य श्रीमोटा के कार्य की यह पूर्णाहुति नहीं पर आरंभ है ।

॥ हरिःॐ ॥

श्रीमोटा की यह ज्ञानयुक्त प्रवृत्ति के विवरण से उसका विस्तार और वैविध्य समझ सकते हैं ।

• • •

• जनकल्याण की प्रवृत्तियाँ •

मौनमंदिर की साधना के अलावा, श्रीमोटा की ओर से हरिःॐ आश्रमों द्वारा निम्न अनुसार विविध प्रकार की लोककल्याण की प्रवृत्तियाँ भी होती है ।

१. भक्ति के संबंधित और भावनात्मक साहित्य के मौलिक सर्जन ।
२. बालकों में गुण और भावना आए ऐसी मौलिक कहानी का सर्जन ।
३. बहनें और माताओं के जीवन की ओर समाज के मानस में सद्भाव, आदर और मान आये ऐसे साहित्य का सर्जन ।
४. 'ज्ञानगंगोत्री' संदर्भ ग्रंथ (Book of Knowledge) का सर्जन । 'बालभारती', 'किशोरभारती', विज्ञानश्रेणी के ग्रंथ तथा सर्वधर्मी तत्त्वज्ञानदर्शन–श्रेणी के ग्रंथ वगैरह ।

५. मानवसमाज के साहस, हिंमत, पराक्रम, प्रामाणिकता, त्याग, सहनशक्ति वगैरह गुण की कदर-भावना-प्रतीकरूप चंद्रक देना ।
६. स्त्रिओं के शरीर सुदृढ़ बने और उनमें गुण और भावना के संस्कार आये ऐसी सक्रिय योजनाएँ ।
७. विद्यार्थिओं में गुण और भावना आये वैसे निबंध की स्पर्धाएँ ।
८. छोटे-छोटे गाँवों की स्कूलों में गुण और भावना आये ऐसे पुस्तकों को बाँटना ।
९. पुराने जर्जरित हो गये घाटों की मरम्मत का कार्य और विविध सामाजिक संस्थाओं को सहायता ।
१०. पीछड़ेवर्ग की बहनों में एस. एस. सी. इत्यादि में प्रथम आनेवाली को शिष्यवृत्तियाँ ।
११. खेड़ा जिले में अस्पृश्यता निवारण का अच्छे से अच्छा काम करे उसे प्रत्येक वर्ष चाँदी का बड़ा शिल्ड ।
१२. नडियाद, सूरत, वडोदरा और राजपीपला में स्नानागारों, तापी नदी और नर्मदा नदी में तैराकी स्पर्धा तथा अखिल हिन्द स्तर पर समुद्र तैराकी स्पर्धा का आयोजन तथा राज्य स्तर पर नौकास्पर्धा तथा मेरेथोन दौड़-रेईस योजना)
१३. युनिवर्सिटी द्वारा श्रीअरविंद तत्त्वज्ञान व्याख्यानमाला और दूसरी व्याख्यानमालाएँ ।
१४. उपजाऊ वृक्षारोपण, पानी के प्याऊ, तितिक्षा स्पर्धा, विद्यार्थिओं को मदद, छोटे गाँवों में स्कूलों के चुनाई में मदद, पक्षी को दाना, दवा-मदद आदि-आदि ।
१५. वेद की ॠचाओं के अर्थ आम जनता को सुलभ हो उसके लिए प्रकाशन ।
१६. विज्ञान, खेती, मेडिसिन, सर्जरी, इलेक्ट्रोनिक्स, प्लेनेटरी एन्ड स्पेस सायन्सीस, गाँवों और शहरों में सस्ते और मजबूत मकानों में चुनाई आदि क्षेत्रों में एन्डाउमेन्ट के व्याज में से प्रतिवर्ष बड़ी रकमों के अखिल हिन्द स्तर पर खुशहाल पारितोषिकों की योजनाएँ ।

१७. विद्यार्थिओं में श्रम का महत्त्व प्रकटे, उसके ट्रस्ट और कन्या व्यायामशालाओं को उत्तेजन ।

१८. हाईस्कूल कक्षा के विद्यार्थिओं और विद्यार्थिनिओं के लिए साइकिल और दौड़स्पर्धा पारितोषिक ट्रस्ट ।

१९. पर्यटन, पर्वतारोहण, बोटिंग, पैदल यात्रा और खेलकूद द्वारा गुजरात की सभी युनिवर्सिटीओं के विद्यार्थिओं में साहस, हिंमत, नीडरता आदि गुणों के विकासार्थ अलग-अलग ट्रस्ट और योजनाएँ ।

२०. संगीत-वाद्य-नृत्य और चित्र जैसी ललितकलाओं की स्पर्धाओं की योजना और वार्षिक पारितोषिक ।

२१. ब्रिटिश एन्साईक्लोपीडिया के ढंग की वर्णमाला के क्रमानुसार कोश की ग्रंथश्रेणियाँ तथा गुजराती साहित्यकोश ।

२२. गुजरात स्टेट स्तर पर सभी युनिवर्सिटिओं के विद्यार्थिओं के लिए अलग-अलग विषयों की प्रतिभा शोध और उत्कर्ष के लिए स्पर्धात्मक परीक्षाओं द्वारा पारितोषिकों की योजना ।

२३. रामायण, महाभारत, भागवत आदि ग्रंथों की त्रिरंगी सचित्र सरल शैली में कहानियों का प्रकाशन ट्रस्टों की योजनाएँ ।

२४. गुजरात स्तर पर हरीसूखी खेती, बागायत, रेशम और उसके रेशे, समुद्रशास्त्र, पुरातत्त्वविद्या, बायो-जीओ-सोईल केमिस्ट्री, बोटनी प्लान्टस और प्लान्ट पेथोलोजी, ट्रोपकिल डीसीसीझ, इन्जीनियरींग और टेक्निकल विषय, रंग और रंग की बनावट, प्राणीविज्ञानशास्त्र आदि अलग अलग विषयों की गुजरात की अलग अलग युनिवर्सिटिओं द्वारा स्पर्धात्मक पारितोषिकों की योजनाएँ ।

॥ हरिःॐ ॥

हरि:ॐ आश्रम द्वारा लोककल्याण के लिए सन् १९६२ से सन् १९७४ तक दिये हुए कुल रु. ८५,२७,३२५/- के दानों की यादी

१.	रु. २८,०५,०००/-	अलग अलग क्षेत्रों में उत्कृष्ट संशोधनों के लिए मूल रकम कायम रहे और उसके ब्याज में से एवोर्डस, पारितोषिकों के लिए ।
२.	रु. ३२,५६,३००/-	संस्कारपोषक गुणभाव विकासक साहित्य, शिक्षा के विविध क्षेत्र में सहायक प्रकाशनों, जीवनचरित्र के प्रकाशनों तथा विज्ञान-तत्त्वज्ञान आदि प्रवृत्तिओं के लिए ।
३.	रु. ८,५७,६२५/-	समुद्र और नदी-तरण स्पर्धा के प्रति वर्ष ब्याज में से अखिल भारत कक्षा और गुजरात राज्य कक्षा के पारितोषिकों, नौका-स्पर्धा पारितोषिकों, स्नानागार बनाने आदि तरण क्षेत्र के लिए ।
४.	रृ. ६,९८,७५०/-	विद्यार्थिओं के लिए पर्यटन, पैदल प्रवास, साइकिल-दौड स्पर्धा, व्यायाम, नौका-चालन, पर्वतारोहण, मर्दानगी के खेल आदि विद्यार्थी-जीवनविकास शिक्षा के लिए ।
५.	रु. ५,९०,२५०/-	विद्यार्थिओं की सर्वांगी शिक्षा के लिए ।
६.	रु. ३,२९,४००/-	विविध-क्षेत्रों में समाजोपयोगी कार्यों के लिए ।

कुल रु. ८५,३७,३२५/-

I

अलग-अलग क्षेत्रों में उत्कृष्ट संशोधनों के पारितोषिकों के लिए (मूल रकम कायम रहे - प्रति वर्ष पूरा ब्याज में से पारितोषिकों)

३,००,००० मेडिकल काउन्सिल ऑफ इन्डिया (दिल्ली) को दर्द और दवा के उत्कृष्ट संशोधन पारितोषिकों के लिए (अखिल भारतीय कक्षा)

४,५०,००० युनिवर्सिटी ग्रान्टस कमिशन (U. G. C दिल्ली) को पदार्थ विज्ञान के उत्कृष्ट संशोधन पारितोषिकों के लिए (अखिल भारतीय कक्षा) ।

३,००,००० हाउसींग एन्ड अरबन डेवलपमेन्ट कोरपोरेशन (दिल्ली) को आर्थिक रूप से गरीब व्यक्तिओं के लिए सस्ते घरों के आयोजन के संशोधन पारितोषिकों के लिए ।

२,००,००० एसोसीएशन ऑफ सर्जन्स (अखिल भारतीय) मद्रास (चेन्नाई) को सर्जरी क्षेत्र में उत्कृष्ट संशोधन पारितोषिक के लिए (अखिल भारतीय कक्षा) ।

२,००,००० फीझीकल रीसर्च लेबोरेटरी, P. R. L (अहमदाबाद) को अखिल भारतीय कक्षा इलेक्ट्रोनीक्स, टेलीकोम्युनीकेशन्स, प्लेनेटरी और स्पेस सायन्सीस, एटमोस्फिरीक फीझीक्स एन्ड हाईड्रोलोजी, सिस्टम ओफ एनालीसीस एन्ड मेनेजमेन्ट प्रोबलेम्स क्षेत्रों में श्रेष्ठ संशोधन एवोर्डस के लिए ।

१,००,००० गुजरात युनिवर्सिटी (अहमदाबाद) को बोटनी प्लान्ट्स और प्लान्टस पेथोलोजी वनस्पति संरक्षण संवर्धन एवं जीवशास्त्र के क्षेत्र में संशोधन पारितोषिक के लिए (गुजरात राज्य कक्षा) ।

१,५०,००० युनिवर्सिटी ग्रान्टस कमिशन (दिल्ली) को लाइफ सायन्सीझ (प्राणीविज्ञान) क्षेत्र में संशोधन पारितोषिक (अखिल भारतीय कक्षा) के लिए ।

५०,००० दक्षिण गुजरात युनिवर्सिटी (सूरत) को मानव सर्जित रेशे–रसायणशास्त्र, समुद्रशास्त्र, पुरातत्त्व विद्या और समाजशास्त्र क्षेत्रों में बारी–बारी से संशोधन के पारितोषिक के लिए (गुजरात राज्य कक्षा पर) ।

५०,००० सरदार पटेल युनिवर्सिटी, वल्लभ विद्यानगर को पदार्थ–विज्ञान क्षेत्र में संशोधन पारितोषिक के लिए ।

५०,००० सौराष्ट्र युनिवर्सिटी को बायो केमेस्ट्री (सेन्द्रिय पदार्थ रसायणशास्त्र), जीओ केमेस्ट्री (भूस्तर रसायणशास्त्र) और सोइल केमेस्ट्री (मिट्टी रसायणशास्त्र) के क्षेत्र में श्रेष्ठ संशोधन के पारितोषिक के लिए (गुजरात राज्य कक्षा) ।

५०,०००	ट्रोपीकल डीसीझ (उष्ण कटिबंध के रोगों) के इलाजों के क्षेत्र में संशोधन पारितोषिक के लिए गुजरात युनिवर्सिटी अहमदाबाद को गुजरात राज्य कक्षा के लिए ।
५०,०००	गुजरात युनिवर्सिटी, अहमदाबाद को इन्जीनियरींग और टेकनीकल विषय क्षेत्र में संशोधन पारितोषिक के लिए (गुजरात राज्य कक्षा) ।
५०,०००	अहमदाबाद टेक्षटाइल इन्डस्ट्रीझ रीसर्च एसोसीएशन अहमदाबाद को रंग, रंग की बनावट और टेक्षटाइल्स क्षेत्र में संशोधन पारितोषिक के गुजरात राज्य कक्षा के लिए ।
५०,०००	सरदार पटेल युनिवर्सिटी, वल्लभ विद्यानगर को अलग अलग विषयो में संशोधन पारितोषिक गुजरात राज्य आंतर युनिवर्सिटी कक्षा के लिए ।
५०,०००	सेन्ट्रल सोल्ट एन्ड मरीन केमिकल्स रीसर्च इन्स्टिटय़ूट, भावनगर को खारा पानी में से मीठा पानी बनाने, सूर्यशक्ति में से संचालक बल और जल प्रदूषण रोकने के क्षेत्र में संशोधन पारितोषिक अखिल भारतीय कक्षा के लिए ।
५०,०००	आयुर्वेदिक युनिवर्सिटी, जामनगर को आयुर्वेदिक औषधि संशोधन पारितोषिक गुजरात राज्य कक्षा के लिए ।
५०,०००	गुजरात युनिवर्सिटी, अहमदाबाद को कुदरती विज्ञान क्षेत्र में संशोधन पारितोषिक गुजरात राज्य कक्षा के लिए ।
३,००,०००	इन्डियन काउन्सिल ऑफ एग्रीकल्चरल रीसर्च इन्स्टीटय़ूट (दिल्ली) को अनाज, दलहन, पशुसंवर्धन क्षेत्र में संशोधन पारितोषिक अखिल भारतीय कक्षा के लिए ।
२,००,०००	गुजरात एग्रीकल्चरल युनिवर्सिटी को सूखी खेती, दलहन, समुद्री वनस्पति और बागायत के क्षेत्र में श्रेष्ठ संशोधन पारितोषिक गुजरात राज्य कक्षा के लिए ।
३०,०००	गुजरात एसोशीएशन ऑफ एग्रीकल्चरल सायन्सीस अहमदाबाद को खेतीवाडी विज्ञान क्षेत्र में श्रेष्ठ संशोधन पारितोषिक गुजरात राज्य कक्षा के लिए ।

२५,०००	भरुच जिला लोकल बोर्ड को कपास आदि श्रेष्ठ फसल लेनेवालों को पारितोषिक भरुच जिला कक्षा के लिए ।
२५,०००	खेडा जिला लोकल बोर्ड को धान, बाजरी आदि श्रेष्ठ फसल लेनेवालों को पारितोषिक खेडा जिला कक्षा के लिए ।
२५,०००	श्री दक्षिण गुजरात सहकारी कोटन मार्केटींग एशोसिएशन (सूरत) को जुआर, धान, कपास की श्रेष्ठ फसल लेनेवालों को पारितोषिक सूरत जिला कक्षा के लिए ।
कुल २८,०५,०००	

II

समुद्र और नदी तैरने की स्पर्धाएँ, स्नानागार में स्पर्धाएँ, स्नानागार बनाने, नदी-समुद्र में नौका-स्पर्धाएँ आदि के लिए

१,२५,०००	गुजरात राज्य सरकार को अखिल भारतीय समुद्र तैराकी स्पर्धा के पारितोषिक के लिए ।
२,५००	उपरोक्त स्पर्धा के पारितोषिकों के लिए (सन् १९६८ के लिए) ।
४०,०००	गुजरात राज्य सरकार को समुद्र नौका स्पर्धा गुजरात राज्य कक्षा पारितोषिक के लिए ।
३,०००	गुजरात राज्य सरकार को समुद्र-नौका स्पर्धा (सन् १९७१) के पारितोषिक के लिए ।
१,००,०००	महाराष्ट्र राज्य सरकार को अखिल भारतीय समुद्र तैराकी स्पर्धा पारितोषिक के लिए ।
१,२५,०००	सूरत म्युनिसिपल कोरपोरेशन को सार्वजनिक स्नानागार बनाने के लिए ।
१,००,०००	सूरत म्युनिसिपल कोरपोरेशन के केवल महिलाओं के लिए स्नानागार बनाने की लिए ।
५५,०००	नडियाद म्युनिसिपालिटी को स्नानागार बनाने के लिए
१,००,०००	गुजरात व्यायाम प्रचारक मंडल (राजपीपला) को स्नानागार बनाने के लिए ।

४०,०००	सूरत म्युनिसिपल कोरपोरेशन को बाल–स्नानागार बनाने के लिए ।
४०,०००	वडोदरा म्युनिसिपल कोरपोरेशन को बाल–स्नानागार बनाने के लिए ।
३०,०००	भरुच जिला पंचायत को नर्मदा नदी में गुजरात राज्य कक्षा तैराकी–स्पर्धा के पारितोषिक के लिए ।
२,५००	भरुच जिला पंचायत को नर्मदा नदी में गुजरात राज्य कक्षा तैराकी–स्पर्धा सन् १९७० पारितोषिक के लिए ।
१८,०००	सूरत म्युनिसिपल कोरपोरेशन को तापी नदी में भाई–बहनों की गुजरात राज्य कक्षा तैराकी–स्पर्धा पारितोषिक के लिए ।
३,०००	सूरत म्युनिसिपल कोरपोरेशन को तापी नदी में नौका–स्पर्धा सूरत–जिला कक्षा पारितोषिक के लिए ।
१,२२५	सूरत म्युनिसिपल कोरपोरेशन को तापी नदी में तैराकी–स्पर्धा और नौका–स्पर्धा के पारितोषिकों के लिए (सन् १९६२ की साल के लिए) ।
२,५००	श्री मिहिर सेन को सात समंदर तैरने का साहस को प्रोत्साहन के लिए (सन् १९६५ में) ।
४,९००	सूरत बोटिंग क्लब, सूरत को तैराकी–शिक्षा प्रोत्साहन के लिए ।
१०,०००	वडोदरा म्युनिसिपल कोरपोरेशन तैराकी–स्पर्धा पारितोषिकों के लिए ।
१०,०००	श्री श्रेयस विद्यालय, वडोदरा को वडोदरा की हाइस्कूलों के विद्यार्थिओं की तैराकी–स्पर्धा के पारितोषिकों के लिए ।
१०,०००	सूरत स्वीमिंग एन्ड बोटिंग क्लब, सुरत को लम्बे अंतर तैरने के तालीमी प्रयोग की शिक्षा को प्रोत्साहन के लिए ।

१०,०००	सूरत महानगरपालिका को सूरत शहर के बाल विद्यार्थिओं की तैराकी-स्पर्धा में पारितोषिकों के लिए ।
२५,०००	सुरत महानगरपालिका को समुद्र या नदी में लम्बे अंतर की तैराकी स्पर्धा के पारितोषिक के लिए ।

कुल रू. ८,५७,६२५

III

संस्साकरपोषक, गुणभाव विकासक, साहित्य, शिक्षा के विविध क्षेत्र में सहायक प्रकाशनों, जीवनचरित्र लेखन प्रकाशनों तथा विज्ञान-तत्त्वज्ञान आदि प्रवृत्तिओं के लिए दिये दान

रूपये	
१०,००,०००	गुजरात युनिवर्सिटी, अहमदाबाद को, गुजराती भाषा में ज्ञानकोष (एनसायक्लोपीडिया ब्रिटानिका ढब का) ग्रंथ श्रेणी के प्रकाशन के लिए ।
२,००,०००	सरदार पटेल युनिवर्सिटी, वल्लभविद्यानगर को ज्ञानगंगोत्री ग्रंथश्रेणी के (हिन्दी) प्रकाशन के लिए ।
३५,०००	सरदार पटेल युनिवर्सिटी, वल्लभविद्यानगर 'ज्ञानगंगोत्री' ग्रंथश्रेणी के (हिन्दी) प्रकाशन के लिए ।
२,००,०००	गुजरात युनिवर्सिटी ग्रंथ निर्माण बोर्ड, अहमदाबाद को, 'किशोरभारती' ग्रंथश्रेणी के प्रकाशन के लिए ।
२,००,०००	चरोतर एज्युकेशन सोसायटी, आणंद को 'बालभारती' ग्रंथश्रेणी के प्रकाशन के लिए ।
२५,०००	'शिशुभारती' ग्रंथश्रेणी के प्रकाशन के लिए ।
२,००,०००	सरदार पटेल युनिवर्सिटी, वल्लभविद्यानगर को सर्वधर्म तत्त्वज्ञानदर्शन ग्रंथ श्रेणी के प्रकाशन के लिए ।
२,००,०००	चरोतर एज्युकेशन सोसायटी, आणंद को 'गुजराती साहित्यकोश' (कवि नरसिंह महेता से लेकर वर्तमान लेखकों, साक्षरों कविओं के सर्जनों की और उनके जीवन की माहिती की ग्रंथश्रेणी) के लिए ।
५,००,०००	गुजरात युनिवर्सिटी, अहमदाबाद को, विज्ञान और टेकनोलोजी विषयक संदर्भ साहित्य के लिए विज्ञान और यंत्रविद्याकोश ग्रंथश्रेणी के प्रकाशन के लिए ।

३०,००० गुजरात युनिवर्सिटी ग्रंथ निर्माण बोर्ड, अहमदाबाद को विज्ञान परिचय ग्रंथश्रेणी के प्रकाशन के लिए ।

२५,००० चरोतर एज्युकेशन सोसायटी आणंद को उत्कृष्ट जीवनचरित्र ग्रंथश्रेणी के प्रकाशन के लिए ।

२,००,००० चरोतर एज्युकेशन सोसायटी, आणंद को रामायण, महाभारत, भागवत आदि की त्रिरंगी सचित्र कथा आदि १२ ग्रंथश्रेणी के प्रकाशन के लिए ।

९,००० गुजरात पुस्तकालय सहायक सहकारी मंडल लि., वडोदरा को संस्कारपोषक कहानियाँ, शौर्य कथाएँ, भक्ति विषयक कथानकों आदि ग्रंथो के प्रकाशन के लिए ।

२०,००० गुजरात युनिवर्सिटी ग्रंथ-निर्माण बोर्ड, अहमदाबाद व्युत्पत्तिशास्त्र ग्रंथ प्रकाशन के लिए ।

१२,००० गुजरात युनिवर्सिटी, अहमदाबाद को गुजराती व्याकरण ग्रंथ (अद्यतन व्याकरण तथा संशोधन कराने के लिए ।)

२५,००० चरोतर एज्युकेशन सोसायटी, आणंद को बालकहानियाँ ग्रंथश्रेणी के प्रकाशन के लिए ।

२०,००० गुजरात युनिवर्सिटी ग्रंथ निर्माण बोर्ड, अहमदाबाद को आमजनता को गुजराती भाषा में वेदों सुलभ बने ऐसी ग्रंथश्रेणी के प्रकाशन के लिए ।

२५,००० सौराष्ट्र युनिवर्सिटी को, गुजराती साहित्य के विकास के लिए साक्षर मेघाणी स्मारक ग्रंथमाला के प्रकाशन के लिए ।

२५,००० सूरत सार्वजनिक एज्युकेशन सोसायटी संचालित श्री चूनीलाल गाँधी विद्याभवन, सूरत को गुजराती साहित्य के विकास के लिए कवि नर्मद स्मारक ग्रंथमाला के प्रकाशन के लिए ।

२५,००० सरदार पटेल युनिवर्सिटी, वल्लभविद्यानगर को श्रीअरविंद तत्त्वज्ञान ग्रंथश्रेणी के प्रकाशन के लिए ।

२५,००० सरदार पटेल युनिवर्सिटी, वल्लभविद्यानगर को श्री प्रेमराय बापु स्मारक, श्री मणिभाई नमुभाई, श्री बालशंकर, श्री गोवर्धनराम व्याख्यान माला के लिए ।

५०,००० लोकमिलाप ट्रस्ट, भावनगर को शिष्ट गुजराती साहित्य कम दाम से प्रसारित करने के लिए ।

२५,००० गुजराती साहित्य परिषद, अहमदाबाद को स्त्री साक्षरों की मौलिक उत्कृष्ट साहित्य कृतिओं को पारितोषिकों के लिए ।

१५,००० गुजराती साहित्य परिषद, अहमदाबाद को गुजराती साहित्य में भक्ति विषयक मौलिक सर्जन के साक्षर को सुवर्णचंद्रक या पारितोषिक देने के लिए ।

१२,००० गुजराती साहित्य परिषद, अहमदाबाद को बालकहानिओं की ग्रंथश्रेणी के प्रकाशन के लिए ।

३,३०० कुमार कार्यालय को भावनात्मक और गुण विकासक साहित्य प्रकाशन के लिए ।

१,५०,००० गुजरात युनिवर्सिटी, अहमदाबाद को अंग्रेजी में से गुजराती शब्दकोश लगभग सवा लाख शब्दों का बृहद्‌कोश प्रकाशन के लिए ।

कुल रु. ३२,५६,३००

IV

विद्यार्थिओं के लिए पर्यटन, पैदल प्रवास, साइकिल–दौड–स्पर्धा, व्यायाम, नौका-चालन, पर्वतारोहण, मर्दानगी के खेल आदि विद्यार्थीजीवनविकास शिक्षा के लिए ।

४,००,००० सरदार पटेल युनिवर्सिटी, वल्लभविद्यानगर को गुजरात की सभी युनिवर्सिटी के विद्यार्थिओं के लिए ।

६०,००० सरदार पटेल युनिवर्सिटी, वल्लभविद्यानगर को उस संस्था के विद्यार्थिओं के लिए ।

१,००,००० गुजरात व्यायाम प्रचारक मंडल, राजपीपला को महाजन शक्तिदल ट्रस्ट गुजरात राज्य कक्षा के लिए ।

२५,००० गुजरात व्यायाम प्रचारक मंडल, राजपीपला को कुस्ती, वेईट लिफ्टिंग, जुडो, जीमनेस्टीक आदि राज्य कक्षा खेल स्पर्धा के विजेताओं को चंद्रक देने के लिए ।

२५,००० गुजरात व्यायाम प्रचारक मंडल, राजपीपला को मेरेथोन दौडस्पर्धा पारितोषिकों के लिए ।

१३,७५० वीर नर्मद दक्षिण गुजरात युनिवर्सिटी, सूरत को खेलकूद के शिल्ड देने के लिए ।

२५,००० सूरत म्युनिसिपल कोरपोरेशन को वोलीबॉल, खो-खो, कबड्डी आदि खेल स्पर्धा के विजेता पारितोषिकों के लिए ।

१४,००० खंभात म्युनिसिपालिटी को शालाओं के विद्यार्थिओं की साइकिल और दौड स्पर्धा के पारितोषिकों के लिए ।

१४,००० नडियाद म्युनिसिपालिटी को शालाओं के विद्यार्थिओं की साइकिल और दौड-स्पर्धा के पारितोषिकों के लिए ।

१५,००० वडोदरा म्युनिसिपल कोरपोरेशन को शालाओं के विद्यार्थिओं की साइकिल और दौड-स्पर्धा के पारितोषिकों के लिए ।

५,००० कन्या व्यायामशाला, नडियाद को मकान बनाने के लिए ।

२,००० पर्वतारोहण के लिए (वडोदरा की संस्थाओं को)

कुल रु. ६,९८,७५०

V

विद्यार्थिओं की सर्वांगी शिक्षा के लिए

५०,००० 'लोकभारती' (सणोसरा) को विद्यार्थिओं को श्रमयज्ञ द्वारा सहाय के लिए ।

२५,००० 'सरस्वती ग्राम विद्यापीठ' समोडा को विद्यार्थिओं को श्रमयज्ञ द्वारा सहाय के लिए ।

१५,७५० बारडोली कन्याशाला को, विद्यार्थीनिओं को सहाय के लिए ।

११,२५० श्रेयस विद्यालय, वडोदरा को पारितोषिकों के लिए ।

१०,००० शाला-कॉलेज को, भादरण, (ता. बोरसद, जि. आणंद)

५,००० हरिजन आश्रम, अहमदाबाद को एस. एस. सी. परीक्षा में प्रथम आनेवाली हरिजन कन्या को पारितोषिक के लिए ।

८,००० महाराजा सयाजीराव युनिवर्सिटी, वडोदरा को एम. ए. संस्कृत विभाग में वेदांत अध्ययन परीक्षा स्पर्धा के पारितोषिक के लिए ।

२०,००० वीर नर्मद दक्षिण गुजरात युनिवर्सिटी, सूरत को एम. एस. और एम. डी. की अंतिम परीक्षा में प्रथम नंबर आनेवाले को सुवर्णचंद्रक देने के लिए ।

७,५०० वीर नर्मद दक्षिण गुजरात युनिवर्सिटी, सुरत को एम. कोम. की अंतिम परीक्षा में प्रथम आनेवाले को सुवर्णचंद्रक देने के लिए ।

३,००० सूरत सार्वजनिक एज्युकेशन सोसायटी, सूरत को ।

१,००० गुजरात हरिजन सेवक संघ को हरिजनों को शिक्षा के लिए ।

२,३०० गाँवों में तीन शालाओं के मकान के लिए ।

३,७०० विद्यार्थिओं को विविध-मदद ।

२,००० विद्यार्थिओं को पुस्तक मदद के लिए ।

४,००० प्रथम नंबर आनेवाले विद्यार्थीओं को इनामों के लिए ।

१०,००० ग्रामशाला के विद्यार्थिओं के लिए पुस्तकालयों के पुस्तकों के लिए (खेडा जिले में) ।

१५,००० ग्रामशाला के विद्यार्थिओं के लिए पुस्तकालयों को पुस्तकों के लिए (डांग जिले में) ।

१०,०००	ग्रामशाला के विद्यार्थिओं के लिए पुस्तकालयों को पुस्तकों के लिए (सूरत जिले में) ।
१०,०००	निबंध स्पर्धा पारितोषिकों के लिए (खेडा जिला शालाओं में) ।
१०,०००	निबंध-स्पर्धा पारितोषिकों के लिए (सूरत जिला पंचायत की शालाओं के लिए) ।
५,०००	निबंध-स्पर्धा पारितोषिकों के लिए । (सूरत नगरपालिका को) ।
५,०००	छोटी भलाई के कार्यों के लिए (सूरत नगरपालिका को)
५०,०००	गुजरात युनिवर्सिटी, अहमदाबाद को गुजरात राज्य कक्षा पर उच्च गणितशास्त्र प्रतिभा शोधक्षेत्र में स्पर्धात्मक परीक्षाओं के पारितोषिकों के लिए ।
५०,०००	गुजरात युनिवर्सिटी, अहमदाबाद को गुजरात राज्य कक्षा पर विज्ञानशास्त्र प्रतिभा शोध-स्पर्धात्मक परीक्षाओं के पारितोषिकों के लिए ।
५०,०००	गुजरात युनिवर्सिटी, अहमदाबाद को गुजरात राज्य कक्षा पर गुजराती भाषा प्रतिभा शोध-स्पर्धात्मक परीक्षाओं के पारितोषिकों के लिए ।
५०,०००	गुजरात युनिवर्सिटी, अहमदाबाद को, गुजरात राज्य कक्षा पर हिन्दी भाषा प्रतिभा शोध-स्पर्धात्मक परीक्षाओं के पारितोषिकों के लिए ।
५०,०००	वीर नर्मद दक्षिण गुजरात युनिवर्सिटी, सूरत को गुजरात राज्य कक्षा पर अंग्रेजी भाषा प्रतिभा शोध स्पर्धात्मक परीक्षाओं के पारितोषिकों के लिए ।
१,००,०००	महाराजा सयाजीराव युनिवर्सिटी, वडोदरा को गुजरात राज्य कक्षा पर ललितकलाओं के प्रोत्साहन के लिए कंठ्य-संगीत, वाद्यसंगीत, नृत्यकला, चित्रकला की स्पर्धात्मक परीक्षाओं के पारितोषिकों के लिए ।

कुल रु. ५,१०,२५०

VI

विविध क्षेत्रों में समाजोपयोगी कार्यों के लिए

२५,००० गुजरात व्यायाम प्रचारक मंडल, राजपीपला को गुणभाव, मर्दानगी, साहस, परोपकार, नीडरता, शौर्य आदि के कार्यों के लिए पारितोषिकों के लिए ।

१७,००० गुजरात हरिजन सेवक संघ, अहमदाबाद को अस्पृश्यता निवारण कार्य प्रोत्साहन के पारितोषिकों के लिए ।

५,००० गुजरात हरिजन सेवक संघ, अहमदाबाद को सद्‌गत परीक्षितलाल मजमुदार फंड में हरिजन कार्यों की सहाय के लिए ।

७,००० कुंभकोणम् (तमिलनाडु) में सद्‌गत ठक्करबापा के स्मरण में हरिजन कुटुंबो के मकान बनाने के लिए ।

१७,८०० सूरत की तापी और कुंभकोणम् की कावेरी नदी के घाटों की मरम्मत के लिए ।

१४,००० खेडा जिला पंचायत को ग्राम्य विस्तार की सड़क बनाने के लिए ।

२२,००० पानी की प्याउओं के लिए ।

११,००० देश के संरक्षण फंड में भारत सरकार को ।

४३,००० अकाल, अतिवृष्टि, जलप्रलय के लिए ।

७६,००० दवा-मदद वगैरह के लिए ।

२१,५०० पक्षीओं के चुन के लिए ।

५,००० स्वराज आश्रम बारडोली को कृषि साधन सुधारणा सहाय के लिए द्वारा मोहनभाई नरहरिभाई परीख ।

२,५०० भरुच जिला पंचायत, भरुच को कबीरवड संरक्षण के लिए ।

९,२०० १४ विशिष्ट व्यक्तिओं को सुवर्णचंद्रकों के लिए ।

५,००० गुजरात युनिवर्सिटी, अहमदाबाद को प्रज्ञाचक्षु विद्यार्थिओं को केसेटों अभ्यास द्वारा सहाय के लिए केसेटों के लिए ।

१,००० प्रज्ञाचक्षु कन्यागृह को

२,००० श्री अंबुभाई पुराणी स्मारक के लिए ।

८,७०० आध्यात्मिक पथयात्रिओं को सहाय के लिए ।

१,००० फ्लाईंग क्लब, वडोदरा को ।

९,७०० छोटी संस्थाओं को विविध क्षेत्र में विविध-सहाय के लिए ।

३,००० आध्यात्मिक कृतिओं के प्रकाशन के लिए अन्य लेखकों को ।

२२,००० श्री भागवत विद्यापीठ, सोला, अहमदाबाद को मौन-मंदिर निर्माण के लिए ।

१,००० टेलिविझन बुस्टर खोज के प्रयत्न को प्रोत्साहन के लिए

कुल रु. ३,२९,४००

नंबर I से VI विभागों का कुल

जोड रु. ८५,३७,३२५/-

हरि:ॐ आश्रम, सूरत में कुल ९ मौनमंदिर हैं । जिसमें से ८ मौनमंदिर ७, १४ या २१ दिन के लिए दिये जाते हैं, जिसके लिए पहले से नाम लिखवाना होता है । कोई व्यक्ति मात्र १, २ या ३ दिन के लिए भी मौनएंकांतयज्ञ का अनुभव ले सके, इसके लिए ९ नंबर का मौनमंदिर दिया जाता है । इस कमरे में रहने के लिए केवल १५ दिन तक के ही नाम लिखे जाते हैं । इसके अलावा, केवल दिन के दौरान मौन रखने के इच्छुक भक्तों के लिए यह मौनमंदिर के ऊपर की पहली मंजिल में अलग **'आत्मनिवेदन कक्ष'** बनाया गया है, जिसमें आश्रम के नियम अनुसार सुबह छ से शाम के छ बजे तक व्यक्ति मौन, प्रार्थना और पठन कर सके ऐसी व्यवस्था की गई है ।

- **ता. ३१-३-२००९ तक की अंकीय जानकारी :**

(१) पाठशाला के कमरे और संलग्न
सुविधाएँ / गुणभाव-संस्कार
पोषक प्रकाशन / शिक्षा वगैरह

रु. १३,७९,६८,६५२/-

(२) अकाल / रेलराहत, कुदरती आपत्ति के समय समाज को मदद	रु.	६१,३५,४११/–
(३) कृषि, विज्ञान, इन्जीनियरिंग, आरोग्य जैसे विविध क्षेत्रों में उत्कृष्ट संशोधन तथा गुणभाव विकास साहस–हिंमत, स्पर्धा के लिए एवोर्ड तथा गुजराती विश्वकोश के लिए दान	रु.	५२,४०,९६५/–
कुल		**रु.१४,९३,४५,०२८/–**

पूज्य श्रीमोटा की दानगंगा द्वारा गुजरात के भीतर के गाँवो में अभी तक ९०५१ शाला के कमरे तथा शिक्षण की अन्य आवश्यक सुविधाओं का निर्माण हो सका है । जिसमें तीन लाख से अधिक बालकों को शिक्षणक्षेत्र में श्रीगणेश करवाया गया है । यह प्रवाह आज तक अविरत चालू है । विज्ञानक्षेत्र में 'PRL' (फिजिकल रीसर्च लेबोरेटरी, अहमदाबाद) की संशोधन शाखा को दिये गये दान द्वारा भारत के नामांकित वैज्ञानिकों को एवोर्ड और सम्मान एनायत हुए हैं ।

दान की मूल रकम बनी रहे, ब्याज में से एवोर्ड दिये जाय और प्रबंधक खर्च भी संस्था उठाये, ऐसी मौलिक कार्यपद्धति पूज्य श्रीमोटा ने प्रस्थापित की है ।

॥ हरि:ॐ ॥

• प्यारे स्वजनों को •

हरिः ॐ

किरापट्टी, प्रेमकुंज,
भादौ वदि चौथ
मंगलवार, ता. ६-९-१९४१

आज मेरे शरीर का जन्मदिन है। इस बात पर आप सभी का पुण्य प्रेमस्मरण करता हूँ। भगवान की कृपा और प्रियजनों के प्रेमभरे आशीर्वाद से भगवान मुझे सत्यपंथ पर दृढ़ रखे और उत्तरोत्तर दृढ़ कराये यही माँगता हूँ। प्रियजनों का प्रेम यह मेरे मन एक भारी शक्ति है। इसीसे ही मुझे निम्न पंक्तियाँ सुझी है, वह लिखता हूँ —

प्रभु की प्रिजयनों प्रतिपल जग में प्रेम की दिव्यमूर्ति,
प्रभु की प्रियजनों की पलपल दिल में भाव की ऊर्मिशक्ति,
प्रभु की प्रियजनों हृदय जगाये प्रेरणाएँ अनोखी,
प्रभु की प्रियजनों हमारे दिल में रहे आत्मा की दिव्य ज्योति।

इससे मैंने जिनको हमेशा अपने स्वजन माने हैं, उनके निकटवर्ती रहने का प्रामाणिक रूप से प्रयास किया है। हो सके उतनी प्रेमभावना की ऊर्मि मैंने उनकी ओर रखी है अथवा भगवान ने कृपा करके रखायी है, ऐसा लिखूँ अथवा कहूँ तो वही अधिक योग्य होगा। मेरा तो कुछ भी खोने जैसा नहीं है। मुझे तो जो कुछ देने जैसा था, वह देता रहा हूँ। गरीब के पास प्रेम-प्यार के बिना दूसरा क्या हो सकता है ? गरीब की तो यह बड़ी से बड़ी अनमोल पूँजी है। उस पूँजी पर तो उसका जीवन निर्भर रहा करता है। प्रेम की इस अमोघ दिव्य शक्ति का माप जब उसके हृदय में जागता है, तब वही प्रेम ही उसकी एक बड़ी शक्ति हो जाती है। उस शक्ति के आगे अन्य सभी शक्तियाँ कोई काम की नहीं, ऐसा उसे जीवन में स्पष्ट अनुभव होता है। **यह** शरीर के आज जन्मदिन के अवसर पर मेरे हृदय का ऐसा प्रेम आपके चरण में सिर रख के आपके आशीर्वाद माँगता हूँ। प्रभु मुझे जहाँ रखे वहाँ (जहाँ होउँ वहाँ) आपके हृदय का निर्मल प्रेम का प्रवाह मेरे प्रति सदा बहा करे ऐसा हृदय से चाहा करता हूँ। अपने बालकों पर जो प्रेम होता है, उससे अधिक उत्कट

भावनाभरा शुद्ध प्रेम मुझे तो चाहिए । अपने बालकों के प्रति हमारा प्रेम, यह शुद्ध निःस्वार्थ भावना का न होने से उसमें चाहिए वैसा जोश और प्राण योग्य प्रकार का नहीं होता ।

मेरी नजर में ऐसा प्रेम सतेज नहीं, जीवित नहीं, बल्कि कमजोर है । ऐसा मुझे नम्ररूप से लगा है । हमारे सभी के अपने बालकों पर के प्रेम में Sense of Possession की वृत्ति, (**जीव**स्वभाव की उनके प्रति ममता की रागात्मक भावना) तथा अन्य लालसा की वृत्तियाँ मिलावटवाली होती है । इससे जो प्रेम माँग रहा हूँ, उस प्रेम को बालकों पर रहते हमारे प्रेम में जमीन आसमान का अंतर है । मेरे बारे में आपको वैसा न हो, वह मैं समझ सकता हूँ। इससे आपके हृदय का बिनमिलावट, उत्कट भावनावाला धधकता प्रेम मुझे तो चाहिए । स्वजनों के शुद्ध हृदय की ऐसे प्रेम की मुझे भूख लगी है । ऐसे पर मांगल्यकारी प्रेमभाव की बारिस जब हमारे पर बरसती है, तब जीवन में से सभी संकोच दूर हो जाकर हृदय उदात्त भावना से प्रफुल्लित होता है । संपूर्ण आधार के अंदर रही चेतनाशक्ति में उषा की तरह नये प्राण की स्फूर्ति जागती है और जगत तब हमारे सामने जगत रूप खड़ा नहीं रहता, पर प्रेमभाव में रस से भीगा हुआ और उसके साथ एकता रखते हो वैसा दर्शन हमें प्राप्त होता है । ऐसा हृदय से अनुभव होते-होते प्रेम ही परमेश्वर है, ऐसी सहज झांकी की गहरी-गहरी हृदय में असर होती हो, ऐसा अनुभव होता है ।

प्रेम की ऐसी वह दिव्य महिमा कितनी गा सकते हैं ! और यदि बैठे तो जगत में हम जो जुड़े दिखते हैं, वह यदि प्रेम की भावना द्वारा जुड़े रहे, तो जगत आलोडित दिखता है, वैसा यह जगत हमारी समक्ष नहीं रहता, पर भगवान ने हमें लीला करने के लिए दिया एक सुंदर उपवन का रम्य स्थान है ऐसा लगा करता है । प्रेमभावना अनुभव करते-करते हमारे में जो शक्ति जागृत होती है, वह जीवन के संकीर्ण बहाव को कहीं उछालकर उसे प्रचंड प्रवाह का बहता प्रपात बना देती है । और वह जहाँ-जहाँ जाता है या होता है, वहाँ-वहाँ से प्रत्येक में से, उस प्रेमभाव का तत्त्व लोहे को जैसे लोहचुंबक खिंचता है, वैसे स्वयं खिंचता रहता है

और ऐसे प्रेमभाव की असर यदि हमारे दिल उसके साथ शुद्ध भाव से प्रेरित हो, उसके साथ हमारे हृदय के तार प्रेमभाव से बंधे होते हैं अथवा तो ऐसे प्रेम के प्रति हमारा भाव सहजरूप से जाग्रत हुआ हो, तो हमें उसकी असर अनुभव होये बिना नहीं रहती। और ऐसा प्रेम हमें भी धन्य करता है और दूसरों के जीवन को भी धन्य करता है। ऐसे प्रेम की शक्ति वह एक बड़ी महान गति है। ऐसी गति हमारे हृदय को हिला डालती है, उस गति की भावना के कारण ही हम उसके अधिक से अधिक निकट आते जाते हैं। यह प्रेम की संचालक भावना हमें हृदय से परम सहिष्णु रख सकती है। यह प्रेम की गतिभावना हमें अपने दोषों की ओर ही और उन दोषों को टालने के लिए एकलक्षी बनाती है। यह मति हमें जीवन में सहानुभूति, ऊष्मा, साथ, बल और प्रेरणा भी देती है। में जिस-जिस जीवात्मा के साथ संपर्क है, उन-उनके प्रति हमारे **जीव**स्वभाव के भाव को वह प्रेमभाव बदला सकता है तथा उन-उन जीवात्माओं के प्रति उन-उन **जीव**स्वभाव के भाव को न देखकर, महत्त्व न देकर, जीवन की ऊर्ध्वगति कैसे होती है, इस तरह व्यवहार करने की कला भी वह जागा हुआ प्रेमभाव हमें सीखाता होता है। जीवनआदर्श के एक के बाद एक उच्चोच्च शिखरों की श्रृंखला लांघने के लिए जीवन में वह प्रेमभाव धधकता उत्साह लाता है। कैसे करके मानो उड़कर आदर्श के उच्च में उच्च और अंतिम छोर पहुँच जाये ऐसी प्रेरणात्मक तमन्ना सह प्रेमभाव हमारे दिल में प्रचंड ज्वालारूप जगाता है।

ऐसा प्रेमभाव यह तो जीवन की तपश्या है, जीवन की साधना भी है। अरे, उसके द्वारा ही साधना होती है। ऐसा **प्रेमभाव हमारे जीवन का उल्लास है, जीवन का आविर्भाव है, जीवन का आनंद है, जीवन की रंगभूमि है और जीवन का रस भी वही है।** जगत में प्रेम न होता, तो जगत में रहने जैसा लगता भी नहीं। जीवन का आकर्षण यह प्रेम ही है। यदि यह प्रेमभाव न होता तो किसी से जीया ही नहीं जाता। यदि जीवन में यह प्रेमभाव की उत्कट भावना नहीं है तो ऐसा जीवन सच्चा जीवन भी नहीं है। ऐसे प्रेमभाव की मर्यादा को सहृदयता से

अधिक से अधिक विस्तृत किया करे और उसकी मर्यादा न आंके तो कितना अच्छा ! **सत्कर्म का बदला सत्कर्म देकर ही चूकता है ।** सत्कर्म की भावना में अपेक्षा का स्थान ही नहीं है । उसी तरह हमारे हृदय का जैसा प्रेमभाव वैसा ही हमारा जीवन फलित होता रहता है । प्रेमभाव का जोश और वेग हम में जो गति प्रेरित करता है, उस गति में हमें कहीं ले जाने की शक्ति है । हमें यदि उसका उपयोग करना आये, भगवान कृपा करके ऐसी गहरी समझ और अंतर को अनुभव करने का हल दे तो हमारे प्रत्येक कर्म में उस कर्म की समग्रता को इस प्रेम के साधन से हमें दर्शन होते ही है । ऐसी प्रेमभावना के तार से मेरे सकल स्वजनों के साथ मैं स्वयं को जुड़ा अनुभव करता हूँ और यह प्रेमभाव मेरे प्यारे स्वजनों की ओर से हृदय की निर्मलता से अधिक से अधिक मिला करे, तो जीवन का लेनदेन हो सके, उस हेतु से **यह** शरीर के आज के जन्मदिवस पर प्रत्येक स्वजनों को यह पत्र लिखता हूँ ।

('जीवनसंदेश', ७ वीं आवृत्ति, पृ. २७७ से २८१)

–मोटा

आरती

ॐ शरणचरण लीजिए, प्रभु शरणचरण लीजिए
पतित को उबार लीजिए (२) कर पकड़ हृदय लगा लीजिए...
ॐ शरणचरण.

मन–वाणी के भाव आचरण में उतरें प्रभु (२)
मन, वाणी और दिल को (२) कृपा कर एक करें...ॐ शरणचरण.

सभी स्वजनों के साथ, दिल में सद्‌भाव जगें, प्रभु (२)
भले अपमान हुए हों (२) तब भी भाव बढ़े...ॐ शरणचरण.

हीन प्रकार की वृत्ति; ऊर्ध्वगमन करने, प्रभु (२)
प्रभुकृपा से मथन करावें (२) चरणशरण पाने...ॐ शरणचरण.

मन के सकल विकार, प्राण की वृत्ति, प्रभु (२)
बुद्धि की सभी शंकाएँ (२) चरणकमल में द्रवित हो...ॐ शरणचरण.

जैसे भी हो प्रभु, वैसे ही दीखें, प्रभु (२)
मति मेरी खुली रहे (२) स्पष्ट ही परखें...ॐ शरणचरण.

दिल में कुछ भरा हो, उससे सब उल्टा, प्रभु (२)
मुझसे कभी न हो (२) ऐसी मति दें...ॐ शरणचरण.

जहाँ जहाँ गुण और भाव, वहीं दिल मेरा टिके, प्रभु (२)
गुण और भाव की भक्ति (२) मेरे दिल में संचरित करें...ॐ शरणचरण.

मन, मति, प्राण प्रभु । तुम्हारे भाव से पिघले प्रभु (२)
दिल में तुम्हारी भक्ति की (२) लहरें उछले.... ॐ शरणचरण.

– मोटा

पूज्य श्रीमोटा के जीवन का परिचय

जन्म	:	ता. ४-९-१८९८ भाद्रपद कृष्ण चतुर्थी, वि. सं. १९५४
स्थान	:	सावली, जिला वडोदरा (गुजरात)
नाम	:	चूनीलाल ।
माता	:	सूरजबा ।
पिता	:	आशाराम ।
जाति	:	भावसार ।
उपनाम	:	भगत ।
१९०३	:	कालोल में निवास, गरीबी का आरंभ ।
१९०६	:	मजूरी के काम ।
१९१५	:	तौला की नौकरी ।
१९१६	:	पिता की मृत्यु ।
१९०५ से १९१८	:	टुकड़ों में पढ़ाई के साथ कठिन मजदूरी ।
१९१९	:	मैट्रिक उत्तीर्ण ।
१९१९-२०	:	वडोदरा कॉलेज में ।
दि.६-४-१९२१	:	कॉलेज का त्याग ।
१९२१	:	गुजरात विद्यापीठ में ।
१९२१	:	विद्यापीठ का त्याग । हरिजन सेवा का आरंभ ।
१९२२	:	मिरगी की बीमारी से तंग आकर गरुड़ेश्वर की चट्टान से आत्महत्या का प्रयास, दैवी रक्षा; 'हरिः ॐ' जप से रोग मिटाने का सफल प्रयोग । श्रीबालयोगीजी द्वारा दीक्षा । श्रीसद्गुरु केशवानंद धूनीवाले दादा के दर्शन के लिए सांईखेड़ा गए । रात्रि को श्मशान में साधना और दिनभर प्रभुप्रीत्यर्थ हरिजन सेवा ।
१९२३	:	'तुज चरणे' तथा 'मनने' की रचना ।
१९२४	:	डाकोर में श्रीनथ्थुराम (मगरमच्छ) से मिलन, हिमालय की प्रथम यात्रा ।
१९२६	:	विवाह-हस्तमिलाप के अवसर पर समाधि का अनुभव । हरिद्वार कुंभमेले में श्रीबालयोगीजी की तलाश ।

१९२८	:	हरिजन आश्रम, बोडाल में सर्पदंश –परिणाम स्वरूप 'हरिःॐ' जप अखंड हुआ।
१९२८	:	'तुज चरणे' के प्रथम संस्करण का प्रकाशन।
१९२८	:	दूसरी हिमालय-यात्रा ।
१९२८	:	साकुरी के पूज्य श्रीउपासनीबाबा का नडियाद में आगमन, उनके आदेश पर साकुरी गये, वहाँ मलमूत्र के बिस्तर में भुख-तरस, सख्त पत्थर-मार सहन करते दस-ग्यारह दिन ध्यान, समाधि अवस्था में ।
१९३०	:	मन की नीरवता का साक्षात्कार ।
१९३० से ३२	:	इस दौरान साबरमती, विसापुर, नासिक और यरवडा जेल में । उद्देश्य देशसेवा का नहीं, साधना का । कठोर परिश्रम और लाठी चार्ज के दौरान प्रभुस्मरण-मौन । विद्यार्थियों को समझाने के लिए विसापुर जेल में सरल गुजराती भाषा में श्रीमद् भगवद्गीता को लिखा—'जीवनगीता' ।
१९३३	:	तीसरी हिमालययात्रा । बर्फ में रहते महात्मा मिले ।
१९३४	:	सगुण ब्रह्म का साक्षात्कार । मल-मूत्र के आधार पर पचीस दिन की साधना ।
१९३४ से १९३९	:	दौरान हिमालय में अघोरीबाबा की मुलाकात बाद में नर्मदा धूआँधार के प्रपात के पीछे की गुफा में साधना। चैत्र मास में ६३ धूनियाँ जलाकर नर्मदा किनारे खुले में शिला पर नग्न बैठकर साधना। कराची में नर्क चतुर्दशी की रात्रि को समुद्र में शिला पर ध्यान, चालीस दिन के रोजे, 'समुद्र में चले जाने का हुक्म और ईद के दिन पूरे शहर में नग्न अवस्था में घूमकर घर जाने का हुक्म। शिरडी के सांईबाबा के प्रत्यक्ष दर्शन—आदेश—साधना के अंतिम चरण का मार्गदर्शन।
१९३९	:	दि. २९-३-३९ : रामनवमी विक्रम संवत १९९५ काशी में निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार । हरिजन सेवक संघ से त्यागपत्र । 'मनने' के प्रथम संस्करण का प्रकाशन ।
१९४०	:	दि. ९-९-४० : हवाई मार्ग से अहमदाबाद से कराची जाने का गूढ़ आदेश ।

* मौन—एकांत की पगदंडी, प्रथम संस्करण, पृ. २०

१९४२	:	माता का अवसान ।
१९४२	:	हरिजन सेवक संघ से अलग होने पर भी हरिजन कन्या छात्रालय के लिए मुंबई में चन्दा इकट्ठा किया । दो बार सख्त पुलिसमार—देहातीत अवस्था के प्रमाण ।
१९४३	:	२४, फरवरी गाँधीजी के पेशाब के जहरीले जन्तुओं का अपने पेशाब में दर्शन । नैमित्तिक तादात्म्य का अनुभव ।
१९४५	:	हिमालय की यात्रा - अद्‌भुत घटनाएँ ।
१९४६	:	हरिजन आश्रम, अहमदाबाद मीराकुटिर में मौनएकांत का आरंभ ।
१९४७	:	आश्रम स्थापने का विचार ।
१९५०	:	दक्षिण भारत के कुंभकोणम् (तामिलनाडु) में कावेरी नदी के किनारे हरिःॐ आश्रम की स्थापना । (सन १९७६ में देहत्याग के बाद आश्रम बंद कर दिया गया ।)
१९५४	:	सूरत तापी नदी के किनारे कुरुक्षेत्र जहाँगीरपुरा के श्मशान में मौनएकांत का आरंभ ।
१९५५	:	दि. २८-५-५५ : जूना बिलोदरा, शेढी नदी के किनारे, नडियाद, गुजरात, हरिःॐ आश्रम की स्थापना ।
१९५६	:	दि. २३-४-५६ सूरत (गुजरात) तापी नदी के किनारे, कुरुक्षेत्र जहाँगीरपुरा में हरिःॐ आश्रम की स्थापना ।
१९५९	:	१६-८-१९५९ हरिःॐ आश्रम, सूरत में मौनमंदिर का उद्‌घाटन ।*
१९६२	:	समाजोत्थान की प्रवृत्ति, उत्सव मनाने की संमति ।
१९७० से १९७५	:	शरीर में पीडाकारी वेदना के साथ सतत प्रवास, वार्तालाप और साधना का इतिहास, श्रद्धा, निमित्त, रागद्वेष, कृपा आदि भाववाही विषयों पर लेखन - प्रकाशन ।
१९७६	:	१९-७-१९७६ देहत्याग का संकल्प, हरिःॐ आश्रम नडियाद २२-७-१९७६ देहत्याग विधि का प्रारंभ : सायंकाल ४ बजे से फाजलपुर (जि. वडोदरा, गुजरात) मही नदी के किनारे श्री रमणभाई अमीन के फार्म-हाउस में ।
२३-७-१९७६	:	देहविसर्जन : श्री रमणभाई अमीन के फार्म-हाउस नजदिक मही नदी के किनारे फालजपुर (जि. वडोदरा, गुजरात)

॥ हरिःॐ ॥

* श्रीमोटा का ता. १६-८-१९५९ का पत्र श्री पी.टी. पटेल कुंवराव (जि. आणंद, गुजरात)

हरि:ॐ आश्रम सूरत में उपलब्ध हिंदी पुस्तकों का लिस्ट

क्रम	पुस्तक	प्र. आ.
१.	पूज्य श्रीमोटा एक संत	१९९७
२.	कैंसर का प्रतिकार	२००८
३.	सुख का मार्ग	२००८
४.	दुर्लभ मानवदेह	२००९
५.	प्रसादी	२००९
६.	नामस्मरण	२०१०
७.	हरि:ॐ आश्रम (श्रीभगवान के अनुभव का स्थान)	२०१०
८.	श्रीमोटा के साथ वार्तालाप	२०१२
९.	विवाह हो मंगलम्	२०१२
१०.	बालकों के **मोटा**	२०१२
११.	विद्यार्थी **मोटा** का पुरुषार्थ	२०१२
१२.	मौनमंदिर का मर्म	२०१३
१३.	मौनमंदिर का हरिद्वार	२०१३
१४.	मौनएकांत की पगडंडी पर	२०१३
१५.	मौनमंदिर में प्रभु	२०१४

●

English books available at Hariom Ashram, Surat.
January - 2020

No.	Book	F. E.
1.	At Thy Lotus Feet	1948
2.	To The Mind	1950
3.	Life's Struggle	1955
4.	The Fragrance Of A Saint	1982
5.	Vision of Life - Eternal	1990
6.	Bhava	1991
7.	Nimitta	2005
8.	Self-Interest	2005
9.	Inquisitiveness	2006
10.	Shri Mota	2007
11.	Rites and Rituals	2007
12.	Naamsmaran	2008
13.	Mota for Children	2008
14.	Against Cancer	2008
15.	Faith	2010
16.	Shri Sadguru	2010
17.	Human To Divine	2010
18.	Prasadi	2011
19.	Grace	2012
20.	I Bow At Thy Feet	2013
21.	Attachment And Aversion	2015
22.	The Undending Odyssey (My Experience of Sadguru Sri Mota's Grace)	2019
23.	Pujya Shri Mota Glimpses of a divine life (Picture Book)	2020
24.	Genuine Happiness	2021

●

॥ હરિઃૐ ॥

॥ हरि:ॐ ॥

‘मैं सर्वत्र विद्यमान हूँ’

– श्रीमोटा

‘जीवनदर्शन’, द्वितिय संस्करण, पृष्ठ ३८२